श्री

धवला-टीका-समन्वितः

षट्खंडागमः

क्षुद्रकबन्ध

खंड २

पुस्तक ७

सम्पादक

हीरालाल जैन
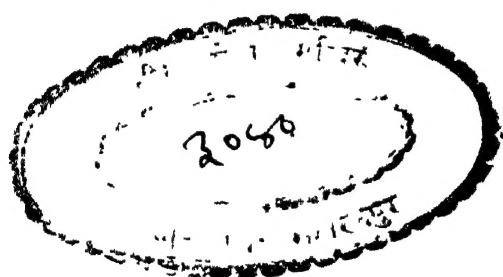
श्री भगवत्-पुष्पदन्त-भूतबलि-प्रणीतः

षट्खंडागमः

श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-धवला-टीका-समन्वितः ।

तस्य द्वितीय-खंडः

क्षुद्रकबन्धः

हिन्दीभाषानुवाद-तुलनात्मकटिप्पण-प्रस्तावनानेकपरिशिष्टैः संपादितः

सम्पादकः

नागपुरस्थ-मॉरिस-कालेज-संस्कृताध्यापकः एम्. ए., एल्. एल्. बी., डी. लिट्. इत्युपाधिधारी

हीरालालो जैनः

सहसम्पादकः

पं. बालचन्द्रः सिद्धान्तशास्त्री

संशोधने सहायकौ

व्या. वा., सा. सू., पं. देवकीनन्दनः सिद्धान्तशास्त्री ★ डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः उपाध्याय एम्. ए., डी. लिट्.

प्रकाशकः

श्रीमन्त शेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालयः

अमरावती (बरार)

वि. सं. २००२] वीर-निर्वाण-संवत् २४७१ [ई. स. १९४५

मूल्यं रूप्यक-दशकम्

प्रकाशक—

श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र,

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय

अमरावती (बरार)

मुद्रक—

टी. एम्. पाटील

मैनेजर

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमराव

THE

ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUṢPADANTA AND BHŪTABALI

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VĪRASENA

VOL. VII

KṢUDRAKA-BANDHA

Edited

with introduction, translation, indexes and notes

BY

Dr. HIRALAL JAIN, M. A., LL. B., D. Litt.,

C. P. Educational Service, Morris College, Nagpur.

ASSISTED BY

Pandit Balchandra Siddhānta Shāstrī.

with the cooperation of

Pandit DEVAKINANDAN Siddhānta Shāstrī ★ Dr. A. N. UPADHYE M. A. D. LITT.

Published by

Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,

Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya.

AMRAOTI (Berar).

1945.

Price rupees ten only.

विषय-सूची

प्राक् कथन

इससे पूर्व प्रकाशित पुस्तकमें षट्खंडागमका प्रथम खण्ड जीवस्थान (जीवट्ठाण) समाप्त हो चुका है। उसे प्रकाशित हुए लगभग डेढ़ वर्ष हुआ है। अब प्रस्तुत पुस्तकमें षट्खंडागमका दूसरा खण्ड क्षुद्रकबन्ध (खुद्दाबंध) पूर्व पद्धति अनुसार अनुवादादि सहित प्रकाशित किया जाता है। इस खण्डके ग्यारह मुख्य तथा प्रास्ताविक व चूलिका इस प्रकार कुल तेरह अधिकारोंमें क्रमशः ४३, ९१, २१६, १५१, २३, १७१, १२४, २७४, ५५, ६८, ८८, २०६ और ७९ योग १५८९ सूत्र पाये जाते हैं। इन अनुयोगोंका विषय प्रायः वही है जो जीवस्थान खण्डमें भी आ चुका है। विशेषता यह है कि यहां मार्गणास्थानोंके भीतर गुणस्थानोंकी अपेक्षा रखकर प्ररूपण किया गया है जैसा कि विषय परिचयसे प्रकट होगा। यही कारण है कि इस खण्डमें उतने तुलनात्मक टिप्पण देने व विशेषार्थ लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

इसी समयमें हमारी स्वीकृत संशोधन प्रणालीकी कठोर परीक्षाका अवसर आ उपस्थित हुआ। पाठकोंको ज्ञात है कि हमने अत्यन्त सावधानीसे उपलब्ध प्रतियोंके पाठकी रक्षा की है। उपलभ्य पाठमें या तो भाषाकी दृष्टिसे केवल वे ही संशोधन किये गये हैं जिनके नियम हम प्रथम पुस्तककी प्रस्तावनामें प्रकट कर चुके हैं। या यदि कहीं कुछ पाठ जोड़ना आवश्यक प्रतीत हुआ तो वह पाठ कोष्ठकमें रखा गया है या उसकी संभावना पाद टिप्पणमें बतलाई गई है। जीवस्थानकी सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ में इसी प्रकारका एक प्रसंग उपस्थित हुआ था जहां अर्थ, शैली, टीका, सिद्धान्तपरम्परा आदि समस्त उपलब्ध प्रमाणोंपर विचार कर फुटनोटमें ' संजद ' पद छूट जानेकी सभावना प्रकट की गई थी और अनुवाद उस पदको ग्रहण करके ही बैठाया गया था। इस पर पाठकोंको जो शंका उत्पन्न हुई उसका समाधान भी पुस्तक ३ की प्रस्तावनामें कर दिया गया था। किन्तु अभी अभी उस प्रश्नपर फिर बड़ा विवाद उपस्थित हो उठा। बहुतसे पंडितोंने यह आक्षेप किया कि उक्त सूत्रमें 'संयत' पद ग्रहण करनेसे दिगम्बर मान्यताको आघात पहुंचता है और उसकी संभावना सम्प्रदायको क्षति पहुंचनेकी दृष्टिसे ही सम्पादकने प्रकट की है। इन आक्षेपोंसे बचनेके लिये उस समयके मेरे एक सहकारी सम्पादक पं. हीरालालजीने तो प्रकट ही कर दिया कि वह पाठ-संशोधन उनकी सम्मतिसे नहीं हुआ। दूसरे सहयोगी पं. फूलचन्द्रजी शास्त्री उस सम्बन्धमें अभी तक मौन ही रहे। इस परिस्थितिमें मैंने पं. लोकनाथजी शास्त्रीसे पुनः प्रेरणा की कि वे मूडबिद्रीकी तीनों ताड़पत्र प्रतियोंमें उक्त

सूत्रका पाठ देखनेकी कृपा करें। इसके फलस्वरूप दो ताड़पत्रीय प्रतियोंमें सूत्र पाठ ' संयत ' पदसे युक्त पाया गया और तीसरी प्रतिमें वह ताड़पत्र ही उपलभ्य नहीं है। इस स्पष्टी-करणके लिये हम पं. लोकनाथजी शास्त्रीके बहुत उपकृत हैं। इस तुलनात्मक अन्वेषणसे हमारी पाठ संशोधन प्रणालीकी प्रामाणिकता सिद्ध हो गई।

हमें यह प्रकट करते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि इस खंडके प्रकाशित होनेसे कुछ ही मास पूर्व इस फंडके ट्रस्टी तथा इस प्रकाशन योजनामें बड़े भारी सहायक अमरावती निवासी श्रीमान् सिंघई पन्नालालजी का स्वर्गवास हो गया। उन्होंने इस संस्थाका जो उपकार किया है उसका उल्लेख उनके चित्र सहित प्रथम पुस्तकमें ही किया जा चुका है। सिंघईजीको इस प्रकाशनका बड़ा उत्साह था और इस सिद्धान्तको पूर्णतः प्रकाशित देखने की उन्हें प्रबल अभिलाषा थी। विधिके विधानसे वह सफल नहीं हो सकी। हम उनकी विधवा पत्नी तथा सुपुत्र व अन्य कुटुम्बियोंसे समवेदना प्रकट करते हुए उनकी आत्माको स्वर्गमें शान्ति मिलनेके प्रार्थी हैं।

गत जुलाई १९४४ में मेरा तबादला अमरावतीसे नागपुरका हो गया। तथापि प्रकाशन ऑफिस व मुद्रणकी व्यवस्था अमरावतीमें ही रखना उचित प्रतीत हुआ। इस स्थान विच्छेदकी कठिनाई तथा अनेक आपत्तियां उपस्थित होनेपर भी जो यह कार्य प्रगतिशील बना हुआ है इसमें हमारे पाठकोंकी सद्भावना, श्रीमन्त सेठजी व अन्य अधिकारियोंकी सुदृष्टि व पूर्व समस्त सहायकोंके उपकारके अतिरिक्त पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीका समुचित सहयोग व सरस्वती प्रेसके मैनेजर श्रीयुत टी. एम. पाटिलका उत्साह सराहनीय है। मैं सबका विशेष आभारी हूं। इसी सहयोगके बलपर आगे भी संशोधन प्रकाशन कार्य विधिवत् चलते रहनेकी आशा की जा सकती है।

मारिस कॉलेज नागपुर
२-७-४५

हीरालाल

प्रस्तावना

INTRODUCTION.
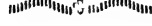
The first part of Ṣaṭkhaṇḍāgama called Jīvaṭṭhāṇa was completed with volume VI published an year and a half ago. The present volume contains the second Khaṇḍa called Khuddā-bandha (SK. Ksudraka-bandha), which means Bondage in brief. It consists of eleven chapters, besides the two additional ones, one being introductory and the other in the form of an appendix. The subject-matter is for the most part identical with what had already been propounded in the previous Khaṇḍa. But one important point of distinction between the two treatments is that here the Guṇasthāna division of souls has been ignored in dealing with the Mārgaṇā-sthanas, while in the former treatment it was strictly adhered to. The categories adopted in this part are also slightly different in scope as well as arrangement from those of the previous Khaṇḍa. In place of the eight divisions of Jīvaṭṭhāṇa, namely, Existence (Sat), Numbers (Saṃkhyā), Volume (Kṣetra), Space traversed (Sparśana), Time (Kāla), Interruption (Antara), Quality (Bhāva), and Comparative numerical strength (Alpa-bahutva), the headings adopted here are Ownership (of karma) from the point of view of a single soul (Swāmitva), Time from the point of view of a single soul (Kāla), Interruption from the point of view of a single soul (Antara), Being or non-being of the different conditions of existence from the point of view of the souls in the aggregate (Bhaṅga-vicaya), Numbers (Dravya-pramāṇa), Volume (Kṣetrānugama), Space traversed (Sparśana), Time from the point of view of the souls in the aggregate, Interruption from the point of view of the souls in the aggregate, Ratio (Bhāgābhāgānugama), and Comparative numerical strength (Alpa-bahutva). Besides these eleven categories which constitute the main chapters of this Khaṇḍa, the introductory chapter deals with the souls that contract karmas and those that do not (Bandhaka-sattva-prarūpaṇā), and the supplementary chapter at the end supplies information seriatim about the comparative numerical strength of the different classes of souls in an ascending order (Mahādaṇḍaka of Alpa-bahutva). The information being for the most part the same as found in the first Khaṇḍa, it was not necessary to add many comparative foot-notes and explanatory notes, because a reference to the corresponding section of Jīvaṭṭhāṇa would easily supply the wanted information. But where any novel or intricate point occurs, the necessary explanations and notes have been added.

One point, which is very important for its bearing on our principles of text-constitution, needs mention here. In the text of the 93rd Sūtra of Satprarūpaṇā of Jīvaṭṭhāṇa (Volume I, page 332), we had felt that the word ' Sanjada ' which was necessary there, had probably been omitted by a scribal mistake. Therefore this fact was noted in a foot-note and the word was adopted in the translation because otherwise the discussion there would be unintelligible. But this was objected to by some critics and the justification for it was supplied by us in the introduction to volume III (page 28). Recently, however, there was again a storm of criticism on the point because it was suspected that the addition of the word ' Sanjada ' in the Sūtra goes contrary to the Digambara faith and supports the Śvetāmbara view of the possibility of women-salvation (Strī-mukti). The previous collation of the palm-leaf manuscripts, the results of which were tabulated in the Appendix to volume III, had also not brought out the ward 'Sanjada' in the Sūtra. But because I was certain that the text was incomplete and inconsistent without that word, I arranged for a closer scrutiny of the Moodbidri mss. as a result of which the two palm-leaf mss., which have preserved the text of the Sūtra yielded the required reading, while in the third manuscript the leaf itself containing the text of the Sūtra is missing. This discovery together with the results of the previous collation as noted in the introduction to volume III (page 51) has proved beyond doubt the validity of our system of text-constitution. I am very thankful to Pandit Loknath Shastri of Moodbidri for the great pains he took in scrutinizing the palm-leaf manuscripts and bringing to light the true and correct reading of that Sūtra.

— —— —

क्या षट्खंडागम जीवट्ठाणकी सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ में 'संयत' पद अपेक्षित नहीं है ?

षट्खंडागम जीवट्ठाण सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ का जो पाठ उपलब्ध प्रतियोंमें पाया गया था उसमें संयत पद नहीं था। किन्तु उसका सम्पादन करते समय सम्पादकोंको यह प्रतीत हुआ कि वहां 'संयत' पद होना अवश्य चाहिये और इसीलिये उन्होंने फुटनोटमें सूचित किया है कि **"अत्र 'संजद' इति पाठशेषः प्रतिभाति।"** तथा हिन्दी अनुवादमें संयत पद ग्रहण भी किया है। इस पर कुछ पाठकोंने शंका भी उत्पन्न की थी, जिसका समाधान पुस्तक ३ की प्रस्तावनाके पृष्ठ २८ पर किया गया है। इस समाधानमें ध्यान देने योग्य बातें ये हैं कि एक तो उक्त सूत्रकी धवला टीकामें जो शंका-समाधान किया गया है वह मनुष्यनीके चौदहों गुणस्थान ग्रहण करके ही किया गया है। दूसरे, सत्प्ररूपणाके आलापाधिकारमें भी धवलाकारने सामान्य मनुष्यनी व पर्याप्त मनुष्यनीके अलग अलग चौदहों गुणस्थान प्ररूपित किये हैं। तीसरे द्रव्यप्रमाणादि प्ररूपणाओंमें भी सर्वत्र मनुष्यनीके चौदहों गुणस्थान कहे गये हैं। और चौथे गोम्मटसार जीवकाण्डमें भी मनुष्यनीके चौदहों गुणस्थानोंकी ही परम्परा पाई जाती है, पांच गुणस्थानोंकी नहीं। इन प्रमाणोंपरसे स्पष्ट है कि यदि उक्त सूत्रमें संयत पद ग्रहण न किया जाय तो शास्त्रमें एक बड़ी भारी विषमता उत्पन्न होती है। अतएव षट्खंडागमके सम्पादनमें जो वहां संयत पदकी सूचना करके भाषान्तर किया गया वह सर्वथा उचित और आवश्यक था।

किन्तु मनुष्यनीके कहीं भी केवल पांच गुणस्थानोंका उल्लेख न पाकर कुछ लोग इसी सूत्रको स्त्रियोंके केवल पांच गुणस्थानोंकी योग्यताका मूलाधार बनाना चाहते हैं। परन्तु इसके लिये उन्हें उपर्युक्त चार बातोंका उचित समाधान करना आवश्यक है जो वे अभी तक नहीं कर सके। एक हेतु यह दिया जाता है कि प्रस्तुत सूत्रमें मनुष्यनीका अर्थ द्रव्य स्त्री स्वीकार करना चाहिये और द्रव्यप्रमाणादिमें जहां मनुष्यनीके चौदहों गुणस्थान बतलाये गये हैं वहां भाव स्त्री अर्थ लेना चाहिये। किन्तु ऐसा करनेपर शास्त्रमें यह विषमता उत्पन्न होगी कि उक्त प्रकरणमें जिन जीवोंके गुणस्थान बतलाये, उनका द्रव्यप्रमाण नहीं बतलाया गया, और जिनका द्रव्यप्रमाण बतलाया है उनके सब गुणस्थानोंका सत्त्व ही प्रतिपादित नहीं किया, तथा धवलाकारने वह शंका-समाधान अप्रकृत रूपसे किया, एवं आलापाधिकार भी निराधार रूपसे लिखा। पर धवलाकारने स्वयं अन्यत्र यह स्पष्ट कर दिया है कि जिन जीवोंके जो गुणस्थान प्रतिपादित किये गये हैं, उन्हीं जीवोंके उसी प्रकार द्रव्यप्रमाणादि बतलाये गये हैं। उदाहरणार्थ, सत्प्ररूपणाके ही सूत्र २६ में जो तिर्यंचोंके पांच गुणस्थान कहे गये हैं वहां धवलाकार शंका

उठाते हैं कि तिर्यंच तो पांच प्रकारके होते हैं— सामान्य, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, तिर्यंचनी और अपर्याप्त। इनमेंसे किनके पांच गुणस्थान होते हैं यह सूत्रसे ज्ञात नहीं हो सका? इसका वे समाधान इस प्रकार करते हैं—

न तावदपर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यक्षु पंच गुणा सन्ति, लब्ध्यपर्याप्तेषु मिथ्यादृष्टिव्यतिरिक्तशेषगुणासम्भवात्। तत्कुतोऽवगम्यते इति चेत् 'पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तमिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? 'असंखेज्जा' इति तत्रैकस्यैव मिथ्यादृष्टिगुणस्य संख्यायाः प्रतिपादकार्षात्। शेषेषु पंचापि गुणस्थानानि सन्ति, अन्यथा तत्र पंचानां गुणस्थानानां संख्यादिप्रतिपादकद्रव्याद्यार्षस्याप्रामाण्यप्रसंगात्। (पुस्तक १, पृ. २०८-२०९)

इस शंका-समाधानसे ये बातें सुस्पष्ट हो जाती हैं कि सत्त्वप्ररूपणा और द्रव्यप्रमाणादि प्ररूपणाओंका इस प्रकार अनुषंग है कि जिन जीवसमासोंका जिन गुणस्थानोंमें द्रव्यप्रमाण बतलाया गया है उनमें उन गुणस्थानोंका सत्त्व भी स्वीकार किया जाना अनिवार्य है, और यदि वह सत्त्व स्वीकार नहीं किया तो वह द्रव्यप्रमाण प्ररूपण ही अनार्ष हो जावेगा। यही बात द्रव्यप्रमाणके प्रारम्भमें भी कही गई है कि—

संपहि चोद्दसण्हं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चेव परिमाणपडिबोहणट्ठं भूदबलियाइरियो सुत्तमाह।" (पुस्तक ३ पृ. १)

अर्थात् जिन चौदह जीवसमासोंका अस्तित्व शिष्योंने जान लिया है उन्हींका परिमाण बतलानेके लिये भूतबलि आचार्य आगे सूत्र कहते हैं। तात्पर्य यह कि मनुष्यनीके सत्वमें केवल पांच और द्रव्यप्रमाणादि प्ररूपणमें चौदह गुणस्थानोंके प्रतिपादनकी बात बन नहीं सकती। और यदि उनका द्रव्यप्रमाण चौदहों गुणस्थानोंमें कहा जाना ठीक है, तो यह अनिवार्य है कि उनके सत्त्वमें भी चौदहों गुणस्थान स्वीकार किये जांय।

एक बात यह भी कही जाती है कि जीवट्ठाणकी सत्प्ररूपणा पुष्पदन्ताचार्य कृत है और शेष प्ररूपणायें भूतबलि आचार्य की। अतएव संभव है कि पुष्पदन्ताचार्यको मनुष्यनीके पांच ही गुणस्थान इष्ट हों। किन्तु यह बात भी संभव नहीं है, क्योंकि यदि उक्त सूत्रमें पांच गुणस्थान ही स्वीकार किये जांय तो उसका उसी सत्प्ररूपणाके सूत्र १६४-१६५ से विरोध पड़ेगा जहां स्पष्टतः सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी, इन तीनोंके असंयत संयतासंयत व संयत, इन सभी गुणस्थानोंमें क्षायिक, वेदक और उपशम सम्यक्त्व स्वीकार किया गया है। यथा—

मणुसा असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे अत्थि खइयसम्माइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी ॥ एवं मणुसपज्जत्त-मणुसणीसु ॥ १६४-१६५।

इन सूत्रोंके सद्भावमें स्वयं पुष्पदन्तकृत सत्प्ररूपणामें ही मनुष्यनीके संयत गुणस्थान व तीनों सम्यक्त्वोंका सद्भाव स्वीकार किया गया है।

इन सब प्रमाणों व युक्तियोंसे स्पष्ट है कि सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ में संयत पदका ग्रहण करना अनिवार्य है। यदि उसका ग्रहण नहीं किया जाय तो शास्त्रमें बड़ी विषमता और विरोध उत्पन्न हो जाता है। इस परिस्थितिमें यदि उसी सूत्रके आधारपर स्त्रियोंके केवल पांच ही गुणस्थानोंकी मान्यता स्थिर की जाती है तो कहना पड़ेगा कि यह मान्यता एक स्खलित और त्रुटित पाठके आधारसे होनेके कारण भ्रान्त और अशुद्ध है।

मूडबिद्रीकी ताड़पत्रीय प्रतियोंमें जीवट्ठाणकी सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ में 'संजद' पाठ है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार उपलब्ध प्रतियोंमें उक्त सूत्रके अन्तर्गत 'संजद' पाठ न होने पर भी सम्पादकोंने उसे ग्रहण करना आवश्यक समझा और उसपर उत्तरोत्तर विचार करनेपर भी उसके विना अर्थकी संगति बैठाना असम्भव अनुभव किया। किन्तु कुछ विद्वान् इस कल्पनापर बेहद रुष्ट हो रहे हैं और लेखों, शास्त्रार्थों व चर्चाओंमें नाना प्रकारके आक्षेप कर रहे हैं। प्रथम भागके एक सहयोगी सम्पादक पं. हीरालालजी शास्त्रीने तो प्रकट भी कर दिया है कि उस पाठके रखनेमें उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं है। दूसरे सहयोगी पं. फूलचन्द्रजी शास्त्रीने उसके सम्बन्धमें कुछ भी न कहकर मौन धारण कर लिया है। इस कारण समालोचकोंने प्रधान सम्पादकको ही अपने क्रोधका एक मात्र लक्ष्य बना रखा है। इस परिस्थितिको देखकर प्रधान सम्पादकने मूडबिद्रीकी ताड़पत्रीय प्रतियोंसे उस सूत्रके पुनः सावधानीसे मिलान करानेका प्रयत्न किया। पुस्तक ३ के 'प्राक् कथन' व 'चित्र-परिचय' के पढ़नेसे पाठकोंको सुविदित हो ही चुका है कि मूडबिद्रीमें धवलसिद्धान्तकी एक ही नहीं तीन ताड़पत्रीय प्रतियां हैं, यद्यपि इनमेंकी दोमें ताड़पत्र पूरे पूरे न होनेसे वे त्रुटित हैं। इन तीनों प्रतियोंका सावधानीसे अवलोकन करके श्रीयुत् पं. लोकनाथजी शास्त्री अपने ता. २४-५-४५ के पत्र द्वारा सूचित करते हैं कि—

" जीवट्ठाण भाग १ पुष्ठ नं. ३३२ में सूत्र ताड़पत्रीय मूलप्रतियोंमें इस प्रकार है—

' तत्रैव शेषगुणस्थानविषयारेकापोहनार्थमाह— सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ।'

टीका वही है जो मुद्रित पुस्तकमें है। धवलाकी दो ताड़पत्रीय प्रतियोंमें सूत्र इसी प्रकार 'संजद' पदसे युक्त है। तीसरी प्रतिमें ताड़पत्र ही नहीं है। पहले संशोधन-मुकाबिला करके भेजते समय भी लिखकर भेजा था। परन्तु रहा कैसा, सो मालूम नहीं पड़ता, सो जानियेगा।"

ताडपत्रीय प्रतियोंके इस मिलानपरसे पाठक समझ सकेंगे कि षट्खंडागमका पाठ संशोधन कितनी सावधानी और चिन्तनके साथ किया गया है। तीसरे भागकी प्रस्तावनामें हम लिख ही चुके थे कि उस भागमें हमने जिन १९ पाठोंकी कल्पना की थी उनमेंसे १२ पाठ जैसेके तैसे ताड़पत्रीय प्रतियोंमें पाये गये और शेष पाठ उनमें न पाये जाने पर भी शैली और अर्थकी दृष्टिसे उनका वहां ग्रहण किया जाना अनिवार्य है। अब उक्त सूत्रमें भी 'संजद' पाठ मिल जानेसे मर्मज्ञ पाठकोंको सन्तोष होगा और समालोचक विचार कर देखेंगे कि उनके आक्षेपादि कहां तक न्यायसंगत थे। जिनके पास प्रतियां हों उन्हें उक्त सूत्रमें संजद पाठ सम्मिलित करके अपनी प्रति शुद्ध कर लेना चाहिये।

विषय-परिचय

पूर्व प्रकाशित छह पुस्तकोंमें षट्खंडागमका प्रथम खंड 'जीवट्ठाण' प्रकट हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तकमें दूसरा खंड 'खुद्दाबंध' पूरा समाविष्ट है। इस खंडका विषय उसके नामसे ही सूचित हो जाता है कि इसमें क्षुद्र अर्थात् संक्षिप्तरूपसे बंध अर्थात् कर्मबन्धका प्रतिपादन किया गया है। पाठकोंको इस बृहत्काय ग्रंथमें बन्धका विवरण देखकर स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि इसे क्षुद्र व संक्षिप्त विवरण क्यों कहा? किन्तु संक्षिप्त और विस्तृत आपेक्षिक संज्ञाएं हैं। भूतबलि आचार्यने प्रस्तुत खंडमें बन्धक अनुयोगका व्याख्यान केवल १५८९ सूत्रोंमें किया है जब कि उन्होंने बंधविधानका विस्तारसे व्याख्यान छठवें खंड महाबन्धमें तीस हजार ग्रंथरचना रूपसे किया। इन्हीं दोनों खंडोंकी परस्पर विस्तार व संक्षेपकी अपेक्षासे छठा खंड 'महाबन्ध' कहलाया और प्रस्तुत खंड खुद्दाबंध या क्षुद्रकबन्ध।

खुद्दाबन्धकी उत्पत्ति प्रथम पुस्तककी प्रस्तावनाके पृ. ७२ पर दिखाई जा चुकी है और उसके विषय व अधिकारोंका निर्देश उसी प्रस्तावनाके पृष्ठ ६५ पर कर दिया गया है। उसके अनुसार बारहवें श्रुताङ्ग दृष्टिवादके चतुर्थ भेद पूर्वगतका जो दूसरा पूर्व आग्रायणीय था उसकी पूर्वान्त आदि चौदह वस्तुओंमेंसे पंचम वस्तु '**चयनलब्धि**' के कृति आदि चौबीस

पाहुडोंमेंसे छठे पाहुड **बन्धन** के बन्ध, बन्धनीय, बन्धक और बन्धविधान नामक चार अधिकारोंमेंसे ' **बन्धक** ' अधिकारसे इस खंडकी उत्पत्ति हुई है।

कर्मबन्धके कर्ता हैं जीव जिनकी प्ररूपणा जीवट्ठाण खण्डमें सत् संख्या आदि आठ अनुयोग द्वारोंके भीतर मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थानों द्वारा व गति आदि चौदह मार्गणाओंमें की जा चुकी है। प्रस्तुत खण्डमें उन्हीं जीवोंकी प्ररूपणा स्वामित्वादि ग्यारह अनुयोगों द्वारा गुणस्थान विशेषणको छोड़कर मार्गणास्थानोंमें की गई है। यही इन दोनों खण्डोंमें विषय प्रतिपादनकी विशेषता है। इस खण्डके ग्यारह अनुयोग द्वारोंका नामनिर्देश स्वामित्वानुगमके दूसरे सूत्रमें किया गया है जिनके नाम हैं— (१) एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व (२) एक जीवकी अपेक्षा काल (३) एक जीवकी अपेक्षा अन्तर (४) नाना जीवोंकी अपेक्षा भंग-विचय (५) द्रव्यप्रमाणानुगम (६) क्षेत्रानुगम (७) स्पर्शनानुगम (८) नाना जीवोंकी अपेक्षा काल (९) नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर (१०] भागाभागानुगम और (११) अल्प-बहुत्वानुगम। इनसे पूर्व प्रास्ताविक रूपसे बंधकोंके सत्त्वकी भी प्ररूपणा की गई है और अन्तमें ग्यारहों अनुयोगद्वारोंकी चूलिका रूपसे ' महादंडक ' दिया गया है। इस प्रकार यद्यपि खुद्दाबन्धके प्रधान ग्यारह ही अधिकार माने गये हैं, किन्तु यथार्थतः उसके भीतर तेरह अधिकारोंमें सूत्र रचना पाई जाती है जिनके विषयका परिचय इस प्रकार है—

बन्धक-सत्त्वप्ररूपणा

इस प्रस्तावना रूप प्ररूपणामें केवल ४३ सूत्र हैं जिनमें चौदह मार्गणाओंके भीतर कौन जीव कर्म बन्ध करते हैं और कौन नहीं करते यह बतलाया गया है। सब मार्गणाओंका मथितार्थ यह निकलता है कि जहां तक योग अर्थात् मन वचन कायकी क्रिया विद्यमान है वहां तक सब जीव बन्धक हैं, केवल अयोगी मनुष्य और सिद्ध अबन्धक हैं।

१ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व

इस अधिकारमें ९१ सूत्र हैं जिनमें बतलाया गया है कि मार्गणाओं सम्बन्धी गुण व पर्याय जीवके कौनसे भावोंसे प्रकट होते हैं। इनमें सिद्धगति व तत्सम्बन्धी अकायत्व आदि गुण, केवलज्ञान, केवलदर्शन व अलेश्यत्व तो क्षायिक लब्धिसे उत्पन्न होते हैं। एकेन्द्रिय आदि पांचों जातियां, मन वचन काययोग, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान, परिहारशुद्धि संयम, चक्षु, अचक्षु व अवधि दर्शन, सम्यग्मिथ्यात्व और संज्ञित्व ये क्षयोपशम लब्धिजन्य हैं। अपगतवेद, अकषाय, सूक्ष्मसाम्पराय व यथाख्यात संयम, ये औपशमिक तथा क्षायिक लब्धिसे प्रकट होते हैं। सामायिक व छेदोपस्थापन संयम और सम्यग्दर्शन औपशमिक, क्षायिक व

क्षायोपशमिक लब्धिसे प्राप्त होते हैं। तथा भव्यत्व, अभव्यत्व एवं सासादनसम्यक्त्व, ये पारिणामिक भाव हैं। शेष गति आदि समस्त मार्गणान्तर्गत जीवपर्याय अपने अपने कर्मोंके व विरोधक कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होते हैं। सूत्र ११ की टीकामें धवलाकारने एक शंकाके आधारसे जो नामकर्मकी प्रकृतियोंके उदयस्थानोंका वर्णन किया है वह उपयोगी है।

२ एक जीवकी अपेक्षा काल

इस अनुयोगद्वारमें २१६ सूत्र हैं जिनमें प्रत्येक गति आदि मार्गणामें जीवकी जघन्य और उत्कृष्ट कालस्थितिका निरूपण किया गया है। जीवस्थानमें जो कालकी प्ररूपणा की गई है वह गुणस्थानोंकी अपेक्षा है, किन्तु यहां गुणस्थानका विचार छोड़कर मार्गणाकी ही अपेक्षा काल बतलाया गया है यही इन दोनोंमें विशेषता है।

३ एक जीवकी अपेक्षा अन्तर

इस अनुयोगद्वारके १५१ सूत्रोंमें यह प्रतिपादन किया गया है कि एक जीवका गति आदि मार्गणाओंके प्रत्येक अवान्तर भेदसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अर्थात् विरहकाल कितने समयका होता है।

४ नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय

इस अनुयोगद्वारमें केवल २३ सूत्र हैं। भंग अर्थात् प्रभेद और विचय अर्थात् विचारणा। अतएव प्रस्तुत अधिकारमें यह निरूपण किया गया है कि भिन्न भिन्न मार्गणाओंमें जीव नियमसे रहते हैं या कभी रहते हैं और कभी नहीं भी रहते। जैसे नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चारों गतियोंमें जीव सदैव नियमसे रहते ही हैं, किन्तु मनुष्य अपर्याप्त[1] कभी होते भी हैं और कभी नहीं भी होते। उसी प्रकार इन्द्रिय, काय, योग आदि मार्गणाओंमें भी जीव सदैव रहते ही हैं, केवल वैक्रियिक मिश्र[2], आहार[3] व आहारमिश्र[4] काययोगोंमें, सूक्ष्मसाम्पराय[5] संयममें तथा उपशम[6], सासादन[7] व सम्यग्मिथ्यादृष्टि[8] सम्यक्त्वमें, कभी जीव रहते हैं और कभी नहीं भी रहते। इस प्रकार उक्त आठ मार्गणाएं सान्तर हैं और शेष समस्त मार्गणाएं निरन्तर हैं (देखो गो. जी. गाथा १४२)।

५ द्रव्यप्रमाणानुगम

इस अनुयोगद्वारके १७१ सूत्रोंमें भिन्न भिन्न मार्गणाओंके भीतर जीवोंका संख्यात, असंख्यात व अनन्त रूपसे अवसर्पिणी उत्सर्पिणी आदि कालप्रमाणोंसे अपहार्य व अनपहार्य रूपसे एवं योजन, श्रेणी, प्रतर व लोकके यथायोग्य भागांश व गुणित क्रम रूपसे प्रमाण बतलाया

गया है। पूर्व निर्देशानुसार जीवस्थानके द्रव्यप्रमाण व इस अधिकारके प्ररूपणमें विशेषता केवल इतनी ही है कि यहां गुणस्थानकी अपेक्षा नहीं रखी गई।

६ क्षेत्रानुगम

इस अनुयोगद्वारमें १२४ सूत्रोंमें चौदह मार्गणानुसार सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यग्लोक व मनुष्यलोक, इन पांचों लोकोंके आश्रयसे स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, सात समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा वर्तमान निवासकी प्ररूपणा की गई है। पूर्वके समान यहां भी गुणस्थानोंकी अपेक्षा नहीं रखी गई।

७ स्पर्शनानुगम

इस अनुयोगद्वारमें २७४ सूत्रोंमें गुणस्थानक्रमको छोड़कर केवल चौदह मार्गणाओंके अनुसार सामान्यादि पांच लोकोंकी अपेक्षा स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदोंसे वर्तमान व अतीत कालसम्बन्धी निवासकी प्ररूपणा की गई है।

८ नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगम

इस अनुयोगद्वारमें ५५ सूत्रोंमें चौदह मार्गणानुसार नाना जीवोंकी अपेक्षा अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त, सादि-अनन्त व सादि-सान्त कालभेदोंको लक्ष्य कर जीवोंकी कालप्ररूपणा की गई है।

९ नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगम

इस अनुयोगद्वारमें ६८ सूत्रोंमें चौदह मार्गणानुसार नाना जीवोंकी अपेक्षा बन्धकोंके जघन्य व उत्कृष्ट अन्तरकालकी प्ररूपणा की गई है।

१० भागाभागानुगम

इस अनुयोगद्वारमें ८८ सूत्रोंमें चौदह मार्गणाओंके अनुसार सर्व जीवोंकी अपेक्षा बन्धकोंके भागाभागकी प्ररूपणा की गई है। यहां भागसे अभिप्राय अनन्तवें भाग, असंख्यातवें भाग और संख्यातवें भागसे; तथा अभागसे अभिप्राय अनन्त बहुभाग, असंख्यात बहुभाग व संख्यात बहुभागसे है। उदाहरण स्वरूप 'नारकी जीव सब जीवोंकी अपेक्षा कितने भागप्रमाण हैं?' इस प्रश्नके उत्तरमें उन्हें सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण बतलाया गया है।

११ अल्पबहुत्वानुगम

इस अनुयोगद्वारमें २०५ सूत्रोंमें चौदह मार्गणाओंके आश्रयसे जीवसमासोंका तुलनात्मक प्रमाणप्ररूपण किया गया है। इस प्रकरणमें एक यह बात ध्यान देने योग्य है कि सूत्रकारने वनस्पतिकाय जीवोंसे निगोद जीवोंका प्रमाण विशेष अधिक बतलाया है जिसका अभिप्राय धवलाकारने यह प्रकट किया है कि जो एकेन्द्रिय जीव निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित हैं उनका वनस्पतिकाय जीवोंके भीतर ग्रहण नहीं किया गया। यहां शंकाकारके यह पूछनेपर कि उक्त जीवोंकी वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं मानी गई, धवलाकारने उत्तर दिया है कि "यह प्रश्न गौतमसे करो, हमने तो यहां उनका अभिप्राय कह दिया।" (पृ. ५४१)।

इन ग्यारह अधिकारोंके पश्चात् एक अधिकार चूलिकारूप महादंडकका है जिसके ७९ सूत्रोंमें मार्गणा विभागको छोड़कर गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य पर्याप्तसे लेकर निगोद जीवों तकके जीवसमासोंका अल्पबहुत्व प्रतिपादन किया गया है और उसीके साथ क्षुद्रकबन्ध खण्ड समाप्त होता है।

विषय-सूची

एक जीवकी अपेक्षा अन्तरानुगम

नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.

द्रव्यप्रमाणानुगम

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.

स्पर्शनानुगम

नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगम

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगम

भागाभागानुगम

शुद्धिपत्र

(पुस्तक ७)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	३-४	भावि	चावि
,,	१३	क्योंकि बन्धके	क्योंकि बन्ध और बन्धके
४६	३	रूपं	रूवं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८	२१	नं. ११	नं. १२
७३	२	भवति	भवदि
८२	२	ओसहाणं	ओसहीणं
१२९	१५	उद्वर्तनाघातसे	अपवर्तनाघातसे
१७६	५	भावसिद्धिया	भवसिद्धिया
२१४	७	)ण)	(ण)
३२५	९	अण्णगो	अण्णेगो
३२६	८	सत्थाणेण केवडिखेत्ते	सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते
,,	२३	स्वस्थानसे कितने	स्वस्थान और उपपादसे कितने
३३४	७	असंखेज्जगणे	असंखेज्जगुणे
३३६	५	केवडिखेत्ते, सव्वलोगे ?	केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे
३४७	६	समुद्‌घादगदा	समुग्घादगदा
४००	७	पुढविकाइय वाउकाइय सुहुमतेउकाइय सुहुम-वाउकाइय	पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-सुहुमपुढविकाइय-सुहुम-आउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुम-वाउकाइया
,,	२०	पृथिवीकायिक, वायुकायिक सूक्ष्म तेजस्कायिक	पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक
४३९	९	अट्ठचोद्दसभागा	अट्ठ-णवचोद्दसभागा
,,	२३	आठ बटे चौदह भाग	आठ व नौ बटे चौदह भाग
५०३	१५	विरलित	अपहृत
५४०	२९	आधेयसे, आधारका	आधेयसे आधारका
५७३	७	× × ×	मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा ॥ २०० ॥ सुगमं ।
,,	२०	× × ×	सिद्धोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणे हैं ॥२००॥ यह सूत्र सुगम है ।

पृ. ५७३–५७४ पर सूत्र संख्या २००, २०१, २०२, २०३, २०४ और २०५ के स्थानपर क्रमशः २०१, २०२, २०३, २०४, २०५ और २०६ होना चाहिये ।

बुद्धा बंधी

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स विदियखंडो

खुद्दाबंधो

बंधग-संतपरूवणा

जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो ।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स ॥

जे ते बंधगा णाम तेसिमिमो णिद्देसो ॥ १ ॥

'जे ते बंधगा णाम' इदि वयणं बंधगाणं पुव्वपसिद्धत्तं सूचेदि । पुव्वं कम्हि पसिद्धे बंधगे सूचेदि ? महाकम्मपयडिपाहुडम्मि । तं जहा– महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदि-वेदणादिगेसु[1] चदुवीसअणियोगद्दारेसु छट्ठस्स बंधणेत्ति अणियोगद्दारस्स बंधो बंधगो

जिन्होंने महाकर्मप्रकृतिप्राभृतरूपी शैलका अपने बुद्धिरूपी शिरसे उद्धार किया और पुष्पदन्ताचार्यको समर्पित किया ऐसे धरसेनाचार्य जयवन्त होवें ।

जो वे बंधक जीव हैं उनका यहां निर्देश किया जाता है ॥ १ ॥

शंका—'जो वे बंधक हैं' ऐसा यह वचन बंधकोंकी पूर्वमें प्रसिद्धिको सूचित करता है। अतएव पूर्वतः किस ग्रंथमें प्रसिद्ध बंधकोंकी यह सूचना है ?

समाधान—यह सूचना महाकर्मप्रकृतिप्राभृतमें प्रसिद्ध बंधकोंकी है । वह इस प्रकार है— महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोगद्वारोंमें छठवें

१ प्रतिषु ' कदि-वेदणादिगो ' इति पाठ ।

बंधणिज्जं बंधविहाणमिदि चत्तारि अधियारा । तेसु बंधगेत्ति विदिओ अधियारो, सो एदेण वयणेण सूचिदो । जे ते महाकम्मपयडिपाहुडम्मि बंधगा णिद्दिट्ठा तेसिमिमो णिद्देसो त्ति वुत्तं होदि ।

बंधया णाम जीवा चेव । कुदो[1] ? अजीवस्स मिच्छत्तादिपच्चएहि चत्तस्स बंधगत्ताणुववत्तीदो । ते च जीवा जीवट्ठाणे चोद्दसगुणट्ठाणविसिट्ठा चोद्दसमग्गणट्ठाणेसु संतादिअट्ठहि अणियोगद्दारेहि मग्गिदा । संपहि तेसिं जीवाणं संतादिणा अवगदाणं पुणरवि परूवणे कीरमाणे पुणरुत्तदोसो ढुक्कदि त्ति ? ढुक्कदि पुणरुत्तदोसो जदि तेसिं जीवाणं तेहि चेव गुणट्ठाणेहि विसेसियाणं चोद्दससु मग्गणट्ठाणेसु तेहिं[2] चेव अट्ठहि अणियोगद्दारेहि मग्गणा कीरदे । णवरि एत्थ चोद्दसगुणट्ठाणविसेसणमवणिय चोद्दससु मग्गणट्ठाणेसु एक्कारसेहि अणियोगद्दारेहि पुव्वुत्तजीवाणं परूवणा कीरदे । तेण पुणरुत्त-दोसो ण ढुक्कदि त्ति ।

जीवट्ठाणम्मि कदपरूवणादो चेव एत्थ परूविज्जमाणो अत्थो जेण णव्वदि, तेण

....

अनुयोगद्वार बन्धनके बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान, ये चार अधिकार हैं । उनमें जो बन्धक नामका दूसरा अधिकार है वही यहां सूत्रोक्त वचन द्वारा सूचित किया गया है । कहनेका तात्पर्य यह कि जो वे महाकर्मप्रकृतिप्राभृतमें बन्धक कहकर निर्दिष्ट किये गये हैं उन्हींका यहां निर्देश है ।

बन्धक जीव ही होते हैं, क्योंकि, मिथ्यात्व आदिक बन्धके कारणोंसे रहित अजीवके बन्धकभावकी उपपत्ति नहीं बनती ।

शंका—उन ही बन्धक जीवोंका जीवस्थान खण्डमें चौदह गुणस्थानोंकी विशेषता सहित चौदह मार्गणस्थानोंमें सत्, संख्या आदि आठ अनुयोगोंके द्वारा अन्वेषण किया गया है । अब सत् आदि प्ररूपणाओं द्वारा जाने हुए उन्हीं जीवोंका फिर प्ररूपण किये जानेसे तो पुनरुक्ति दोष उत्पन्न होता है ?

समाधान—पुनरुक्ति दोष प्राप्त होता यदि उन जीवोंका उन्हीं गुणस्थानोंकी विशेषता सहित चौदह मार्गणाओंमें उन्हीं आठ अनुयोगों द्वारा अन्वेषण किया जाता । किन्तु यहां तो चौदह गुणस्थानोंकी विशेषताको छोड़कर चौदह मार्गणास्थानोंमें ग्यारह अनुयोगद्वारोंसे पूर्वोक्त जीवोंकी प्ररूपणा की जा रही है । अतः यहां पुनरुक्ति दोष नहीं प्राप्त होता ।

शंका—जीवस्थान खण्डमें जो प्ररूपणा की गई है उसीसे यहां प्ररूपित किये

....

१ प्रतिषु ' कदो ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' तेहं ' इति पाठः ।

एदीए परूवणाए ण किंचि फलं पेच्छामो ? ण, मग्गणट्ठाणेसु चोद्दसगुणट्ठाणाणं संतादि-परूवणादो मग्गणट्ठाणविसेसिदजीवपरूवणाए एगत्ताणुवलंभादो । जदि तत्तो एयत्तमत्थि तो अवगम्मदे, ण च एयत्तं पेच्छामो । एदेण कमेण ट्ठिददव्वादिअणियोगद्दाराणि घेत्तूण जीवट्ठाणं कयमिदि जाणावणट्ठं वा बंधयाणं परूवणा आगदा । तम्हा बंधयाणं परूवणं णायपत्तमिदि ।

णामबंधया ठवणबंधया दव्वबंधया भावबंधया चेदि चउव्विहा बंधया । तत्थ णामबंधया णाम 'बंधया' इदि सद्दो जीवाजीवादिअट्ठभंगेसु पयट्टंतो । एसो णामणिक्खेवो दव्वट्ठियणयमवलंबिय ट्ठिदो । कुदो ? णामस्स सामण्णे पउत्तिदंसणादो, दिट्ठाणंतरसमए णट्ठदव्वेसु संकेयगहणाणुववत्तीदो । कट्ठ-पोत्त-लेप्पकम्मादिसु सब्भावासब्भावभेएण जे ठविदा बंधया त्ति ते ठवणबंधया णाम । एसो णिक्खेवो दव्वट्ठियणयमवलंबिय ट्ठिदो । कुदो ? 'सो एसो' त्ति एयत्तज्झवसाएण विणा ट्ठवणाए अणुववत्तीदो । जे ते दव्वबंधया

....

आनेवाले अर्थका ज्ञान हो जाता है, अतः इस प्ररूपणाका हमें तो किंचित् भी फल दिखाई नहीं देता ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि मार्गणास्थानोंमें चौदह गुणस्थानोंकी सत्, संख्या आदिरूप प्ररूपणासे मार्गणाविशेषित जीवप्ररूपणाका एकत्व नहीं पाया जाता । यदि उससे एकत्व होता तो वैसा हमें ज्ञान हो जाता । किन्तु हमें उनका एकत्व दिखाई नहीं देता ?

अथवा, इस क्रमसे स्थित द्रव्यादि अनुयोगद्वारोंको लेकर जीवस्थान खण्डकी रचना की गई है, यह जतलानेके लिये बन्धकोंकी प्ररूपणा प्रस्तुत है । अतएव बन्धकोंकी प्ररूपणा न्यायप्राप्त है ।

बन्धक चार प्रकारके हैं— नामबन्धक, स्थापनाबन्धक, द्रव्यबन्धक और भाव-बन्धक । उनमें नामबन्धक तो 'बन्धक' यह शब्द ही है जो जीव, अजीव आदि आठ भंगोंमें प्रवृत्त होता है । (इन आठ भंगोंके लिये देखो जीवस्थान भाग १, पृ. १९) । यह नामनिक्षेप द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करके स्थित है, क्योंकि, नामकी सामान्यमें प्रवृत्ति देखी जाती है, चूंकि दिखाई देनेके अनन्तर समयमें ही नष्ट हुए पदार्थोंमें संकेत ग्रहण करना नहीं बनता ।

काष्ठकर्म, पोतकर्म, लेप्यकर्म आदिमें सद्भाव व असद्भावके भेदसे जिनकी 'ये बन्धक हैं' ऐसी स्थापना की गई हो वे स्थापनाबन्धक हैं । यह निक्षेप भी द्रव्यार्थिक नयके अवलम्बनसे स्थित है, क्योंकि, 'वह यही है' ऐसे एकत्वका निश्चय किये विना स्थापनानिक्षेप बन नहीं सकता ।

णाम ते दुविहा आगम-णोआगमभेएण । बंधयपाहुडजाणया अणुवजुत्ता आगमदव्वबंधया णाम । कधमागमेण विप्पमुक्कस्स जीवदव्वस्स आगमववएसो ? ण एस दोसो, आगमाभावे[1] वि आगमसंसकारसहियस्स पुव्वं लद्धागमववएसस्स जीवदव्वस्स आगमववएसुवलंभा । एदेणेव भट्ठसंसकारजीवदव्वस्स वि गहणं कायव्वं, तत्थ वि आगमववएसुवलंभा । णोआगमादो दव्वबंधया तिविहा, जाणुअसरीर-भविय-तव्वदिरित्तबंधयभेदेण । जाणुगसरीर-भवियदव्वबंधया सुगमा । तव्वदिरित्तदव्वबंधया दुविहा– कम्मबंधया णोकम्मबंधया चेदि । तत्थ जे णोकम्मबंधया ते तिविहा– सचित्तणोकम्मदव्वबंधया अचित्तणोकम्मदव्वबंधया मिस्सणोकम्मदव्वबंधया चेदि । तत्थ सचित्तणोकम्मदव्वबंधया जहा हत्थीणं बंधया, अस्साणं बंधया इच्चेवमादि । अचित्तणोकम्मदव्वबंधया जहा कट्ठाणं बंधया, सुप्पाणं बंधया कडयाणं[2] बंधया, इच्चेवमादि । मिस्सणोकम्मदव्वबंधया जहा साहरणाणं[3] हत्थीणं बंधया इच्चेवमादि ।

जो द्रव्यबन्धक हैं वे आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारके हैं । बन्धकप्राभृतके जानकार किन्तु (विवक्षित समय पर) उसमें उपयोग न रखनेवाले आगमद्रव्यबन्धक हैं ।

शंका—जो आगमके उपयोगसे रहित है उस जीव द्रव्यको ' आगम ' कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, आगमके अभाव होने पर भी आगमके संस्कार सहित एवं पूर्वकालमें आगम संज्ञाको प्राप्त जीव द्रव्यको आगम कहना पाया जाता है । इसी प्रकार जिस जीवका आगम-संस्कार भ्रष्ट हो गया है उसका भी ग्रहण कर लेना चाहिये, क्योंकि, उसके भी आगम संज्ञा पाई जाती है ।

ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यबन्धक तीन प्रकारके हैं । तद्व्यतिरिक्त द्रव्यबन्धक दो प्रकारके हैं — कर्मबन्धक और नोकर्मबन्धक । उनमें जो नोकर्मबन्धक हैं वे तीन प्रकारके हैं— सचित्तनोकर्मद्रव्यबन्धक, अचित्तनोकर्मद्रव्यबन्धक और मिश्रनोकर्मद्रव्यबन्धक । उनमें सचित्तनोकर्मद्रव्यबन्धक, जैसे— हाथी बांधनेवाले, घोड़े बांधनेवाले इत्यादि । अचित्तनोकर्मद्रव्यबन्धक, जैसे — लकड़ी बांधनेवाले, सूपा बांधनेवाले, कट (चटाई) बांधनेवाले, इत्यादि । मिश्रनोकर्मद्रव्यबन्धक, जैसे— आभरणों सहित हाथियोंके बांधनेवाले, इत्यादि ।

---

१ प्रतिषु ' आगमभावे ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' किद्दयाणं ' मप्रतौ ' किदयाणं ' इति पाठः ।

३ अ-कप्रत्योः ' साहारणाणं ' इति पाठः ।

जे कम्मबंधया ते दुविहा– इरियावहबंधया सांपराइयबंधया चेदि। तत्थ जे इरियावहबंधया ते दुविहा– छदुमत्था केवलिणो चेदि। जे छदुमत्था ते दुविहा– उवसंत-कसाया खीणकसाया चेदि। जे सांपराइयबंधया ते दुविहा– सुहुमसांपराइया बादरसांपराइया चेदि। जे सुहुमसांपराइया बंधया ते दुविहा– असंपराइयादिया बादरसांपराइयादिया चेदि। जे बादरसांपराइया ते तिविहा– असंपराइयादिया सुहुमसांपराइयादिया अणादि-बादरसांपराइया चेदि। तत्थ जे अणादिबादरसांपराइया ते तिविहा– उवसामया खवया अक्खवयाणुवसामया चेदि। तत्थ जे उवसामया ते दुविहा– अपुव्वकरणउवसामया अणियट्टिकरणउवसामया चेदि। जे खवया ते दुविहा– अपुव्वकरणखवया अणियट्टि-करणखवया चेदि। तत्थ जे अक्खवयअणुवसामगा ते दुविहा– अणादिअपज्जवसिदबंधा च अणादिसपज्जवसिदबंधा चेदि। तत्थ जे भावबंधया ते दुविहा– आगम-णोआगम-भावबंधयभेदेण। तत्थ जे बंधपाहुडजाणया उवजुत्ता आगमभावबंधया णाम। णोआगमभावबंधया जहा कोह-माण-माया-लोह-पेम्माइं अप्पणाइं करेंता।

एदेसु बंधगेसु कम्मबंधएहि एत्थ अधियारो। एदेसिं बंधयाणं णिद्देसे कीरमाणे चोद्दसमग्गणट्ठाणाणि आधारभूदाणि होंति। काणि ताणि मग्गणट्ठाणाणि त्ति वुत्ते

जो कर्मोंके बन्धक हैं वे दो प्रकारके हैं— ईर्यापथबन्धक और साम्परायिक-बन्धक। उनमें जो ईर्यापथबन्धक हैं वे दो प्रकारके हैं— छद्मस्थ और केवली। जो छद्मस्थ हैं वे दो प्रकारके हैं— उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय। जो साम्परायिकबन्धक हैं वे दो प्रकारके हैं— सूक्ष्मसाम्परायिक और बादरसाम्परायिक।

जो सूक्ष्मसाम्परायिक बन्धक हैं वे दो प्रकारके हैं— असाम्परायादिक और बादरसाम्परायादिक। जो बादरसाम्परायिक हैं वे तीन प्रकारके हैं— असाम्परायादिक, सूक्ष्मसाम्परायादिक और अनादिबादरसाम्परायिक। उनमें जो अनादिबादरसाम्परायिक हैं वे तीन प्रकारके हैं— उपशामक, क्षपक और अक्षपकानुपशामक। उनमें जो उप-शामक हैं वे दो प्रकारके हैं— अपूर्वकरण उपशामक और अनिवृत्तिकरण उपशामक। जो क्षपक हैं वे दो प्रकारके हैं— अपूर्वकरण क्षपक और अनिवृत्तिकरण क्षपक। उनमें जो अक्षपकानुपशामक हैं वे दो प्रकारके हैं— अनादि-अपर्यवसित बन्धक और अनादि-सपर्यवसित बन्धक।

उनमें जो भावबन्धक हैं वे आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारके हैं। उनमें बन्धप्राभृतके जानकार और उसमें उपयोग रखनेवाले आगमभावबन्धक हैं। नोआगम-भावबन्धक, जैसे क्रोध, मान, माया, लोभ व प्रेमको आत्मसात् करनेवाले।

इन सब बन्धकोंमें कर्मबन्धकोंका ही यहां अधिकार है। इन्हीं बन्धकोंका निर्देश करनेपर चौदह मार्गणास्थान आधारभूत हैं। वे मार्गणास्थान कौनसे हैं? ऐसा पूछे

उत्तरसुत्तं भणदि—

गइ इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्साए भविए सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि ॥ २ ॥

गम्यत इति गतिः। एदीए णिरुत्तीए गाम-णयर-खेड-कव्वडादीणं पि गदित्तं पसज्जदे ? ण, रूढिबलेण गदिणामकम्मणिप्पाइयपज्जायम्मि गदिसद्दपवुत्तीदो। गदि-कम्मोदयाभावा सिद्धिगदी अगदी[1]। अथवा, भवाद् भवसंक्रांतिर्गतिः, असंक्रांतिः सिद्धिगतिः[2]। स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणि, स्वार्थनिरतानीन्द्रियाणीत्यर्थः। अथवा, इन्द्र आत्मा, इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम्। आत्मप्रवृत्त्युपचितपुद्गलपिंडः कायः, पृथ्वीकायादि-नामकर्मजनितपरिणामो वा कार्य-कारणोपचारेण कायः, चीयन्ते अस्मिन् जीवा इति व्युत्पत्तेर्वा कायः। आत्मप्रवृत्तेः[3]संकोचविकोचो योगः, मनोवाक्कायावष्टंभबलेन जीव-

....

जाने पर आचार्य अगला सूत्र कहते हैं—

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहारक, ये चौदह मार्गणास्थान हैं ॥ २ ॥

जहांको गमन किया जाय वह गति है।

शंका—गतिकी इस प्रकार निरुक्ति करनेसे तो ग्राम, नगर, खेड़ा, कर्वट आदि स्थानोंको भी गति माननेका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं आता, क्योंकि, रूढ़िके बलसे गतिनामकर्म द्वारा जो पर्याय निष्पन्न की गई है उसीमें गति शब्दका प्रयोग किया जाता है। गतिनामकर्मके उदयके अभावके कारण सिद्धिगति अगति कहलाती है। अथवा, एक भवसे दूसरे भवमें संक्रान्तिका नाम गति है, और सिद्धिगति असंक्रान्तिरूप है।

जो अपने अपने विषयमें रत हों वे इन्द्रियां हैं, अर्थात् अपने अपने विषयरूप पदार्थोंमें रमण करनेवाली इन्द्रियां कहलाती हैं। अथवा इन्द्र आत्माको कहते हैं, और इन्द्रके लिंगका नाम इन्द्रिय है। आत्माकी प्रवृत्ति द्वारा उपचित किये गये पुद्गलपिंडको काय कहते हैं। अथवा, पृथिवीकाय आदि नामकर्मोंके द्वारा उत्पन्न परिणामको कार्यमें कारणके उपचारसे काय कहा है। अथवा, ' जिसमें जीवोंका संचय किया जाय ' ऐसी व्युत्पत्तिसे काय बना है। आत्माकी प्रवृत्तिसे उत्पन्न संकोच-विकोचका नाम योग है, अर्थात् मन, वचन और कायके अवलम्बनसे जीवप्रदेशोंमें परिस्पन्दन होनेको योग कहते

....

१ प्रतिषु ' आगदि ' इति पाठः। २ आप्रतौ ' सिद्धगतिः ' इति पाठः।

३ प्रतिषु ' आत्मप्रवृत्तिस्संकोच– ' इति पाठः।

प्रदेशपरिस्पन्दो योग इति यावत् । आत्मप्रवृत्तेर्मैथुनसंमोहोत्पादो वेदः । सुख-दुःखबहुसस्यं कर्मक्षेत्रं कृषन्तीति कषायाः । भूतार्थप्रकाशकं ज्ञानं तत्वार्थोपलंभकं वा । व्रत-समिति-कषाय-दंडेन्द्रियाणां रक्षण-पालन-निग्रह-त्याग-जयाः संयमः, सम्यक् यमो वा संयमः । प्रकाशवृत्तिर्दर्शनम् । आत्मप्रवृत्तिसंश्लेषणकरी लेश्या, अथवा लिम्पतीति लेश्या । निर्व्वाणपुरस्कृतो भव्यः, तद्विपरीतोऽभव्यः । तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्, अथवा तत्वरुचिः सम्यक्त्वम्, अथवा प्रशम-संवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यक्त्वम् । शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राही[1] संज्ञी, तद्विपरीतः असंज्ञी । शरीरप्रायोग्य-पुद्गलपिंडग्रहणमाहारः, तद्विपरीतमनाहारः । एदेसु जीवा मग्गिज्जंति त्ति एदेसिं मग्गणाओ इदि सण्णा ।

गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया बंधा ॥ ३ ॥

हैं । आत्माकी प्रवृत्तिसे मैथुनरूप सम्मोहकी उत्पत्तिका नाम वेद है । सुख-दुखरूपी खूब फसल उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी क्षेत्रका जो कर्षण करते हैं वे कषाय हैं । जो यथार्थ वस्तुका प्रकाशक है, अथवा जो तत्त्वार्थको प्राप्त करानेवाला है, वह ज्ञान है । व्रतरक्षण, समितिपालन, कषायनिग्रह, दंडत्याग और इन्द्रियजयका नाम संयम है, अथवा सम्यक् रूपसे आत्मनियंत्रणको संयम कहते हैं । प्रकाशरूपवृत्तिका नाम दर्शन है । आत्मा और प्रवृत्ति (कर्म) का संश्लेषण अर्थात् संयोग करनेवाली लेश्या कहलाती है । अथवा, जो (कर्मोंसे आत्माका) लेप करती है वह लेश्या है । जिस जीवने निर्वाणको पुरस्कृत किया है अर्थात् अपने सन्मुख रखा है वह भव्य है, और उससे विपरीत अर्थात् निर्वाणको पुरस्कृत नहीं करनेवाला जीव अभव्य है । तत्त्वार्थके श्रद्धानका नाम सम्यग्दर्शन है । अथवा, तत्त्वोंमें रुचि होना ही सम्यक्त्व है । अथवा प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यकी अभिव्यक्ति ही जिसका लक्षण है वही सम्यक्त्व है । शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण कर सकनेवाला जीव संज्ञी है; उससे विपरीत अर्थात् शिक्षा, क्रियादिको ग्रहण नहीं कर सकनेवाला जीव असंज्ञी है । शरीर बनानेके योग्य पुद्गलपिंडको ग्रहण करना ही आहार है; उससे विपरीत अर्थात् शरीर बनाने योग्य पुद्गलपिंडको ग्रहण नहीं करना अनाहार है ।

इन्हीं पूर्वोक्त चौदह स्थानोंमें जीवोंकी मार्गणा अर्थात् खोजकी जाती है, इसीलिये इनका नाम मार्गणा है ।

गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव बन्धक हैं ॥ ३ ॥

---

१ प्रतिषु ' ग्रही ' इति पाठः ।

बंधया त्ति वुत्तं होदि । कुदो ? दोण्हं पि पदाणमेक्कक्कारये णिप्पत्तीदो ।

तिरिक्खा बंधा ॥ ४ ॥

कुदो ? मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगाणं बंधकारणाणं तत्थुवलंभादो । एत्थ तिरिक्खगदीए इदि किण्ण वुत्तं ? ण एस दोसो, अत्थावत्तीए तदुवलंभादो ।

देवा बंधा ॥ ५ ॥

सुगममेदं ।

मणुसा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ ६ ॥

मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगाणं बंधकारणाणं[1] सव्वेसिमजोगिम्हि अभावा अजोगिणो अबंधया । सेसा सव्वे मणुस्सा बंधया, मिच्छत्तादिबंधकारणसंजुत्तत्तादो ।

सिद्धा अबंधा ॥ ७ ॥

यहां सूत्रोक्त ' बन्ध ' शब्दसे बन्धकका ही अभिप्राय है, क्योंकि, बन्ध और बन्धक इन दोनों पदोंकी एक ही कारकमें निष्पत्ति है । अर्थात् ये दोनों ही शब्द ' बन्ध् ' धातुसे कर्त्ता कारकके अर्थमें क्रमशः ' अच् ' व ' ण्वुल् ' प्रत्यय लगकर बने हैं ।

तिर्यंच बन्धक हैं ॥ ४ ॥

क्योंकि, उनमें बन्धके कारणभूत मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग पाये जाते हैं ।

शंका—यहां सूत्रमें ' तिरिक्खगदीए ' अर्थात् ' तिर्यंच गतिमें ' ऐसा पद क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, तिर्यंच गतिका अर्थ वहां अर्थापत्ति न्यायसे आ ही जाता है ।

देव बन्धक हैं ॥ ५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्य बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ ६ ॥

कर्मबन्धके कारणभूत मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग, इन सबका अयोगिकेवली गुणस्थानमें अभाव होनेसे अयोगी जिन अबन्धक हैं । शेष सब मनुष्य बन्धक हैं, क्योंकि, मिथ्यात्वादि बन्धके कारणोंसे संयुक्त पाये जाते हैं ।

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ७ ॥

---

१ प्रतिषु ' -जोगाणुबंधकारणाणं ' इति पाठः ।

कुदो ? बंधकारणवदिरित्तमोक्खकारणेहि संजुत्तत्तादो। काणि पुण बंधकारणाणि, बंध-बंधकारणावगमेण विणा मोक्खकारणावगमाभावा। वुत्तं च—

जे बंधयरा भावा मोक्खयरा भावि जे दु अज्झप्पे।
जे भावि बंधमोक्खे अकारया ते वि विण्णेया ॥ १ ॥

तदो बंधकारणाणि वत्तव्वाणि ? मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगा बंधकारणाणि[1]। सम्मद्दंसण-संजमाकसायाजोगा मोक्खकारणाणि। वुत्तं च—

मिच्छत्ताविरदी वि य कसायजोगा य आसवा होंति।
दंसण-विरमण-णिग्गह-णिरोहया संवरा[2] होंति ॥ २ ॥

जदि चत्तारि चेव मिच्छत्तादीणि बंधकारणाणि होंति तो—

ओदइया बंधयरा उवसम-खय-मिस्सया य मोक्खयरा।
भावो दु पारिणामिओ करणोभयवज्जियो होदि ॥ ३ ॥

क्योंकि, सिद्ध बन्धकारणोंसे व्यतिरिक्त मोक्षके कारणोंसे संयुक्त पाये जाते हैं।

शंका—वे बन्धके कारण कौनसे हैं, क्योंकि बन्धके कारण जाने बिना मोक्षके कारणोंका ज्ञान नहीं हो सकता। कहा भी है—

जो बन्धके उत्पन्न करनेवाले भाव हैं और जो मोक्षको उत्पन्न करनेवाले आध्यात्मिक भाव हैं, तथा जो बन्ध और मोक्ष दोनोंको नहीं उत्पन्न करनेवाले भाव हैं, वे सब भाव जानने योग्य हैं ॥ १ ॥

अतएव बन्धके कारण बतलाना चाहिये ?

समाधान—मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग, ये चार बन्धके कारण हैं। और सम्यग्दर्शन, संयम, अकषाय और अयोग, ये चार मोक्षके कारण हैं। कहा भी है—

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग, ये कर्मोंके आश्रव अर्थात् आगमनद्वार हैं। तथा सम्यग्दर्शन, विषयविरक्ति, कषायनिग्रह और मन-वचन-कायका निरोध, ये संवर अर्थात् कर्मोंके निरोधक हैं ॥ २ ॥

शंका—यदि ये ही मिथ्यात्वादि चार बन्धके कारण हैं तो—

औदयिक भाव बंध करनेवाले हैं, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव मोक्षके कारण हैं, तथा पारिणामिक भाव बन्ध और मोक्ष दोनोंके कारणसे रहित हैं ॥ ३ ॥

---

१ सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो। मिच्छत्तं अविरमणं कसाय-जोगा य बोद्धव्वा ॥ समयसार ११६.

२ प्रतिषु 'संवरो' इति पाठः।

एदीए सुत्तगाहाए सह विरोहो होदि त्ति वुत्ते ण होदि, ओदइया बंधयरा त्ति वुत्ते ण सव्वेसिमोदइयाणं भावाणं गहणं, गदि-जादिआदीणं पि ओदइयभावाणं बंध-कारणत्तप्पसंगा। देवगदीउदएण वि काओ वि पयडीयो वज्झमाणियाओ दीसंति, तासिं देवगदिउदओ किण्ण कारणं होदि त्ति वुत्ते ण होदि, देवगदिउदयाभावेण तासिं णियमेण बंधाभावाणुवलंभादो। 'जस्स अण्णय-वदिरेगेहि[1] णियमेण जस्सण्णय-वदिरेगा उवलंभंति तं तस्स कज्जमियरं च कारणं' इदि णायादो मिच्छत्तादीणि चेव बंधकारणाणि।

तत्थ मिच्छत्त-णवुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय-जादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडण-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं सोलसण्हं पयडीणं बंधस्स मिच्छत्तुदओ कारणं, तदुदयण्णय-वदिरेगेहि सोलसपयडीबंधस्स अण्णय-वदिरेगाणमुवलंभादो। णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धी-

---

इस सूत्रगाथाके साथ विरोध उत्पन्न होता है।

समाधान—विरोध नहीं उत्पन्न होता है, क्योंकि 'औदयिक भाव बन्धके कारण हैं' ऐसा कहनेपर सभी औदयिक भावोंका ग्रहण नहीं समझना चाहिये, क्योंकि वैसा माननेपर गति, जाति आदि नामकर्मसम्बन्धी औदयिक भावोंके भी बन्धके कारण होनेका प्रसंग आ जायगा।

शंका—देवगतिके उदयके साथ भी तो कितनी ही प्रकृतियोंका बन्ध होना देखा जाता है, फिर उनका कारण देवगतिका उदय क्यों नहीं होता?

समाधान—उनका कारण देवगतिका उदय नहीं होता, क्योंकि देवगतिके उदयके अभावमें नियमसे उनके बन्धका अभाव नहीं पाया जाता। "जिसके अन्वय और व्यतिरेकके साथ नियमसे जिसके अन्वय और व्यतिरेक पाये जावें वह उसका कार्य और दूसरा कारण होता है" (अर्थात् जब एकके सद्भावमें दूसरेका सद्भाव और उसके अभावमें दूसरेका भी अभाव पाया जावे तभी उनमें कार्य-कारणभाव संभव हो सकता है, अन्यथा नहीं।) इस न्यायसे मिथ्यात्व आदिक ही बन्धके कारण हैं।

इन कारणोंमें मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जाति, हुंडसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिका शरीरसंहनन, नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इन सोलह प्रकृतियोंके बन्धका मिथ्यात्वोदय कारण है, क्योंकि मिथ्यात्वोदयके अन्वय और व्यतिरेकके साथ इन सोलह प्रकृतियोंके बन्धका अन्वय और व्यतिरेक पाया जाता है।

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और

---

१ अ-कप्रत्योः 'अण्णय-वदिरेगेण हि' इति पाठः।

अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभा-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगदी-णग्गोह-सादि-खुज्ज-वामणसरीरसंठाण-वज्जणारायण-णारायण-अद्धणारायण-खीलियसरीरसंघडण-तिरिक्खगदीपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगदि-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं बंधस्स अणंताणुबंधिचउक्कस्स उदयो कारणं। कुदो? तदुदयअण्णय-वदिरेगेहिमेदासिं पयडीणं बंधस्स अण्णय-वदिरेगाणं उवलंभादो। अपच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभ-मणुस्साउ-मणुस्सगदी-ओरालियसरीर-अंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-मणुस्सगदीपाओग्गाणुपुव्वीणं बंधस्स अपच्चक्खाणावरणचदुक्कस्स उदओ कारणं, तेण विणा एदासिं बंधाणुवलंभा[1]। पच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभाणं बंधस्स एदासिं चेव उदओ कारणं, सोदएण विणा एदासिं बंधाणुवलंभा। असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसकित्तीणं बंधस्स पमादो कारणं, पमादेण विणा एदासिं बंधाणुवलंभा। को पमादो णाम? चदुसंजलण-णवणोकसायाणं तिव्वोदओ। चदुण्हं बंधकारणाणं मज्झे कत्थ

लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक और वामन शरीरसंस्थान, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलित शरीरसंहनन, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्र, इन पच्चीस प्रकृतियोंके बन्धका अनन्तानुबन्धीचतुष्कका उदय कारण है, क्योंकि उसीके उदयके अन्वय और व्यतिरेकके साथ इन प्रकृतियोंका भी अन्वय और अतिरेक पाया जाता है।

अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग, वज्रऋषभसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, इन दश प्रकृतियोंके बन्धका अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका उदय कारण है, क्योंकि उसके विना इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं पाया जाता।

प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार प्रकृतियोंके बन्धका कारण इन्हींका उदय है, क्योंकि अपने उदयके विना इनका बन्ध नहीं पाया जाता।

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति, इन छह प्रकृतियोंके बन्धका कारण प्रमाद है, क्योंकि प्रमादके विना इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं पाया जाता।

शंका—प्रमाद किसे कहते हैं?

समाधान—चार संज्वलन कषाय और नव नोकषाय, इन तेरहके तीव्र उदयका नाम प्रमाद है।

शंका—पूर्वोक्त चार बन्धके कारणोंमें प्रमादका कहां अन्तर्भाव होता है?

१ कप्रतौ ' बंधाणुवलंभादो ' इति पाठः।

पमादस्संतब्भावो ? कसायेसु, कसायवदिरित्तपमादाणुवलंभादो । देवाउवबंधस्स वि कसाओ चेव कारणं, पमादहेदुकसायस्स उदयाभावेण अप्पमत्तो होदूण मंदकसाउदएण परिणदस्स देवाउअबंधविणासुवलंभा । णिद्दा-पयलाणं पि बंधस्स कसाउदओ चेव कारणं, अपुव्वकरणद्धाए पढमसत्तमभाए[1] संजलणाणं तप्पाओग्गतिव्वोदए एदासिं बंधुवलंभादो । देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससरीरसंठाण-वेउव्विय-आहारसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-तित्थयराणं पि बंधस्स कसाउदओ चेव कारणं, अपुव्वकरणद्धाए छसत्तभाग-चरिमसमए मंदयरकसाउदएण सह बंधुवलंभादो । हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं बंधस्स अधापवत्तापुव्वकरणणिबंधणकसाउदओ कारणं, तत्थेव एदासिं बंधुवलंभादो । चदु-संजलण-पुरिसवेदाणं बंधस्स बादरकसाओ कारणं, सुहुमकसाए एदासिं बंधाणुवलंभा ।

समाधान — कषायोंमें प्रमादका अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, कषायोंसे पृथक् प्रमाद पाया नहीं जाता ।

देवायुके बन्धका भी कषाय ही कारण है, क्योंकि, प्रमादके हेतुभूत कषायके उदयके अभावसे अप्रमत्त होकर मन्द कषायके उदयरूपसे परिणत हुए जीवके देवायुके बन्धका विनाश पाया जाता है । निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंके भी बन्धका कारण कषायोदय ही है, क्योंकि, अपूर्वकरणकालके प्रथम सप्तम भागमें संज्वलन कषायोंके उस कालके योग्य तीव्रोदय होने पर इन प्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है । देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, आहारकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थकर, इन तीस प्रकृतियोंके भी बन्धका कषायोदय ही कारण है, क्योंकि, अपूर्वकरणकालके सात भागोंमेंसे प्रथम छह भागोंके अन्तिम समयमें मन्दतर कषायोदयके साथ इनका बन्ध पाया जाता है । हास्य, रति, भय, और जुगुप्सा, इन चारके बन्धका अधःप्रवृत्त और अपूर्वकरण-सम्बन्धी कषायोदय कारण है, क्योंकि उन्हीं दोनों परिणामोंके कालसम्बन्धी कषायोदयमें ही इन प्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है ।

चार संज्वलन कषाय और पुरुषवेद इन पांच प्रकृतियोंके बन्धका बादर कषाय कारण है, क्योंकि, सूक्ष्मकषाय गुणस्थानमें इनका बन्ध नहीं पाया जाता । पांच ज्ञाना-

१ प्रतिषु ' पढमसम्मत्तमभाए ' इति पाठः ।

पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-जसगित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं सामण्णो कसाउदओ कारणं, कसायाभावे एदासिं बंधाणुवलंभा। सादावेदणीयबंधस्स जोगो चेव कारणं, मिच्छत्तासंजम-कसायाणमभावे वि जोगेणेक्केण चेवेदस्स बंधुवलंभादो, तदभावे तदणुवलंभादो। ण च एदाहिंतो वदिरित्ताओ अण्णाओ बंधपयडीओ अत्थि जेण तासिमण्णं पच्चयंतरं होज्ज।

असंजमो वि पच्चओ पदिदो, सो काणं पयडीणं बंधस्स कारणमिदि? ण, संजमघादिकम्मोदयस्सेव असंजमववदेसादो। असंजमो जदि कसाएसु चेव पदिदि[१] तो पुध तदुवदेसो किमट्ठं कीरदे? ण एस दोसो, ववहारणयं पडुच्च तदुवदेसादो। एसा पज्जवट्ठियणयमस्सिऊण पच्चयपरूवणा कदा। दव्वट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे बंधकारणमेगं चेव, चदुपच्चयसमूहादो बंधकज्जुप्पत्तीए। तम्हा एदे बंधपच्चया। एदेसिं

वरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय, इन सोलह प्रकृतियोंका सामान्य कषायोदय कारण है, क्योंकि, कषायोंके अभावमें इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं पाया जाता। सातावेदनीयके बन्धका योग ही कारण है, क्योंकि, मिथ्यात्व, असंयम, और कषाय, इनका अभाव होनेपर भी एकमात्र योगके साथ ही इस प्रकृतिका बन्ध पाया जाता है, और योगके अभावमें इस प्रकृतिका बन्ध नहीं पाया जाता।

इनके अतिरिक्त और अन्य कोई बन्ध योग्य प्रकृतियां नहीं है जिससे कि उनका कोई अन्य कारण हो।

शंका— असंयम भी बन्धका कारण कहा गया है, सो वह किन प्रकृतियोंके बन्धका कारण होता है?

समाधान— यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि, संयमके घातक कषायरूप चारित्रमोहनीय कर्मके उदयका ही नाम असंयम है।

शंका— यदि असंयम कषायोंमें ही अन्तर्भूत होता है, तो फिर उसका पृथक् उपदेश किसलिये किया जाता है?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि व्यवहारनयकी अपेक्षासे उसका पृथक उपदेश किया गया है। बन्धकारणोंकी यह प्ररूपणा पर्यायार्थिकनयका आश्रय करके की गयी है। पर द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर तो बन्धका कारण केवल एक ही है, क्योंकि, कारणचतुष्कके समूहसे ही बंधरूप कार्य उत्पन्न होता है।

इस कारण ये ही बंधके कारण हैं। इनके प्रतिपक्षी सम्यक्त्वोत्पत्ति, देशसंयम,

१ प्रतिषु 'पदिद', मप्रतौ 'पददि' इति पाठ.।

पडिवक्खा सम्मत्तुप्पत्ती-देससंजम-संजम-अणंताणुबंधिविसंजोयण-दंसणमोहक्खवण-चरित्तमोहुवसामणुवसंतकसाय-चरित्तमोहक्खवण-खीणकसाय-सजोगिकेवलीपरिणामा मोक्खपच्चया, एदेहिंतो समयं पडि असंखेज्जगुणसेडीए कम्मणिज्जरुवलंभादो। जे पुण पारिणामियभावा जीव-भव्वाभव्वादओ, ण ते बंध-मोक्खाणं कारणं, तेहिंतो तदणुवलंभा।

एदस्स कम्मस्स खएण सिद्धाणमेसो गुणो समुप्पण्णो त्ति जाणावणट्ठमेदाओ गाहाओ एत्थ परूविज्जंति—

दव्व-गुण-पज्जए जे जस्सुदएण य ण जाणदे जीवो ।
तस्स क्खएण सो च्चिय जाणदि सव्वं तयं जुगवं ॥ ४ ॥
दव्व-गुण-पज्जए जे जस्सुदएण य ण पस्सदे जीवो ।
तस्स क्खएण सो च्चिय पस्सदि सव्वं तयं जुगवं ॥ ५ ॥
जस्सोदएण जीवो सुहं व दुक्खं व दुविहमणुहवइ ।
तस्सोदयक्खएण दु जायदि अप्पत्थणंतसुहो ॥ ६ ॥
मिच्छत्त-कसायासंजमेहि जस्सोदएण परिणमइ ।
जीवो तस्सेव खया तव्विवरीदे गुणे लहइ ॥ ७ ॥

संयम, अनन्तानुबन्धिविसंयोजन, दर्शनमोहक्षपण, चारित्रमोहोपशमन, उपशान्तकषाय, चारित्रमोहक्षपण, क्षीणकषाय और सयोगिकेवली, ये परिणाम मोक्षके कारणभूत हैं, क्योंकि, इन्हींके द्वारा प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणीरूपसे कर्मोंकी निर्जरा पायी जाती है। किन्तु जीव, भव्य, अभव्य आदि जो पारिणामिक भाव हैं, वे बन्ध और मोक्ष दोनोंमेंसे किसीके भी कारण नहीं हैं, क्योंकि उनके द्वारा बन्ध या मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती।

'इस कर्मके क्षयसे सिद्धोंके यह गुण उत्पन्न हुआ है' इस बातका ज्ञान करानेके लिये ये गाथायें यहां प्ररूपित की जाती हैं—

जिस ज्ञानावरणीय कर्मके उदयसे जीव जिन द्रव्य, गुण और पर्याय, इन तीनोंको नहीं जानता, उसी ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयसे वही जीव उन सभी तीनोंको एक साथ जानने लगता है ॥ ४ ॥

जिस दर्शनावरणीय कर्मके उदयसे जीव जिन द्रव्य, गुण और पर्याय, इन तीनोंको नहीं देखता है, उसी दर्शनावरणीय कर्मके क्षयसे वही जीव उन सभी तीनोंको एक साथ देखने लगता है ॥ ५ ॥

जिस वेदनीय कर्मके उदयसे जीव सुख और दुःख इस दो प्रकारकी अवस्थाका अनुभव करता है, उसी कर्मके क्षयसे आत्मस्थ अनंतसुख उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

जिस मोहनीय कर्मके उदयसे जीव मिथ्यात्व, कषाय और असंयम रूपसे परिणमन करता है, उसी मोहनीयके क्षयसे इनके विपरीत गुणोंको प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

जस्सोदएण जीवो अणुसमयं मरदि जीवदि वराओ ।
तस्सोदयक्खएण दु भव-मरणविवज्जियो होइ ॥ ८ ॥

अंगोवंग-सरीरिंदिय-मणुस्सासजोगणिप्फत्ती ।
जस्सोदएण सिद्धो तण्णामखएण असरीरो ॥ ९ ॥

उच्चुच्च उच्च तह उच्चणीच णीचुच्च णीच णीचं च ।
जस्सोदएण भावो णीचुच्चविवज्जिदो तस्स ॥ १० ॥

विरियोवभोग-भोगे दाणे लाभे जदुदयदो विग्घं ।
पंचविहलद्धिजुत्तो तक्कम्मखया हवे सिद्धो ॥ ११ ॥

जयमंगलभूदाणं विमलाणं णाण-दंसणमयाणं ।
तेलोक्कसेहराणं णमो सिया सव्वसिद्धाणं ॥ १२ ॥

इंदियाणुवादेण एइंदिया बंधा वीइंदिया बंधा तीइंदिया बंधा चदुरिंदिया बंधा ॥ ८ ॥

कुदो ? एदेसु मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगाणमण्णयं मोत्तूण वदिरेगाभावा ।

....

जिस आयु कर्मके उदयसे बेचारा जीव प्रतिसमय मरता और जीता है, उसी कर्मके उदयक्षयसे वह जीव जन्म और मरणसे रहित हो जाता है ॥ ८ ॥

जिस नाम कर्मके उदयसे अंगोपांग, शरीर, इन्द्रिय, मन और उच्छ्वासके योग्य निष्पत्ति होती है, उसी नाम कर्मके क्षयसे सिद्ध अशरीरी होते हैं ॥ ९ ॥

जिस गोत्र कर्मके उदयसे जीव उच्चोच्च, उच्च, उच्चनीच, नीचोच्च, नीच या नीचनीच भावको प्राप्त होता है, उसी गोत्र कर्मके क्षयसे वह जीव नीच और ऊंच भावोंसे मुक्त होता है ॥ १० ॥

जिस अन्तराय कर्मके उदयसे जीवके वीर्य, उपभोग, भोग, दान और लाभमें विघ्न उत्पन्न होता है, उसी कर्मके क्षयसे सिद्ध पंचविध लब्धिसे संयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

जो जगमें मंगलभूत हैं, विमल हैं, ज्ञान-दर्शनमय हैं, और त्रैलोक्यके शेखर रूप हैं ऐसे समस्त सिद्धोंको मेरा नमस्कार हो ॥ १२ ॥

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय जीव बन्धक हैं, द्वीन्द्रिय बन्धक हैं, त्रीन्द्रिय बन्धक हैं और चतुरिन्द्रिय बन्धक हैं ॥ ८ ॥

क्योंकि, उक्त जीवोंमें (कर्मबन्धके कारणभूत) मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग, इनके अन्वयको छोड़कर व्यतिरेकका अभाव है, अर्थात् उन जीवोंमें बन्धके कारणोंका सद्भाव ही पाया जाता है, असद्भाव नहीं ।

पंचिंदिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ ९ ॥

कुदो ? मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलित्ति बंधा चेव, तत्थ बंधकारण-मिच्छत्तादीणमुवलंभादो । अजोगिकेवली अबंधा[1] चेव, मिच्छत्तादिबंधकारणाणं सव्वेसि-मभावा । तेण पंचिंदिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि त्ति भणिदं । सजोगि-अजोगिकेवलीणं केवलणाण-दंसणेहि दिट्ठासेसपमेयाणं करणवावारविरहियाणं कधं पंचिं-दियत्तं ? ण एस दोसो, पंचिंदियणामकम्मोदयं[2] पडुच्च तेसिं तव्ववएसादो ।

अणिंदिया अबंधा ॥ १० ॥

कुदो ? सिद्धेसु णिरंजणेसु सयलबंधाभावादो, णिरामएसु बंधकारणाभावा ।

कायाणुवादेण पुढवीकाइया बंधा आउकाइया बंधा तेउकाइया बंधा वाउकाइया बंधा वणप्फदिकाइया बंधा ॥ ११ ॥

पंचेन्द्रिय जीव बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ ९ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली तकके जीव तो बन्धक ही हैं, क्योंकि, उनमें बन्धके कारणभूत मिथ्यात्वादि पाये जाते हैं । किन्तु अयोगिकेवली अबन्धक ही हैं, क्योंकि, उनमें मिथ्यात्व आदि सभी बन्धके कारणोंका अभाव है। इसीलिये ‘ पंचेन्द्रिय जीव बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ’ ऐसा कहा गया है ।

शंका—जिन्होंने केवलज्ञान और केवलदर्शनसे समस्त प्रमेय अर्थात् ज्ञेय पदार्थोंको देख लिया है और जो करण अर्थात् इन्द्रियोंके व्यापारसे रहित हैं, ऐसे सयोगी और अयोगी केवलियोंको पंचेन्द्रिय कैसे कह सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, उनमें पंचेन्द्रिय नामकर्मका उदय विद्यमान है, अतः उसकी अपेक्षासे उन्हें पंचेन्द्रिय कहा गया है।

अनिन्द्रिय जीव अबन्धक हैं ॥ १० ॥

क्योंकि, निरंजन सिद्धोंमें समस्त बन्धका अभाव है, चूंकि निरामय अर्थात् निर्विकार जीवोंमें बन्धका कोई कारण नहीं रहता ।

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक जीव बन्धक हैं, अप्कायिक बन्धक हैं, तेजस्कायिक बन्धक हैं, वायुकायिक बन्धक हैं और वनस्पतिकायिक बन्धक हैं ॥ ११ ॥

---

१ प्रतिषु ‘ बंधा ’ इति पाठः ।

२ कप्रतौ ‘-णामकम्मं ’ इति पाठः ।

सुगममेदं ।

तसकाइया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ १२ ॥

कुदो ? मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति तसकाइएसु बंधकारणुवलंभा, अजोगिकेवलिम्हि तदणुवलंभादो ।

अकाइया अबंधा ॥ १३ ॥

सुगममेदं ।

जोगाणुवादेण मणजोगि-वचिजोगि-कायजोगिणो बंधा ॥१४॥

एदं पि सुगमं ।

अजोगी अबंधा ॥ १५ ॥

जोगो णाम किं ? मण-वयण-कायपोग्गलालंबणेण जीवपदेसाणं परिप्फंदो । जदि एवं तो णत्थि अजोगिणो, सरीरयस्स जीवदव्वस्स अकिरियत्तविरोहादो[1] । ण एस दोसो,

---

यह सूत्र सुगम है ।

त्रसकायिक जीव बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ १२ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली तकके त्रसकायिक जीवोंमें बन्धके कारणभूत मिथ्यात्वादि पाये जाते हैं, किन्तु अयोगिकेवलीमें वे बन्धके कारण नहीं पाये जाते ।

अकायिक जीव अबन्धक हैं ॥ १३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

योगमार्गणानुसार मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी बन्धक हैं ॥ १४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अयोगी जीव अबन्धक हैं ॥ १५ ॥

शंका—योग किसे कहते हैं ?

समाधान—मन, वचन और काय सम्बन्धी पुद्गलोंके आलम्बनसे जो जीवप्रदेशोंका परिस्पन्दन होता है वही योग है ।

शंका—यदि ऐसा है तो शरीरी जीव अयोगी हो ही नहीं सकते, क्योंकि शरीरगत जीव द्रव्यको अक्रिय माननेमें विरोध आता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि आठों कर्मोंके क्षीण हो जानेपर जो

---

१ प्रतिषु ' आकीरियत्तविरोहादो ' इति पाठः ।

अट्ठकम्मेसु खीणेसु जा उड्डगमणुवलंबिया किरिया सा जीवस्स साहाविया, कम्मोदएण विणा पउत्तत्तादो । सट्ठिददेसमछंडिय छड्डित्ता वा जीवदव्वस्स सावयवेहि परिप्फंदो अजोगो[1] णाम, तस्स कम्मक्खयत्तादो । तेण सक्किरिया वि सिद्धा[2] अजोगिणो, जीवपदेसाणमद्दहिदजलपदेसाणं व उव्वत्तण-परियत्तणकिरियाभावादो । तदो ते अबंधा त्ति[3] भणिदा ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा बंधा, पुरिसवेदा बंधा, णवुंसयवेदा बंधा ॥ १६ ॥

सुगममेदं ।

अवगदवेदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ १७ ॥

सकसायजोगेसु अकसायजोगेसु च अवगयवेदत्तुवलंभा ।

ऊर्ध्वगमनोपलम्बी क्रिया होती है वह जीवका स्वाभाविक गुण है, क्योंकि वह कर्मोदयके विना प्रवृत्त होती है । स्वास्थित प्रदेशको न छोड़ते हुए अथवा छोड़कर जो जीवद्रव्यका अपने अवयवों द्वारा परिस्पन्द होता है वह अयोग है, क्योंकि वह कर्मक्षयसे उत्पन्न होता है । अतः सक्रिय होते हुए भी शरीरी जीव अयोगी सिद्ध होते हैं, क्योंकि उनके जीवप्रदेशोंके तप्तायमान जलप्रदेशोंके सदृश उद्वर्तन और परिवर्तन रूप क्रियाका अभाव है । इसीलिये अयोगियोंको अबन्धक कहा है ।

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी जीव बन्धक हैं, पुरुषवेदी बन्धक हैं और नपुंसकवेदी बन्धक हैं ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदी बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ १७ ॥

क्योंकि, कषाय व योग सहित तथा कषाय व योग रहित जीवोंमें अपगतवेदत्व पाया जाता है ।

विशेषार्थ—नौमेंके अवेदभागसे लेकर तेरहवें तकके गुणस्थान यद्यपि अपगत वेदियोंके हैं, तो भी उनमें कषाय व योगका सद्भाव होनेसे कर्मबन्ध होता ही है, और इस प्रकार इन गुणस्थानोंके जीव अपगतवेदी होनेपर भी बन्धक हैं । चौदहवें गुणस्थानमें बंधका अन्तिम कारण योग भी नहीं रहता और इस कारण इस गुणस्थानके अपगतवेदी जीव अबन्धक हैं ।

---

१ प्रतिषु ' परिप्फंदो जोगो ' इति पाठः । २ कप्रतौ ' वि सिट्ठा ' इति पाठः ।
३ प्रतिषु ' तदो त्ति अबंधो त्ति ' इति पाठः ।

सिद्धा अबंधा ॥ १८ ॥

अवगदवेदत्तं सिद्धेसु वि अत्थि जेण कारणेण तेण अवगदवेदपरूवणाए चेव सिद्धा वि परूविदा त्ति सिद्धाणं पुधपरूवणा णिप्फला किण्ण होदि त्ति वुत्ते, ण होदि, अवगदवेदत्तेण बंधगाबंधगा दो वि रासीओ पडिग्गहिदाओ जेण संदेहो सिद्धेसु वि बंधगाबंधगविसओ समुप्पज्जदि । तण्णिराकरणट्ठं सिद्धा अबंधा त्ति पुधपरूवणा कदा । सेसं सुगमं ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई बंधा ॥ १९ ॥

सुगममेदं ।

अकसाई बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ २० ॥

कुदो ? सजोगाजोगेसु अकसायत्तस्सुवलंभा ।

सिद्धा अबंधा ॥ २१ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ १८ ॥

शंका— अपगतवेदत्व सिद्धोंमें भी तो है अत एव उपर्युक्त सूत्रमें अपगतवेदोंकी प्ररूपणासे सिद्धोंका भी प्ररूपण हो गया। इसलिये सिद्धोंकी पृथक् प्ररूपणा निष्फल है ?

समाधान— सिद्धोंकी पृथक प्ररूपणा निष्फल नहीं है, क्योंकि, अपगतवेदत्वकी अपेक्षा बंधक और अबन्धक ये दोनों राशियां ग्रहण की गयी हैं जिससे सन्देह होने लगता है कि क्या सिद्धोंमें भी बन्धक और अबन्धक ऐसे दो भेद हैं । इसी सन्देहको दूर करनेके लिये ' सिद्ध अबन्धक हैं ' ऐसी पृथक प्ररूपणा की गयी है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी बन्धक हैं ॥ १९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकषायी बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ २० ॥

क्योंकि, ग्यारहवें गुणस्थानसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तकके सयोगी जीवोंके बन्धक होनेपर भी अकषायत्व पाया जाता है, और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी जीवोंके अबन्धक होते हुए भी अकषायत्व पाया जाता है ।

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ २१ ॥

एदस्स सुत्तारंभस्स कारणं पुव्वं व परूवेदव्वं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओधिणाणी मणपज्जवणाणी बंधा ॥ २२ ॥

सुगममेदं ।

केवलणाणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ २३ ॥

सिद्धा अबंधा ॥ २४ ॥

एत्थ अबंधा चेवेत्ति एवकारो किण्ण कदो ? (ण,) सुत्तारंभादो चेव तदुवलद्धीदो । सेसं सुगमं ।

संजमाणुवादेण असंजदा बंधा, संजदासंजदा बंधा ॥ २५ ॥

संजदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ २६ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

इस सूत्रके पृथक् रचे जानेका कारण पूर्वमें कहे अनुसार प्ररूपित करना चाहिये ।

ज्ञानमार्गणानुसार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी बन्धक हैं ॥ २२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

केवलज्ञानी बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ २३ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ २४ ॥

शंका—यहां ' अबन्धक ही हैं ' ऐसा अन्य विकल्पका निषेधात्मक 'एव' पदका प्रयोग क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि, सूत्रकी पृथक् रचनामात्रसे ही वही अर्थ जान लिया जाता है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

संयममार्गणानुसार असंयत बंधक हैं और संयतासंयत बंधक हैं ॥ २५ ॥

संयत बंधक भी हैं, अबंधक भी हैं ॥ २६ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अबंधा ॥ २७ ॥

विसएसु दुविहासंजमसरूवेण पवुत्तीए अभावा असंजदा ण होंति सिद्धा। संजदा वि ण होंति, पवुत्तिपुरस्सरं तण्णिरोहाभावा। तदो णोमयसंजोगो वि। सेसं सुगमं।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी बंधा[1] ॥ २८ ॥

केवलदंसणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ २९ ॥

सिद्धा अबंधा ॥ ३० ॥

सव्वमेदं सुगमं।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया बंधा ॥ ३१ ॥

सुगममेदं।

न संयत न असंयत न संयतासंयत, ऐसे सिद्ध जीव अबंधक हैं ॥ २७ ॥

विषयोंमें दो प्रकारके असंयम अर्थात् इन्द्रियासंयम और प्राणिवध रूपसे प्रवृत्ति न होनेके कारण सिद्ध असंयत नहीं हैं। और सिद्ध संयत भी नहीं हैं, क्योंकि, प्रवृत्तिपूर्वक उनमें विषयनिरोधका अभाव है। तदनुसार संयम और असंयम इन दोनोंके संयोगसे उत्पन्न संयमासंयमका भी सिद्धोंके अभाव है।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी बन्धक हैं ॥ २८ ॥

केवलदर्शनी बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ २९ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ३० ॥

ये सब सूत्र सुगम हैं।

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले बन्धक हैं ॥ ३१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ प्रतिषु 'अबंधा' इति पाठः।

अलेस्सिया अबंधा ॥ ३२ ॥

सिद्धा अबंधा त्ति एत्थ पुधणिद्देसो किण्ण कदो ? ण, अलेस्सिएसु बंधाबंधो-भयभंगाभावेण संदेहाणुप्पत्तीदो । सेसं सुगमं ।

भवियाणुवादेण अभवसिद्धिया बंधा, भवसिद्धिया बंधा वि अत्थि अबंधा वि अत्थि ॥ ३३ ॥

णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अबंधा ॥ ३४ ॥

सव्वमेदं सुगमं ।

सम्मत्ताणुवादेण मिच्छादिट्ठी बंधा, सासणसम्मादिट्ठी बंधा, सम्मामिच्छादिट्ठी बंधा ॥ ३५ ॥

कुदो ? सयलासवसंजुत्तत्तादो ।

सम्मादिट्ठी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ ३६ ॥

लेश्यारहित जीव अबन्धक हैं ॥ ३२ ॥

शंका—' सिद्ध अबन्धक हैं ' ऐसा पृथक् निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि लेश्यारहित जीवोंमें बन्धक और अबन्धक ऐसे दो विकल्प न होनेसे कोई सन्देह उत्पन्न नहीं होता। अर्थात् ' अलेश्य अबंधक हैं ' इतना कहनेमात्रसे ही स्पष्ट हो जाता है कि लेश्यारहित अयोगी जिन भी अबन्धक हैं और सिद्ध भी अबन्धक हैं ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

भव्यमार्गणानुसार अभव्यसिद्धिक जीव बन्धक हैं, भव्यसिद्धिक जीव बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं ॥ ३३ ॥

न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक ऐसे सिद्ध जीव अबन्धक हैं ॥ ३४ ॥

यह सब सूत्रार्थ सुगम है ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं, सासादनसम्यग्दृष्टि बन्धक हैं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि बन्धक हैं ॥ ३५ ॥

क्योंकि, उक्त जीव समस्त कर्मास्रवोंसे संयुक्त होते हैं ।

सम्यग्दृष्टि बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ ३६ ॥

कुदो ? सासवाणासवेसु सम्मदंसणुवलंभा ।

सिद्धा अबंधा ॥ ३७ ॥

सुगममेदं ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी बंधा, असण्णी बंधा ॥ ३८ ॥

णेव सण्णी णेव असण्णी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ ३९ ॥

विणट्ठणोइंदियखओवसमादो केवलणाणी णो सण्णिणो; तत्थ इंदियोवट्ठंभबलेणाणुप्पण्णबोधुवलंभादो णो असण्णिणो । तदो ते बंधा वि अबंधा वि, बंधाबंधकारणजोगाजोगाणमुवलंभा ।

सिद्धा अबंधा ॥ ४० ॥

सुगममेदं ।

क्योंकि, चौथेसे तेरहवें गुणस्थान तकके आस्रव सहित और चौदहवें गुणस्थानवर्ती आस्रव रहित, ऐसे दोनों प्रकारके जीवोंमें सम्यग्दर्शन पाया जाता है ।

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञीमार्गणानुसार संज्ञी बन्धक हैं, असंज्ञी बन्धक हैं ॥ ३८ ॥

न संज्ञी न असंज्ञी ऐसे केवलज्ञानी जिन बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ ३९ ॥

जिनका नोइन्द्रिय क्षयोपशम नष्ट हो गया है ऐसे केवलज्ञानी संज्ञी नहीं हैं । और चूंकि उनमें इन्द्रियालम्बनके बलसे अनुत्पन्न अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान पाया जाता है इसलिये केवलज्ञानी असंज्ञी भी नहीं हैं । अतः न संज्ञी न असंज्ञी बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं, क्योंकि उनमें सयोगि अवस्थामें बन्धका कारण योग पाया जाता है और अयोगि अवस्थामें अबन्धका कारण अयोग पाया जाता है ।

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ४० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ प्रतिषु ' केवलणाणी सण्णिणो तत्थ णोइंदिया–' इति पाठः ।

आहाराणुवादेण आहारा बंधा ॥ ४१ ॥

अणाहारा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ॥ ४२ ॥

सिद्धा अबंधा ॥ ४३ ॥

सुगममेदं ।

एसो बंधगसंताहियारो पुव्वमेव किमट्ठं परूविदो ? 'सति धर्मिणि धर्माश्चिन्त्यन्ते' इति न्यायात् बंधयाणमत्थित्ते सिद्धे संते पच्छा तेसिं विसेसपरूवणा जुज्जदे । तम्हा संतपरूवणं पुव्वमेव कादव्वमिदि । एवमत्थित्तेण सिद्धाणं बंधयाणमेक्कारसअणियोगद्दारेहि विसेसपरूवणट्ठमुत्तरगंथो अवइण्णो ।

एवं बंधगसंतपरूवणा समत्ता ।

आहारमार्गणानुसार आहारक जीव बन्धक हैं ॥ ४१ ॥

अनाहारक जीव बन्धक भी हैं, अबन्धक भी हैं ॥ ४२ ॥

सिद्ध अबन्धक हैं ॥ ४३ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

शंका—यह बन्धकसत्वाधिकार पूर्वमें ही क्यों प्ररूपित किया गया है ?

समाधान—'धर्मीके सद्भावमें ही धर्मोका चिन्तन किया जाता है' इस न्यायके अनुसार बंधकोंका अस्तित्व सिद्ध हो जाने पर पश्चात् उनकी विशेष प्ररूपणा करना योग्य है । इसलिये बन्धकोंकी सत्प्ररूपणा पहले ही करना चाहिये । इस प्रकार अस्तित्वसे सिद्ध हुए बन्धकोंके ग्यारह अनुयोगों द्वारा विशेष प्ररूपणार्थ आगेकी ग्रन्थरचना हुई है ।

इस प्रकार बन्धकसत्प्ररूपणा समाप्त हुई ।

एदेसिं बंधयाणं परूवणट्ठदाए तत्थ इमाणि एक्कारस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति ॥ १ ॥

अणट्ठेसु[1] बंधएसु कधमेदेसिं बंधयाणमिदि पच्चक्खणिद्देसो उववज्जदे ? ण, एस दोसो, बंधगविसयबुद्धीए पच्चक्खत्तमवेक्खिय पच्चक्खणिद्देसुववत्तीदो। संताणियोगद्दारं पुव्वमपरूविय तेण सह बारसअणियोगद्दारेहि बंधगाणं किण्ण परूवणा कीरदे ? ण, बंधगत्तेण असिद्धाणं तस्सिद्धिपरूवणाए बंधगपरूवणत्ताणुववत्तीदो। तेसिमेक्कारस-अणियोगद्दाराणं णामणिद्देसट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

एगजीवेण सामित्तं, एगजीवेण कालो, एगजीवेण अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ, दव्वपरूवणाणुगमो, खेत्ताणुगमो, फोसणाणुगमो, णाणाजीवेहि कालो, णाणाजीवेहि अंतरं, भागाभागाणुगमो, अप्पाबहुगाणुगमो चेदि ॥ २ ॥

इन बन्धकोंके प्ररूपणार्थ ये ग्यारह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं ॥ १ ॥

शंका—बन्धकोंके उपस्थित न होनेपर भी 'इन बन्धकोंका' इस प्रकार प्रत्यक्ष निर्देश कैसे उपयुक्त ठहरता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, बन्धकविषयक बुद्धिसे प्रत्यक्षत्वकी अपेक्षा करके प्रत्यक्ष निर्देशकी उपपत्ति बन जाती है।

शंका—सत् अनुयोगद्वारको पहले ही प्ररूपित न करके उसके साथ बारह अनुयोगद्वारोंसे बन्धकोंकी प्ररूपणा क्यों नहीं की जाती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बन्धकभावसे असिद्ध जीवोंको बन्धक सिद्ध करनेवाली प्ररूपणाके लिये बन्धकप्ररूपणा नाम देना अनुपयुक्त ठहरता है।

उन ग्यारह अनुयोगद्वारोंके नामनिर्देशके लिये आचार्य अगला सूत्र कहते हैं—

एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, द्रव्यप्ररूपणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्व ॥ २ ॥

---

१ मप्रतौ 'अणत्थेसु', कप्रतौ 'अणट्ठेसु' इति पाठः।

अंतिल्लो चसद्दो समुच्चयत्थो। इदिसद्दो एदेसिं बंधगाणं परूवणाए एत्तियाणि चेव अणियोगद्दाराणि होंति ण वड्डिमाणि त्ति अवहारणट्ठं कदो। एगजीवेण सामित्तं पुव्वमेव किमट्ठं वुच्चदे? ण, उवरिल्लसव्वयाणिओगद्दाराणं कारणत्तेण सामित्ताणियोगद्दारस्स अवट्ठाणादो। कुदो? चोद्दसमग्गणट्ठाणं ओदइयादिपंचसु भावेसु को भावो कस्स मग्गणट्ठाणस्स सामिओ णिमित्तं होदि ण होदि त्ति सामित्ताणिओगद्दारं परूवेदि, पुणो तेण भावेण उवलक्खियमग्गणाए बंधएसु सेसाणिओगद्दारपवुत्तीदो। सेसाणिओगद्दारेसु कालो चेव किमट्ठं पुव्वं परूविज्जदि? ण, कालपरूवणाए विणा अंतरपरूवणाणुववत्तीदो। पुणो अंतरमेव वत्तव्वं, एगजीवसंबंधिणो अण्णस्स अणिओगद्दारस्साभावा। णाणाजीवसंबंधिएसु सेसाणिओगद्दारेसु पढमं णाणाजीवेहि भंगविचओ किमट्ठं वुच्चदे? ण, एदस्स मग्गणट्ठाणपवाहस्स विसेसो अणादिअपज्जवसिदो, एदस्स

सूत्रके अन्तमें आया हुआ 'च' शब्द समुच्चयार्थक है; और 'इन बन्धकोंकी प्ररूपणामें इतनेमात्र ही अनुयोगद्वार हैं, इनसे अधिक नहीं' ऐसा निश्चय करानेके लिये 'इति' शब्दका प्रयोग किया गया है।

शंका—एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वका कथन सबसे पूर्वमें ही क्यों किया जाता है?

समाधान—क्योंकि, यह स्वामित्वसम्बन्धी अनुयोगद्वार आगेके समस्त अनुयोगद्वारोंके कारण रूपसे अवस्थित है। इसका कारण यह है कि चौदह मार्गणास्थान औदयिकादि पांच भावोंमेंसे किस भाव रूप हैं, किस मार्गणास्थानका स्वामी निमित्त होता है या नहीं होता, यह सब स्वामित्वानुयोगद्वार प्ररूपित करता है, और फिर उसी भावसे उपलक्षित मार्गणासहित बन्धकोंमें शेष अनुयोगद्वारोंकी प्रवृत्ति होती है।

शंका—शेष अनुयोगद्वारोंमें काल ही पहले क्यों प्ररूपित किया जाता है?

समाधान—क्योंकि, कालकी प्ररूपणाके विना अन्तरप्ररूपणाकी उपपत्ति नहीं बैठती।

कालप्ररूपणाके पश्चात् अन्तर ही कहा जाना चाहिये, क्योंकि, एक जीवसे सम्बन्ध रखनेवाला अन्य कोई अनुयोगद्वार है ही नहीं।

शंका—नाना जीव सम्बन्धी शेष अनुयोगद्वारोंमें पहले नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय ही क्यों कहा जाता है?

समाधान—क्योंकि, इस मार्गणास्थानके प्रवाहका विशेष (भेद) अनादि-अनन्त

१ आ-कप्रत्योः 'उवरिल्लसव्वथा' इति पाठः।

सादिसपज्जवसिदो त्ति सामण्णेण अवगदे सेसाणिओगद्दाराणं पदणसंभवादो। दव्व-पमाणे अणवगदे[1] खेत्तादिअणियोगद्दाराणमधिगमोवाओ णत्थि त्ति दव्वाणिओगद्दारस्स पुव्वणिवेसो कदो। वट्टमाणपासपरूवणाए विणा अदीद-वट्टमाणफासपरूवयफोसणाणि-ओगद्दाराधिगमोवाओ णत्थि त्ति खेत्ताणिओगद्दारस्स पुव्वं णिवेसो[2] कदो। मग्गणाण-मच्छिदखेत्ते अवगदे तेसिं दव्वसंखाए च अवगदाए पच्छा तीदकालफासपरूवणा णाया-गदेत्ति णिवेसिदा। मग्गणकाले अणवगदे तेसिमंतरादिपरूवणा ण घडदि त्ति पुव्वं कालाणिओगद्दारं परूविदं। कालजोणि अंतरमिदि कट्टु अंतरं तदणंतरं परूविदं। पुरदो वुच्चमाणअप्पाबहुअस्स साहणो इदि कट्टु भागाभागो परूविदो। एदेसिं पच्छा अप्पा-बहुगाणुगमो परूविदो, सव्वाणिओगद्दारेसु पडिबद्धत्तादो।

णाणाजीवेहि काल-भंगविचयाणं को विसेसो? ण, णाणाजीवेहि भंगविचयस्स

है, इसका सादि सान्त है, ऐसा सामान्यरूपसे जान लेनेपर ही शेष अनुयोगद्वारोंका अवतार संभव हो सकता है। द्रव्यप्रमाणके जाने विना क्षेत्रादि अनुयोगद्वारोंके जान-नेका उपाय नहीं, इसलिये द्रव्यानुयोगद्वारका उनसे पहले स्थापन किया गया है। फिर उनमें भी वर्तमान स्पर्शन प्ररूपणाके बिना अतीत और वर्तमान स्पर्शनके प्ररूपक स्पर्श-नानुयोगद्वारके जाननेका उपाय नहीं, इसलिये क्षेत्रानुयोगद्वारका पहले निवेश किया। मार्गणाओंसम्बन्धी निवासक्षेत्रको जान लेने पर और उनके द्रव्यप्रमाणका भी ज्ञान हो जाने पर पश्चात् अतीतकालसम्बन्धी स्पर्शनप्ररूपणा न्यायागत है, इसलिये स्पर्शन-प्ररूपणा रखी गई। मार्गणासम्बन्धी कालका जब तक ज्ञान न हो जाय तब तक उनकी अन्तरप्ररूपणा नहीं बनती, अतः उससे पूर्व कालानुयोगद्वारका प्ररूपण किया। कालसे ही उत्पन्न अन्तर है, ऐसा जानकर कालके अनन्तर अन्तरानुयोगद्वार प्ररूपित किया। आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्वका साधन होनेसे पहले भागाभाग प्ररूपित किया। और इन सबके पश्चात् अल्पबहुत्वानुगम प्ररूपित किया, क्योंकि वह पूर्ववर्ती सभी अनुयोगद्वारोंसे सम्बद्ध है।

शंका—नाना जीवोंकी अपेक्षा काल और नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय इन दोनोंमें क्या भेद है?

समाधान—नहीं, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय नामक अनुयोगद्वार मार्गणा-

१ प्रतिषु 'दव्वपमाणे ण अवगदे' इति पाठः।

२ कप्रतौ 'णिव्वेसो' इति पाठः।

मग्गणाणं विच्छेदाविच्छेदत्थित्तपरूवयस्स मग्गणकालंतरेहि सह एयत्तविरोहादो ।

एयजीवेण सामित्तं ॥ ३ ॥

जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायाणुसरणट्ठमेगजीवेण सामित्तं भणिस्सामो इदि वुत्तं ।

गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरईओ णाम कधं भवदि ? ॥४॥

एदं पुच्छासुत्तं किंणिबंधणं[1] ? णयसमूहणिबंधणं । जदि एक्को चेव णयो होज्ज[2] तो संदेहो वि ण उप्पज्जेज्ज । किंतु णया बहुआ अत्थि । तेण संदेहो समुप्पज्जदे कस्स णयस्स विसयमस्सिदूण ट्ठिदणेरईओ एत्थ पडिग्गहिदो त्ति । णयाणमभिप्पाओ एत्थ उच्चदे । तं जहा —

> कं पि णरं दट्ठूण य पावजणसमागमं करेमाणं ।
> णेगमणएण भण्णइ णेरइओ एस पुरिसो त्ति ॥ १ ॥

....

ओंके विच्छेद और अविच्छेदके अस्तित्वका प्ररूपक है, अतः उसका मार्गणाओंके काल और अन्तर बतलाने वाले अनुयोगद्वारोंके साथ एकत्व माननेमें विरोध आता है ।

एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वकी प्ररूपणा की जाती है ॥ ३ ॥

'जैसा उद्देश, तैसा निर्देश' इस न्यायके अनुसरणार्थ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वका वर्णन करते हैं, ऐसा प्रस्तुत सूत्रमें कहा गया है ।

गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी जीव किस प्रकार होता है ? ॥ ४ ॥

शंका—यह प्रश्नात्मक सूत्र किस आधारसे रचा गया है ?

समाधान—यह प्रश्नात्मक सूत्र नयसमूहके आधारसे रचा गया है । यदि एक ही नय होता तो कोई सन्देह भी उत्पन्न न होता । किन्तु नय अनेक हैं इसलिये सन्देह उत्पन्न होता है कि किस नयके विषयका आश्रय लेकर स्थित नारकी जीवका यहां ग्रहण किया गया है । यहांपर नयोंका अभिप्राय बतलाते हैं । वह इस प्रकार है —

किसी मनुष्यको पापी लोगोंका समागम करते हुए देखकर नैगम नयसे कहा जाता है कि यह पुरुष नारकी है ॥ १ ॥

(जब वह मनुष्य प्राणिबध करनेका विचार कर सामग्रीका संग्रह करता है तब वह संग्रह नयसे नारकी कहा जाता है ।)

....

1 प्रतिषु 'किण्णबंधणं' इति पाठः । 2 प्रतिषु 'चेव ण होज्ज' इति पाठः ।

[1]ववहारस्स दु वयणं जइया कोदंड-कंडगयहत्थो ।
भमइ मए मग्गंतो तइया सो होइ णेरइओ ॥ २ ॥
उज्जुसुदस्स दु वयणं जइआ इर ठाइदूण ठाणम्मि ।
आहणदि मए पावो तइया सो होइ णेरइओ ॥ ३ ॥
सद्दणयस्स दु वयणं जइया पाणेहि मोइदो जंतू ।
तइया सो णेरइयो हिंसाकम्मेण संजुत्तो ॥ ४ ॥
वयणं तु समभिरूढं णारयकम्मस्स बंधगो जइया ।
तइया सो णेरइओ णारयकम्मेण संजुत्तो ॥ ५ ॥
णिरयगइं संपत्तो जइया अणुहवइ णारयं दुक्खं ।
तइया सो णेरइओ एवंभूदो णओ भणदि ॥ ६ ॥

एदं सव्वणयविसयं णेरइयसमूहं बुद्धीए काऊण णेरइओ णाम कधं होदि त्ति पुच्छा कदा ।

अधवा णाम-ट्ठवण-दव्व-भावभेएण णेरइया चउव्विहा होंति । णामणेरइयो णाम णेरइयसद्दो । सो एसो त्ति बुद्धीए अप्पिदस्स अणप्पिदेण[2] एयत्तं काऊण

व्यवहार नयका वचन इस प्रकार है— जब कोई मनुष्य हाथमें धनुष और बाण लिये मृगोंकी खोजमें भटकता फिरता है तब वह नारकी कहलाता है ॥ २ ॥

ऋजुसूत्र नयका वचन इस प्रकार है— जब आखेटस्थानपर बैठकर पापी मृगोंपर आघात करता है तब वह नारकी कहलाता है ॥ ३ ॥

शब्द नयका वचन इस प्रकार है— जब जन्तु प्राणोंसे विमुक्त कर दिया जाय तभी वह आघात करनेवाला हिंसाकर्मसे संयुक्त मनुष्य नारकी कहा जाय ॥ ४ ॥

समभिरूढ नयका वचन इस प्रकार है— जब मनुष्य नारक कर्मका बन्धक होकर नारक कर्मसे संयुक्त हो जाय तभी वह नारकी कहा जाय ॥ ५ ॥

जब वही मनुष्य नरक गतिको पहुंचकर नरकके दुःख अनुभव करने लगता है तभी वह नारकी है, ऐसा एवंभूत नय कहता है ॥ ६ ॥

इन समस्त नयोंके विषयभूत नारकीसमूहका विचार करके ही 'नारकी जीव किस प्रकार होता है' यह प्रश्न किया गया है।

अथवा, नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे नारकी चार प्रकारके होते हैं । नाम-नारकी 'नारकी' शब्दको ही कहते हैं। 'यह वही है' ऐसा बुद्धिसे विवक्षित नारकीका अविवक्षित वस्तुके साथ

१ अतः प्राक् संग्रहनयसम्बन्धिनी गाथा स्खलिता प्रतिभाति ।

२ प्रतिषु 'बुद्धीए अप्पिदस्स', मप्रतौ 'बुद्धीए अप्पिदस्स अप्पिदेण' इति पाठः ।

सब्भावासब्भावसरूवेण ठविदं ठवणणेरइओ। णेरइयपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो आगम-दव्वणेरइओ। अणागमदव्वणेरइओ तिविहो जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेएण। जाणुगसरीर-भवियं गदं। तव्वदिरित्तणोआगमदव्वणेरइओ णाम दुविहो कम्म-णोकम्म-भेएण। कम्मणेरइओ णाम णिरयगदिसहगदकम्मदव्वसमूहो। पास-पंजर-जंतादीणि[1] णोकम्मदव्वाणि णेरइयभावकारणाणि णोकम्मदव्वणेरइओ णाम। णेरइयपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावणेरइओ णाम। णिरयगदिणामाए उदएण णिरयभावमुवगदो णोआगमभावणेरइओ णाम। एदं णेरइयसमूहं बुद्धीए काऊण णेरइओ णाम कधं होदि त्ति पुच्छा कदा।

अधवा णेरइओ णाम किमोदइएण भावेण, किमुवसमिएण, किं खइएण, किं खओवसमिएण, किं पारिणामिएण भावेण होदि त्ति बुद्धीए काऊण णेरइओ णाम कधं होदि त्ति वुत्तं।

एदस्स संदेहस्स णिराकरणट्ठं उत्तरसुत्तं भणदि—

णिरयगदिणामाए उदएण ॥ ५ ॥

एकत्व करके सद्भाव और असद्भाव स्वरूपसे स्थापित स्थापना नारकी कहलाता है। नारकीसम्बन्धी प्राभृतका जाननेवाला किन्तु उसमें अनुपयुक्त जीव आगम द्रव्य नारकी है। ज्ञायक शरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे अनागम द्रव्य नारकी तीन प्रकारका है। ज्ञायकशरीर और भव्य तो गया। कर्म और नोकर्मके भेदसे तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य नारकी दो प्रकारका है। नरकगतिके साथ आये हुए कर्मद्रव्यसमूहको कर्मनारकी कहते हैं। पाश, पंजर, यंत्र आदि नोकर्मद्रव्य जो नारक भावकी उत्पत्तिमें कारणभूत होते हैं, नोकर्म द्रव्य नारकी हैं। नारकियों सम्बन्धी प्राभृतका जानकार और उसमें उपयोग रखनेवाला जीव आगम भाव नारकी है। नरक-गति नामप्रकृतिके उदयसे नरकावस्थाको प्राप्त हुआ जीव नोआगम भाव नारकी है। इस नारकीसमूहका विचार करके 'नारकी जीव किस प्रकार होता है' यह प्रश्न किया गया है।

अथवा, 'क्या नारकी औदयिक भावसे होता है, क्या औपशमिक भावसे, क्या क्षायिक भावसे, क्या क्षायोपशमिक भावसे, क्या परिणामिक भावसे होता है?' ऐसा बुद्धिसे विचार कर 'नारकी जीव किस प्रकार होता है?' यह पूछा गया है।

इस सन्देहको दूर करनेके लिये आचार्य अगला सूत्र कहते हैं—

नरकगति नामप्रकृतिके उदयसे जीव नारकी होता है ॥ ५ ॥

---

१ प्रतिपु 'पास-पंजरवंतादीणि' इति पाठः।

एवंभूदणयविसएण[1] णोआगमभावणिक्खेवेण णिरयगदिणामाए उदएण णेरइओ णाम भवदि ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खो णाम कधं भवदि ? ॥ ६ ॥

एत्थ वि णए णिक्खेवे ओदइयादिपंचविहभावे च अस्सिदूण पुव्वं व संदेहस्सुप्पत्ती परूवेदव्वा ।

तिरिक्खगदिणामाए उदएण ॥ ७ ॥

तिरिक्खगदिणामकम्मोदएणुप्पण्णपज्जायपरिणदम्मि जीवे तिरिक्खाभिहाणववहार-पच्चयाणमुवलंभादो ।

मणुसगदीए मणुसो णाम कधं भवदि ? ॥ ८ ॥

एत्थ वि पुव्वं व णय-णिक्खेवादीहि संदेहुप्पत्ती परूवेदव्वा ।

मणुसगदिणामाए उदएण ॥ ९ ॥

कुदो ? मणुसगदिणामकम्मोदयजणिदपज्जायपरिणयजीवम्मि मणुस्साहिहाण[2]वव-

एवंभूतनयके विषयसे, नोआगमभावनिक्षेपसे एवं नरकगति नामप्रकृतिके उदयसे जीव नारकी होता है ।

तिर्यंचगतिमें जीव तिर्यंच किस प्रकार होता है ? ॥ ६ ॥

यहां भी नय, निक्षेप और औदयिकादि पांच प्रकारके भावोंके आश्रयसे पूर्वोक्तानुसार संदेहकी उत्पत्तिका प्ररूपण करना चाहिये ।

तिर्यंचगति नामप्रकृतिके उदयसे जीव तिर्यंच होता है ॥ ७ ॥

क्योंकि, तिर्यंचगति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई पर्यायमें परिणत जीवके तिर्यंच संज्ञाका व्यवहार और ज्ञान पाया जाता है ।

मनुष्यगतिमें जीव मनुष्य कैसे होता है ? ॥ ८ ॥

यहां भी पूर्वानुसार नय-निक्षेपादिसे सन्देहकी उत्पत्तिका प्ररूपण करना चाहिये ।

मनुष्यगति नामप्रकृतिके उदयसे जीव मनुष्य होता है ॥ ९ ॥

क्योंकि, मनुष्यगति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई पर्यायमें परिणत जीवके

१ प्रतिषु ' एवंभूदणयविसएण ओदइएण ' इति पाठः ।

२ आ कप्रत्योः ' मणुस्साहियाण- ' इति पाठः ।

हार-पच्चयाणमुवलंभा ।

देवगदीए देवो णाम कधं भवदि ? ॥ १० ॥

सुगममेदं ।

देवगदिणामाए उदएण ॥ ११ ॥

कुदो ? देवगदिणामकम्मोदयजणिदअणिमादिपज्जयपरिणदजीवम्मि देवाहिहाण-ववहार-पच्चयाणमुवलंभा । णिरय-तिरिक्ख-मणुस-देवगदीओ जदि केवलाओ उदय-मागच्छंति तो णिरयगदिउदएण णेरइओ, तिरिक्खगदिउदएण तिरिक्खो, मणुस्सगदि-उदएण मणुस्सो, देवगदिउदएण देवो त्ति वोत्तुं जुत्तं । किं तु अण्णाओ वि पयडीओ तत्थ उदयमागच्छंति, ताहि विणा णिरय-तिरिक्ख-मणुस्स-देवगदिणामाणमुदयाणुवलं-भादो । तं जहा—

णेरइयाणं पंच उदयट्ठाणाणि होंति एक्कवीस-पंचवीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगूणतीसं ति । २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । तत्थ इगवीसपयडिउदयट्ठाणं वुच्चदे । तं जहा— णिरयगदि-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-णिरयगदि-

....

मनुष्य संज्ञाका व्यवहार और ज्ञान पाया जाता है।

देवगतिमें जीव देव कैसे होता है ? ॥ १० ॥

यह सूत्र सुगम है।

देवगति नामप्रकृतिके उदयसे जीव देव होता है ॥ ११ ॥

क्योंकि, देवगति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई अणिमादिक पर्यायोंमें परिणत जीवके देव संज्ञाका व्यवहार और ज्ञान पाया जाता है।

शंका—यदि नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव, ये गतियां केवल अपनी एक एक प्रकृतिरूपसे उदयमें आती हों तो नरकगतिके उदयसे नारकी, तिर्यंचगतिके उदयसे तिर्यंच, मनुष्यगतिके उदयसे मनुष्य और देवगतिके उदयसे देव होता है, ऐसा कहना उचित है। किन्तु अन्य भी तो प्रकृतियां वहां उदयमें आती हैं जिनके विना नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति नामकर्मोंका उदय पाया ही नहीं जाता? वह इस प्रकार है—

नारकी जीवोंके पांच उदयस्थान हैं—

इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियों सम्बन्धी २१ । २५ २७ । २८ । २९ । इनमें इक्कीस प्रकृतियोंके उदयस्थानको कहते हैं। वह इस प्रकार है—

नरकगति[1], पंचेन्द्रियजाति[2], तैजस[3] और कार्मण शरीर[4], वर्ण[5], गन्ध[6], रस[7],

पाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुअलहुअ-तस-बादर-पज्जत्त-थिराथिर-सुभासुभ-दुभग-अणादेज्ज-अजस-गित्ति-णिमिणाणि त्ति एत्तियाओ पयडीओ घेत्तूण इगिवीसाए ठाणं होदि[1] । एत्थ भंगो एक्को चेव |१| । एदमुदयट्ठाणं कस्स होदि ? विग्गहगदीए वट्टमाणस्स णेरइयस्स । तं केवचिरं कालं होदि ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बे समया[2] ।

तत्थ इमं पणुवीसाए ट्ठाणं । एदाओ चेव पयडीओ । णवरि आणुपुव्वीमवणेदूण वेउव्वियसरीर-हुंडसंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-उवघाद-पत्तेयसरीराणि पुव्वुत्तपयडीसु पक्खित्ते पणुवीसण्हं ठाणं होदि । तं कस्स ? सरीरंगहिदणेरइयस्स । तं केवचिरं

स्पर्श[8], नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[9], अगुरुलघुक[10], त्रस[11], बादर[12], पर्याप्त[13], स्थिर[14] और अस्थिर[15], शुभ[16] और अशुभ[17], दुर्भग[18], अनादेय[19], अयशकीर्ति[20] और निर्माण[21], इन प्रकृतियोंको लेकर इक्कीस प्रकृतियों सम्बन्धी पहला स्थान होता है। यहां भंग एक ही हुआ (१)।

शंका—यह इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान—विग्रहगतिमें वर्तमान नारकी जीवके यह इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान—यह उदयस्थान कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक दो समय तक रहता है।

उन नारकियोंका पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान यह है— इन्हीं उपर्युक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे नरकगतिआनुपूर्वीको छोड़कर वैक्रियिकशरीर, हुंडसंस्थान, वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्ग, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन पांच प्रकृतियोंको मिला देनेसे पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है।

शंका—यह पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान—जिस नारकी जीवने शरीर ग्रहण कर लिया है उसके यह पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है।

शंका— यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

---

१ णामधुवोदयबारस गइ-जाईणं च तसतिजुम्माणं । सुभगादेज्जजसाणं जुम्मेक्कं विग्गहे वाणू ॥ गो. क. ५८८.

२ विग्गहकम्मसरीरे सरीरमिस्से सरीरपज्जत्ते । आणा-वचिपज्जत्ते कमेण पंचोदये काला ॥ एक्कं व दो व तिण्णि व समया अंतोमुहुत्तयं तिसु वि । हेट्ठिमकालूणाओ चरिमस्स य उदयकालो दु ॥ गो. क. ५८३-५८४.

कालं होदि ? सरीरंगहिदपढमसमयमादिं कादूण जाव सरीरपज्जत्तीए अणिल्लेविद-चरिमसमओ त्ति, अंतोमुहुत्तमिदि वुत्तं होदि। भंगा वि पुव्विल्लभंगेण सह दोण्णि | २ |।

परघादमप्पसत्थविहायगदिं च पुव्विल्लपणुवीसपयडीसु पक्खित्ते सत्तावीस-पयडीणमुदयट्ठाणं होदि। तं कम्हि होदि ? सरीरपज्जत्तीणिव्वत्तिपढमसमयमादिं कादूण जाव आणापाणपज्जत्तिअणिल्लेविदचरिमसमओ त्ति एदम्हि काले होदि। तं केवचिरं ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एत्थ भंगसमासो तिण्णि | ३ | ।

पुव्विल्लसत्तावीसपयडीसु उस्सासे पक्खित्ते अट्ठावीसपयडीणमुदयट्ठाणं होदि। तं कम्हि होदि ? आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदपढमसमयमादिं कादूण जाव भासा-पज्जत्तीए अणिल्लेविदचरिमसमओ त्ति एदम्हि ट्ठाणे होदि। तं केवचिरं ? जहण्णुक्क-

....

समाधान—शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयको आदि लेकर शरीरपर्याप्ति अपूर्ण रहनेके अन्तिम समय पर्यंत अर्थात् अन्तर्मूहूर्तकाल तक यह उदयस्थान रहता है।

पूर्वोक्त एक भंगके साथ अब दो भंग हो गये (२)।

पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियोंमें परघात तथा अप्रशस्तविहायोगति मिला देनेसे सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है।

शंका—यह सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस कालमें होता है ?

समाधान—शरीरपर्याप्ति पूर्ण होजानेके प्रथम समयको आदि लेकर आनप्राणपर्याप्ति अपूर्ण रहनेके अन्तिम समय पर्यन्त इतने काल तक यह सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है।

शंका—यह काल कितने प्रमाण होता है ?

समाधान—जघन्यतः और उत्कर्षतः अन्तर्मुहूर्तमात्र।

यहां तकके सब भंगोंका जोड़ हुआ तीन (३)।

पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकृतियोंमें उच्छ्वासको मिला देनेसे अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है।

शंका—यह अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस कालमें होता है ?

समाधान—आनप्राणपर्याप्तिके पूर्ण होजानेके प्रथम समयको आदि लेकर भाषापर्याप्ति अपूर्ण रहनेके अन्तिम समय तकके कालमें होता है ?

शंका—वह काल कितने प्रमाण है ?

समाधान—जघन्य और उत्कर्षतः अन्तर्मुहूर्तमात्र।

स्सेण अंतोमुहुत्तं। एत्थ भंगसमासो चत्तारि |४|।

पुव्विल्लअट्ठावीसपयडीसु दुस्सरे पक्खित्ते एगूणत्तीसपयडीणमुदयट्ठाणं होदि। तं कम्हि ? भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पढमसमयमादिं कादूण जाव अप्पप्पणो आउअट्ठिदीए चरिमसमओ त्ति एदम्हि अद्धाणे होदि। तं केवचिरं ? जहण्णेण दसवस्ससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तूणतेत्तीससागरोवमाणि। एत्थ भंगसमासो पंच |५|।

तिरिक्खगदीए एक्कवीस-चदुवीस-पंचवीस-छव्वीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगूणत्तीस-तीस-एक्कत्तीस त्ति णव उदयट्ठाणाणि। २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। संपदि सामण्णेण एइंदियाणं एक्कवीस-चउवीस-पंचवीस-छव्वीस-सत्तावीस त्ति पंच उदयट्ठाणाणि। आदावुज्जोवाणमणुदएण एइंदियस्स सत्तावीसट्ठाणेण विणा चत्तारि उदयट्ठाणाणि। आदावुज्जोवाण उदएण सहिदएइंदियस्स पणुवीसट्ठाणेण विणा

. . ..

यहां तकके सब भंगोंका जोड़ हुआ चार (४)।

पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियोंमें दुस्वरको मिला देनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है।

शंका—वह उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस कालमें होता है ?

समाधान—भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवालेके प्रथम समयको लेकर अपनी अपनी आयुस्थितिके अन्तिम समय पर्यन्त, इतने कालमें वह उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है।

शंका—वह कितने काल प्रमाण है ?

समाधान—जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त कम दश हजार वर्ष और उत्कर्षतः अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है।

यहां तक सब भंगोंका योग हुआ पांच (५)।

तिर्यंचगतिमें इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस उनतीस, तीस और इकतीस, ये नौ उदयस्थान होते हैं। २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। अब सामान्यतः एकेन्द्रिय जीवोंके इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस और सत्ताईस, ये पांच उदयस्थान हैं। आताप और उद्योत इन दो प्रकृतियोंके उदयके विना एकेन्द्रिय जीवके सत्ताईस प्रकृतियोंवाले स्थानसे रहित शेष चार उदयस्थान होते हैं। आताप और उद्योतके उदय सहित एकेन्द्रिय जीवके पच्चीस प्रकृतियोंवाले स्थानसे रहित शेष चार उदयस्थान

चत्तारि उदयट्ठाणाणि होंति ।

तत्थ आदावुज्जोवुदयविरहिदएइंदियस्स भण्णमाणे तिरिक्खगदी-एइंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुअ-थावर बादर-सुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिराथिरं सुभासुभं दुब्भगं अणादेज्जं जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणमिदि एदासिं एक्कवीसपयडीण उदओ विग्गहगदीए वट्टमाणस्स एइंदियस्स होदि । केवचिरं ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया । एत्थ अक्खपरावत्तं काऊण भंगा उप्पाएदव्वा । तत्थ अजसकित्तिउदएण चत्तारि भंगा । जसकित्तिउदएण एक्को चेव । कुदो ? सुहुम-अपज्जत्तेहि सह जसकित्तीए उदयाभावा, जसगित्तीए सह सहुम-अपज्जत्ताणं उदयाभावादो वा । तेणेत्थ भंगा पंचेव होंति[1] [५] ।

पुव्विल्लएक्कवीसपयडीसु आणुपुव्वीमवणेदूण ओरालियसरीर-हुंडसंठाण-उवघाद पत्तेय-साधारणसरीराणमेक्कदरं पक्खित्ते चदुवीसपयडीणं उदयट्ठाणं होदि । तं कम्हि होदि ?

होते हैं । उनमें आताप और उद्योतसे रहित एकेन्द्रिय जीवके उदयस्थान कहते हैं—

तिर्यंचगति[1], एकेन्द्रियजाति[2], तैजस और कार्मण शरीर[4], वर्ण[5], गंध[6], रस[7] स्पर्श[8], तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[9], अगुरुलघुक[10], स्थावर[11], बादर और सूक्ष्म इन दोमेंसे कोई एक[12], पर्याप्त और अपर्याप्तमेंसे एक[13], स्थिर[14] और अस्थिर[15], शुभ[16] और अशुभ[17], दुर्भग[18], अनादेय[19], यशकीर्ति और अयशकीर्तिमेंसे एक[20] और निर्माण[21], इन इक्कीस प्रकृतियोंका उदय विग्रहगतिमें वर्तमान एकेन्द्रिय जीवके होता है ।

शंका—यह इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान—जघन्यतः एक समय और उत्कर्षतः तीन समय यह उदयस्थान रहता है ।

यहां अक्षपरावर्तन करके भंग निकालना चाहिये । उनमें अयशकीर्तिके उदय-सहित (बादर-सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्तके विकल्पसे) चार भंग होते हैं । यशकीर्तिके उदयसहित एक ही भंग होता है, क्योंकि, सूक्ष्म और अपर्याप्तके साथ यशकीर्तिके उदयका अभाव है, अथवा यों कहो कि यशकीर्तिके साथ सूक्ष्म और अपर्याप्त प्रकृतियोंका उदय नहीं होता । इस प्रकार यहां भंग पांच होते हैं (५) ।

पूर्वोक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आनुपूर्वीको छोड़कर औदारिकशरीर, हुंडसंस्थान, उपघात, तथा प्रत्येक और साधारण शरीरोंमेंसे कोई एक, इन चारको मिला देनेपर चौबीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है ।

शंका—यह चौबीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस कालमें होता है ?

१ तत्थासत्था णारय-साहारण-सुहुमगे अपुण्णे य । सेसेग-विगलऽसण्णी जुदठाणे जसजुगे भंगा ॥ गो. क. ६००.

गहिदसरीरपढमसमयप्पहुडि जाव सरीरपज्जत्तीए अणिल्लेविदचरिमसमओ त्ति एदम्हि ट्ठाणे[1]। केवचिरं? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एत्थ अजसगित्तीए उदएण अट्ठ भंगा। जसकित्तीए उदएण एक्को चेव। कुदो? जसकित्तीए सह सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं उदयाभावा। तेण सव्वभंगसमासो णव |९|।

पुणो अपज्जत्तमवणिय सेसचउवीसपयडीसु परघादे पक्खित्ते पंचवीसपयडीण-मुदयट्ठाणं होदि। एत्थ भंगा अजसकित्तीउदएण चत्तारि। कुदो? अपज्जत्तउदयस्स अभावादो। जसकित्तिउदएण एक्को चेव। तेण भंगसमासो पंच |५|। तं कम्हि? सरीरपज्जत्तयदपढमसमयमादिं कादूण जाव आणापाणपज्जत्तीए अणिल्लेविदचरिम-समओ त्ति एदम्हि ट्ठाणे। तं केवचिरं? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

समाधान—शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयसे लेकर शरीरपर्याप्ति अपूर्ण रहनेके अन्तिम समय तकके कालमें यह उदयस्थान होता है।

शंका—इस उदयस्थानका काल कितने प्रमाण है?

समाधान—जघन्य और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण।

यहां अयशकीर्तिके उदयसहित (बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त और प्रत्येक-साधारणके विकल्पसे) आठ भंग होते हैं। यशकीर्तिके उदयसहित एक ही भंग है, क्योंकि, यशकीर्तिके साथ सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इन प्रकृतियोंका उदय नहीं होता। इस प्रकार सब भंगोंका योग नौ हुआ (९)।

पूर्वोक्त उदयस्थानकी प्रकृतियोंमेंसे अपर्याप्तको छोड़कर शेष चौबीस प्रकृतियोंमें परघातको मिला देने पर पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहांपर भंग अयशकीर्तिके उदयके साथ (बादर-सूक्ष्म, और प्रत्येक-साधारणके विकल्पसे) चार होते हैं, क्योंकि, यहांपर अपर्याप्तका उदय नहीं होता। यशकीर्तिके उदयसहित पूर्ववत् भंग एक ही होता है। इससे यहां भंगोंका योग हुआ पांच (५)।

शंका—यह पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस कालमें होता है?

समाधान—शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके प्रथम समयको आदि लेकर आनप्राण-पर्याप्ति अपूर्ण रहनेके अन्तिम समय तकके कालमें यह उदयस्थान होता है।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है।

समाधान—जघन्य और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण इस उदयस्थानका काल है।

१ मिस्सम्मि तिअंगाणं संठाणाणं च एगदरगं तु। पत्तेयदुगाणेक्को उवघादो होदि उदयगदो॥ गो. क. ५८९.

तस्सेव आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पुव्विल्लपंचवीसपयडीसु उस्सासे पक्खित्ते छव्वीसपयडीणमुदयट्ठाणं होदि । तं कस्स ? आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स । केवचिरं ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तूणबावीसवस्स-सहस्साणि । एत्थ भंगा पुव्वं व पंचेव होंति |५|।

आदावुज्जोवुदयसहिदएइंदियस्स वुच्चदे– एक्कवीस-चदुवीसपयडिउदयट्ठाणाणं पुव्वं व परूवणा कादव्वा । णवरि दोण्हं पि उदयट्ठाणाणं जसकित्ति-अजस-कित्तिउदएण दोण्णि दोण्णि चेव भंगा होंति । कुदो ? आदावुज्जोवुदय-भावीणं सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीराणं उदयाभावा । पुणो एदे पुव्वुत्तएक्कवीस-चउवीसपयडिउदयट्ठाणाणं भंगेसु लद्धा त्ति अवणेदव्वा । पुणो सरीरपज्जत्तीए पज्जत्त-यदस्स परघादे आदावुज्जोवाणामेक्कदरं च पुव्विल्लचदुवीसपयडीसु पक्खित्ते पणुवीस-

उसी आनप्राणपर्याप्तिसे पूर्ण हुए जीवके पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास मिला देनेपर छब्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है ।

शंका – यह छब्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान––आनप्राणपर्याप्तिसे पूर्ण हुए एकेन्द्रिय जीवके यह छब्वीस प्रकृतियों-वाला उदयस्थान होता है ।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान—जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षतः अन्तर्मुहूर्तसे हीन बाईस हजार वर्ष तक यह उदयस्थान रहता है ।

यहां भंग पूर्ववत् पांच ही होते हैं (५)।

अब आताप और उद्योत नामकर्म प्रकृतियोंके साथ होनेवाले एकेन्द्रियके उदय-स्थानोंको कहते हैं– इनमें इक्कीस और चौवीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानोंकी पूर्ववत् प्ररूपणा करना चाहिये। विशेषता केवल इतनी है कि उक्त दोनों उदयस्थानोंके यशकीर्ति और अयशकीर्ति प्रकृतियोंके उदय सहित केवल दो दो ही भंग होते हैं, क्योंकि, जिन जीवोंके आताप और उद्योतका उदय होनेवाला है उनके सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण-शरीर, इन प्रकृतियोंका उदय नहीं होता। किन्तु ये दो दो भंग पूर्वोक्त इक्कीस व चौवीस प्रकृतिसम्बन्धी उदयस्थानोंमें पाये जाते हैं, अतः उन्हें निकाल देना चाहिये ।

पुनः शरीरपर्याप्तिसे पर्याप्त हुए जीवके परघात तथा आताप और उद्योत इन दोनोंमेंसे कोई एक, इस प्रकार दो प्रकृतियोंको पूर्वोक्त चौवीस प्रकृतियोंमें मिला देनेसे

पयडिट्ठाणमुल्लंघिय छव्वीसपयडिट्ठाणमुप्पज्जदि । एदं कस्स ? सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स । केवचिरं ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एत्थ भंगा चत्तारि हवंति । एदे चत्तारि भंगे पढमछव्वीसभंगेसु पक्खित्ते णव भंगा होंति । तस्सेव आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स छव्वीसपयडीसु उस्सासे पक्खित्ते सत्तावीसपयडीणं उदयट्ठाणं होदि । एत्थ भंगा चत्तारि चेव । सव्वेइंदियाणं सव्वभंगसमासो बत्तीस | ३२ | ।

पच्चीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका उल्लंघनकर छव्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान उत्पन्न होता है ।

शंका—यह छव्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान—शरीरपर्याप्तिसे पूर्ण हुए एकेन्द्रिय जीवके होता है ।

शंका—इस छव्वीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका समय कितना है ?

समाधान—जघन्य और उत्कर्षतः अन्तर्मुहूर्त ।

यहां (यशकीर्ति-अयशकीर्ति तथा आताप-उद्योतके विकल्पसे) भंग चार हैं । इन चार भंगोंको पूर्वोक्त छव्वीस भंगोंवाले उदयस्थानसम्बन्धी पांच भंगोंमें मिला देनेसे नौ भंग हो जाते हैं ।

आनप्राणपर्याप्तिसे पूर्ण हुए उसी एकेन्द्रिय जीवके उक्त छव्वीस प्रकृतियोंमें उच्छ्वासको मिलादेनेपर सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां (यशकीर्ति-अयशकीर्ति और आताप-उद्योतके विकल्पसे) भंग चार हैं ।

समस्त एकेन्द्रियोंके सब उदयस्थानसम्बन्धी विकल्पोंका योग होता है बत्तीस (३२) ।

आताप-उद्योत रहित	२१	प्र. स्थान—	५	
,, ,,	२४	,, —	९	
,, ,,	२५	,, —	५	
,, ,,	२६	,, —	५	
आताप-उद्योत सहित	२१	,, —	२	ये पूर्वोक्त भंगोंमें आ चुके हैं इसलिये इन्हें नहीं जोड़ा ।
,, ,,	२४	,, —	२	
,, ,,	२६	,, —	४	
,, ,,	२७	,, —	४	
			३२	

विशेषार्थ—गोम्मटसार कर्मकाण्डकी ५८८ आदि गाथाओंमें जो उदयस्थान बतलाये गये हैं उनमें २१ और २४ प्रकृतिसम्बन्धी उदयस्थानोंमें आताप-उद्योत प्रकृतियोंके उदयका कहीं उल्लेख या संकेत नहीं किया गया । विग्रहगतिमें व अपर्याप्त अवस्थामें इन

विगलिंदियाणं सामण्णेण एक्कवीस छव्वीस-अट्ठावीस-एऊणत्तीस-तीस-एक्कत्तीस त्ति छ उदयट्ठाणाणि । २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । उज्जोवुदयविरहिदविगलिंदियस्स पंच वुदयट्ठाणाणि होंति, एक्कत्तीसुदयट्ठाणाभावा । वुज्जोवुदयसंजुत्तविगलिंदियस्स वि पंचेवुदयट्ठाणाणि, परघादुज्जोव-अप्पसत्थविहायगदीणमक्कमप्पवेसेण अट्ठावीसट्ठाणाणुप्पत्तीदो ।

उज्जोवुदयविरहिदबेइंदियस्स ताव उच्चदे– तत्थ इमं इगिवीसाए ट्ठाणं, तिरिक्खगदि-बेइंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर–वण्ण-गंध-रस-फास–तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुअलहुअ-तस-बादर पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिराथिर-सुभासुभ-दुभग-अणादेज्ज जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं च, एदासिमेक्कवीसपयडीणमेकं ठाणं । तं कस्स ?

प्रकृतियोंका उदय भी संभव नहीं प्रतीत होता । धवलाकारने स्वयं पृष्ठ ३८ पर इन दोनों प्रकृतियोंके साथ अपर्याप्त प्रकृतिके उदयका अभाव बतलाया है । अतएव यहां पर ऐसा अर्थ लेना चाहिये कि जिन एकेन्द्रिय जीवोंके आगे चलकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो जाने पर आताप या उद्योत प्रकृतिका उदय होनेवाला है, उनके सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंका उदय नहीं होगा अतएव तत्सम्बन्धी भंग भी उनके नहीं होंगे । केवल यशकीर्ति और अयशकीर्तिके विकल्पसे दो दो ही भंग होंगे ।

विकलेन्द्रिय जीवोंके सामान्यतः इक्कीस, छव्वीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतियोंके सम्बन्धसे छह उदयस्थान हैं । २१ । २६ । २८ ।२९ । ३० । ३१ उद्योतके उदयसे रहित विकलेन्द्रिय जीवके पांच उदयस्थान होते हैं, क्योंकि, उसके इकतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान नहीं होता । उद्योतके उदय सहित विकलेन्द्रियके भी पांच ही उदयस्थान होते हैं, क्योंकि, उसके परघात, उद्योत और अप्रशस्तविहायोगति, इन तीन प्रकृतियोंका एक साथ प्रवेश होनेके कारण अट्ठाईस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानकी उपपत्ति नहीं बनती ।

अब पहले उद्योतोदयसे रहित द्वीन्द्रिय जीवके उदयस्थान कहते हैं । उनमें यह इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान है— तिर्यंचगति[1], द्वीन्द्रियजाति[2], तैजस[3] और कार्मण शरीर[4], वर्ण[5], गंध[6], रस[7], स्पर्श[8], तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी[9], अगुरुलघु[10], त्रस[11] बादर[12], पर्याप्त और अपर्याप्तमेंसे कोई एक[13], स्थिर[14], अस्थिर[15], शुभ[16], अशुभ[17], दुर्भग[18], अनादेय[19], यशकीर्ति और अयशकीर्तिमेंसे कोई एक[20] और निर्माण[21], इन इक्कीस प्रकृतियोंका एक उदयस्थान होता है ।

शंका—यह इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान किस जीवके होता है ?

बेइंदियस्स विग्गहगदीए वट्टमाणस्स । तं केवचिरं ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण बे समया। जसगित्तिउदएण एक्को भंगो। कुदो ? अपज्जत्तोदएण सह जसकित्तीए उदयाभावा। अजसगित्तिउदएण बे भंगा। कुदो ? पज्जत्तापज्जत्ताणमुद-एहि सह अजसगित्तिउदयस्स संभवुवलंभा। एत्थ सव्वभंगसमासो तिण्णि | ३ |।

एदासु एक्कवीसपयडीसु आणुपुव्विमवणेदूण गहिदसरीरपढमसमए ओरालिय-सरीर-हुंडसंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसंघडण-उवघाद-पत्तेयसरीरेसु पक्खि-त्तेसु छव्वीसाए ट्ठाणं होदि । एत्थ भंगसमासो तिण्णि | ३ | । सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पुव्वुत्तपयडीसु अपज्जत्तमवणिय परघादअप्पसत्थविहायगदीसु पक्खित्तासु अट्ठावीसाए ट्ठाणं होदि। एत्थ जसकित्तिउदएण एक्को भंगो, अजसकित्ति-उदएण वि एक्को चेव । कुदो ? पडिवक्खपयडीणमभावादो। एत्थ सव्वभंगा दो चेव | २ |।

आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पुव्वुत्तपयडीसु उस्सासे पक्खित्ते एगुण-

समाधान—यह उदयस्थान उस जीवके होता है जो द्वीन्द्रिय है और विग्रह-गतिमें वर्तमान है।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान-- कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक दो समय।

यशकीर्तिके उदयके साथ एक ही भंग होता है, क्योंकि, अपर्याप्तोदयके साथ यशकीर्तिका उदय नहीं होता। अयशकीर्तिके उदय सहित दो भंग होते हैं, क्योंकि, पर्याप्त और अपर्याप्तके उदयके साथ अयशकीर्तिका उदय होना संभव है। इस प्रकार यहां सब भंगोंका योग हुआ तीन (३)।

इन इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आनुपूर्वीको छोड़कर शरीरग्रहण करनेके प्रथम समयमें औदारिकशरीर, हुंडसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन छह प्रकृतियोंको मिला देनेसे छव्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहां भंगोंका योग (पूर्वोक्तानुसार ही) होता है तीन (३)।

शरीरपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले द्वीन्द्रिय जीवके पूर्वोक्त छव्वीस प्रकृतियोंमेंसे अपर्याप्तको निकालकर परघात और अप्रशस्तविहायोगति मिला देनेसे अट्ठाईस प्रकृतियों-वाला उदयस्थान हो जाता है। यहां यशकीर्तिके उदय सहित एक ही भंग है। और अयशकीर्तिके उदय सहित भी एक ही भंग है, क्योंकि, यहां भी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका अभाव है। यहां सब भंग हैं केवल दो (२)।

आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले द्वीन्द्रिय जीवके पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियोंमें

तीसाए ट्ठाणं भवदि । एत्थ वि भंगा दो चेव |२|। भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पुव्वुत्तपयडीसु दुस्सरे पक्खित्ते तीसाए ट्ठाणं होदि । एत्थ भंगा दो चेव |२|।

संपदि उज्जोवुदयसंजुत्तबेइंदियस्स भण्णमाणे एक्कवीस-छव्वीसाओ जधा पुव्वं वुत्ताओ तधा वत्तव्वं । पुणो छव्वीसाए उवरि परघादुज्जोव-अप्पसत्थविहायगदीसु पक्खित्तासु एगुणतीसाए ट्ठाणं होदि । जसकित्तिउदएण एक्को भंगो, अजसकित्ति-उदएण एक्को । एत्थ भंगसमासो दोण्णि |२।। पुणो एदेसु दोसु पढमेगूणत्तीसभंगेसु पक्खित्तेसु चत्तारि भंगा होंति । आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासे पक्खित्ते तीसाए ट्ठाणं होदि । एत्थ वि भंगा दो चेव । एदेसु पढमतीसभंगेसु पक्खित्तेसु चत्तारि भंगा होंति । भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स दुस्सरे पक्खित्ते एक्कतीसाए ट्ठाणं होदि । एत्थ भंगा दोण्णि । सव्वभंगसमासो अट्ठारस । तिण्हं विगलिंदियाणं भंग-

उच्छ्वास मिला देनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां भी भग दो ही हैं (२)।

भाषापर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले द्वीन्द्रिय जीवके पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंमें दुस्वर मिला देनेसे तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहां भी भंग दो ही हैं (२)।

अब उद्योतके उदय सहित द्वीन्द्रिय जीवके उदयस्थान कहे जाते हैं— इनके इक्कीस और छव्वीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान तो जैसे ऊपर कह आये हैं उसी प्रकार कहना चाहिये। फिर छव्वीसके ऊपर परघात, उद्योत और अप्रशस्तविहायोगति, इन तीनको मिला देनेपर उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यशकीर्तिके उदय सहित एक भंग होता है और अयशकीर्तिके उदय सहित एक। इस प्रकार यहां भंगोंका योग हुआ दो (२)। फिर इन दो भंगोंमें पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान सम्बन्धी दो भंगोंको मिला देनेसे भंग हो जाते हैं चार (४)।

आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले द्वीन्द्रिय जीवके पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास और मिला देनेपर तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहां भी भंग दो ही हैं (२)। इनमें प्रथम तीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान सम्बन्धी दो भंग मिला देनेसे चार भंग हो जाते हैं (४)।

भाषापर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले द्वीन्द्रिय जीवके पूर्वोक्त तीस प्रकृतियोंमें दुस्वर मिला देनेसे इकतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहां भंग होते हैं दो (२)।

सब विकल्पोंका योग हुआ अठारह (१८)।

समासमिच्छामो त्ति अट्ठारससु तिगुणिदेसु चउप्पण्णभंगा होंति |५४|। एत्थ सामित्तादि-वियप्पा णेरइयाणं व वत्तव्वा। णवरि बेइंदियादीणं तीस एक्कत्तीसाणं कालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण जहाकमेण बारस वस्साणि, एगुणवण्णरादिंदियाणि, छम्मासा अंतोमुहुत्तूणा।

पंचिंदियतिरिक्खस्स सामण्णेण एक्कवीस-छव्वीस-अट्ठावीस-गुणतीस-तीस-एक्कत्तीसेत्ति छउदयट्ठाणाणि। २१।२६।२८।२९।३०।३१। वुज्जोवुदयविरहिद-पंचिंदियतिरिक्खस्स पंच उदयट्ठाणाणि होंति। कुदो? तत्थेक्कत्तीसाए उदयाभावा। वुज्जोवुदयसंजुत्तपंचिंदियतिरिक्खस्स वि पंचेवुदयट्ठाणाणि होंति। कुदो? तत्थइगवी-

			उद्योत रहित		उद्योत सहित	
२१ प्रकृतियोंवाले	स्थानभंग		३		३	ये छह भंग पूर्वके ही समान होनेसे नहीं जोड़े गये।
२६	,,	,,	३		३	
२८	,,	,,	२		×	
२९	,,	,,	२	+	२	
३०	,,	,,	२	+	२	
३१	,,	,,	×		२	
			१२	+	६ = १८	

अब हमें द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय, इन तीनों विकलेन्द्रिय जीवोंके उदयस्थानोंके भंगोंका योग चाहिये। अतएव अठारहको तीनसे गुणा कर देनेपर चौवन भंग हो जाते हैं (५४)। यहां स्वामित्व आदिके विकल्प जैसे नारकी जीवोंकी प्ररूपणामें पहले कह आये हैं उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। विशेषता केवल इतनी है कि द्वीन्द्रियादि जीवोंके तीस और इकतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानोंका काल कमसे कम अन्तर्मुहूर्त, और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कम क्रमशः बारह वर्ष, उनंचास रात्रि-दिवस और छह मास होता है। अर्थात् तीस और इकतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानोंका जघन्य काल तो तीनों विकलेन्द्रिय जीवोंके अन्तर्मुहूर्त ही होता है, किन्तु उत्कृष्ट काल द्वीन्द्रियोंके अन्तर्मुहूर्त कम बारह वर्ष, त्रीन्द्रियोंके अन्तर्मुहूर्त कम उनंचास रात्रि-दिन और चतुरिन्द्रिय जीवोंके अन्तर्मुहूर्त कम छह मास होता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचके सामान्यतः इक्कीस, छव्वीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतियोंवाले छह उदयस्थान होते हैं। २१।२६।२८।२९।३०।३१। उद्योतोदयसे रहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पांच उदयस्थान होते हैं, क्योंकि, उसके इकतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान नहीं होता। उद्योतोदय सहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचके भी पांच

सुदयट्ठाणाभावादो । उज्जोवुदयविरहिदपंचिंदियतिरिक्खस्स भण्णमाणे तत्थ इदमेक्क-वीसाए ट्ठाणं होदि– तिरिक्खगदि-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-तस-बादर पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिरा-थिरं सुभासुभं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजस-कित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं च एदासिमेक्कवीसपयडीणमेक्कं चेव ट्ठाणं । एत्थ पज्जत्तउदएण अट्ठ भंगा, अपज्जत्तउदएण एक्को । कुदो ? सुभग-आदेज्ज-जसकित्तीहि सह एदस्सुदयाभावा । सव्वभंगसमासो णव |९| । सरीरे गहिदे आणुपुव्विमवणिय ओरालियसरीरं छण्हं संठाणाणं एक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंग छण्हं संघडणाणमेक्कदरं उवघाद-पत्तेयसरीरमिदि एदेसु कम्मेसु पक्खित्तेसु छव्वीसाए ट्ठाणं होदि । एत्थ पज्जत्तउदएण अट्ठासीदा बे सदा भंगा होंति । अपज्जत्तउदएण एक्को चेव । कुदो ? सुहेहि सह अपज्जत्तस्स उदयाभावा । एत्थ सव्वभंगसमासो एक्कारसूणतिसदमेत्तो |२८९|। एत्थ भंगविसयणिच्छयसमुप्पायणट्ठमेदाओ गाहाओ वत्तव्वाओ । तं जहा—

ही उदयस्थान होते हैं, क्योंकि, उसके अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान नहीं होता ।

अब उद्योतोदय रहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचके उदयस्थान कहते हैं । उनमें इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान इस प्रकार है— तिर्यंचगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजस और कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघुक, त्रस, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्तमेंसे कोई एक, स्थिर और अस्थिर, शुभ और अशुभ, सुभग और दुर्भगमेंसे कोई एक, आदेय और अनादेयमेंसे कोई एक, यशकीर्ति और अयशकीर्तिमेंसे कोई एक और निर्माण, इन इक्कीस प्रकृतियोंका एक ही स्थान होता है । यहां पर्याप्तके उदय सहित (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशकीर्ति-अयशकीर्तिके विकल्पोंसे) आठ भंग होते हैं । अपर्याप्तके उदय सहित केवल एक ही भंग है, क्योंकि, सुभग आदेय और यशकीर्ति प्रकृतियोंके साथ अपर्याप्तका उदय नहीं होता । इन सब भंगोंका योग नौ है (९) ।

शरीर ग्रहण करलेनेपर आनुपूर्वीको छोड़ औदारिकशरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहननोंमेंसे कोई एक संहनन, उपघात, और प्रत्येकशरीर, इन छह कर्मोंको मिला देनेपर छव्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां पर्याप्तोदय सहित (सुभग दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान और छह संहनन, इनके विकल्पोंसे २×२×२×६×६=२८८) दो सौ अठासी भंग होते हैं । अपर्याप्तोदय सहित एक ही भंग है, क्योंकि, उक्त वैकल्पिक प्रकृतियोंमेंसे शुभ प्रकृतियोंके साथ अपर्याप्तका उदय नहीं होता । यहां सब भंगोंका योग ग्यारह कम तीनसौ अर्थात् दोसौ नवासी होता है (२८९) ।

यहां भंगोंके विषयमें निश्चय उत्पन्न करानेके लिये ये गाथायें कहने योग्य हैं । जैसे—

संखा तह पत्थारो परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं[1] ।
एदे पंच वियप्पा ट्ठाणसमुक्कित्तणा णेया[2] ॥ ७ ॥

सव्वे वि पुव्वभंगा उवरिमभंगेसु एक्कमेक्केसु ।
मेलंति त्ति य कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखा[3] ॥ ८ ॥

पढमं पयडिपमाणं कमेण णिक्खिविय उवरिमाणं च ।
पिंडं पडि एक्केक्के णिक्खित्ते होदि पत्थारो ॥ ९ ॥

णिक्खित्तु बिदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि बिदियमेक्केक्कं ।
पिंडं पडि णिक्खित्ते एवं सेसा वि कायव्वा[4] ॥ १० ॥

पढमक्खो अंतगओ आदिगदे संकमेदि बिदियक्खो ।
दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो[5] ॥ ११ ॥

संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट और समुद्दिष्ट, इन पांच विकल्पोंको स्थानोंका समुत्कीर्तन अर्थात् विवरण करनेवाले जानना चाहिये ॥ ७ ॥

सभी पूर्ववर्ती भंग उत्तरवर्ती प्रत्येक भंग में मिलते हैं, अतएव उन भंगोंको क्रमशः गुणित करनेपर सब भंगोंकी संख्या उत्पन्न होती है ॥ ८ ॥

पहले प्रकृतिप्रमाणको क्रमसे रखकर अर्थात् उसकी एक एक प्रकृति अलग अलग रखकर एक एकके ऊपर उपरिम प्रकृतियोंके पिंडप्रमाणको रखनेपर प्रस्तार होता है ॥ ९ ॥

दूसरे प्रकृतिपिंडका जितना प्रमाण है उतने वार प्रथम पिंडको रखकर उसके ऊपर द्वितीय पिंडको एक एक करके रखना चाहिये। (इस निक्षेपके योगको प्रथम समझ और अगले प्रकृतिपिंडको द्वितीय समझ तत्प्रमाण इस नये प्रथम निक्षेपको रखकर जोड़ना चाहिये।) आगे भी शेष प्रकृतिपिंडोंको इसी प्रक्रियासे रखना चाहिये ॥ १० ॥

प्रथम अक्ष अर्थात् प्रकृतिविशेष जब अन्त तक पहुंचकर पुनः आदि स्थानपर आता है, तब दूसरा प्रकृतिस्थान भी संक्रमण कर जाता है अर्थात् अगली प्रकृतिपर पहुंच जाता है; और जब ये दोनों स्थान अन्तको पहुंचकर आदिको प्राप्त हो जाते हैं तब तृतीय अक्षका भी संक्रमण होता है ॥ ११ ॥

१ प्रतिषु 'तस्समुद्दिट्ठं' इति पाठः ।
२ गो. जी. ३५.
३ गो. जी. ३६.
४ गो. जी. ३८.
५ गो. जी. ४०.

सगमाणेण विहत्ते सेसं लक्खित्तु पक्खिवे[1] रूवं ।
लक्खिज्जंते सुद्धे एवं सव्वत्थ कायव्वं[2] ॥ १२ ॥

संठाविदूण[3] रूपं उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे ।
अवणेज्जोणंकिदयं कुज्जा पढमंतियं जाव[4] ॥ १३ ॥

जितनेवां उदयस्थान जानना अभीष्ट हो उसी स्थानसंख्याको पिंडमानसे विभक्त करे। जो शेष रहे उसे अक्षस्थान समझे । पुनः लब्धमें एक अंक मिलाकर दूसरे पिंड-मानका भाग देवे और शेषको अक्षस्थान समझे। जहां भाग देनेसे कुछ न बचे वहां अन्तिम अक्षस्थान समझे और फिर लब्धमें एक अंक न मिलावे। इस प्रकार समस्त पिंडों द्वारा विभाजनक्रिया करनेसे उद्दिष्ट स्थान निकल आता है ॥ १२ ॥

एक अंकको स्थापित करके आगेके पिंडका जो प्रमाण हो उससे गुणा करे और लब्धमेंसे अनंकितको घटा दे। ऐसा प्रथम पिंडके अंत तक करता जावे। इस प्रकार उद्दिष्ट निकल आता है ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—पूर्वोक्त सात गाथाओंमें यह बतलाया गया है कि जब अनेक पिंडोंके अन्तर्गत विशेष पदोंके विकल्पोंसे भिन्न भिन्न भंग बनते हैं तब उन सब भंगोंकी संख्या किस प्रकार निकाली जाय, उस संख्याप्रमाण सब भंगोंको क्रमसे जाननेके लिये किस किस प्रकार विस्तार किया जा सकता है, उस विस्तारसे किस प्रकार भंगोंमें परिवर्तन होते हैं, किसी स्थानविशेषकी क्रमसंख्यामात्रके उल्लेखसे उस स्थानवर्ती विशेषोंको कैसे जाना जा सकता है या विशेषोंके नामोल्लेखसे उसकी क्रमसंख्या किस प्रकार जानी जा सकती है। गाथा नं. ७ में इन्हीं प्रक्रियाओंके पांच नामोंका उल्लेख है। भंगोंके प्रमाणकी संख्या, उस संख्याप्रमाण भंग प्राप्त करनेकी प्रक्रियाको प्रस्तार, उत्तरोत्तर एक एक विकल्पके नामपरिवर्तनको परिवर्तन, क्रमिक संख्याके उल्लेखसे विकल्पके विशेषोंको जाननेके प्रकारको नष्ट, और विकल्प विशेषके नामोल्लेखसे उसकी क्रमिक संख्याको जाननेके प्रकारको समुद्दिष्ट कहा है।

गाथा नं. ८ में भंगोंकी सम्पूर्ण संख्या निकालनेका प्रकार बतलाया गया है जिसका उपयोग प्रकृतमें पंचेन्द्रिय जीवोंके सुभग-दुर्भग, आदेय अनादेय, यशकीर्ति अयशकीर्ति, छह संस्थान और छह संहनन, इनके विकल्पों द्वारा उत्पन्न उदयस्थानोंकी भंगसंख्या निकालनेमें किया जा सकता है। इसके लिये प्रक्रिया यह है कि प्रकृत पिंडप्रमाणोंकी संख्याओंको क्रमशः रखकर परस्पर गुणा कर दो जिससे २×२×२×६×६=२८८ दो सौ अठासी विकल्प आ जाते हैं।

---

१ प्रतिषु 'पक्खिमे' इति पाठः । २ गो. जी ४१.

३ प्रतिषु 'सधाविदूण' इति पाठः । ४ गो. जी. ४२.

....

गाथा नं. ९ और १० में बतलाई गई दो भिन्न भिन्न प्रकारकी प्रस्तारप्रक्रियाका स्पष्टीकरण अक्षपरिवर्तनकी प्रक्रियासे होता है जो निम्न प्रकार है—

गाथा नं. ११ में जो अक्षपरिवर्तनका क्रम बतलाया गया है वह द्वितीय प्रस्तारकी अपेक्षा (गाथा नं. १० के अनुसार) सम्भव है। प्रथम प्रस्तारकी अपेक्षा अक्षपरिवर्तनकी निरूपक गाथा यहां नहीं दी गई। यह गाथा गोम्मटसार (जी. कां.) के प्रमाद प्रकरणमें इस प्रकार पायी जाती है--

तदियक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो।
दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि पढमक्खो॥ ३९.॥

अर्थात् तृतीय अक्ष जब आलापक्रमसे अपने अन्त तक जाकर व फिरसे लौटकर एक साथ अपने प्रथम स्थानको प्राप्त हो जाता है, तब द्वितीय अक्ष बदलकर दूसरे स्थानको प्राप्त होता है। इस प्रकार दोनों ही अक्ष अन्तको प्राप्त होकर व फिरसे लौटकर जब अपने अपने प्रथम स्थानको प्राप्त होते हैं तब प्रथमाक्ष प्रथम स्थानको छोड़कर द्वितीय स्थानपर पहुंच जाता है।

इसके अनुसार प्रकृतमें आलापभेदोंका क्रम निम्न प्रकार होगा—

१	सुभग,	आदेय,	यशकीर्ति,	समचतुरस्र.,	वज्रवृषभ.
२	,,	,,	,,	,,	वज्रनाराच.
३	,,	,,	,,	,,	नाराच.
४	,,	,,	,,	,,	अर्धनाराच.
५	,,	,,	,,	,,	कीलित.
६	,,	,,	,,	,,	असंप्राप्त.
७	,,	,,	,,	न्यग्रोध.	वज्रवृषभ.
८	,,	,,	,,	,,	वज्रनाराच.
९	,,	,,	,,	,,	नाराच.
१०	,,	,,	,,	,,	अर्धनाराच.

इस प्रकार जैसे समचतुरस्र सहित ६ भंग बने हैं वैसे ही न्यग्रोध सहित ६ भंग बनेंगे और फिर शेष चार संस्थानोंके भी क्रमशः छह छह भंग होंगे जिनका योग होगा ३६। फिर ये ही ३६ भंग अयशकीर्तिके साथ होंगे। फिर अनादेयके यशकीर्तिके साथ ३६ और अयशकीर्तिके साथ ३६ भंग होकर ७२ भंग होंगे। पश्चात् दुर्भगको लेकर ३६ आदेय-यशकीर्ति सहित, ३६ आदेय-अयशकीर्ति सहित, ३६ अनादेय-यशकीर्ति सहित और ३६ अनादेय-अयशकीर्ति सहित ऐसे १४४ भंग होंगे। इस प्रकार इन सबका योग होगा ३६+३६+७२+१४४=२८८।

द्वितीय प्रस्तारकी अपेक्षा (गाथा नं. ११ के अनुसार) आलापभेदोंका क्रम निम्न प्रकार होगा—

१	सुभग,	आदेय,	यशकीर्ति,	समचतुरस्र.,	वज्रवृषभ.
२	दुर्भग	,,	,,	,,	,,
३	सुभग,	अनादेय	,,	,,	,,
४	दुर्भग	,,	,,	,,	,,
५	सुभग,	आदेय,	अयशकीर्ति,	,,	,,
६	दुर्भग	,,	,,	,,	,,
७	सुभग,	अनादेय	,,	,,	,,
८	दुर्भग	,,	,,	,,	,,
९	सुभग,	आदेय,	यशकीर्ति,	न्यग्रोध.	,,
१०	दुर्भग	,,	,,	,,	,,

इस प्रकार जैसे यहां आदेय सहित २, अनादेय सहित २, फिर अयशकीर्ति-आदेय सहित २ और अयशकीर्ति-अनादेय सहित २ ऐसे ८ भंग बने हैं, वैसे ही न्यग्रोध-यशकीर्ति-आदेय सहित २, न्यग्रोध-यशकीर्ति अनादेय सहित २, न्यग्रोध-अयशकीर्ति-आदेय सहित २ और न्यग्रोध-अयशकीर्ति-अनादेय सहित २ ऐसे ८ भंग बनेंगे और फिर शेष चार संस्थानोंके भी क्रमशः आठ आठ भंग होकर छहों संस्थानोंके ४८ भंग होंगे। जिस प्रकार ये ४८ भंग प्रथम संहनन सहित हुए हैं उसी प्रकार शेष पांच संहननोंके भी क्रमशः अड़तालीस अड़तालीस भंग होकर सब भंगोंका योग ४८×६=२८८ हो जायगा।

गाथा नं. ११ में क्रमिक संख्यापरसे विवक्षित भंग जाननेकी विधि बतलाई है। उदाहरणार्थ — हमें यह जानना है कि उक्त २८८ भंगोंमेंसे १४५ वां भंग कौनसा होगा। अब हमें १४५ को सबसे पहले प्रथम पिंडमान २ से भाजित करना चाहिये जिससे लब्ध ७२ आये और शेष बचा १। अतएव प्रथम स्थानमें सुभग है। फिर लब्धमें १ मिलाकर दूसरे पिंडप्रमाण २ का भाग देनेसे लब्ध आये ३६ और शेष बचा १। इससे जाना गया कि दूसरे स्थानमें आदेय है। फिर लब्धमें १ मिलाकर तीसरे पिंडमान २ का भाग देनेसे लब्ध आये १८ और शेष रहा १। इससे जाना कि तीसरे स्थानमें यशकीर्ति है। फिर लब्धमें एक मिलाकर चौथे पिंडमान ६ का भाग देनेसे लब्ध आये ३ और शेष बचा १। इससे जाना कि चौथे स्थानमें समचतुरस्रसंस्थान है। फिर लब्धमें १ मिलानेपर अन्तिम पिंडमान ६ का भाग न जाकर शेष बचे ४ से अन्तिम पिंडकी चौथी प्रकृति अर्धनाराचसंहनन समझना चाहिये। अतएव १४५ वां भंग सुभग आदेय यशकीर्ति समचतुरस्रसंस्थान व अर्धनाराचसंहनन प्रकृतियोंवाला होगा।

गाथा नं. १३ में विकल्पके नामोल्लेख परसे उसकी क्रमिक संख्या जाननेकी विधि बतलाई गयी है। उदाहरणार्थ— हम जानना चाहते हैं कि दुर्भग, अनादेय, अयशकीर्ति न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान और कीलकशरीरसंहनन कौनसे नम्बरके भंगमें आवेंगे। यहां १ अंकको रखकर उसे अन्तिम पिंडमान ६ से गुणा किया और लब्धमेंसे अनंकित १ घटा दिया, क्योंकि, कीलकशरीर पांचवां संहनन है। घटानेसे जो ५ बचे उन्हें अगले पिंडमान ६ से गुणा किया जिससे लब्ध आये ३०। इसमेंसे घटाये ४, क्योंकि, न्यग्रोध-परिमंडल ६ संस्थानोंमेंसे दूसरा ही है। शेष बचे २६ को उससे पूर्ववर्ती पिंडमान दोसे गुणा किया और घटाया कुछ नहीं, क्योंकि, पिंडमान दोमेंसे द्वितीय प्रकृतिको ही ग्रहण किया है अतः अनंकित कुछ नहीं है। इस प्रकार लब्ध ५२ को पुनः २ से गुणा किया फिर भी कुछ नहीं घटाया, क्योंकि, यहां भी दोमेंसे दूसरी ही प्रकृति ग्रहण की है। अतएव लब्ध हुए १०४ जिसे पुनः प्रथम पिंडमान २ से गुणा किया और यहां भी कुछ नहीं घटाया, क्योंकि, यहां भी दूसरी प्रकृति ग्रहण की है। अतएव उक्त विकल्पकी क्रमिक संख्या १०४×२=२०८ वीं हुई।

इस प्रकार जहां भी अनेक पिंडान्तर्गत विशेषोंके विकल्पसे अनेक भंग बनते हैं वहां उनकी संख्यादि ज्ञात की जा सकती है। नीचे दो यंत्र दिये जाते हैं जिनसे किसी भी भंगसंख्याके आलापका व किसी भी आलापसे उसकी भंगसंख्याका ज्ञान पांचों अक्षोंके कोष्ठकोंमें दिये हुए अंकोंके जोड़नेसे प्राप्त किया जा सकता है—

प्रथम प्रस्तार (गाथा २०) की अपेक्षा भंगोंके जाननेका यंत्र

सुभग १	दुर्भग २				
आदेय ०	अनादेय २				
यशकीर्ति ०	अयशकीर्ति ४				
समचतु. ०	न्यग्रोध. ८	स्वाति. १६	कुब्जक. २४	वामन. ३२	हुण्डक. ४०
वज्रवृषभ. ०	वज्रनाराच. ४८	नाराच. ९६	अर्धनाराच. १४४	कीलित. १९२	असंप्राप्ति. २४०

सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स अपज्जत्तमवणिय परघादो दोण्हं विहायगदीण-मेक्कदरे च पक्खित्ते अट्ठावीसाए ट्ठाणं होदि। भंगा पंच सदा छावत्तरा होंति |५७६|। आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासे पक्खित्ते एगुणतीसाए ट्ठाणं होदि। भंगा तत्तिया चेव |५७६|। भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स सुस्सर-दुस्सरेसु एक्कदरे पक्खित्ते तीसाए ट्ठाणं होदि। भंगा एक्कारस सदाणि बावण्णाहियाणि |११५२|।

द्वितीय प्रस्तार (गाथा २१) की अपेक्षा भंगोंके जाननेका यंत्र

वज्रवृषभ. १	वज्रनाराच. २	नाराच. ३	अर्धनाराच. ४	कीलित ५	असंप्राप्त. ६
समचतु. ०	न्यग्रोध. ६	स्वाति. १२	कुब्जक. १८	वामन. २४	हुण्डक. ३०
यशकीर्ति ०	अयशकीर्ति ३६				
आदेय ०	अनादेय ७२				
सुभग ०	दुर्भग १४४				

शरीरपर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पूर्वोक्त छब्बीस प्रकृतियों-वाले उदयस्थानमेंसे अपर्याप्तको निकालकर व परघात और दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, इन दो प्रकृतियोंके मिला देनेपर अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहां भंग (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन तथा प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, इन विकल्पोंके भेदसे) पांच सौ छयत्तर होते हैं (५७६)।

आनप्राणपर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास मिलादेनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहां भंग उतने ही अर्थात् पांच सौ छयत्तर ही हैं (५७६)।

भाषापर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंमें सुस्वर और दुस्वरमेंसे कोई एक मिलादेनेसे तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है। यहां (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति और सुस्वर-दुस्वर, इनके विकल्पसे) भंग ग्यारह सौ बावन हो जाते हैं (११५२)।

उज्जोवुदयसंजुत्तपंचिंदियतिरिक्खस्स एक्कवीस-छव्वीसुदयट्ठाणाइं पुव्वं व वत्तव्वाइं। पुणो सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स परघादुज्जोवेसु पसत्थापसत्थाण विहायगदीणमेक्कदरे च पविट्ठेसु एगुणतीसाए ट्ठाणं होदि। भंगा पंच सदा छावत्तरा |५७६|। पुणो एदेसु पढमेगुणतीसाए भंगेसु पक्खित्तेसु सव्वभंगपमाणं एक्कारस सदाणि बावण्णाणि होदि |११५२|। आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासे पक्खित्ते तीसाए ट्ठाणं होदि। एत्थ पंच सदा छावत्तरि भंगा |५७६|। पुणो एदेसु पढमतीसाए भंगेसु छुद्धेसु सत्तारस सयाइमट्ठवीसाइं तीसाए सव्वभंगा होंति |१७२८|। भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरे छुद्धे एक्कत्तीसाए ट्ठाणं होदि। भंगा एक्कारस सदाणि बावण्णाणि |११५२|। पंचिंदियतिरिक्खाणं सव्वभंगसमासो

उद्योतोदयके सहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचके इक्कीस और छव्वीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान पूर्वोक्त प्रकारसे ही कहना चाहिये। पुनः शरीरपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचके उक्त छव्वीस प्रकृतियोंमें परघात, उद्योत, और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, इस प्रकार तीन प्रकृतियां मिलादेनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहां (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन, और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, इनके विकल्पसे) भंग पांच सौ छयत्तर होते हैं (५७६)। पुनः इन भंगोंको पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान सम्बन्धी भंगोंमें मिलादेनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानोंके सब भंगोंका योग (५७६+५७६=) ११५२ ग्यारह सौ बावन हो जाता है।

आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास मिलादेनेपर तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है। यहां भंग (पूर्वोक्त प्रकारसे) पांच सौ छयत्तर हैं (५७६)। पुनः इन भंगोंमें पूर्वोक्त तीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान सम्बन्धी ११५२ भंग मिलादेनेपर तीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थान सम्बन्धी सब भंगोंका योग (११५२+५७६=) १७२८ सत्तरह सौ अट्ठाईस होता है।

भाषापर्याप्तिको पूर्ण करलेनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पूर्वोक्त तीस प्रकृतियोंमें सुस्वर और दुस्वर इनमेंसे कोई एक मिलादेनेपर इकतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहां भंग (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति और सुस्वर-दुस्वरके विकल्पोंसे) ग्यारह सौ बावन होते हैं (११५२)।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समस्त भंगोंका योग चार हजार नौ सौ छह होता

चत्तारि सहस्साइं णव सयाइं छच्चेव होइ | ४९०६ |। तिरिक्खाणं सव्वभंगसमासो पंच सहस्साणि अट्ठूणाणि | ४९९२ |। पंचिंदियतिरिक्खुदयट्ठाणाणं सामित्तं कालो च पुव्वं व वत्तव्वो। णवरि तीसेक्कत्तीसाणं कालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तूणाणि तिण्णि पलिदोवमाणि।

मणुस्साणं[1] सामण्णेण एक्कारसुदयट्ठाणाणि वीस-एक्कवीस-पंचवीस-छव्वीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगूणतीस-तीस-एक्कत्तीस-णव-अट्ठ होंति। २०।२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८। सामण्णमणुस्सा विसेसमणुस्सा विसेसविसेस-मणुस्सा त्ति तिविहा मणुस्सा। सामण्णमणुस्साणं भण्णमाणे तत्थ इमं एक्कवीसाए ट्ठाणं— मणुस्सगदि-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुस्सगदि-

है (४९०६)।

	उद्योत रहित		उद्योत सहित	
२१ प्रकृतियोंवाले उदयस्थान	९		९	पूर्व भंगोंके ही समान होनेसे इन्हें नहीं जोड़ा गया।
२६ ,, ,,	२८९		२८९	
२८ ,, ,,	५७६		×	
२९ ,, ,,	५७६	+	५७६	
३० ,, ,,	११५२	+	५७६	
३१ ,, ,,	×		११५२	
	२६०२	+	२३०४ = ४९०६	

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके उदयस्थानोंके स्वामित्व और कालका कथन पूर्वानुसार अर्थात् जैसा नारकियोंके उदयस्थानोंकी प्ररूपणामें कर आये हैं उसी प्रकार करना चाहिये। यहां विशेषता इतनी है कि तीस और इकतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम है।

मनुष्योंके सामान्यतः वीस, इक्कीस, पच्चीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, नौ और आठ प्रकृतियोंवाले ग्यारह स्थान होते हैं। २०।२१।२५।२६ २७।२८।२९।३०।३१।९।८।

मनुष्य तीन प्रकारके हैं— सामान्य मनुष्य, विशेष मनुष्य और विशेष-विशेष मनुष्य। सामान्य मनुष्योंके कथनमें यह प्रथम इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान है— मनुष्यगति[1], पंचेन्द्रिय जाति[2], तैजस[3] और कार्मण[4] शरीर, वर्ण[5], गंध, रस[7], स्पर्श[8], मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघुक[10], त्रस[11], बादर[12], पर्याप्त और अपर्याप्तमेंसे

१ प्रतिषु ' मणुस्साणि ' इति पाठः।

पाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुगलहुग-तस-बादर पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिराथिरं सुभासुभं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जसकित्ति-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामं च एदासिं पयडीणमेक्कमुदयट्ठाणं। पज्जत्तउदएण अट्ठ भंगा, अपज्जत्त-उदएण एक्को, तेसिं समासो णव |९|। गहिदसरीरस्स मणुस्साणुपुव्विमवणेदूण ओरालियसरीर-छसंठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरअंगोवंगं छण्णं संघडणाणमेक्कदरं उवघादं पत्तेयसरीरं च घेत्तूण पक्खित्ते छव्वीसाए ट्ठाणं होदि। भंगा एक्कारसूणतिसदमेत्ता |२८९|। सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स अपज्जत्तमवणिय परघाद पसत्थापसत्थविहाय-गदीणमेक्कदरं च घेत्तूण पक्खित्ते अट्ठावीसाए ट्ठाणं होदि। भंगा चउवीसूणछसदमेत्ता |५७६|। आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासं घेत्तूण पक्खित्ते एगुणतीसाए ट्ठाणं होदि।

कोई एक[१], स्थिर[१४], अस्थिर[१५], शुभ[१], अशुभ[१६], सुभग और दुर्भगमेंसे कोई एक[१८], आदेय और अनादेयमेंसे कोई एक[१], यशकीर्ति और अयशकीर्तिमेंसे कोई एक[०] और निर्माण[१], इन प्रकृतियोंका एक उदयस्थान होता है। यहां पर्याप्तोदय सहित (सुभग-दुर्भग, आदेय अनादेय और यशकीर्ति-अयशकीर्तिके विकल्पोंसे) आठ भंग होते हैं। अपर्याप्तोदय सहित एक ही भंग है (क्योंकि सुभग, आदेय और यशकीर्तिके साथ अपर्याप्तका उदय नहीं होता)। पर्याप्त और अपर्याप्तके भंगोंका योग हुआ नौ (८ + १ = ९)

शरीर ग्रहण करलेनेवाले मनुष्यके पूर्वोक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आनुपूर्वीको छोड़कर औदारिकशरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहननोंमेंसे कोई एक, उपघात और प्रत्येकशरीर, इस प्रकार छह प्रकृतियां मिलादेनेपर छव्वीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहां भंग (पर्याप्तके उदय सहित सुभग-दुर्भग, आदेय अनादेय, यशकीर्ति अयशकीर्ति, छह संस्थान और छह संहननके विकल्पोंसे २×२×२×६×६=२८८ और अपर्याप्तोदय सहित भंग १, इस प्रकार) दो सौ नवासी होते हैं (२८९)।

शरीरपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले मनुष्यके पूर्वोक्त छव्वीस प्रकृतियोंमेंसे अपर्याप्तको छोड़कर परघात तथा प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, ऐसी दो प्रकृतियोंको मिलादेनेसे अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है। यहां भंग (सुभग दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, इनके विकल्पोंसे २×२×२×६×६×२=) ५७६ पांच सौ छयत्तर या चौवीस कम छह सौ होते हैं।

आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले मनुष्यके पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियोंमें उच्छ्वासको लेकर मिलादेनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है। यहां भंग

भंगा तत्तिया चेव | ५७६ | । भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स सुस्सरदुस्सराणमेक्कदरे पक्खित्ते तीसाए ट्ठाणं होदि । भंगा अट्ठेदालीसूणबारससदमेत्ता[1] | ११५२ | ।

संपहि आहारसरीरोदइल्लाणं विसेसमणुस्साणं भण्णमाणे तेसिं पंचवीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगुणतीस त्ति चत्तारि उदयट्ठाणाणि । २५ । २७ । २८ । २९ । मणुस्सगदि-पंचिंदियजादि-आहार-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-आहारसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-तस-बादर पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ सुभग-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामाणि एदासिं पणुवीसपयडीणमेक्कमुदयट्ठाणं । भंगो एक्को | १ | । सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स परघाद-पसत्थविहायगदीसु पक्खित्तासु सत्तावीसाए ट्ठाणं होदि । भंगो एक्को | १ | । आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासे संछुद्धे अट्ठावीसाए ट्ठाणं होदि । भंगो एक्को | १ | । भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स

पूर्वोक्त प्रकार पांच सौ छयत्तर ही हैं (५७६)।

भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले मनुष्यके पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियोंमें सुस्वर और दुस्वरमेंसे कोई एक मिलादेनेपर तीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां भंग (पूर्वोक्त विकल्पोंके अतिरिक्त सुस्वर-दुस्वरके विकल्पमें २×२×२×६×६×२×२=) ११५२ ग्यारह सौ बावन या अड़तालीस कम बारह सौ हैं ।

अब आहारकशरीरके उदयवाले विशेष मनुष्योंके उदयस्थान कहते हैं । उनके पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियोंवाले चार उदयस्थान होते हैं । २५ । २७ । २८ । २९ । मनुष्यगति[1], पंचेन्द्रिय जाति[2], आहारक[3], तैजस[4] और कार्मण[5] शरीर, समचतुरस्रसंस्थान[6], आहारकशरीरांगोपांग[7], वर्ण[8], गंध[9], रस[10], स्पर्श[11], अगुरुलघुक[12], उपघात[13], त्रस[14], बादर[15], पर्याप्त[16], प्रत्येकशरीर[17], स्थिर[18], अस्थिर[19], शुभ[20], अशुभ[21], सुभग[22], आदेय[23], यशकीर्ति[24] और निर्माण[25], इन पच्चीस प्रकृतियोंका एक उदयस्थान होता है । यहां भंग एक ही है (१)।

शरीरपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले विशेष मनुष्यके पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियोंमें परघात और प्रशस्तविहायोगति मिलादेनेसे सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है । यहां भंग एक है (१)।

आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले विशेष मनुष्यके पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास मिलादेनेसे अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां भंग एक है (१)।

भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले विशेष मनुष्यके पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियोंमें

१ सण्णिम्मि मणुसम्मि य ओघेक्कदरं तु केवले वज्जं । सुभगादेज्जजसाणि य तित्थजुदे सत्थमेदीदि ॥ गो. क. ६०१.

सुस्सरे पक्खित्ते एगूणतीसाए ट्ठाणं होदि । भंगो एक्को | १ |। सव्वभंगसमासो चत्तारि[1] | ४ |।

विसेसविसेसमणुस्साणं पणुवीसं मोत्तूण दस उदयट्ठाणाणि होंति । २० । २१ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । मणुस्सगदि-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-तस-बादर-पज्जत्त-थिराथिर सुभासुभ-सुभग-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामाणि एदासिं वीसण्हं पयडीणं पदरलोकपूरणगद-सजोगिकेवलिस्स उदओ होदि । भंगो एक्को | १ |। जदि तित्थयरो तो तित्थयरोदएण एक्कवीसाए ट्ठाणं होदि। भंगो एक्को। कवाडं गदस्स एदाओ चेव पयडीओ। णवरि ओरालियसरीर-समचउरससंठाणं। तित्थयरुदयविरहियाणं छण्णं संठाणाणमेक्कदरं ओरा-लियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-उवघाद-पत्तेयसरीरं च घेत्तूण छव्वीसाए वा सत्त-

सुस्वर मिलादेनेपर उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । यहां भंग एक है (१)। इस प्रकार विशेष मनुष्यके चारों उदयस्थानों सम्बन्धी सब भंगोंका योग चार हुआ (४)।

विशेष-विशेष मनुष्योंके पूर्वोक्त ग्यारह उदयस्थानोंमेंसे पच्चीस प्रकृतियोंवाले एक उदयस्थानको छोड़कर शेष दश उदयस्थान होते हैं। २०। २१। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ९। ८। मनुष्यगति[1], पंचेन्द्रियजाति[2], तैजस[3] और कार्मणशरीर[4], वर्ण[5], गंध[6], रस[7], स्पर्श[8], अगुरुलघु[9], त्रस[10], बादर[11], पर्याप्त[12], स्थिर[13], अस्थिर[14], शुभ[15], अशुभ[16], सुभग[17], आदेय[18], यशकीर्ति[19] और निर्माण[20] इन बीस नामकर्म प्रकृतियोंका उदय प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले सयोगिकेवलीके होता है। यहां भंग एक है (१)।

यदि वह सयोगिकेवली तीर्थंकर हो तो पूर्वोक्त बीस प्रकृतियोंके अतिरिक्त तीर्थंकर प्रकृतिके उदय सहित इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है। भंग एक (१)।

कपाट समुद्घात करनेवाले विशेषविशेष मनुष्यके भी ये ही प्रकृतियां उदयमें आती हैं, विशेषता केवल यह है कि उनके औदारिकशरीर और समचतुरस्रसंस्थान होता है। तीर्थंकर प्रकृतिके उदयसे रहित जीवोंके छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिक शरीरांगोपांग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन प्रकृतियोंके ग्रहण करलेनेसे छव्वीस या सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान हो जाता है। यहां भंग छव्वीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानमें छहों संस्थानोंके विकल्पसे छह होंगे और

१ देवाहारे सत्थं कालवियप्पेसु भंगमाणेज्जो। वोच्छिण्ण जाणित्ता गुणपडिवण्णेसु सव्वेसु॥ गो. क. ६०२.

वीसाए वा ट्ठाणं होदि। भंगा दोण्हं पि छ एक्को। ६। १। तित्थयरुदएण वा अणुदएण वा दंडगदस्स परघादं पसत्थापसत्थविहायगदीणमेक्कदरं च घेत्तूण पक्खित्ते अट्ठावीसाए वा एगुणतीसाए वा ठाणं होदि। णवरि तित्थयराणं पसत्थविहायगदी एक्का चेव उप्पज्जदि[1]। भंगा अट्ठावीसाए बारस, एगुणतीसाए एक्को। १२। १। आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासे पक्खित्ते तीसाए एगुणतीसाए वा ठाणं होदि। भंगा एगुणतीसाए बारस, तीसाए एक्को। १२। १। भासापज्जत्तीए पज्जत्त-यदस्स सुस्सर-दुस्सरेसु एक्कदरम्मि पविट्ठे तीसाए एक्कतीसाए वा ट्ठाणं होदि। भंगा तीसाए चउवीस |२४|। एक्कत्तीसाए एक्को, तित्थयराणं दुस्सर-अप्पसत्थ-विहायगदीणं उदयाभावा |१|।

सत्ताईस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानमें केवल एक होगा। ६। १।

तीर्थंकर प्रकृतिके उदयसे रहित पूर्वोक्त छव्वीस प्रकृतियोंमें परघात और प्रशस्त व अप्रशस्त विहायोगतिमेंसे कोई एक लेकर मिलादेनेसे अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला तथा तीर्थंकर प्रकृतिके उदय सहित सत्ताईस प्रकृतियोंमें उक्त दो प्रकृतियां मिलादेनेसे उनतीस प्रकृतियोंवाला दंडसमुद्घातगत केवलीका उदयस्थान होता है। विशेषता यह है कि तीर्थंकरोंके केवल एक प्रशस्तविहायोगति ही उदयमें आती है। इस प्रकार अट्ठाईस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानके (छह संस्थान और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगतिके विकल्पोंसे) बारह भंग होते हैं, और उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका विकल्प रहित केवल एक ही भंग है। (१२। १।)।

पूर्वोक्त विशेष-विशेष मनुष्यके आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेपर उक्त अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास मिलादेनेपर क्रमशः उनतीस व तीस प्रकृतियों-वाला उदयस्थान होता है। इनके भंग पूर्वोक्तानुसार उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानके बारह और तीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका केवल एक है। (१२। १)।

उसी विशेष-विशेष मनुष्यके भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेपर पूर्वोक्त उनतीस व तीस प्रकृतियोंमें सुस्वर और दुस्वरमेंसे कोई एक मिलादेनेसे क्रमशः तीस और इकतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है। तीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानके भंग (छह संस्थान, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति और सुस्वर-दुस्वरके विकल्पोंसे) चौवीस होते हैं (२४)। तथा इकतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका भंग केवल मात्र एक होता है (१) क्योंकि, तीर्थंकरोंके दुस्वर और अप्रशस्त विहायोगति (तथा प्रथम संस्थानको छोड़ शेष पांच संस्थानों) का उदय नहीं होता।

१ मप्रतौ 'उज्जदि' इति पाठः।

एक्कत्तीसपयडीणं णामणिद्देसो कीरदे— मणुस्सगदि[1]-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससरीरसंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयराणि त्ति एदाओ एक्कत्तीसपयडीओ उदेंति तित्थयरस्स[2]। एदस्स कालो जहण्णेण वासपुधत्तं। कुदो? तित्थयरोदइल्लसजोगिजिणविहारकालस्स सव्वजहण्णस्स वि वासपुधत्तादो हेट्ठदो अणुवलंभा। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तब्भहियगब्भादिअट्ठवस्सेणूणा पुव्वकोडी। सेसाणं ट्ठाणाणं कालो जाणिदूण वत्तव्वो।

अजोगिभयवंतस्स भणमाणे— मणुस्सगदि-पंचिंदियजादि-तस-बादर-पज्जत्त-सुभग-आदेज्ज-जसकित्ति-तित्थयरमिदि एदाओ णव। भंगो एक्को |१|। तित्थयर-विरहिदाओ अट्ठ। भंगो एक्को |१|। मणुस्साणं सव्वभंगसमासो बत्तीसूणसत्तावीस-

उन तीर्थंकरोंके उदयमें आनेवाली इकतीस प्रकृतियोंका नामनिर्देश करते हैं— मनुष्यगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर[५], समचतुरस्र-संस्थान[६], औदारिकशरीरांगोपांग[७], वज्रऋषभनाराचसंहनन[८], वर्ण, गंध[१०], रस[११], स्पर्श[१२], अगुरुकलघु[१३], उपघात[१४], परघात[१५], उच्छ्वास[१६], प्रशस्तविहायोगति[१७], त्रस[१८], बादर[१९], पर्याप्त[२०], प्रत्येकशरीर[२१], स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग[२६], सुस्वर[२७], आदेय[२८], यशकीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर[३१], ये इकतीस प्रकृतियां तीर्थंकरके उदयमें आती हैं। इस उदयस्थानका जघन्यकाल वर्षपृथक्त्व है, क्योंकि, तीर्थंकर प्रकृतिके उदयवाले सयोगि जिनका विहारकाल कमसे कम होनेपर भी वर्षपृथक्त्वसे नीचे नहीं पाया जाता। इस उदयस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक गर्भसे लेकर आठ वर्ष हीन एक पूर्वकोटि है। शेष उदयस्थानोंका काल जानकर कहना चाहिये।

अब अयोगि भगवान्के उदयस्थान कहते हैं— मनुष्यगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], त्रस, बादर[४], पर्याप्त[५], सुभग, आदेय[७], यशकीर्ति[८] और तीर्थंकर, ये नव प्रकृतियां ही अयोगिकेवलीके उदय होती हैं। यहां भंग एक है (१)। इन्हीं नौ प्रकृतियोंमेंसे तीर्थंकर प्रकृतिसे रहित होनेपर आठ प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है। यहां भी भंग एक है (१)।

मनुष्योंके उदयस्थानों संबंधी समस्त भंगोंका योग बत्तीस कम सत्ताईस सौ

१ प्रतिषु 'मणुसगदीए' इति पाठः।

२ पं. सं भाग १, पृ. २०४.

३ गयजोगस्स य बारे तदियाउग-गोद इदि विहीणेसु। णामस्स य णव उदया अट्ठेव य तित्थहीणेसु॥ गो. क. ५९८.

सदमेत्तो | २६६८ | ।

देवगदीए एक्कवीस-पंचवीस-सत्तावीस-अट्ठावीस-एगुणतीसउदयट्ठाणाणि होंति । २१ । २५ । २७। २८ । २९ । तत्थ इमं एक्कवीसाए उदयट्ठाणं- देवगदि-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुअ-तस-बादर-पज्जत्त-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणमिदि एदासिं पयडीणं एक्क-ट्ठाणं । भंगो एक्को | १ | । सरीरं गहिदे आणुपुव्विमवणेदूण वेउव्वियसरीर-समचउ-रससंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-उवघाद-पत्तेयसरीरेसु पविट्ठेसु पणुवीसाए ट्ठाणं होदि । भंगो एक्को | १ | । सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स परघाद-पसत्थविहायगदीसु पक्खित्तासु

अर्थात् छब्बीस सौ अड़सठ होता है (२६६८)।

			सामान्य	विशेष	वि. वि.
१–२०	प्रकृतियोंवाले	उदयस्थान	×	×	१
२–२१	,,	,,	९	×	१
३–२५	,,	,,	×	१	×
४–२६	,,	,,	२८९	×	+ ६
५–२७	,,	,,	×	१	+ १
६–२८	,,	,,	५७६ +	१	+ १२
७–२९	,,	,,	५७६ +	१	+ १+१२
८–३०	,,	,,	११५२	×	+ १+२४
९–३१	,,	,,	×	×	१
१०—९	,,	,,	×	×	१
११—८	,,	,,	×	×	१
			२६०२ +	४ +	६२=२६६८

देवगतिमें इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियोंवाले पांच उदयस्थान होते हैं । उनमें इक्कीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान इस प्रकार है — देवगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], तैजस[३] और कार्मण[४] शरीर, वर्ण[५], गंध[६], रस[७], स्पर्श[८], देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[९], अगुरुलघुक[१०], त्रस[११], बादर[१२], पर्याप्त[१३], स्थिर[१४], अस्थिर[१५], शुभ[१६], अशुभ[१७], सुभग[१८], आदेय[१९], यशकीर्ति[२०] और निर्माण[२१] इन इक्कीस प्रकृतियोंका एक उदयस्थान होता है । भंग एक है (१) ।

शरीर ग्रहण करलेनेपर देवगतिमें आनुपूर्वीको छोड़कर व वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन पांच प्रकृतियोंको मिलादेनेपर पच्चीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । भंग एक है (१) ।

शरीरपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले देवके पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियोंमें परघात और

सत्तावीसाए ट्ठाणं होदि । भंगो एक्को |१|। आणापाणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स उस्सासो पविट्ठो । ताधे अट्ठावीसाए ट्ठाणं । भंगो एक्को |१|। भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स सुस्सरे पविट्ठे एगुणतीसाए ट्ठाणं होदि । भंगो एक्को |१|। तं केवचिरं ? भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स पढमसमयप्पहुडि जाव आउअचरिमसमओ त्ति। तस्स पमाणं जहण्णेण अंतोमुहुत्तूणदसवस्ससहस्साणि, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तूणतेत्तीससागरोवमाणि। एत्थ सव्वभंगसमासो पंच |५| । चदुगदिभंगसमासो सत्तसहस्सछस्सदसत्तरिपमाणं होदि |७६७०|।

तम्हा णिरयगदि-तिरिक्खगदि-मणुस्सगदि-देवगदीणमुदएणेव णेरइओ तिरिक्खो

....

प्रशस्तविहायोगति, इन दोको मिलादेनेपर सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है। भंग एक है (१)।

आनप्राणपर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले देवके पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकृतियोंमें उच्छ्वास और प्रविष्ट हो जाता है । उस समय अट्ठाईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है । भंग एक है (१)।

भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले देवके पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियोंमें सुस्वरके प्रविष्ट हो जानेपर उनतीस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान होता है। भंग एक है (१)।

शंका—इस उनतीस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानका काल कितना है ?

समाधान—भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले देवके प्रथम समयसे लेकर आयुका अन्तिम समय आने तक इस उदयस्थानका काल है । उस कालका प्रमाण कमसे कम अन्तर्मुहूर्तसे हीन दश हजार वर्ष और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपमप्रमाण है ।

देवोंके पांचों उदयस्थानोंके समस्त भंगोंका योग पांच हुआ (५)।

चारों गतियोंके उदयस्थानोंके भंगोंका योग हुआ सात हजार छह सौ सत्तर (७६७०)।

गति	उदयस्थान	भंग
नरक	५	५
तिर्यंच	९	३२+५४+४९०६=४९९२
मनुष्य	११	२६६८
देव	५	५
		७६७०

इस प्रकार चूंकि एक एक गतिके साथ अनेक कर्मप्रकृतियोंका उदय पाया जाता है, अतएव केवल नरकगतिके उदयसे नारकी होता है, तिर्यंचगतिके उदयसे

मणुस्सो देवो होदि त्ति ण घडदे ? विसमो उवण्णासो । कुदो ? णिरयगदिआदिचदुगदि-उदयाणं व सेसकम्मोदयाणं तत्थ अविणाभावाणुवलंभादो। जिस्से[1] पयडीए उप्पण्णपढम-समयप्पहुडि जाव चरिमसमओ त्ति णियमेण उदओ होदूण अप्पिदगइं मोत्तूण अण्णत्थ उदयाभावणियमो दिस्सइ तिस्से उदएण णेरइओ तिरिक्खो मणुस्सो देवो त्ति णिद्देसो कीरदे अण्णहा अणवट्ठाणादो ।

सिद्धिगदीए सिद्धो णाम कधं भवदि ? ॥ १२ ॥

एत्थ वि पुव्वं व णय-णिक्खेवे अस्सिदूण चालणा कायव्वा उदयादिपंचभावे वा।

खइयाए लद्धीए ॥ १३ ॥

कम्माणं णिम्मूलखएणुप्पण्णपरिणामो खओ णाम, तस्स लद्धीए खइयलद्धीए सिद्धो होदि । अण्णे वि सत्त पमेयत्तादओ तत्थ परिणामा अत्थि, तेहि किण्ण सिद्धो होदि ?

तिर्यंच, मनुष्यगतिके उदयसे मनुष्य और देवगतिके उदयसे देव यह कथन घटित नहीं होता ?

समाधान— यह उपन्यास विषम है, क्योंकि, नारक आदि चार पर्यायोंके प्राप्त होनेमें जिस प्रकार नरकगति आदि चार प्रकृतियोंके उदयका क्रमशः अविनाभावी सम्बन्ध है वैसा शेष कर्मोंके उदयोंका वहां अविनाभावी सम्बन्ध नहीं पाया जाता। उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर पर्यायके अन्तिम समय तक जिस प्रकृतिका नियमसे उदय होकर विवक्षित गतिके सिवाय अन्यत्र उदय न होनेका नियम पाया जाता है, उसी कर्मप्रकृतिके उदयसे नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव होता है, ऐसा निर्देश किया गया है । अन्यथा अनवस्था उत्पन्न हो जायगी ।

सिद्ध गतिमें जीव सिद्ध किस प्रकार होता है ? ॥ १२ ॥

यहां भी पूर्वानुसार नय और निक्षेपोंका आश्रय लेकर चालना करना चाहिये, अथवा उदय आदि पांच भावोंके आश्रयसे चालना करना चाहिये।

क्षायिक लब्धिसे जीव सिद्ध होता है ॥ १३ ॥

कर्मोंके निर्मूल क्षयसे उत्पन्न हुए परिणामको क्षय कहते हैं और उसीकी लब्धि अर्थात् क्षायिक लब्धिके द्वारा सिद्ध होता है।

शंका—सिद्ध गतिमें सत्व, प्रमेयत्व आदि अन्य परिणाम भी तो होते हैं, उनसे सिद्ध होता है, ऐसा क्यों नहीं कहते ?

---

१ प्रतिपु ' तिस्से ' इति पाठ ।

ण, जदि ते सिद्धत्तस्स कारणं तो सव्वे जीवा सिद्धा होज्ज, तेसिं सव्वजीवेसु संभवो-वलंभा। तम्हा खइयाए लद्धीए सिद्धो होदि त्ति घेत्तव्वं।

इंदियाणुवादेण एइंदिओ बीइंदिओ तीइंदिओ चउरिंदिओ पंचिंदिओ णाम कधं भवदि? ॥ १४ ॥

एत्थ णामादिणिक्खेवे णेगमादिणए ओदइयादिभावे च अस्सिदूण पुव्वं व इंदियस्स चालणा कायव्वा।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ १५ ॥

इंदस्स लिंगमिंदियं। इंदो जीवो, तस्स लिंगं जाणावयं सूचयं जं तमिंदियमिदि वुत्तं होदि। कधमेइंदियत्तं खओवसमियं? उच्चदे—पासिंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण चक्खु-सोद-घाण-जिब्भिंदियावरणाणं देसघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण तेसिं सव्वघादिफद्दयाणमुदएण जो उप्पण्णो जीवपरिणामो सो खओवसमिओ वुच्चदे। कुदो? पुव्वुत्ताणं फद्दयाणं खओवसमेहि

समाधान—नहीं, क्योंकि, यदि सत्व-प्रमेयत्व आदि सिद्धत्वके कारण हैं, तब तो सभी जीव सिद्ध हो जावेंगे, क्योंकि, उनका अस्तित्व तो सभी जीवोंमें पाया जाता है। इसलिये क्षायिक लब्धिसे सिद्ध होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय जीव कैसे होता है? ॥ १४ ॥

यहांपर नामादि निक्षेपों, नैगमादि नयों और औदायिकादि भावोंका आश्रय लेकर पूर्वानुसार इन्द्रियकी चालना करना चाहिये।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव सिद्ध होता है ॥ १५ ॥

इन्द्रके चिह्नको इन्द्रिय कहते हैं। तात्पर्य यह कि इन्द्र जीव है और उसका जो चिह्न अर्थात् ज्ञापक या सूचक है वह है इन्द्रिय।

शंका—एकेन्द्रियत्व क्षायोपशमिक किस प्रकार होता है?

समाधान—कहते हैं। स्पर्शेन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे, उसीके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; चक्षु, श्रोत्र, घ्राण और जिव्हा इन्द्रियावरण कर्मोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हीं कर्मोंके सत्त्वोपशमसे तथा सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे जो जीवपरिणाम उत्पन्न होता है उसे क्षयोपशम कहते हैं, क्योंकि, वह भाव पूर्वोक्त स्पर्धकोंके क्षय और उपशम भावोंसे ही उत्पन्न होता है। इसी जीव-

उप्पण्णत्तादो। तस्स जीवपरिणामस्स एइंदियमिदि सण्णा। एदेण एक्केण इंदिएण जो जाणदि पस्सदि सेवदि जीवो सो एइंदिओ णाम।

सव्वघादी-देसघादित्तं णाम किं? वुच्चदे—दुविहाणि कम्माणि घादिकम्माणि अघादिकम्माणि चेव। णाणावरण-दंसणावरण-मोहणीय-अंतराइयाणि घादिकम्माणि; वेद-णीय-आउ-णाम-गोदाणि अघादिकम्माणि। णाणावरणादीणं कधं घादिववदेसो? ण, केवलणाण-दंसण-सम्मत्त-चरित्त-वीरियाणमणेयभेयभिण्णाणं जीवगुणाणं विरोहित्तणेण तेसिं घादिववदेसादो। सेसकम्माणं घादिववदेसो किण्ण होदि? ण, तेसिं जीवगुणविणासण-सत्तीए अभावा। कुदो? ण आउअं जीवगुणविणासयं, तस्स भवधारणम्मि वावारादो। ण गोदं जीवगुणविणासयं, तस्स णीचुच्चकुलसमुप्पायणम्मि वावारादो। ण खेत्त-पोग्गलविवाइणामकम्माइं पि, तेसिं खेत्तादिसु पडिबद्धाणमण्णत्थ वावारविरोहादो।

परिणामकी एकेन्द्रिय संज्ञा है।

इस एक इन्द्रियके द्वारा जो जानता है, देखता है, सेवन करता है वह जीव एकेन्द्रिय होता है।

शंका— सर्वघातित्व और देशघातित्व किसे कहते हैं?

समाधान—कहते हैं। कर्म दो प्रकारके हैं, घातिया कर्म और अघातिया कर्म। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय, ये चार घातिया कर्म हैं। तथा वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, ये चार अघातिया कर्म हैं।

शंका—ज्ञानावरण आदिको घातिया कर्म क्यों नाम दिया है?

समाधान—क्योंकि, केवलज्ञान, केवलदर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र और वीर्य अर्थात् आत्माकी शक्ति रूप जो अनेक भेदोंमें भिन्न जीवगुण हैं उनके उक्त कर्म विरोधी अर्थात् घातक होते हैं और इसीलिये वे घातिया कर्म कहलाते हैं।

शंका—(जीवगुणोंके विरोधक तो शेष कर्म भी होते हैं, अतएव) शेष कर्मोंको भी घातिया कर्म क्यों नहीं कहते?

समाधान—शेष कर्मोंको घातिया नहीं कहते, क्योंकि, उनमें जीवके गुणोंका विनाश करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती। जैसे, आयु कर्म जीवके गुणोंका विनाशक नहीं है, क्योंकि, उसका काम तो भव धारण करानेका है। गोत्र भी जीवगुणविनाशक नहीं है, क्योंकि, उसका काम नीच और उच्च कुल उत्पन्न करना है। क्षेत्रविपाकी और पुद्गलविपाकी नामकर्म भी जीवगुणविनाशक नहीं हैं, क्योंकि, उनका सम्बन्ध यथायोग्य क्षेत्र और पुद्गलोंसे होनेके कारण अन्यत्र उनका व्यापार माननेमें विरोध आता है।

जीवविवाइणामकम्मवेयणियाणं[1] घादिकम्मववएसो किण्ण होदि ? ण, जीवस्स अणप्पभूद-सुभग-दुभगादिपज्जयसमुप्पायणे वावदाणं जीवगुणविणासयत्तविरोहादो। जीवस्स सुहं विणासिय दुक्खुप्पाययं असादवेदणीयं घादिववएसं किण्ण लहदे ? ण, तस्स घादिकम्मसहायस्स घादिकम्मेहि विणा सकज्जकरणे असमत्थस्स सदो तत्थ पउत्ती णत्थि त्ति जाणावणट्ठं तव्ववएसाकरणादो।

तत्थ घादीणमणुभागो दुविहो सव्वघादओ देसघादओ त्ति। वुत्तं च—

सव्वावरणीयं पुण उक्कस्सं होदि दारुगसमाणे ॥
हेट्ठा देसावरणं सव्वावरणं च उवरिल्लं[2] ॥ १४ ॥

....

शंका—जीवविपाकी नामकर्म एवं वेदनीय कर्मोंको घातिया कर्म क्यों नहीं माना ?

समाधान—नहीं माना, क्योंकि, उनका काम अनात्मभूत सुभग, दुर्भग आदि जीवकी पर्यायें उत्पन्न करना है, जिससे उन्हें जीवगुणविनाशक माननेमें विरोध उत्पन्न होता है।

शंका—जीवके सुखको नष्ट करके दुख उत्पन्न करनेवाले असाता वेदनीयको घातिया कर्म नाम क्यों नहीं दिया ?

समाधान—नहीं दिया, क्योंकि, वह घातिया कर्मोंका सहायकमात्र है और घातिया कर्मोंके विना अपना कार्य करनेमें असमर्थ तथा उसमें प्रवृत्ति-रहित है। इसी बातको बतलानेके लिये असाता वेदनीयको घातिया कर्म नहीं कहा।

इन कर्मोंमें घातिया कर्मोंका अनुभाग दो प्रकारका है— सर्वघातक और देशघातक। कहा भी है—

घातिया कर्मोंकी जो अनुभागशक्ति लता, दारु, अस्थि और शैल समान कही गयी है उसमें दारुतुल्यसे ऊपर अस्थि और शैल तुल्य भागोंमें तो उत्कृष्ट सर्वावरणीय शक्ति पाई जाती है, किन्तु दारुसम भागके नीचले अनन्तिम भागमें (व उससे नीचे सब लतातुल्य भागमें) देशावरण शक्ति है, तथा ऊपरके अनन्त बहुभागोंमें सर्वावरण-शक्ति है ॥ १४ ॥

....

१ प्रतिषु '-कम्ममेयणियाणं ' इति पाठः।

२ सत्ती य लदा-दारू-अट्ठीसेलोवमा हु घादीणं। दारुअणंतिमभागो त्ति देसघादी तदो सव्वं ॥ गो. क. १८०.

णाणावरणचदुक्कं दंसणतिगमंतराइगा पंच ।
ता होंति देसघादी संजलणा णोकसाया य[1] ॥ १५ ॥

फासिंदियावरणसव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा देसघादिफद्दयाणमुदएण जिब्भिंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवममेण वा देसघादिफद्दयाणमुदएण चक्खु-सोद-घाणिंदियावरणाणं देसघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सव्वघादिफद्दयाणमुदएण खओवसमियं जिब्भिंदियं समुप्पज्जदि । पस्सिंदियाविणाभावेण त्तं चेव जिब्भिंदियं बीइंदियं ति भण्णदि बीइंदियजादिणामकम्मोदयाविणाभावादो वा । तेण बेइंदिएण बेइंदिएहि वा जुत्तो जेण बीइंदिओ णाम तेण खओवसमियाए लद्धीए बीइंदिओ त्ति सुत्ते भणिदं ।

पस्सिंदियावरणस्स मव्वघादिफद्दयाणं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण जिब्भा-घाणिंदियावरणाणं सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा देमघादिफद्दयाणमुदएण चक्खु-मोदिंदियाणं (देमघादि-) फद्दयाणं उदय-

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय, ये चार ज्ञानावरण; चक्षु, अचक्षु और अवधि, ये तीन दर्शनावरण; दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य, ये पांचों अन्तराय, तथा संज्वलनचतुष्क और नव नोकषाय, ये तेरह मोहनीय कर्म देशघाती होते हैं ॥ १५ ॥

स्पर्शेन्द्रियावरणके सर्वघाति स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सत्त्वोपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे, और देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; जिव्हेन्द्रियावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सत्त्वोपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे, और देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; एवं चक्षु, श्रोत्र व घ्राणेन्द्रियावरणोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सत्त्वोपशम अथवा अनुदयोपशमसे और सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक जिव्हेन्द्रिय उत्पन्न होती है । स्पर्शेन्द्रियका अविनाभावी अथवा द्वीन्द्रियनामकर्मोदयका अविनाभावी होनेसे जिव्हेन्द्रियको द्वितीय इन्द्रिय कहते हैं, चूंकि उक्त द्वितीय इन्द्रियसे अथवा दो इन्द्रियोंसे युक्त होनेके कारण जीव द्वीन्द्रिय होता है, इसलिये 'क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव द्वीन्द्रिय होता है' ऐसा सूत्रमें कहा गया है ।

स्पर्शेन्द्रियावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे और देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; जिव्हा और घ्राणेन्द्रियावरणोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सत्त्वोपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; एवं चक्षु और श्रोत्रेन्द्रियोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे उन्हींके सत्त्वोपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे

१ णाणावरणचउक्क तिदसण सम्मग च सजलण । णव णोकसाय विग्घ छव्वीसा देसघादीओ ॥ गो क. ४०.

क्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सव्वघादिफद्दयाणमुदएण घाणिंदियमुप्पज्जदि। तं चेव घाणिंदियं पास-जिब्भिंदियाविणाभावेण तेइंदियजादिणामकम्मोदयाविणाभावेण वा तेइंदियो णाम। तेण जुत्तो जीवो वि तेइंदियो होदि। एदेण कारणेण खओवसमियाए लद्धीए तेइंदिओ होदि त्ति सुत्ते उत्तं।

पस्सिंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण चक्खु-घाण-जिब्भिंदियावरणाणं सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा देसघादिफद्दयाणमुदएण सोइंदियावरणस्स देसघादिफद्दयाणं उदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सव्वघादिफद्दयाणमुदएण चक्खिंदियं उप्पज्जदि। फास-जिब्भा-घाणिंदियाविणाभावेण चक्खिदियं (चउरिंदियं) ति भण्णदि। तेण जुत्तो जीवो चउरिंदियो। चउरिंदियजादिणामकम्मोदयाविणाभावेण वा चक्खु चउरिंदियं ति वत्तव्वं। फासिंदियादिचउहि इंदिएहि जुत्तो त्ति वा जीवो चउरिंदिओ णाम। तेण कारणेण खओवसमियाए लद्धीए चउरिंदिओ होदि त्ति उत्तं।

फासिंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण चदुण्णमिंदियाणं सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफद्दयाण-

---

तथा सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न होती है। वही घ्राणेन्द्रिय स्पर्श और जिह्वा इन्द्रियोंकी अविनाभावी अथवा त्रीन्द्रिय जाति नामकर्मोदयकी अविनाभावी होनेसे तृतीय इन्द्रिय कहलाती है। उस इन्द्रियसे युक्त जीव भी त्रीन्द्रिय होता है। इसी कारणसे 'क्षायोपशमिक लब्धिके द्वारा जीव त्रीन्द्रिय होता है' ऐसा सूत्रमें कहा गया है।

स्पर्शेन्द्रियावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशम व देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; चक्षु, घ्राण और जिह्वा इन्द्रियावरणोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे व उन्हींके सत्त्वोपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे एवं देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; तथा श्रोत्रेन्द्रियावरणके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे व उन्हींके सत्त्वोपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे एवं सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे चक्षु इन्द्रिय उत्पन्न होती है। स्पर्श, जिह्वा और घ्राण इन्द्रियोंकी अविनाभावी होनेसे चक्षु इन्द्रिय चतुर्थ इन्द्रिय कहलाती है। उस चक्षु इन्द्रियसे युक्त जीव चतुरिन्द्रिय होता है। अथवा, चतुरिन्द्रिय जाति नामकर्मोदयकी अविनाभावी होनेसे चक्षुको चतुरिन्द्रिय कहना चाहिये। स्पर्शेन्द्रियादि चार इन्द्रियोंसे युक्त होनेके कारण जीव चतुरिन्द्रिय कहलाता है। इसी कारण 'क्षायोपशमिक लब्धिके द्वारा जीव चतुरिन्द्रिय होता है' ऐसा कहा गया है।

स्पर्शेन्द्रियावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशम व देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; चार इन्द्रियोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षय और उन्हींके सत्त्वोपशमसे तथा

मुदएण जेण सोदिंदियमुप्पज्जदि तेण तं खओवसमियं । सेसचउरिंदियाविणाभावादो पंचिंदियजादिणामकम्मोदयाविणाभावादो वा तं पंचिंदियं । तेण पंचिंदिएण पंचहि इंदिएहि वा जुत्तो जीवो पंचिंदिओ णाम ।

फास-जिब्भा-घाण-चक्खु-सोदिंदियावरणाणि पयडिसमुक्कित्तणाए णोवइट्ठाणि, कधं तेसिमिह णिद्देसो ? ण, फासिंदियावरणादीणं मदिआवरणे अंतब्भावादो । ण च पंचिंदियखओवसमं तत्तो समुप्पण्णणाणं वा मुच्चा अण्णं मदिणाणमत्थि जेणिंदियावरणेहिंतो मदिणाणावरणं पुधभूदं होज्ज । ण च एदेहिंतो पुधभूदं णोइंदियमत्थि जेण णोइंदियणाणस्स मदिणाणत्तं होज्ज । णोइंदियावरणखओवसमजणिदं णोइंदियमिदि तदो पुधभूदं चेव ? जदि एवं तो ण[1] तदो समुप्पण्णणाणं मदिणाणं, मदिणाणावरणखओवसमेणाणुप्पण्णत्तादो । तदो मदिणाणाभावेण मदिणाणावरणस्स वि अभावो होज्ज । तम्हा

देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे चूंकि श्रोत्रेन्द्रिय उत्पन्न होती है इसीसे उसे क्षायोपशमिक कहा है । शेष चारों इन्द्रियोंकी अविनाभावी होनेसे अथवा पंचेन्द्रिय जाति नामकर्मोदयकी अविनाभावी होनेसे श्रोत्रेन्द्रिय पंचम इन्द्रिय है । उस पंचम इन्द्रियसे अथवा पांचों इन्द्रियोंसे युक्त जीव पंचेन्द्रिय होता है ।

शंका—स्पर्श, जिह्वा, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियावरणोंका प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारमें तो उपदेश नहीं दिया गया, फिर यहां उनका कैसे निर्देश किया जाता है ?

समाधान—नहीं, स्पर्शेन्द्रियादिक आवरणोंका मतिआवरणमें ही अन्तर्भाव होनेसे वहां उनके पृथक् उपदेशकी आवश्यकता नहीं समझी गई । पंचेन्द्रियोंके क्षयोपशमको वा उससे उत्पन्न हुए ज्ञानको छोड़कर अन्य कोई मतिज्ञान है ही नहीं जिससे इन्द्रियावरणोंसे मतिज्ञानावरण पृथग्भूत होवे । और न इन पांचों इन्द्रियोंसे पृथग्भूत नोइन्द्रिय है जिससे नोइन्द्रियज्ञानको मतिज्ञान कहा जा सके ।

शंका—नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाली नोइन्द्रिय उक्त पांच इन्द्रियोंसे पृथग्भूत ही है ?

समाधान—यदि ऐसा है तो उससे उत्पन्न होने वाला ज्ञान मतिज्ञान नहीं होगा, क्योंकि वह मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे नहीं उत्पन्न हुआ । इस प्रकार मतिज्ञानके अभावसे मतिज्ञानावरणका भी अभाव हो जायगा । इसलिये छहों इन्द्रियोंका

१ प्रतिषु ' तेण ' इति पाठः ।

छण्णमिंदियाणं खओवसमो तत्तो समुप्पण्णणाणं वा मदिणाणं, तस्सावरणं मदिणाणावरण-मिदि इच्छिदव्वमण्णहा मदिआवरणस्साभावप्पसंगा।

एइंदियादीणमोदइओ भावो वत्तव्वो, एइंदियजादिआदिणामकम्मोदएण एइं-यादिभावोवलंभा। जदि एवं ण इच्छिज्जदि तो सजोगि-अजोगिजिणाणं पंचिंदियत्तं ण लब्भदे, खीणावरणे पंचण्हमिंदियाणं खओवसमाभावा। ण च तेसिं पंचिंदियत्ताभावो, पंचिंदिएसु समुग्घादपदेण असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा त्ति सुत्तविरोहादो ?

एत्थ परिहारो वुच्चदे- एइंदियादीणं भावो ओदईओ होदि चेव, एइंदियजादि-आदिणामकम्मोदएण तेसिमुप्पत्तीदंसणादो। एदम्हादो चेव सजोगि-अजोगिजिणाणं पंचिंदियत्तं जुज्जदि त्ति जीवट्ठाणे पि[1] उववण्णं। किंतु खुद्दाबंधे सजोगि-अजोगिजिणाणं सुद्धणएणाणिंदियाणं पंचिंदियत्तं जदि इच्छिज्जदि तो ववहारणएण वत्तव्वं। तं जहा - पंचसु जाईसु जाणि पडिबद्धाणि पंच इंदियाणि ताणि खओवसमियाणि त्ति काऊण उवयारेण पंच वि जादीओ खओवसमियाओ त्ति कट्टु सजोगि-अजोगिजिणाणं खओव-

क्षयोपशम अथवा उस क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ ज्ञान मतिज्ञान है और उसीका आवरण मतिज्ञानावरण होता है, ऐसा मानना चाहिये। अन्यथा मतिज्ञानावरणके अभावका प्रसंग आ जायगा।

शंका—एकेन्द्रियादिको औदयिक भाव कहना चाहिये, क्योंकि एकेन्द्रियजाति आदिक नामकर्मके उदयसे एकेन्द्रियादिक भाव पाये जाते हैं। यदि ऐसा न माना जायगा तो सयोगी और अयोगी जिनोंके पंचेन्द्रियभाव नहीं पाया जायगा, क्योंकि, उनके आवरणके क्षीण हो जानेपर पांचों इन्द्रियोंके क्षयोपशमका भी अभाव हो गया है। और सयोगि-अयोगी जिनोंके पंचेन्द्रियत्वका अभाव होता नहीं है, क्योंकि, वैसा माननेपर "पंचेन्द्रिय जीवोंकी अपेक्षा समुद्घात पदके द्वारा लोकके असंख्यात बहुभागोंमें अथवा सर्व लोकमें जीवोंका अस्तित्व है" इस सूत्रसे विरोध आ जायगा ?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार कहते हैं। एकेन्द्रियादि जीवोंका भाव औदयिक तो होता ही है, क्योंकि, एकेन्द्रियजाति आदि नामकर्मोंके उदयसे ही उनकी उत्पत्ति पायी जाती है। और इसीसे सयोगी व अयोगी जिनोंका पंचेन्द्रियत्व योग्य होता है, ऐसा जीवस्थान खंडमें भी स्वीकार किया गया है। किन्तु, इस क्षुद्रक-बंध खंडमें शुद्ध नयसे अनिन्द्रिय कहे जानेवाले सयोगी और अयोगी जिनोंके यदि पंचेन्द्रियत्व कहना है, तो वह केवल व्यवहार नयसे ही कहा जा सकता है। वह इस प्रकार है— पांच जातियोंमें जो क्रमशः पांच इन्द्रियां सम्बद्ध हैं वे क्षायोपशमिक हैं ऐसा मानकर और उपचारसे पांचों जातियोंको भी क्षायोपशमिक स्वीकार करके

१ प्रतिपु 'जीवट्ठाणं पि' इति पाठः।

समियं पंचिंदियत्तं जुज्जदे । अधवा खीणावरणे णट्ठे वि पंचिंदियखओवसमे खओवसम-जणिदाणं पंचण्हं बज्झिंदियाणमुवयारेण[1] लद्धखओवसमसण्णाणमत्थित्तदंसणादो सजोगि-अजोगिजिणाणं पंचिंदियत्तं साहेयव्वं ।

अणिंदिओ णाम कधं भवदि? ॥ १६ ॥

एत्थ पुव्वं व णय-णिक्खेवे अस्सिदूण चालणा कायव्वा ।

खइयाए लद्धीए ॥ १७ ॥

एत्थ चोदगो भणदि- इंदियमए सरीरे विणट्ठे इंदियाणं पि णियमेण विणासो, अण्णहा सरीरिंदियाणं पुधभावप्पसंगादो । इंदिएसु विणट्ठेसु णाणास्स विणासो, कारणेण विणा कज्जुप्पत्तीविरोहादो । णाणाभावे जीवविणासो, णाणाभावेण णिच्चेयणत्त-वुत्तस्स जीवत्तविरोहादो । जीवाभावे ण खइया लद्धी वि, परिणामिणा विणा परि-णामाणमत्थित्तविरोहादो त्ति । णेदं जुज्जदे । कुदो ? जीवो णाम णाणसहावो, अण्णहा

सयोगी और अयोगी जिनोंके क्षयोपशमिक पंचेन्द्रियत्व सिद्ध हो जाता है । अथवा, आवरणके क्षीण होनेसे पंचेन्द्रियोंके क्षयोपशमके नष्ट हो जानेपर भी क्षयोपशमसे उत्पन्न और उपचारसे क्षायोपशमिक संज्ञाको प्राप्त पांचों बाह्येन्द्रियोंका अस्तित्व पाये जानेसे सयोगी और अयोगी जिनोंके पंचेन्द्रियत्व सिद्ध कर लेना चाहिये ।

जीव अनिन्द्रिय किस प्रकार होता है ? ॥ १६ ॥

यहां पूर्वानुसार नयों और निक्षेपोंका आश्रय लेकर चालना करना चाहिये ।

क्षायिक लब्धिसे जीव अनिन्द्रिय होता है ॥ १७ ॥

शंका—यहां शंकाकार कहता है—इन्द्रियमय शरीरके विनष्ट हो जानेपर इन्द्रियोंका भी नियमसे विनाश होता है, अन्यथा शरीर और इन्द्रियोंके पृथग्भावका प्रसंग आता है । इस प्रकार इन्द्रियोंके विनष्ट हो जानेपर ज्ञानका भी विनाश हो जायगा, क्योंकि, कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । ज्ञानके अभावमें जीवका भी विनाश हो जायगा, क्योंकि, ज्ञानरहित होनेसे निश्चेतन पदार्थके जीवत्व माननेमें विरोध आता है । जीवका अभाव हो जानेपर क्षायिक लब्धि भी नहीं हो सकती, क्योंकि, परिणामी के विना परिणामोंका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है । (इस प्रकार इन्द्रियरहित जीवके क्षायिक लब्धिकी प्राप्ति सिद्ध नहीं होती) ?

समाधान—यह शंका उपयुक्त नहीं है, क्योंकि, जीव ज्ञानस्वभावी है, नहीं तो

१ प्रतिषु ' -मुवयारे ' इति पाठः ।

जीवाभावप्पसंगादो। होदु चे ण, पमाणाभावे पमेयस्स वि अभावप्पसंगा। ण चेवं, तहाणुवलंभादो। तम्हा णाणस्स जीवो उवायाणकारणमिदि घेत्तव्वं। तं च उवादेयं जावदव्वभावि, अण्णहा दव्वणियमाभावादो। तदो इंदियविणासे ण णाणस्स विणासो। णाणसहकारिकारणइंदियाणमभावे कधं णाणस्स अत्थित्तमिदि चे ण, णाण-सहावपोग्गलदव्वाणुप्पण्णउप्पाद-व्वय-धुअत्तुवलक्खियजीवदव्वस्स विणासाभावा। ण च एक्कं कज्जं एक्कादो चेव कारणादो सव्वत्थ उप्पज्जदि, खइर-सिंसव-धव-धम्मण-गोमय-सूरयर-सुज्जकंतेहिंतो समुप्पज्जमाणेक्कग्गिकज्जुवलंभा। ण च छदुमत्थावत्थाए णाणकारणत्तेण पडिवण्णिंदियाणि खीणावरणे भिण्णजादीए णाणुप्पत्तिम्हि सहकारिकारणं होंति त्ति णियमो, अइप्पसंगादो, अण्णहा मोक्खाभावप्पसंगा। ण च मोक्खाभावो, बंध-कारणपडिवक्खतिरयणाणमुवलंभा। ण च कारणं सकज्जं सव्वत्थ ण करेदि त्ति णियमो अत्थि, तहाणुवलंभा। तम्हा अणिंदिएसु करणक्कमव्ववहाणादीदं णाणमत्थि त्ति घेत्तव्वं। ण च तण्णिक्कारणं अप्पट्ठसण्णिहाणेण तदुप्पत्तीदो। सव्वकम्माणं खएणु-

जीवके अभावका प्रसंग आ जायगा। यदि कहा जाय कि हो जाने दो ज्ञानस्वभावी जीवका अभाव, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रमाणके अभावमें प्रमेयके भी अभावका प्रसंग आ जायगा। और प्रमेयका अभाव है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता। इससे यही ग्रहण करना चाहिये कि ज्ञानका जीव उपादान कारण है। और वह ज्ञान उपादेय है जो कि यावत् द्रव्यमात्रमें रहता है, अन्यथा द्रव्यके नियमका अभाव हो जायगा। इसलिये इन्द्रियोंका विनाश हो जानेपर ज्ञानका विनाश नहीं होता।

शंका—ज्ञानके सहकारी कारणभूत इन्द्रियोंके अभावमें ज्ञानका अस्तित्व किस प्रकार हो सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञानस्वभाव और पुद्गलद्रव्यसे अनुत्पन्न, तथा उत्पाद व्यय एवं ध्रुवत्वसे उपलक्षित जीवद्रव्यका विनाश न होनेसे इन्द्रियोंके अभावमें भी ज्ञानका अस्तित्व हो सकता है। एक कार्य सर्वत्र एक ही कारणसे उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि, खदिर, शीशम धौ, धम्मन, गोबर, सूर्यकिरण व सूर्यकान्त मणि, इन भिन्न भिन्न कारणोंसे एक अग्नि रूप कार्य उत्पन्न होता पाया जाता है। तथा छद्मस्थावस्थामें ज्ञानके कारण रूपसे ग्रहण की गई इन्द्रियां क्षीणावरण जीवके भिन्न जातीय ज्ञानकी उत्पत्तिमें सहकारी कारण हों, ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर अतिप्रसंग दोष आजायगा, या अन्यथा मोक्षके अभावका ही प्रसंग आजायगा। और मोक्षका अभाव है नहीं, क्योंकि, बन्धकारणोंके प्रतिपक्षी रत्नत्रयकी प्राप्ति है। और कारण सर्वत्र अपना कार्य नहीं करेगा, ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता। इस कारण अनिन्द्रिय जीवोंमें करण, क्रम और व्यवधानसे अतीत ज्ञान होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। यह ज्ञान निष्कारण भी नहीं है, क्योंकि, आत्मा और पदार्थके सन्नि-धान अर्थात् सामीप्यसे वह उत्पन्न होता है। इस प्रकार समस्त कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न

प्पण्णत्तादो खइयाए लद्धीए अणिंदियत्तं होदि ।

कायाणुवादेण पुढविकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ १८ ॥

पुढविकायादो किण्णिग्गदो भूदपुव्वो त्ति पुढविकाइओ वुच्चदि, किं पुढविकाइयाणमहिमुहो णेगमणयावलंबणेण पुढविकाइओ वुच्चदि, किं पुढविकाइयणामकम्मोदएणेत्ति बुद्धीए काऊण कधं होदि त्ति वुत्तं ।

पुढविकाइयणामाए उदएण ॥ १९ ॥

णामपयडीसु पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणप्फदिसण्णिदाओ पयडीओ ण णिद्दिट्ठाओ, तेण पुढविकाइयणामाए उदएण पुढविकाइओ त्ति णेदं घडदे ? ण, एइंदियजादिणामाए एदासिमंतब्भावादो । ण च कारणेण विणा कज्जाणमुप्पत्ती अत्थि । दीसंति च पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणप्फदि-तसकाइयादिसु अणेगाणि कज्जाणि । तदो कज्जमेत्ताणि चेव कम्माणि वि अत्थि त्ति णिच्छओ कायव्वो । जदि एवं तो भमर-महुवर-सलह-पयंग-गोम्हिदगोव-संख-मंकुण-णिंबंब-जंबु-जंबीर कयंबादिसण्णिदेहि वि णाम-

होनेके कारण क्षायिक लब्धिके द्वारा ही जीव अनिन्द्रिय होता है ।

कायमार्गणानुसार जीव पृथिवीकायिक कैसे होते है ? ॥ १८ ॥

क्या पृथिवीकायसे निकला हुआ जीव भूतपूर्व नयसे पृथिवीकायिक कहलाता है ? या पृथिवीकायिकोंके अभिमुख हुआ जीव नैगम नयके अवलम्बनसे पृथिवीकायिक कहा जाता है ? या पृथिवीकायिक नामकर्मके उदयसे पृथिवीकायिक कहा जाता है ? ऐसी मनमें शंका करके पूछा गया है कि कैसे होता है ।

पृथिवीकायिक नामकर्मके उदयसे जीव पृथिवीकायिक होता है ॥ १९ ॥

शंका—नामकर्मकी प्रकृतियोंमें पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पति नामकी प्रकृतियां निर्दिष्ट नहीं की गईं । इसलिये 'पृथिवीकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव पृथिवीकायिक होता है' यह बात घटित नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एकेन्द्रिय जाति नामकर्मकी प्रकृतिमें उक्त सब प्रकृतियोंका अन्तर्भाव हो जाता है। कारणके विना तो कार्योंकी उत्पत्ति होती नहीं है । और पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसकायिक आदि जीवोंमें उनकी उक्त पर्यायों रूप अनेक कार्य देखे जाते हैं। इसलिये जितने कार्य हैं उतने उनके कारणरूप कर्म भी हैं, ऐसा निश्चय कर लेना चाहिये ।

शंका—यदि जितने कार्य हों उतने ही कारणरूप कर्म आवश्यक हों तो भ्रमर, मधुकर, शलभ, पतंग, गोम्ही, इन्द्रगोप, शंख, मत्कुण, निंब, आम्र, जम्बु, जम्बीर और कदम्ब

कम्मेहि होदव्वमिदि ? ण एस दोसो, इच्छिज्जमाणादो । पुढविकाइयाणं एक्कवीसाए चउवीसाए पंचवीसाए छव्वीसाए सत्तवीसाए त्ति पंच उदयट्ठाणाणि । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । एदेसिं ठाणाणं पयडीओ उच्चारिय घेत्तव्वाओ । एवमेदासु बहुसु पयडीसु उदयमागच्छमाणासु कधं पुढविकाइयणामाए उदएण पुढविकाइओ त्ति जुज्जदे ? ण, इदरपयडीणमुदयस्स साहारणत्तुवलंभादो । ण च पुढविकाइयणामकम्मोदओ तहा साहारणो, अण्णत्थेदस्साणुवलंभा ।

आउकाईओ णाम कधं भवदि ? ॥ २० ॥

आउकाइयणामाए उदएण ॥ २१ ॥

तेउकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २२ ॥

तेउकाइयणामाए उदएण ॥ २३ ॥

वाउकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २४ ॥

आदिक नामों वाले भी नामकर्म होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह बात तो इष्ट ही है ।

शंका—पृथिवीकायिक जीवोंके इक्कीस, चौवीस, पच्चीस, छव्वीस और सत्ताईस प्रकृतियोंवाले पांच उदयस्थान होते हैं । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । इन पांच उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंका उच्चारण करके ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार इन बहुत प्रकृतियोंके (एक साथ) उदय आनेपर यह कैसे उपयुक्त हो सकता है कि पृथिवीकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव पृथिवीकायिक होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि दूसरी प्रकृतियोंका उदय तो अन्य पर्यायोंके साथ भी पाया जाता है और इसलिये वह साधारण है । किन्तु पृथिवीकायिक नामकर्मका उदय उस प्रकार साधारण नहीं है, क्योंकि, अन्य पर्यायोंमें वह नहीं पाया जाता ।

जीव अप्कायिक कैसे होता है ? ॥ २० ॥

अप्कायिक नाम प्रकृतिके उदयसे जीव अप्कायिक होता है ॥ २१ ॥

जीव अग्निकायिक कैसे होता है ? ॥ २२ ॥

अग्निकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव अग्निकायिक होता है ॥ २३ ॥

जीव वायुकायिक कैसे होता है ? ॥ २४ ॥

वाउकाइयणामाए उदएण ॥ २५ ॥

वणप्फइकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २६ ॥

वणप्फइकाइयणामाए उदएण ॥ २७ ॥

एदेसिं सुत्ताणमत्थो सुगमो । णवरि आउकाइयादीणं एक्कवीस-चउवीस- पंचवीस-छव्वीसमिदि चत्तारि उदयट्ठाणाणि । सत्तावीसाए ट्ठाणं णत्थि, आदावुज्जोवाणमुदयाभावा । णवरि आउ वणप्फदिकाइयाणं सत्तावीसाए सह पंच उदयट्ठाणाणि, आदावेण विणा तत्थ उज्जोवस्स कत्थ वि उदयदंसणादो ।

तसकाइओ णाम कधं भवदि ? ॥ २८ ॥

सुगममेदं ।

तसकाइयणामाए उदएण ॥ २९ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं । णवरि वीसाए एक्कवीसाए पणुवीसाए छव्वीसाए सत्तावीसाए अट्ठावीसाए एगुणतीसाए तीसाए एक्कत्तीसाए णवण्णमट्ठण्णमुदयट्ठाणमिदि

वायुकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव वायुकायिक होता है ॥ २५ ॥

जीव वनस्पतिकायिक कैसे होता है ? ॥ २६ ॥

वनस्पतिकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव वनस्पतिकायिक होता है ॥ २७ ॥

इन सूत्रोंका अर्थ सुगम है। विशेषता केवल इतनी है कि अप्कायिक आदि जीवोंके इक्कीस, चौवीस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियोंवाले चार उदयस्थान हैं। उनके सत्ताईस प्रकृतियोंवाला उदयस्थान नहीं है, क्योंकि उनके आताप और उद्योत इन दो प्रकृतियोंके उदयका अभाव होता है। किन्तु अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंके सत्ताईस प्रकृतियोंवाले उदयस्थानको मिलाकर पांच उदयस्थान होते हैं, क्योंकि, उनके आतापके विना उद्योतका कहीं कहीं उदय देखा जाता है।

जीव त्रसकायिक कैसे होता है ? ॥ २८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

त्रसकायिक नामप्रकृतिके उदयसे जीव त्रसकायिक होता है ॥ २९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है। विशेषता यह है कि त्रसकायिक जीवोंके वीस, इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, नौ और आठ

एक्कारस उदयट्ठाणाणि होंति । एदाणि जाणिदूण वत्तव्वाणि ।

अकाइओ णाम कधं भवति ? ॥ ३० ॥

छक्काइयणामाणं विणासो णत्थि, मिच्छत्तादिआसवाणं विणासाणुवलंभादो । ण चाणादित्तणेण णिच्चं मिच्छत्तं[1] विणस्सदि, णिच्चस्स विणासविरोहादो । ण मिच्छत्तादिआसवो सादी, संवरेण णिम्मूलदो ओसरिदासवस्स पुणरुप्पत्तिविरोहादो । एदं सव्वं मणेण अवहारिय अकाइओ णाम कधं होदि त्ति वुत्तं ।

खइयाए लद्धीए ॥ ३१ ॥

ण च अणादित्तादो णिच्चो आसवो, कूडत्थाणादिं मुच्चा पवाहाणादिम्हि णिच्चत्ताणुवलंभादो । उवलंभे वा ण बीजादीणं विणासो, पवाहसरूवेण तेसिमणादित्तदंसणादो । तदो णाणादित्तं साहणं, अणेयंतियादो । ण चासवो कूडत्थाणादिसहावो,

प्रकृतियोंवाले ग्यारह उदयस्थान होते हैं । इनको जानकर कहना चाहिये । (देखो ऊपर पृ. ५२)

जीव अकायिक कैसे होता है ? ॥ ३० ॥

षट्कायिक नामप्रकृतियोंका विनाश तो होता नहीं है, क्योंकि, मिथ्यात्वादिक आस्रवोंका विनाश पाया नहीं जाता । अनादित्वकी अपेक्षा नित्य मिथ्यात्व विनष्ट भी नहीं होता, क्योंकि, नित्यका विनाशके साथ विरोध है । मिथ्यात्वादिक आस्रव सादि भी नहीं है, क्योंकि, संवरके द्वारा निर्मूलतः आस्रवके दूर हो जाने पर उसकी पुनः उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । यह सब मनमें धारण करके कहा गया है कि ' जीव अकायिक कैसे होता है ' ।

क्षायिक लब्धिसे जीव अकायिक होता है ॥ ३१ ॥

अनादि होनेसे आस्रव नित्य नहीं हो जाता, क्योंकि कूटस्थ अनादिको छोड़कर प्रवाह अनादिमें नित्यत्व नहीं पाया जाता । यदि पाया जाय तो बीजादिकका विनाश नहीं होना चाहिये, क्योंकि, प्रवाह रूपसे तो उनमें अनादित्व देखा जाता है । इसलिये अनादित्व आस्रवके नित्यत्व सिद्ध करनेमें साधन नहीं हो सकता, क्योंकि, वह अनैकान्तिक है अर्थात् पक्ष और विपक्षमें समानरूपसे पाया जाता है । और आस्रव कूटस्थ अनादि स्वभाववाला है नहीं, क्योंकि, प्रवाह-अनादि रूपसे आये हुए

१ प्रतिषु ' ण माणादित्तिणेण णिच्चमिच्छत्तं ' इति पाठः ।

मिच्छत्तासंजम-कसायासवाणं पवाहाणादिसरूवेण समागदाणं वट्टमाणकाले वि कत्थ वि जीवे विणासदंसणादो ।

जोगाणुवादेण मणजोगी वचिजोगी कायजोगी णाम कधं भवदि ? ॥ ३२ ॥

किमोदइओ किं खओवसमिओ किं पारिणामिओ किं खइओ किमुवसमिओ त्ति ? ण ताव खइओ, संसारिजीवेसु सव्वकम्माणं उदएण वट्टमाणेसु जोगाभावप्पसंगादो, सिद्धेसु सव्वकम्मोदयविरहिदेसु जोगस्स अत्थित्तप्पसंगादो च । ण पारिणामिओ, खइयम्मि वुत्तासेसदोसप्पसंगादो । णोवसमिओ, ओवसमियभावेण मुक्कमिच्छाइट्ठि-गुणम्मि जोगाभावप्पसंगादो । ण घादिकम्मोदयसमुब्भूदो, केवलिम्हि खीणघादिकम्मोदए जोगाभावप्पसंगादो । णाघादिकम्मोदयसमुब्भूदो, अजोगिम्हि वि जोगस्स सत्तपसंगादो । ण घादिकम्माणं खओवसमजणिदो, केवलिम्हि जोगाभावप्पसंगा । णाघादिकम्म-क्खओवसमजणिदो, तत्थ सव्व-देसघादिफद्दयाभावादो खओवसमाभावा । एदं सव्वं

मिथ्यात्व, असंयम और कषाय रूप आस्रवोंका वर्तमान कालमें भी किसी किसी जीवमें विनाश देखा जाता है ।

योगमार्गणानुसार जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी कैसे होता है ? ॥ ३२ ॥

शंका—योग क्या औदयिक भाव है, कि क्षायोपशमिक, कि पारिणामिक, कि क्षायिक, कि औपशमिक ? योग क्षायिक तो हो नहीं सकता, क्योंकि वैसा माननेसे तो सर्व कर्मोंके उदय सहित संसारी जीवोंके वर्तमान रहते हुए भी योगके अभावका प्रसंग आजायगा, तथा सर्व कर्मोदयसे रहित सिद्धोंके योगके अस्तित्वका प्रसंग आजायगा । योग पारिणामिक भी नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसा मानने पर भी क्षायिक माननेसे उत्पन्न होनेवाले समस्त दोषोंका प्रसंग आजायगा । योग औपशमिक भी नहीं है, क्योंकि, औपशमिक भावसे रहित मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें योगके अभावका प्रसंग आजायगा । योग घातिकर्मोंके उदयसे उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि, सयोगिकेवलीमें घातिकर्मोंका उदय क्षीण होनेके साथ ही योगके अभावका प्रसंग आजायगा । योग अघातिकर्मोंके उदयसे उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि, वैसा माननेसे अयोगिकेवलीमें भी योगकी सत्ताका प्रसंग आजायगा । योग घातिकर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि, इससे भी सयोगिकेवलीमें योगके अभावका प्रसंग आजायगा । योग अघाति-कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि, अघातिकर्मोंमें सर्वघाती और देशघाती दोनों प्रकारके स्पर्धकोंका अभाव होनेसे क्षयोपशमका भी अभाव है । यह सब मनमें

बुद्धिम्हि काऊण मण-वचि-कायजोगी कधं होदि त्ति वुत्तं ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ३३ ॥

जोगो णाम जीवपदेसाणं परिप्फंदो संकोच-विकोचलक्खणो । सो च कम्माणं उदयजणिदो, कम्मोदयविरहिदसिद्धेसु तदणुवलंभा । अजोगिकेवलिम्हि जोगाभावा जोगो ओदइओ ण होदि त्ति वोत्तुं ण जुत्तं, तत्थ सरीरणामकम्मोदयाभावा । ण च सरीर-णामकम्मोदएण जायमाणो जोगो तेण विणा होदि, अइप्पसंगादो । एवमोदइयस्स जोगस्स कधं खओवसमियत्तं उच्चदे ? ण, सरीरणामकम्मोदएण सरीरपाओग्गपोग्गलेसु बहुसु संचयं गच्छमाणेसु विरियंतराइयस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयाभावेण तेसिं संतो-वसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण समुब्भवादो लद्धखओवसमववएसं विरियं वड्ढदि, तं विरियं पप्प जेण जीवपदेसाणं संकोच-विकोचो वड्ढदि तेण जोगो खओवसमिओ त्ति वुत्तो। विरियंतराइयखओवसमजणिदबलवड्ढि-हाणीहिंतो जदि जीवपदेसपरिप्फंदस्स वड्ढि-हाणीओ

विचार कर पूछा गया है कि जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी कैसे होता है ।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी होता है ॥ ३३ ॥

शंका—जीवप्रदेशोंके संकोच और विकोच अर्थात् विस्तार रूप परिस्पंदको योग कहते हैं । यह परिस्पंद कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होता है, क्योंकि, कर्मोदयसे रहित सिद्धोंके वह नहीं पाया जाता । अयोगिकेवलीमें योगके अभावसे यह कहना उचित नहीं है कि योग औदयिक नहीं होता, क्योंकि, अयोगिकेवलीके यदि योग नहीं होता तो शरीर नामकर्मका उदय भी तो नहीं होता । शरीर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला योग उस कर्मोदयके विना नहीं हो सकता, क्योंकि, वैसा माननेसे अतिप्रसंग दोष उत्पन्न होगा । इस प्रकार जब योग औदयिक होता है, तो उसे क्षायोपशमिक क्यों कहते हैं ?

समाधान—ऐसा नहीं, क्योंकि जब शरीर नामकर्मके उदयसे शरीर बननेके योग्य बहुतसे पुद्गलोंका संचय होता है और वीर्यान्तराय कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावसे व उन्हीं स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण क्षायोपशमिक कहलानेवाला वीर्य (बल) बढ़ता है, तब उस वीर्यको पाकर चूंकि जीवप्रदेशोंका संकोच-विकोच बढ़ता है, इसीलिये योग क्षायोपशमिक कहा गया है ।

शंका—यदि वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए बलकी वृद्धि और हानिसे

होंति तो खीणंतराइयम्मि सिद्धे जोगबहुत्तं पसज्जदे ? ण, खओवसमियबलादो खइयस्स बलस्स पुधत्तदंसणादो । ण च खओवसमियबलवड्ढि-हाणीहिंतो वड्ढि-हाणीणं गच्छमाणो जीवपदेसपरिप्फंदो खइयबलादो वड्ढि-हाणीणं गच्छदि, अइप्पसंगादो । जदि जोगो वीरियंतराइयखओवसमजणिदो तो सजोगिम्हि जोगाभावो पसज्जदे ? ण, उवयारेण खओवसमियं भावं पत्तस्स ओदइयस्स जोगस्स तत्थाभावविरोहादो ।

सो च जोगो तिविहो मणजोगो वचिजोगो कायजोगो त्ति । मणवग्गणादो णिप्फण्णदव्वमणमवलंबिय[1] जो जीवस्स संकोच-विकोचो सो मणजोगो । भासावग्गणा-पोग्गलखंधे अवलंबिय जो जीवपदेसाणं संकोच-विकोचो सो वचिजोगो णाम । जो चउव्विह[2] सरीराणि अवलंबिय जीवपदेसाणं संकोच-विकोचो सो कायजोगो णाम । दो

जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दकी वृद्धि और हानि होती है, तब तो जिसके अन्तराय कर्म क्षीण हो गया है ऐसे सिद्ध जीवमें योगकी बहुलताका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं आता, क्योंकि क्षायोपशमिक बलसे क्षायिक बल भिन्न देखा जाता है। क्षायोपशमिक बलकी वृद्धि-हानिसे वृद्धि-हानिको प्राप्त होनेवाला जीवप्रदेशोंका परिस्पन्द क्षायिक बलसे वृद्धि-हानिको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेसे तो अतिप्रसंग दोष आजायगा।

शंका—यदि योग वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है, तो सयोगि-केवलीमें योगके अभावका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं आता, क्योंकि योगमें क्षायोपशमिक भाव तो उपचारसे माना गया है। असलमें तो योग औदयिक भाव ही है, और औदयिक योगका सयोगिकेवलीमें अभाव माननेमें विरोध आता है।

वह योग तीन प्रकारका है— मनोयोग, वचनयोग, और काययोग । मनो-वर्गणासे निष्पन्न हुए द्रव्यमनके अवलम्बनसे जो जीवका संकोच-विकोच होता है वह मनोयोग है। भाषावर्गणासम्बन्धी पुद्गलस्कंधोंके अवलम्बनसे जो जीवप्रदेशोंका संकोच-विकोच होता है वह वचनयोग है। जो चतुर्विध शरीरोंके अवलम्बसे जीवप्रदेशोंका संकोच विकोच होता है वह काययोग है।

१ प्रतिषु '-दव्वमणवलंबिय' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'चउव्विहो' इति पाठः।

वा तिण्णि वा जोगा जुगवं किण्ण होंति ? ण, तेसिं णिसिद्धाकमवुत्तीदो । तेसिमक्कमेण वुत्ती उवलंभदे चे ? ण, इंदियविसयमइक्कंतजीवपदेसपरिप्फंदस्स इंदिएहि उवलंभविरोहादो । ण जीवे चलंते जीवपदेसाणं संकोच-विकोचणियमो, सिज्झंतपढमसमए एत्तो लोअग्गं गच्छंतम्मि जीवपदेसाणं संकोच-विकोचाणुवलंभा ।

कधं मणजोगो खओवसमियो ? वुच्चदे । वीरियंतराइयस्स सव्वघादिफद्दयाणं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण णोइंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण मणपज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स जेण मणजोगो समुप्पज्जदि तेणेसो[1] खओवसमिओ । वीरियंतराइयस्स सव्वघादिफद्दयाणं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण जिब्भिंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण भासापज्जत्तीए पज्जत्तयदस्स सरणाम-

शंका—दो या तीन योग एक साथ क्यों नहीं होते ?

समाधान—नहीं होते, क्योंकि, उनकी एक साथ वृत्तिका निषेध किया गया है ।

शंका—अनेक योगोंकी एक साथ वृत्ति पायी तो जाती है ?

समाधान—नहीं पायी जाती, क्योंकि इन्द्रियोंके विषयसे परे जो जीवप्रदेशोंका परिस्पन्द होता है उसका इन्द्रियों द्वारा ज्ञान मान लेनेमें विरोध आता है । जीवोंके चलते समय जीवप्रदेशोंके संकोच-विकोचका नियम नहीं है, क्योंकि, सिद्ध होनेके प्रथम समयमें जब जीव यहांसे, अर्थात् मध्यलोकसे, लोकके अग्रभागको जाता है तब उसके जीवप्रदेशोंमें संकोच-विकोच नहीं पाया जाता ।

शंका—मनोयोग क्षायोपशमिक कैसे है ?

समाधान—बतलाते हैं । चूंकि वीर्यान्तरायकर्मके सर्वघाति स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे व देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; नोइन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाति स्पर्धकोंके उदयक्षयसे व उन्हीं स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे मनपर्याप्ति पूरी करलेनेवाले जीवके मनोयोग उत्पन्न होता है, इसलिये उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं ।

उसी प्रकार, वीर्यान्तरायकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे व देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे; जिह्वेन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे व उन्हींके सत्त्वोपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे भाषापर्याप्ति पूर्ण करलेनेवाले स्वर-

१ कप्रतौ 'तेण सो' इति पाठः ।

कम्मोदइल्लस्स वचिजोगस्सुवलंभा खओवसमिओ वचिजोगो। वीरियंतराइयस्स सव्व-घादिफद्दयाणं संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण कायजोगुवलंभादो खओवसमिओ कायजोगो।

अजोगी णाम कधं भवदि ? ॥ ३४ ॥

एत्थ णय-णिक्खेवेहि अजोगित्तस्स पुव्वं व चालणा कायव्वा।

खइयाए लद्धीए ॥ ३५ ॥

जोगकारणसरीरादिकम्माणं णिम्मूलक्खएणुप्पण्णत्तादो खइया लद्धी अजोगस्स।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदो पुरिसवेदो णवुंसयवेदो णाम कधं भवदि ? ॥ ३६ ॥

किमोदइएण भावेण किमुवसमिएण किं खइएण किं पारिणामिएण भावेणेत्ति बुद्धीए काऊण इत्थिवेदादओ कधं होदि त्ति वुत्तं। एवंविहसंसयविणासणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

नामकर्मोदय सहित जीवके वचनयोग पाया जाता है, इसीसे वचनयोग भी क्षायोपशमिक है।

वीर्यान्तरायकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे व देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे काययोग पाया जाता है, इसीसे काययोग भी क्षायोपशमिक है।

जीव अयोगी कैसे होता है ? ॥ ३४ ॥

यहां भी नयों और निक्षेपोंके द्वारा अयोगित्वकी पूर्ववत् चालना करना चाहिये।

क्षायिक लब्धिसे जीव अयोगी होता है ॥ ३५ ॥

योगके कारणभूत शरीरादिक कर्मोंके निर्मूल क्षयसे उत्पन्न होनेके कारण अयोगकी लब्धि क्षायिक है।

वेदमार्गणानुसार जीव स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी कैसे होता है ? ॥ ३६ ॥

क्या औदयिक भावसे, कि औपशमिक भावसे, कि क्षायिक भावसे, कि पारिणामिक भावसे जीव स्त्रीवेदी आदि होता है ? ऐसा मनमें विचार कर ‘ स्त्रीवेदी आदि कैसे होता है ’ यह प्रश्न किया गया है। इस प्रकारके संशयका विनाश करनेके लिये आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं —

चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदा ॥ ३७ ॥

चरित्तमोहणीयस्स उदएण होंति त्ति सामण्णेण वुत्ते सव्वस्स चरित्तमोहणीयस्स उदएण तिण्हं वेदाणमुप्पत्ती पसज्जदे। ण च एवं, विरुद्धाणं तिण्हमेक्कदो उप्पत्तिविरोहादो। तदो णेदं सुत्तं घडदि त्ति ? ण, 'सामान्यचोदनाश्च विशेषेष्ववतिष्ठंत' इति न्यायात् जइवि सामण्णेण वुत्तं तो वि विसेसोवलद्धी होदि त्ति, सामण्णादो चरित्तमोहणीयादो तिण्हं विरुद्धाणमुप्पत्तिविरोहादो। तदो इत्थिवेदोदएण इत्थिवेदो, पुरिसवेदोदएण पुरिसवेदो, णवुंसयवेदोदएण णवुंसयवेदो होदि त्ति सिद्धं।

इत्थिवेददव्वकम्मजणिदपरिणामो किमित्थिवेदो वुच्चदि णामकम्मोदयजणिद-थण-जहण-जोणिविसिट्ठसरीरं वा। ण ताव सरीरमेत्थित्थिवेदो, 'चारित्तमोहोदएण वेदाणमुप्पत्तिं परूवेमो' त्ति एदेण सुत्तेण सह विरोहादो, सरीरीणमवगदवेदत्ताभावादो वा।

चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे जीव स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी होता है ॥ ३७ ॥

शंका—'चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे स्त्रीवेदी आदिक होते हैं' ऐसा सामान्यसे कह देनेपर समस्त चारित्रमोहनीयके उदयसे तीनों वेदोंकी उत्पत्तिका प्रसंग आता है। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, परस्पर विरोधी तीनों वेदोंकी एक ही कारणसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है। इसलिये यह सूत्र घटित नहीं होता ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि, 'सामान्यतः एक रूपसे निर्दिष्ट किये गये भावोंकी आन्तरिक व्यवस्था विशेष विशेष रूपसे होती है' इस न्यायके अनुसार यद्यपि सामान्यसे वैसा कह दिया गया है, तथापि पृथक् पृथक् वेदोंकी पृथक् पृथक् व्यवस्था पायी जाती है, क्योंकि, सामान्य चारित्रमोहनीयसे तीनों विरुद्ध वेदोंकी उत्पत्ति माननेमें तो विरोध आता ही है। अतः स्त्रीवेदके उदयसे स्त्रीवेद उत्पन्न होता है, पुरुषवेदके उदयसे पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयसे नपुंसकवेद उत्पन्न होता है, ऐसा सिद्ध हुआ।

शंका—क्या स्त्रीवेद द्रव्यकर्मसे उत्पन्न परिणामको स्त्रीवेद कहते हैं, या नाम-कर्मके उदयसे उत्पन्न स्तन, जघन, योनि आदिसे विशिष्ट शरीरको स्त्रीवेद कहते हैं ? शरीरको तो यहां स्त्रीवेद मान नहीं सकते, क्योंकि, वैसा माननेपर 'चारित्रमोहके उदयसे वेदोंकी उत्पत्तिका प्ररूपण करते हैं' इस सूत्रसे विरोध आता है और शरीर सहित जीवोंके अपगतवेदत्वके अभावका भी प्रसंग आता है। प्रथम पक्ष भी माना नहीं

ण पढमपक्खो, एक्कम्हि कज्ज-कारणभावविरोहादो ? एत्थ परिहारो वुच्चदे । ण विदिय-पक्खो, अणब्भुवगमादो । ण च पढमपक्खम्मि वुत्तदोसो संभवदि, परिणामादो परिणामिणो कथंचि भेदेण एयत्ताभावादो । कुदो ? चारित्तमोहणीयस्स उदओ कारणं, कज्जं पुण तदुदयविसिट्ठो इत्थिवेदसण्णिदो जीवो । तेण पज्जाएण तस्सुप्पज्जमाणत्तादो ण कारण-कज्जभावो एत्थ विरुज्झदे । एवं सेसवेदाणं पि वत्तव्वं । सेसा वि भावा एत्थ संभवंति, तेहि भावेहि वेदाणं णिद्देसो किण्ण कदो ? ण, वेदणिबंधणपरिणामस्स खओवसमियादिपरिणामाभावा वेदविसिट्ठजीवदव्वट्ठियसेसभावाणं पि तिवेय[1]साहारणाणं तद्धेदुत्तविरोहादो[2] ।

अवगदवेदो णाम कधं भवदि? ॥ ३८ ॥

एत्थ णय-णिक्खेव-भावे अस्सिदूण पुव्वं व चालणा कायव्वा ।

जा सकता, क्योंकि, एक ही वस्तुमें कार्य और कारण भाव स्थापित करनेमें विरोध उत्पन्न होता है ?

समाधान—इस शंकाका परिहार कहते हैं । द्वितीय पक्ष तो ठीक नहीं है, क्योंकि वैसा माना ही नहीं गया है । किन्तु प्रथम पक्षमें जो दोष बतलाया गया है वह घटित नहीं होता, क्योंकि, परिणामसे परिणामी कथंचित् भिन्न होता है जिससे उनमें एकत्त्व नहीं पाया जाता । जैसे— चारित्रमोहनीयका उदय तो कारण है, और उसका कार्य है उस कर्मोदयसे विशिष्ट स्त्रीवेदी कहलानेवाला जीव । चूंकि विवक्षित कर्मोदयसे उस पर्यायसे विशिष्ट वह जीव उत्पन्न हुआ है, अतएव यहां कारण-कार्य भाव विरोधको प्राप्त नहीं होता । इसी प्रकार शेष वेदोंके विषयमें भी कहना चाहिये ।

शंका—शेष क्षायोपशमिक आदि भाव भी तो यहां संभव हैं, फिर उन भावोंसे वेदोंका निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि, वेदमूलक परिणाममें क्षायोपशमिकादि परिणामोंका अभाव है तथा वेदविशिष्ट जीव द्रव्यमें स्थित शेष भावोंके तीनों वेदोंमें साधारण होनेसे उन्हें विवक्षित वेदका हेतु माननेमें विरोध आता है ।

जीव अपगतवेदी कैसे होता है ? ॥ ३८ ॥

यहां नय, निक्षेप और भावोंका आश्रय कर पूर्वके समान चालना करना चाहिये ।

१ कप्रतौ ' तिवेद ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' तद्धेवुत्तविरोहादो ' मप्रतौ ' तद्देववुत्तिविरोहादो ' इति पाठः ।

उवसमियाए खइयाए लद्धीए ॥ ३९ ॥

अप्पिदवेदोदएण उवसमसेडिं चढिय मोहणीयस्स अंतरं करिय जहाजोग्ग-ट्ठाणम्मि अप्पिदवेदस्स उदय-उदीरणा-ओकड्डुक्कड्डण-परपयडिसंकम-ट्ठिदि-अणुभागखंडएहि विणा जीवम्मि पोग्गलखंधाणमच्छणमुवसमो । तत्थ जा जीवस्स वेदाभावसरूवा लद्धी तीए अवगदवेदो जेण होदि तेण उवसमियाए लद्धीए अवगदवेदो होदि त्ति वुत्तं । अप्पिदवेदोदएण खवगसेडिं चढिय अंतरकरणं करिय जहाजोगट्ठाणे अप्पिदवेदस्स पोग्गलखंधाणं ट्ठिदि-अणुभागेहि सह जीवपदेसेहिंतो णिस्सेसोसरणं खओ णाम । तत्थुप्पण्णजीवपरिणामो खइओ, तस्स लद्धी खइया लद्धी, त्तीए खइयाए लद्धीए वा अवगदवेदो होदि ।

वेदाभाव-लद्धीणं एक्ककालम्मि चेव उप्पज्जमाणीणं कधमाहाराहेयभावो, कज्ज-कारणभावो वा ? ण, समकालेणुप्पज्जमाणच्छायंकुराणं कज्ज-कारणभावदंसणादो, घडुप्पत्तीए कुसूलाभावदंसणादो च । होदु णाम तिवेददव्वकम्मक्खएण भाववेदाभावो,

औपशमिक व क्षायिक लब्धिसे जीव अपगतवेदी होता है ॥ ३९ ॥

विवक्षित वेदके उदय सहित उपशमश्रेणीको चढ़कर, मोहनीय कर्मका अन्तर करके, यथायोग्य स्थानमें विवक्षित वेदके उदय, उदीरणा, अपकर्षण, उत्कर्षण, परप्रकृति-संक्रम, स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकके विना जीवमें जो पुद्गलस्कंधोंका अवस्थान होता है उसे उपशम कहते हैं । उस समय जो जीवकी वेदके अभाव रूप लब्धि है उसीसे जीव अपगतवेदी होता है और इसीसे यह कहा गया है कि उपशमलब्धिसे जीव अपगतवेदी होता है ।

अथवा— विवक्षित वेदके उदयसे क्षपकश्रेणीको चढ़कर, अन्तरकरण करके, यथायोग्य स्थानमें विवक्षित वेदसम्बन्धी पुद्गलस्कंधोंके स्थिति और अनुभाग सहित जीवप्रदेशोंसे निःशेषतः दूर हो जानेको क्षय कहते हैं । उस अवस्थामें जो जीवका परिणाम होता है वह क्षायिक भाव है । उसी भावकी लब्धिको क्षायिक लब्धि कहते हैं । उस क्षायिक लब्धिसे अपगतवेदी होता है ।

शंका—वेदका अभाव और उस अभाव सम्बन्धी लब्धि ये दोनों जब एक ही कालमें उत्पन्न होते हैं, तब उनमें आधार-आधेयभाव या कार्य कारणभाव कैसे बन सकता है ?

समाधान—बन सकता है, क्योंकि, समान कालमें उत्पन्न होनेवाले छाया और अंकुरमें कार्य-कारणभाव देखा जाता है, तथा घटकी उत्पत्तिके कालमें ही कुशूलका अभाव देखा जाता है ।

शंका—तीनों वेदोंके द्रव्यकर्मोंके क्षयसे भाववेदका अभाव भले ही हो,

कारणाभावादो कज्जाभावस्स[1] णाइयत्तादो। किंतु उवसमसेडिम्हि संतेसु दव्वकम्मक्खंधेसु भाववेदाभावो ण घडदे, संते कारणे कज्जाभावविरोहादो? ण, ओसहाणं दिट्ठसत्तीणं सामजीवे पवुत्ताणं आमेण पडिहयसत्तीणं सकज्जकरणाणुवलंभादो[2]।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णाम कधं भवदि? ॥ ४० ॥

कोधो दुविहो दव्वकोधो भावकोधो चेदि। दव्वकोधो णाम भावकोधुप्पत्ति-णिमित्तदव्वं। तं दुविहं कम्मदव्वं णोकम्मदव्वं चेदि। जं तं कम्मदव्वं तं तिविहं बंधुदय-संतभेएण। जं तं कोहणिमित्तणोकम्मदव्वं[3] णेगमणयाहिप्पाएण लद्धकोहववएसं तं दुविहं सचित्तमचित्तं चेदि। एदे कोधकसाया जस्स अत्थि सो कोधकसाई। एत्थ अप्पिदकोधकसाई कधं भवदि केण पयारेण होदि त्ति पुच्छा कदा। एवं सेसकसायाणं

....

क्योंकि, कारणके अभावसे कार्यका अभाव मानना न्यायसंगत है। किन्तु उपशमश्रेणीमें त्रिवेद सम्बन्धी पुद्गलद्रव्यस्कंधोंके रहते हुए भाववेदका अभाव घटित नहीं होता, क्योंकि, कारणके सद्भावमें कार्यका अभाव माननेमें विरोध आता है?

समाधान—विरोध नहीं आता, क्योंकि, जिनकी शक्ति देखी जा चुकी है ऐसी औषधियां जब किसी आमरोग सहित अर्थात् अजीर्णके रोगी जीवको दी जाती हैं, तब उस अजीर्ण रोगसे उन औषधियोंकी वह शक्ति प्रतिहत हो जाती है और वे अपने कार्य करनेमें असमर्थ पायी जाती हैं।

कषायमार्गणानुसार जीव क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभ-कषायी कैसे होता है? ॥ ४० ॥

क्रोध दो प्रकारका है— द्रव्यक्रोध और भावक्रोध। भावक्रोधकी उत्पत्तिके निमित्तभूत द्रव्यको द्रव्यक्रोध कहते हैं। वह द्रव्यक्रोध दो प्रकारका है— कर्मद्रव्य और नोकर्मद्रव्य। कर्मद्रव्य बंध, उदय और सत्त्वके भेदसे तीन प्रकारका है। क्रोधके निमित्त-भूत जिस नोकर्मद्रव्यने नैगम नयके अभिप्रायसे क्रोध संज्ञा प्राप्त की है वह दो प्रकारका है— सचित्त और अचित्त। ये सब क्रोधकषाय जिस जीवके होते हैं वह क्रोधकषायी है। प्रस्तुत सूत्रमें यह बात पूछी गयी है कि विवक्षित क्रोधकषायी कैसे अर्थात् किस प्रकारसे होता है। इसी प्रकार शेष कषायोंका भी कथन करना चाहिये। अविवक्षित

....

१ प्रतिषु ' कज्जाभावस्स वि ' इति पाठः। मप्रतौ तु ' वि ' इति पाठः नास्ति।

२ प्रतिषु ' सकज्जकारणाणुवलंभादो ' इति पाठः।

३ प्रतिषु ' कोसाणिमित्त- ' इति पाठः।

पि वत्तव्वं। अणप्पिदकसाए णिवारिय अप्पिदकसायजाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमागदं—

चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण ॥ ४१ ॥

सामण्णेण णिद्देसे कदे वि एत्थ विसेसोवलद्धी होदि, 'सामान्यचोदनाश्च विशेषेष्ववतिष्ठन्ते' इति न्यायात्। तेण कोधकसायस्स उदएण कोधकसाई, माणकसायस्स उदएण माणकसाई, मायाकसायस्स उदएण मायकसाई, लोभकसायस्स उदएण लोभ-कसाइ त्ति सिद्धं।

अकसाई णाम कधं भवदि ? ॥ ४२ ॥

पुव्वुत्तकसायाणं कस्स अभावेण अकसाई होदि त्ति पुच्छा कदा होदि। अप्पिदअकसाइगहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

उवसमियाए खइयाए लद्धीए ॥ ४३ ॥

चरित्तमोहणीयस्स उवसमेण खएण च जा उप्पण्णलद्धी तीए अकसायत्तं होदि, ण सेसकम्माणं[1] खएणुवसमेण वा, तत्तो जीवस्स उवसमिय-खइयलद्धीणमणुप्पत्तीदो।

कषायोंको छोड़ विवक्षित कषायोंका ज्ञान करानेके लिये अगला सूत्र आया है—

चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे जीव क्रोध आदि कषायी होता है ॥ ४१ ॥

सामान्यसे निर्देश किये जानेपर भी यहां विशेष व्यवस्था समझमें आजाती है क्योंकि 'सामान्य निर्देश विशेषोंमें भी घटित होते हैं' ऐसा न्याय है। अतः क्रोधकषायके उदयसे क्रोधकषायी, मानकषायके उदयसे मानकषायी, मायाकषायके उदयसे मायाकषायी और लोभकषायके उदयसे लोभकषायी होता है, यह बात सिद्ध हो जाती है।

जीव अकषायी कैसे होता है ? ॥ ४२ ॥

'पूर्वोक्त कषायोंमेंसे किस कषायके अभावसे जीव अकषायी होता है' यह बात यहां पूछी गयी है। विवक्षित अकषायीके ग्रहण करानेके लिये अगला सूत्र कहते हैं—

औपशमिक व क्षायिक लब्धिसे जीव अकषायी होता है ॥ ४३ ॥

चारित्रमोहनीयके उपशमसे और क्षयसे जो लब्धि उत्पन्न होती है उसीसे अकषायत्व उत्पन्न होता है। शेष कर्मोंके क्षय व उपशमसे अकषायत्व उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि उससे जीवके (तत्प्रायोग्य) औपशमिक या क्षायिक लब्धियां उत्पन्न नहीं होतीं।

१ प्रतिषु 'सेसकसायाणं' इति पाठः।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी णाम कधं भवदि ? ॥ ४४ ॥

तत्थ ताव मदिअण्णाणस्स उच्चदे– मदिअण्णाणकारणं दुविहं दव्वकारणं भावकारणं चेदि। तत्थ दव्वकारणं मदिअण्णाणणिमित्तदव्वं। तं दुविहं कम्म-णोकम्मभेएण। कम्मं तिविहं बंधुदय-संतमिदि, ओग्गहावरणादिभेएण अणेयविहं वा। णोकम्मदव्वं तिविहं सचित्त-अचित्त-मिस्समिदि। एदेसिं दव्वाणं जा मदिअण्णाणुप्पायणसत्ती तं जाव कारणं। एदेहिंतो उप्पण्णमदिअण्णाणी सो कधं भवदि केण पयारेण होदि त्ति वुत्तं होदि। एवं सेसणाणाणं पि वत्तव्वं।

एत्थ चोदओ भणदि– अण्णाणमिदि वुत्ते किं णाणस्स अभावो घेप्पदि आहो ण घेप्पदि त्ति ? णाइल्लो पक्खो मदिणाणाभावे मदिपुव्वं सुदमिदि कट्टु सुदणाणस्स वि अभावप्पसंगादो। ण चेदं पि, णाणमभावे सव्वणाणाणमभावप्पसंगा। णाणाभावे ण

ज्ञानमार्गणानुसार जीव मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी किस प्रकार होता है ? ॥ ४४ ॥

इनमेंसे प्रथम मतिअज्ञानका कथन करते हैं— मत्यज्ञानका कारण दो प्रकारका है — द्रव्यकारण और भावकारण। उनमेंसे द्रव्यकारण मतिअज्ञानका निमित्तभूत द्रव्य है, जो कर्म और नोकर्मके भेदसे दो प्रकारका है। कर्मद्रव्यकारण तीन प्रकारका है— बन्धकर्मद्रव्य, उदयकर्मद्रव्य और सत्त्वकर्मद्रव्य। अथवा, यह कर्मद्रव्य अवग्रहावरण आदि भेदसे अनेक प्रकारका है। नोकर्मद्रव्य तीन प्रकारका है— सचित्त नोकर्मद्रव्य, अचित्त नोकर्मद्रव्य और मिश्र नोकर्मद्रव्य। इन द्रव्योंकी जो मतिअज्ञानको उत्पन्न करनेवाली शक्ति है वही मतिअज्ञानकी कारणभूत है। इन सब कारणोंसे जो मतिअज्ञानी होता है वह कैसे अर्थात् किस प्रकारसे होता है, यह अर्थ कहा गया है। इसी प्रकार शेष ज्ञानोंके विषयमें भी कहना चाहिये।

शंका— यहां शंकाकार कहता है कि अज्ञान कहने पर क्या ज्ञानका अभाव ग्रहण किया है या नहीं किया ? प्रथम पक्ष तो बन नहीं सकता, क्योंकि मतिज्ञानका अभाव माननेपर चूंकि 'मतिपूर्वक ही श्रुतज्ञान होता है' इसलिये श्रुतज्ञानके भी अभावका प्रसंग आजायगा। और ऐसा भी माना जा सकता नहीं है, क्योंकि, मति और श्रुत दोनों ज्ञानोंके अभावमें सभी ज्ञानोंके अभावका प्रसंग आजाता है। ज्ञानके अभावमें

दंसणं पि, दोण्णमण्णोण्णाविणाभावादो । णाण-दंसणाणमभावे ण जीवो वि, तस्स तल्लक्खणत्तादो त्ति । ण विदियपक्खो वि, पडिसेहस्स फलाभावप्पसंगादो त्ति ? एत्थ परिहारो वुच्चदे– ण पढमपक्खवुत्तदोससंभवो, पसज्जपडिसेहेण एत्थ पओजणाभावा । ण विदियपक्खुत्तदोसो वि, अप्पेहिंतो[1] वदिरित्तासेसदव्वेसु सविहिवहसंठिएसु पडिसेहस्स फलभावुवलंभादो । किमट्ठं पुण सम्माइट्ठीणाणस्स पडिसेहो ण कीरदे, विहि-पडिसेह-भावेण दोण्हं णाणाणं विसेसाभावा ? ण परदो वदिरित्तभावसामण्णमवेक्खिय एत्थ पडिसेहो कदो जेण सम्माइट्ठिणाणस्स वि पडिसेहो होज्ज, किंतु अप्पणो अवगयत्थे जम्हि जीवे सद्दहणं ण वुप्पज्जदि अवगयत्थविवरीयसद्धुप्पायण[2]मिच्छत्तुदयबलेण तत्थ जं

दर्शन भी नहीं हो सकता, क्योंकि, ज्ञान और दर्शन इन दोनोंका परस्पर अविनाभावी सम्बन्ध है । तथा ज्ञान और दर्शनके अभावमें जीव भी नहीं रहता, क्योंकि, जीवका तो ज्ञान और दर्शन ही लक्षण है । दूसरा पक्ष भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि, यदि अज्ञान कहनेपर ज्ञानका अभाव न माना जाय तो फिर प्रतिषेधके फलाभावका प्रसंग आजाता है ?

समाधान—इस शंकाका परिहार कहते हैं– प्रथम पक्षमें कहे गये दोषकी प्रस्तुतमें संभावना नहीं है, क्योंकि यहांपर प्रसज्यप्रतिषेध अर्थात् अभावमात्रसे प्रयोजन नहीं है । दूसरे पक्षमें कहा गया दोष भी नहीं आता, क्योंकि, यहां जो अज्ञान शब्दसे ज्ञानका प्रतिषेध किया गया है उसकी आत्माको छोड़ अन्य समीपवर्ती प्रदेशमें स्थित समस्त द्रव्योंमें स्व पर विवेकके अभाव रूप सफलता पायी जाती है । अर्थात् स्व-पर विवेकसे रहित जो पदार्थ ज्ञान होता है उसे ही यहां अज्ञान कहा है ।

शंका—तो यहां सम्यग्दृष्टिके ज्ञानका भी प्रतिषेध क्यों न किया जाय, क्योंकि, विधि और प्रतिषेध भावसे मिथ्यादृष्टिज्ञान और सम्यग्दृष्टिज्ञानमें कोई विशेषता नहीं है ?

समाधान—यहां अन्य पदार्थोंमें परत्वबुद्धिके अतिरिक्त भावसामान्यकी अपेक्षा प्रतिषेध नहीं किया गया जिससे सम्यग्दृष्टिज्ञानका भी प्रतिषेध होजाय । किन्तु ज्ञात वस्तुमें विपरीत श्रद्धा उत्पन्न करानेवाले मिथ्यात्वोदयके बलसे जहांपर जीवमें अपने जाने हुए

१ प्रतिषु ' अण्णेहितो ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' -विवरीयसद्दुप्पायण- ' इति पाठः ।

णाणं तमण्णाणमिदि भण्णइ, णाणफलाभावादो । घड-पडत्थंभादिसु मिच्छाइट्ठीणं जहावगमं सद्दहणमुवलब्भदे चे? ण, तत्थ वि तस्स अणज्झवसायदंसणादो । ण चेदमसिद्धं 'इदमेवं चेवेत्ति' णिच्छयाभावा । अधवा जहा दिसामूढो वण्ण-गंध रस-फासजहावगमं सद्दहंतो वि अण्णाणी वुच्चदे जहावगमदिससद्दहणाभावादो, एवं थंभादिपयत्थे जहावगमं सद्दहंतो वि अण्णाणी वुच्चदे जिणवयणेण सद्दहणाभावादो ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ४५ ॥

कधं मदिअण्णाणिस्स खओवसमिया लद्धी ? मदिअण्णाणावरणस्स देशघादि-फद्दयाणमुदएण मदिअण्णाणित्तुवलंभादो । जदि देसघादिफद्दयाणमुदएण अण्णाणित्तं होदि तो तस्स ओदइयत्तं पसज्जदे ? ण, सव्वघादिफद्दयाणमुदयाभावा । कधं पुण खओव-

पदार्थमें श्रद्धान नहीं उत्पन्न होता, वहां जो ज्ञान होता है वह अज्ञान कहलाता है, क्योंकि, उसमें ज्ञानका फल नहीं पाया जाता ।

शंका—घट, पट, स्तंभ आदि पदार्थोंमें मिथ्यादृष्टियोंके भी यथार्थ ज्ञान और श्रद्धान पाया तो जाता है ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, उनके उस ज्ञानमें भी अनध्यवसाय अर्थात् अनिश्चय देखा जाता है । यह बात असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, 'यह ऐसा ही है' ऐसे निश्चयका वहां अभाव होता है ।

अथवा, यथार्थ दिशाके सम्बन्धमें विमूढ जीव वर्ण, गंध, रस और स्पर्श, इन इन्द्रिय-विषयोंके ज्ञानानुसार श्रद्धान करता हुआ भी अज्ञानी कहलाता है, क्योंकि, उसके यथार्थ ज्ञानकी दिशामें श्रद्धानका अभाव है । इसी प्रकार स्तंभादि पदार्थोंमें यथा-ज्ञान श्रद्धा रखता हुआ भी जीव जिन भगवानके वचनानुसार श्रद्धानके अभावसे अज्ञानी ही कहलाता है ।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव मतिअज्ञानी आदि होता है ॥ ४५ ॥

शंका—मतिअज्ञानी जीवके क्षायोपशमिक लब्धि कैसे मानी जा सकती है ?

समाधान—क्योंकि, उस जीवके मत्यज्ञानावरण कर्मके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे मत्यज्ञानित्व पाया जाता है ।

शंका—यदि देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे अज्ञानित्व होता है तो अज्ञानित्वको औदयिक भाव माननेका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं आता, क्योंकि वहां सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयका अभाव है ?

शंका—तो फिर अज्ञानित्वमें क्षायोपशमिकत्व क्या है ?

२ प्रतिषु 'घडपडत्थंआदिसु' इति पाठः ।

समियत्तं ? आवरणे संते वि आवरणिज्जस्स णाणस्स एगदेसो जम्हि उदए उवलब्भदे तस्स भावस्स खओवसमववएसादो खओवसमियत्तमण्णाणस्स ण विरुज्झदे । अधवा णाणस्स विणासो खओ णाम, तस्स उवसमो एगदेसक्खओ, तस्स खओवसमसण्णा । तत्थ णाणमण्णाणं वा उप्पज्जदि त्ति खओवसमिया लद्धी वुच्चदे ।

एवं सुदअण्णाण विभंगणाण-आभिणिबोहियणाण-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणाणं पि खओवसमिओ भावो वत्तव्वो । णवरि अप्पप्पणो आवरणाणं देसघादिफद्दयाणमुदएण खओवसमिया लद्धी होदि त्ति वत्तव्वं । सत्तण्हं णाणाणं सत्त चेव आवरणाणि किण्ण होदि त्ति चे ? ण, पंचणाणवदिरित्तणाणाणुवलंभा । मदिअण्णाण-सुदअण्णाण-विभंगणाणाणमभावो वि णत्थि, जहाकमेण आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणेसु तेसिमंतब्भावादो ।

पुव्वमिंदिय-जोगमग्गणासु खओवसमियभावपरूवणाए सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएणेत्ति परूविदं । संपहि दोण्हं पडिसेहं कादूण देसघादिफद्दयाणमुदएणेव खओवसमियभावो होदि त्ति परूवेंतस्स सुववयण-

समाधान—आवरणके होते हुए भी आवरणीय ज्ञानका एक देश जहांपर उदयमें पाया जाता है उसी भावको क्षायोपशमिक नाम दिया गया है । इससे अज्ञानको क्षायोपशमिक भाव माननेमें कोई विरोध नहीं आता । अथवा, ज्ञानके विनाशका नाम क्षय है । उस क्षयका उपशम हुआ एकदेश क्षय । इस प्रकार ज्ञानके एकदेशीय क्षयकी क्षयोपशम संज्ञा मानी जा सकती है । ऐसा क्षयोपशम होनेपर जो ज्ञान या अज्ञान उत्पन्न होता है उसीको क्षायोपशमिक लब्धि कहते हैं ।

इसी प्रकार श्रुताज्ञान, विभंगज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानको भी क्षायोपशमिक भाव कहना चाहिये । विशेषता केवल यह है कि इन सब ज्ञानोंमें अपने अपने आवरणोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक लब्धि होती है, ऐसा कहना चाहिये ।

शंका—इन सातों ज्ञानोंके सात ही आवरण क्यों नहीं होते ?

समाधान— नहीं होते, क्योंकि, पांच ज्ञानोंके अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान पाये नहीं जाते । किन्तु इससे मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान और विभंगज्ञानका अभाव नहीं हो जाता, क्योंकि, उनका यथाक्रमसे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमें अन्तर्भाव होता है ।

शंका— पहले इन्द्रियमार्गणा और योगमार्गणामें सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हीं स्पर्धकोंके सत्त्वोपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक भावकी प्ररूपणा की गयी है । किन्तु यहांपर सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षय और उनके सत्त्वोपशम इन दोनोंका प्रतिषेध करके केवल देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक भाव होता

विरोहो किण्ण जायदे ? ण, जदि सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण संजुत्तदेसघादिफद्दयाण-मुदएणेव खओवसमियो भावो इच्छिज्जदि तो फासिंदिय-कायजोगो-मदि-सुदणाणाणं खओवसमिओ भावो ण पावदे, पासिंदियावरण-वीरियंतराइय-मदि-सुदणाणावरणाणं सव्वघादिफद्दयाणं सव्वकालमुदयाभावा। ण च सुववयणविरोहो वि, इंदिय-जोगमग्गणासु अण्णेसिमाइरियाणं वक्खाणक्कमजाणावणट्ठं तत्थ तधापरूवणादो। जं जदो णियमेण उप्पज्जदि तं तस्स कज्जमियरं च कारणं। ण च देसघादिफद्दयाणमुदओ व्व सव्वघादि-फद्दयाणमुदयक्खओ णियमेण अप्पप्पणो णाणजणओ, खीणकसायचरिमसमए ओहि-मणपज्जवणाणावरणसव्वघादिफद्दयाणं खएण समुप्पज्जमाणओहि-मणपज्जवणाणाणमणु-वलंभादो।

केवलणाणी णाम कधं भवदि ? ॥ ४६ ॥

किमोदइएणोवसमिएण खओवसमिएण पारिणामिएणेत्ति[1] ? ण पारिणामिएण

है ऐसा प्ररूपण करनेवालेके स्ववचनविरोध दोष क्यों नहीं होता ?

समाधान— नहीं होता, क्योंकि यदि सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे संयुक्त देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे ही क्षायोपशमिक भाव मानना इष्ट हो तो स्पर्शेन्द्रिय, काययोग और मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान, इनके क्षायोपशमिक भाव प्राप्त नहीं होगा, चूंकि, स्पर्शेन्द्रियावरण, वीर्यान्तराय और मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान इनके आवरणोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयका सब कालमें अभाव है। अर्थात् उक्त आवरणोंके सर्वघाती स्पर्धकोंका उदय कभी होता ही नहीं है। इसमें कोई स्ववचन विरोध भी नहीं है क्योंकि इन्द्रियमार्गणा और योगमार्गणामें अन्य आचार्योंके व्याख्यानक्रमका ज्ञान करानेके लिये वहां वैसा प्ररूपण किया गया है। जो जिससे नियमतः उत्पन्न होता है वह उसका कार्य होता है और वह दूसरा उसको उत्पन्न करने वाला कारण होता है। किन्तु देश-घाती स्पर्धकोंके उदयके समान सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षय नियमसे अपने अपने ज्ञानके उत्पादक नहीं होते, क्योंकि, क्षीणकषायके अन्तिम समयमें अवधि और मनःपर्यय ज्ञानावरणोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके क्षयसे अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होते हुए नहीं पाये जाते।

जीव केवलज्ञानी कैसे होता है ? ॥ ४६ ॥

क्या औदयिक भावसे, कि औपशमिक भावसे, कि क्षायोपशमिक भावसे, कि पारिणामिक भावसे जीव केवलज्ञानी होता है ? पारिणामिक भावसे तो होता नहीं,

१ प्रतिषु ' पारिणामिणो त्ति ' इति पाठः ।

भावेण होदि, सव्वजीवाणं केवलणाणुप्पत्तिप्पसंगादो। णोदइएण, केवलणाणपडिबंधि-कम्मोदयस्स तदुप्पायणविरोहादो। णोवसमियं, णाणावरणस्स मोहणीयस्सेवुवसमाभावा। ण खओवसमियं, असहायस्स करण-क्कम-व्ववहाणादीदस्स खओवसमियत्तविरोहादो। सव्वं पि णाणं केवलणाणमेव आवरणविगमवसेण तत्तो विणिग्गयणाणकणाणमुवलंभादो। ण च एसो णाणकणो केवलणाणादो अण्णो, जीवे पंचण्हं णाणाणमभावादो। तेसिमभावो कुदोवगम्मदे? केवलणाणेण तिकालगोयरासेसदव्व-पज्जयविसएणाक्कमेण इंदियालोआदि-सहेज्जाणवेक्खेण सुहुम-दूर-समिवादिविग्घसंघुम्मुक्केणक्कंतासेसजीवपदेसेसु सक्कम-सस-हेज्ज-सपडिवक्ख-परिमिय-अविसदणाणाणमत्थित्तविरोहादो। किं च ण केवलणाणेण अवगयत्थे सेसणाणाणं पवुत्ती, विसदाविसदाणमेक्कत्थेक्ककालम्मि पवुत्तीविरोहादो, अवगदावगमे फलाभावादो च। णाणवगदे वि पवुत्ती तदणवगदत्थाभावादो। तदो

क्योंकि, यदि ऐसा होता तो सभी जीवोंके केवलज्ञानकी उत्पत्तिका प्रसंग आजाता। औदयिक भावसे भी केवलज्ञान नहीं होता, क्योंकि, केवलज्ञानके प्रतिबंधक कर्मोदयसे उसकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है। केवलज्ञान औपशमिक भी नहीं है, क्योंकि, मोहनीयके समान ज्ञानावरणका तो उपशम ही नहीं होता।

केवलज्ञान क्षायोपशमिक भी नहीं है, क्योंकि असहाय और करण, क्रम एवं व्यवधानसे रहित ज्ञानको क्षायोपशमिक माननेमें विरोध आता है। यहां शंका होती है कि समस्त ज्ञान केवलज्ञान ही हैं, क्योंकि, आवरणके दूर हो जानेसे उसीसे निकलने-वाले ज्ञानकण पाये जाते हैं। यह ज्ञानकण केवलज्ञानसे भिन्न नहीं हैं, क्योंकि, जीवमें पांच ज्ञानोंका अभाव पाया जाता है। यदि कहा जाय कि जीवमें पांच ज्ञानोंका अभाव है, यह कहांसे जाना जाता है? तो इसका समाधान है कि केवलज्ञान होता है त्रिकाल-गोचर, समस्त द्रव्यों और उनकी पर्यायोंको विषय करनेवाला, अक्रमभावी, इन्द्रिया-लोकादि साधनोंसे निरपेक्ष, और सूक्ष्म, दूर, समीप (?) आदि विघ्नसमूहसे मुक्त। ऐसे केवलज्ञानसे जीवके जो समस्त प्रदेश व्याप्त हैं उनमें क्रमभावी, साधनसापेक्ष, सप्रतिपक्ष, परिमित और अविशद मति आदि ज्ञानोंका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है? और केवलज्ञानसे पदार्थोंके जान लेनेपर शेषज्ञानोंकी प्रवृत्ति भी नहीं होती, क्योंकि, विशद और अविशद ज्ञानोंकी एकत्र एक कालमें प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है और जाने हुए पदार्थको पुनः जाननेमें कोई फल भी नहीं है। मति आदि ज्ञानोंकी प्रवृत्ति केवलज्ञानसे न जाने हुए पदार्थोंमें होती है, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि, केवलज्ञानसे न जाना

जीवे ण पंच णाणाणि, केवलणाणमेक्कं चेव । ण चावरणाणि णाणमुप्पाइयंति विणासयाणं तदुप्पायणविरोहादो । तदो केवलणाणं खओवसमियं भावं लहदि त्ति ण, एदस्स समहेजस्स केवलत्तविरोहादो । ण च छारेणोड्डद्धग्गिविणिग्गयबप्फाए अग्गिववएसो अग्गिबुद्धी वा अग्गिववहारो वा अत्थि, अणुवलंभादो । तदो णेदाणि णाणाणि केवलणाणं । तेण कारणेण केवलणाणं ण खओवसमियमिदि । ण खइयं पि, खओ णाम अभावो तस्स कारणत्तविरोहादो । एदं सव्वं बुद्धीए काऊण केवलणाणी कधं होदि त्ति भणिदं ।

खइयाए लद्धीए ॥ ४७ ॥

ण च केवलणाणावरणक्खओ तुच्छो त्ति ण कज्जयरो, केवलणाणावरणबंध-संतोदयाभावस्स अणंतवीरिय-वेरग्ग-सम्मत्त-दंसणादिगुणेहि जुत्तजीवदव्वस्स तुच्छत्तविरोहादो । भावस्स अभावत्तं ण विरुज्झदे, भावाभावाणमण्णोण्णं विस्समेणेव सव्वप्पणा आलिंगिऊण

गया हो ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं है ' इसलिये जीवमें पांच ज्ञान नहीं होते, एकमात्र केवलज्ञान ही होता है ?

आवरणोंको ज्ञानका उत्पादक मान नहीं सकते, क्योंकि, जो विनाशक हैं उन्हें उत्पादक माननेमें विरोध आता है । इसलिये ' केवलज्ञान क्षायोपशमिक भाव ही प्राप्त होता है ' ऐसा भी नहीं मान सकते, क्योंकि, क्षायोपशमिक भाव साधनसापेक्ष होनेसे उसके केवलत्व माननेमें विरोध आता है । क्षार (भस्म) से ढकी हुई अग्निमें निकले हुए बाष्पको अग्नि नाम नहीं दिया जा सकता, न उसमें अग्निकी बुद्धि उत्पन्न होती, और न अग्निका व्यवहार ही, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता । अतएव ये सब मति आदि ज्ञान केवलज्ञान नहीं हो सकते । इस कारणसे केवलज्ञान क्षायोपशमिक भी नहीं है ।

केवलज्ञान क्षायिक भी नहीं है, क्योंकि, क्षय तो अभावको कहते हैं, और अभावको कारण माननेमें विरोध आता है ।

इन सब विकल्पोंको मनमें करके ' जीव केवलज्ञानी कैसे होता है ' यह प्रश्न किया गया है ।

क्षायिक लब्धिसे जीव केवलज्ञानी होता है ॥ ४७ ॥

केवलज्ञानावरणका क्षय तुच्छ अर्थात् अभावरूप मात्र है इसलिये वह कोई कार्यकरनेमें समर्थ नहीं हो सकता, ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि, केवलज्ञानावरणके बन्ध, सत्त्व और उदयके अभाव सहित तथा अनन्तवीर्य, वैराग्य, सम्यक्त्व व दर्शन आदि गुणोंसे युक्त जीव द्रव्यको तुच्छ माननेमें विरोध आता है । किसी भावको अभावरूप मानना विरोधी बात नहीं है, क्योंकि भाव और अभाव स्वभावसे ही एक दूसरेको

ड्डिदाणमुवलंभादो। ण च उवलंभमाणे विरोहो[1] अत्थि, अणुवलद्धिविसयस्स तस्स उवलद्धीए अत्थित्तविरोहादो।

संजमाणुवादेण संजदो सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदो णाम कधं भवदि? ॥ ४८ ॥

णामसंजमो ट्ठवणसंजमो दव्वसंजमो भावसंजमो चेदि चउव्विहो संजमो। णाम-ट्ठवणसंजमा गदा। दव्वसंजमो दुविहो आगम-णोआगमभेएण। आगमो गदो। णोआगमो तिविहो जाणुगसरीरणोआगमदव्वसंजम-भवियणोआगमदव्वसंजम-तव्वदिरित्तणोआगमदव्वसंजमभेएण। जाणुग-भवियाणि[2] गदाणि। तव्वदिरित्तदव्वसंजमो संजमसाहणपिच्छाहार-कवली-पोत्थयादीणि[3]। भावसंजमो दुविहो आगम-णोआगमभेएण। आगमो गदो। णोआगमो तिविहो खइओ खओवसमिओ उवसमिओ चेदि। एदेसु संजमपयारेसु केण पयारेण संजमो होदि त्ति पुच्छा कदा। एवं सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदाणं पि णिक्खेवो कायव्वो।

सर्वात्म रूपसे आलिंगन करके स्थित पाये जाते हैं। जो बात पाई जाती है उसमें विरोध नहीं रहता, क्योंकि, विरोधका विषय अनुपलब्धि है और इसलिये जहां जिस बातकी उपलब्धि होती है उसमें फिर विरोधका अस्तित्व माननेमें ही विरोध आता है।

संयममार्गणानुसार जीव संयत तथा सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धि संयत कैसे होता है? ॥ ४८ ॥

नामसंयम, स्थापनासंयम, द्रव्यसंयम और भावसंयम, इस प्रकार संयम चार प्रकारका है। नाम और स्थापना संयम तो गये। द्रव्यसंयम आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। आगमद्रव्यसंयम भी गया। नोआगमद्रव्यसंयमके तीन भेद हैं— ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यसंयम, भव्य नोआगमद्रव्यसंयम और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यसंयम। ज्ञायकशरीर और भव्य भी गये। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यसंयम संयमके साधनभूत पिच्छिका, आहार, कमण्डलु (?) पुस्तक आदिको कहते हैं।

भावसंयम आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। आगमभावसंयम गया। नोआगमभावसंयम तीन प्रकारका है— क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक।

इन संयमोंके प्रकारोंमेंसे किस प्रकारसे संयम होता है यह प्रश्न किया गया है। इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंका भी निक्षेप करना चाहिये।

१ प्रतिषु 'विराहा' इति पाठः। २ प्रतिषु '-भविय' इति पाठः।
३ कप्रतौ 'केवलीपोत्थयादीणि' इति पाठः।

उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए ॥ ४९ ॥

संजमस्स ताव उच्चदे- चरित्तावरणस्स सव्वोवसमेण उवसंतकसायम्मि संजमो होदि त्ति उवसमियाए लद्धीए संजमस्सुप्पत्ती उत्ता। कधं तस्स खइया लद्धी? चरित्तावरणस्स खएण संजमुप्पत्तीदो। कधं खओवसमिया लद्धी? चदुसंजलण-णवणोकसायाणं देसघादिफद्दयाणमुदएण संजमुप्पत्तीदो। कधमेदेसिं उदयस्स खओवसमववएसो? सव्वघादिफद्दयाणि अणंतगुणहीणाणि होदूण देसघादिफद्दयत्तणेण परिणमिय उदयमागच्छंति, तेसिमणंतगुणहीणत्तं खओ णाम। देसघादिफद्दयसरूवेणवट्ठाणमुवसमो। तेहि खओवसमेहि संजुत्तोदओ[1] खओवसमो णाम। तदो समुप्पण्णो संजमो वि तेण खओव-

औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव संयत व सामायिक-छेदोपस्थान-शुद्धिसंयत होता है ॥ ४९ ॥

पहले संयमका वर्णन करते हैं — चारित्रावरण कर्मके सर्वोपशमसे जिस जीवकी कषायें उपशान्त हो गई हैं उसके संयम होता है। इस प्रकार औपशमिक लब्धिसे संयमकी उत्पत्ति कही।

शंका - संयतके क्षायिक लब्धि कैसे होती है?

समाधान—चूंकि चारित्रावरण कर्मके क्षयसे भी संयमकी उत्पत्ति होती है, इससे क्षायिक लब्धि द्वारा जीव संयत होता है।

शंका—संयतके क्षायोपशमिक लब्धि किस प्रकार होती है?

समाधान—चारों संज्वलन कषायों और नौ नोकषायोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे संयमकी उत्पत्ति होती है, इस प्रकार संयतके क्षायोपशमिक लब्धि पायी जाती है।

शंका—नोकषायोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदयको क्षयोपशम नाम क्यों दिया गया?

समाधान—सर्वघाती स्पर्धक अनन्तगुणे हीन होकर और देशघाती स्पर्धकोंमें परिणत होकर उदयमें आते हैं। उन सर्वघाती स्पर्धकोंका अनन्तगुणहीनत्व ही क्षय कहलाता है और उनका देशघाती स्पर्धकोंके रूपसे अवस्थान होना उपशम है। उन्हीं क्षय और उपशमसे संयुक्त उदय क्षयोपशम कहलाता है। उसी क्षयोपशमसे उत्पन्न

१ प्रतिषु 'खओवसमेहि संजुत्तादओ' इति पाठः।

समिओ । एवं सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदाणं पि वत्तव्वं ।

होदु णाम एदेसिं खओवसमलद्धी, णोवसमिया खइया च, अणियट्टीगुणट्ठाणादो उवरि एदेसिमभावा । ण च हेट्ठिमखवगुवसामगदोगुणट्ठाणेसु चरित्तमोहणीयस्स खवणा उवसामणा वा अत्थि जेणेदेसिं खइया उवसमिया वा लद्धी होज्ज? ण, खवगुवसामगअणियट्टीगुणट्ठाणे वि लोभसंजलणवदिरित्तासेसचरित्तमोहणीयस्स खवणुवसामणदंसणेण तत्थ खइय-उवसमियलद्धीणं संभवुवलंभा । अथवा खवगुवसामगअपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि उवरि सव्वत्थ खइय-उवसमियसंजमलद्धीओ अत्थि चेव । कुदो? पारद्धपढमसमयप्पहुडि थोवथोवखवणुवसामणकज्जणिप्पत्तिदंसणादो । पडिसमयं कज्जणिप्पत्तीए विणा चरिमसमए चेव णिप्पज्जमाणकज्जाणुवलंभादो च । कधमेक्कस्स चरित्तस्स तिण्णि भावा? ण, एक्कस्स वि चित्तपयंगस्स बहुवण्णदंसणादो ।

संयम भी इसी कारण क्षायोपशमिक होता है । इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापन शुद्धिसंयतोंके विषयमें भी कहना चाहिये ।

शंका—सामायिक और छेदोपस्थापन शुद्धिसंयतोंके क्षयोपशम लब्धि भले ही हो, किन्तु उनके औपशमिक और क्षायिक लब्धि नहीं हो सकती, क्योंकि अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे ऊपर इन संयतोंका अभाव पाया जाता है । और नीचेके अर्थात् अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो क्षपक व उपशामक गुणस्थानोंमें चारित्रमोहनीयकी क्षपणा व उपशामना होती नहीं है, जिससे उक्त संयतोंके क्षायिक व औपशमिक लब्धि संभव हो सके ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि क्षपक व उपशामक सम्बन्धी अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें भी लोभ संज्वलनको छोड़कर अशेष चारित्रमोहनीयका क्षपण व उपशमनके पाये जानेसे वहां क्षायिक व औपशमिक लब्धियोंकी संभावना पाई जाती है । अथवा, क्षपक और उपशामक सम्बन्धी अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लगाकर ऊपर सर्वत्र क्षायिक और औपशमिक संयमलब्धियां हैं ही, क्योंकि, उक्त गुणस्थानके प्रारंभ होनेके प्रथम समयसे लगाकर थोड़े थोड़े क्षपण और उपशामन रूप कार्यकी निष्पत्ति देखी जाती है । यदि प्रत्येक समय कार्यकी निष्पत्ति न हो तो अन्तिम समयमें भी कार्य पूरा होता नहीं पाया जा सकता ।

शंका—एक ही चारित्रके औपशमिकादि तीन भाव कैसे होते हैं ?

समाधान—जिस प्रकार एक ही चित्र पतंग अर्थात् बहुवर्ण पक्षीके बहुतसे वर्ण देखे जाते हैं, उसी प्रकार एक ही चारित्र नाना भावोंसे युक्त हो सकता है ।

परिहारसुद्धिसंजदो संजदासंजदो णाम कधं भवदि? ॥ ५० ॥

एत्थ वि णय-णिक्खेवे अस्सिदूण पुव्वं व चालणा कायव्वा।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ५१ ॥

चदुसंजलण-णवणोकसायाणं सव्वघादिफद्दयाणमणंतगुणहाणीए खयं गंतूण देसघादित्तणेणुवसंतफद्दयाणमुदएण परिहारसुद्धिसंजमुप्पत्तीदो खओवसमियाए लद्धीए परिहारसुद्धिसंजमो। चदुसंजलण-णवणोकसायाणं खओवसमसण्णिददेसघादिफद्दयाणमुदएण संजमासंजमुप्पत्तीदो खओवसमलद्धीए संजमासंजमो। तेरसण्हं पयडीणं देसघादिफद्दयाणमुदओ संजमलंभणिमित्तो। कधं संजमासंजमणिमित्तं पडिवज्जदे? ण, पच्चक्खाणावरणसव्वघादिफद्दयाणमुदएण पडिहयचदुसंजलणादिदेसघादिफद्दयाणमुदयस्स संजमासंजमं मोत्तूण संजमुप्पायणे असमत्थत्तादो।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदो णाम कधं भवदि? ॥ ५२ ॥

जीव परिहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत कैसे होता है? ॥ ५० ॥

यहां भी नय और निक्षेपोंका आश्रय लेकर पूर्ववत् चालना करना चाहिये।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव परिहारशुद्धिसंयत व संयतासंयत होता है ॥ ५१ ॥

चार संज्वलन और नव नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके अनन्तगुणी हानि द्वारा क्षयको प्राप्त होकर देशघाती रूपसे उपशान्त हुए स्पर्धकोंके उदयसे परिहारशुद्धिसंयमकी उत्पत्ति होती है, इसीलिये क्षायोपशमिक लब्धिसे परिहारशुद्धिसंयम होता है। चार संज्वलन और नव नोकषायोंके क्षयोपशम संज्ञावाले देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे संयमासंयमकी उत्पत्ति होती है, इसीलिये क्षयोपशम लब्धिसे संयमासंयम होता है।

शंका — चार संज्वलन और नव नोकषाय, इन तेरह प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोंका उदय तो संयमकी प्राप्तिमें निमित्त होता है, वह संयमासंयमका निमित्त कैसे स्वीकार किया गया है?

समाधान — नहीं, क्योंकि प्रत्याख्यानावरणके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे जिन चार संज्वलनादिकके देशघाती स्पर्धकोंका उदय प्रतिहत हो गया है उस उदयके संयमासंयमको छोड़ संयम उत्पन्न करनेका सामर्थ्य नहीं होता।

जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत कैसे होता है? ॥ ५२ ॥

सुगममेदं ।

उवसमियाए खइयाए लद्धीए ॥ ५३ ॥

उवसामग-क्खवगसुहुमसांपराइयगुणट्ठाणेसु सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमस्सुवलंभादो उवसमियाए खइयाए लद्धीए सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमो । उवसंत-खीणकसायादिसु जहाक्खादविहारसुद्धिसंजमुवलंभादो उवसमियाए खइयाए लद्धीए जहाक्खादविहार-सुद्धिसंजमो ।

असंजदो णाम कधं भवदि ? ॥ ५४ ॥

सुगममेदं ।

संजमघादीणं कम्माणमुदएण ॥ ५५ ॥

अपच्चक्खाणावरणस्स उदओ चेव असंजमस्स हेदू, संजमासंजमपडिसेहमुहेण सव्वसंजमघादित्तादो । तदो संजमघादीणं कम्माणमुदएणेत्ति कधं घडदे ? ण, इदरेसिं पि चरित्तावरणीयाणं कम्माणमुदएण विणा अपच्चक्खाणावरणस्स देससंजमघायणे सामत्थि-

---

यह सूत्र सुगम है ।

औपशमिक और क्षायिक लब्धिसे जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत होता है ॥ ५३ ॥

उपशामक और क्षपक दोनों प्रकारके सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानोंमें सूक्ष्म-सांपरायिकशुद्धिसंयमकी प्राप्ति होती है, इसीलिये औपशमिक व क्षायिक लब्धिसे सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयम होता है ।

उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय आदि गुणस्थानोंमें यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमकी प्राप्ति होनेसे औपशमिक व क्षायिक लब्धिसे यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम होता है ।

जीव असंयत कैसे होता है ? ॥ ५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयमके घाती कर्मोंके उदयसे जीव असंयत होता है ॥ ५५ ॥

शंका—एक अप्रत्याख्यानावरणका उदय ही असंयमका हेतु माना गया है, क्योंकि, वही संयमासंयमके प्रतिषेधसे प्रारम्भ कर समस्त संयमका घाती होता है। तब फिर ' संयमघाती कर्मोंके उदयसे असंयत होता ' ऐसा कहना कैसे घटित होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दूसरे भी चारित्रावरण कर्मोंके उदयके विना केवल अप्रत्याख्यानावरणके देशसंयमको घात करनेका सामर्थ्य नहीं होता ।

याभावादो। संजमो णाम जीवसहावो, तदो ण सो अण्णेहि विणासिज्जदि तव्विणासे जीवदव्वस्स वि विणासप्पसंगादो ? ण, उवजोगस्सेव संजमस्स जीवस्स लक्खणत्ताभावादो। किं लक्खणं ? जस्साभावे दव्वस्साभावो होदि तं तस्स लक्खणं, जहा पोग्गलदव्वस्स रूव-रस-गंध-फासा, जीवस्स उवजोगो। तम्हा ण संजमाभावेण जीवदव्वस्साभावो इदि।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी णाम कधं भवदि ? ॥ ५६ ॥

एत्थ पुव्वं व णिक्खेवो कायव्वो। ण दंसणमत्थि विसयाभावादो। ण बज्झत्थसामण्णग्गहणं दंसणं, केवलदंसणस्स अभावप्पसंगादो। कुदो ? केवलणाणेण तिकालगोयराणंतत्थ-वेंजणपज्जयसरूवेसु सव्वदव्वेसु अवगएसु केवलदंसणस्स विसयाभावा।

शंका—संयम तो जीवका स्वभाव ही है, इसीलिये वह अन्यके द्वारा विनष्ट नहीं किया सकता, क्योंकि, उसका विनाश होनेपर तो जीव द्रव्यके भी विनाशका प्रसंग आजायगा ?

समाधान—नहीं आयगा, क्योंकि, जिस प्रकार उपयोग जीवका लक्षण माना गया है, उस प्रकार संयम जीवका लक्षण नहीं होता।

शंका—लक्षण किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसके अभावमें द्रव्यका भी अभाव हो जाता है वही उस द्रव्यका लक्षण है। जैसे— पुद्गल द्रव्यका लक्षण रूप, रस, गंध और स्पर्श: व जीवका उपयोग।

अतएव संयमके अभावमें जीव द्रव्यका अभाव नहीं होता।

दर्शनमार्गणानुसार जीव चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी व अवधिदर्शनी कैसे होता है ? ॥ ५६ ॥

यहां पूर्वानुसार निक्षेप करना चाहिये।

शंका—दर्शन है ही नहीं, क्योंकि, उसका कोई विषय नहीं है। बाह्य पदार्थोंके सामान्यको ग्रहण करना दर्शन नहीं हो सकता, क्योंकि, वैसा माननेपर केवलदर्शनके अभावका प्रसंग आजायगा। इसका कारण यह है कि जब केवलज्ञानके द्वारा त्रिकालगोचर अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्याय सरूप समस्त द्रव्योंको जान लिया जाता है, तब केवलदर्शनके लिये कोई विषय ही नहीं रहता। ऐसा तो हो नहीं सकता कि केवल-

ण च गहिदमेव गेण्हदि केवलदंसणं, गहिदग्गहणे फलाभावा। ण चासेसविसेसमेत्तग्गाही केवलणाणं जेण सयलत्थसामण्णं केवलदंसणस्स विसओ होज्ज, संसारावत्थाए आवरणवसेण कमेण पयट्टमाणणाण-दंसणाणं' दव्वावगमाभावप्पसंगादो। कुदो ? ण णाणं दव्वपरिच्छेदयं, सामण्णवदिरित्तविसेसेसु तस्स वावारादो। ण दंसणं पि दव्वपरिच्छेदयं, तस्स विसेसवदिरित्तसामण्णम्मि वावारादो। ण केवलं संसारावत्थाए चेव दव्वग्गहणाभावो, किंतु ण केवलिम्हि वि दव्वग्गहणमत्थि, सामण्ण-विसेसेसु एयंत-दुरंतपंथसंठिएसु वावदाणं केवलदंसण-णाणाणं दव्वम्मि वावारविरोहादो। ण च एयंते सामण्ण-विसेसा अत्थि जेण ते तेसिं विसओ होज्ज। असंतस्स पमेयत्ते इच्छिज्जमाणे गद्दहसिंगं पि पमेयत्तमल्लिएज्ज, अभावं पडि विसेसाभावादो। पमेयाभावे ण पमाणं पि, तस्स तण्णिबंधणत्तादो। तम्हा ण दंसणमत्थि त्ति सिद्धं ?

ज्ञानके द्वारा ग्रहण किये पदार्थको ही केवलदर्शन ग्रहण करता है, क्योंकि, जो वस्तु ग्रहण की जा चुकी है उसे ही पुनः ग्रहण करनेका कोई फल नहीं। यह भी नहीं हो सकता कि समस्त विशेषमात्रका ग्रहण करनेवाला ही केवलज्ञान हो जिससे समस्त पदार्थोंका सामान्य धर्म केवलदर्शनका विषय हो जाय, क्योंकि ऐसा माननेपर तो संसारावस्थामें जब आवरणके वशसे ज्ञान और दर्शनकी प्रवृत्ति क्रमशः होती है तब द्रव्यके ज्ञान होनेके अभावका ही प्रसंग आजायगा। इसका कारण यह है — ज्ञान द्रव्यका परिच्छेदक अर्थात् ज्ञान करानेवाला नहीं रहा, क्योंकि उसका व्यापार सामान्य रहित विशेषोंमें ही परिमित हो गया और न दर्शन ही द्रव्यका परिच्छेदक रहा, क्योंकि, उसका व्यापार विशेष रहित सामान्यमें सीमित हो गया। इस प्रकार न केवल संसारावस्थामें ही द्रव्यके ग्रहणका अभाव होगा, किन्तु केवलीमें भी द्रव्यका ग्रहण नहीं हो सकेगा, क्योंकि एकान्तरूपी दुरन्त पथमें स्थित सामान्य व विशेषमें प्रवृत्त हुए केवलदर्शन और केवलज्ञानका द्रव्यमात्रमें व्यापार माननेमें विरोध आता है। एकान्ततः पृथक् सामान्य व विशेष तो होते नहीं है जिससे कि वे क्रमशः केवलदर्शन और केवलज्ञानके विषय हो सकें। और यदि जो है ही नहीं उसको भी प्रमेयरूपसे मानना अभीष्ट हो तो गधेका सींग भी प्रमेय कोटिमें आजायगा, क्योंकि, अभावकी अपेक्षा दोनोंमें कोई विशेषता रही नहीं। प्रमेयके न रहनेपर प्रमाण भी नहीं रहता, क्योंकि, प्रमाण तो प्रमेयमूलक ही होता है। इसलिये दर्शनकी कोई अलग सत्ता है ही नहीं यह सिद्ध हुआ ?

१ प्रतिषु ' -दंसणाए ' इति पाठः ।

एत्थ परिहारो उच्चदे- अत्थि दंसणं, सुत्तम्मि अट्ठकम्मणिद्देसादो। ण चासंते आवरणिज्जे आवारयमत्थि, अण्णत्थ तहाणुवलंभादो। ण चोवयारेण[1] दंसणावरणणिद्देसो, मुद्दियस्साभावे उवयाराणुववत्तीदो। ण चावरणिज्जं णत्थि, चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी खओवसमियाए, केवलदंसणी खइयाए लद्धीए त्ति तदत्थित्तपदुप्पायणजिणवयणदंसणादो।

एओ मे सस्सदो अप्पा णाण-दंसणलक्खणो।
सेसा मे[2] बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥ १६ ॥

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य।
सायारमणायारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥ १७ ॥

इच्चादिउवसंहारसुत्तदंसणादो च। आगमपमाणेण होदु णाम दंसणस्स अत्थित्तं ण जुत्तीए चे? ण, जुत्तीहि आगमस्स बाहाभावादो। आगमेण वि जच्चा जुत्ती ण

समाधान—अब यहां उक्त शंकाका परिहार कहते हैं — दर्शन है, क्योंकि, सूत्रमें आठ कर्मोंका निर्देश किया गया है। आवरणीयके अभावमें आवारक हो नहीं सकता, क्योंकि, अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता। यह भी नहीं कह सकते कि दर्शनावरणका निर्देश केवल उपचारसे किया गया है, क्योंकि, मुख्य वस्तुके अभावमें उपचारकी उपपत्ति नहीं बनती। आवरणीय है ही नहीं सो बात भी नहीं है, क्योंकि, 'चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी क्षायोपशमिक लब्धिसे तथा केवलदर्शनी क्षायिक लब्धिसे होते हैं' ऐसे आवरणीयके अस्तित्वका प्रतिपादन करनेवाले जिन भगवान्‌के वचन देखे जाते हैं। तथा—

ज्ञान और दर्शनरूप लक्षणवाला मेरा एक आत्मा ही शाश्वत है। शेष समस्त संयोगरूप लक्षणवाले पदार्थ मुझसे बाह्य हैं ॥ १६ ॥

अशरीर अर्थात् काय रहित, शुद्ध जीवप्रदेशोंसे घनीभूत, दर्शन और ज्ञानमें अनाकार व साकार रूपसे उपयोग रखनेवाले, यह सिद्ध जीवोंका लक्षण है ॥ १७ ॥

इस प्रकारके अनेक उपसंहारसूत्र देखनेसे भी यही सिद्ध होता है कि दर्शन है।

शंका—आगम प्रमाणसे भले ही दर्शनका अस्तित्व हो, किन्तु युक्तिसे तो दर्शनका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता?

समाधान—होता है, क्योंकि, युक्तियोंसे आगमकी बाधा नहीं होती।

शंका—आगमसे भी तो जात्य अर्थात् उत्तम युक्तिकी बाधा नहीं होना चाहिये?

१ प्रतिषु 'चोवयारे' इति पाठः। २ कप्रतौ 'जे' इति पाठः।

बाहिज्जदि त्ति चे? सच्चं ण बाहिज्जदि जच्चा जुत्ती, किंतु इमा बाहिज्जदि जच्चत्ताभावादो। तं जहा– ण णाणेण विसेसो चेव घेप्पदि सामण्ण-विसेसप्पयत्तणेण पत्त-जच्चंतरदव्वुवलंभादो। ण च णयदुवविसयमगेण्हंतस्स णाणस्स सायारत्तमत्थि, विरोहादो। तहा समंतभद्दसामिणा वि उत्तं—

विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूप: प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानं।
गुणो परो मुख्यनियामहेतुर्नय:स दृष्टांतसमर्थनस्ते ॥ इति ॥ १८ ॥

ण च एवं संते दंसणस्स अभावो, बज्झत्थे मोत्तूण तस्स अंतरंगत्थे वावारादो। ण च केवलणाणमेव सत्तिदुवसंजुत्तत्तादो बहिरंतरंगत्थपरिच्छेदयं, णाणस्स पज्जयस्स पज्जायाभावादो। भावे वा अणवत्था ढुक्कदे, अवट्ठाणकारणाभावादो। तम्हा अंतरंगोवजोगादो बहिरंगुवजोगेण पुधभूदेण होदव्वमण्णहा सव्वण्हुत्ताणुववत्तीदो। अंतरंग-

समाधान—सचमुच ही आगमसे उत्तम युक्तिकी बाधा नहीं होती, किन्तु प्रस्तुत युक्तिकी बाधा अवश्य होती है, क्योंकि, वह उत्तम युक्ति नहीं है। वह इस प्रकार है— ज्ञान द्वारा केवल विशेषका ग्रहण नहीं होता, क्योंकि, सामान्य विशेषात्मक होनेसे ही द्रव्यका जात्यन्तर स्वरूप पाया जाता है। और सामान्य तथा विशेष दोनों नयोंके विषयभूत पदार्थका ग्रहण न करनेसे ज्ञानका साकारत्व भी नहीं बन सकता, क्योंकि, वैसा माननेमें विरोध आता है। तथा समन्तभद्र स्वामीने भी कहा है—

(हे श्रेयांस जिन!) आपके मतमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, इन स्व चतुष्टयकी अपेक्षा किये जानेवाले विधानका स्वरूप परचतुष्टयकी अपेक्षासे होनेवाले प्रतिषेधसे सम्बद्ध पाया जाता है। विधि और प्रतिषेध, इन दोनोंमेंसे जो एक प्रधान होता है वही प्रमाण है, और दूसरा गौण है। इनमें जो प्रधानताका नियामक है वही नय है जो दृष्टान्तका अर्थात् धर्मविशेषका समर्थन करता है ॥ १८ ॥

इस प्रकार आगम और युक्तिसे दर्शनका अस्तित्व सिद्ध होने पर उसका अभाव नहीं माना जा सकता, क्योंकि, दर्शनका व्यापार बाह्य पदार्थोंको छोड़ अन्तरंग वस्तुमें होता है। यहां यह नहीं कह सकते कि केवलज्ञान ही दो शक्तियोंसे संयुक्त होनेके कारण बहिरंग और अन्तरंग दोनों वस्तुओंका परिच्छेदक है, क्योंकि, ज्ञान स्वयं एक पर्याय है, और पर्यायमें दूसरी पर्याय होती नहीं है। यदि पर्यायमें भी और पर्याय मानी जाय तो अवस्थानका कोई कारण न होनेसे अनवस्था दोष उत्पन्न होता है। इसलिये अन्तरंग उपयोगसे बहिरंग उपयोगको पृथग्भूत ही होना चाहिये, अन्यथा सर्वज्ञत्वकी उपपत्ति नहीं बनती। अतएव आत्माको अन्तरंग उपयोग और बहिरंग उपयोग ऐसी

१ प्रतिषु 'विषित्त' इति पाठ। २ प्रतिषु '–नयस्य' इति पाठ।
३ बृह स्वयंभूस्तोत्र ५२. ४ प्रतिषु 'बहिरंगत्थपरिच्छेदय' इति पाठ.।

बहिरंगुवजोगसण्णिदद्दुसत्तीजुत्तो अप्पा इच्छिदव्वो ।

जं सामण्णग्गहणं भावाणं णेव कट्टु आयारं ।
अविसेसिदूण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समए ॥ १९ ॥

ण च एदेण सुत्तेणेदं वक्खाणं विरुज्झदे, अप्पत्थम्मि पउत्तसामण्णसद्दग्गहणादो । ण च जीवस्स सामण्णत्तमसिद्धं णियमेण विणा विसईकयत्तिकालगोयराणंतत्थ-वेंजण-पज्जओवचियबज्झंतरंगाणं तत्थ सामण्णत्ताविरोहादो । होदु णाम सामण्णेण दंसणस्स सिद्धी केवलदंसणस्स सिद्धी च, ण सेसदंसणाणं;

चक्खूण जं पयासदि दिस्सदि तं चक्खुदंसणं बेंति ।
दिट्ठस्स य जं सरणं णायव्वं तं अचक्खु त्ति ॥ २० ॥
परमाणुआदियाइं अंतिमखंधं त्ति मुत्तिदव्वाइं ।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सदि ताणि पच्चक्खं ॥ २१ ॥

इदि बज्झत्थविसयदंसणपरूवणादो ? ण, एदाणं गाहाणं परमत्थत्थाणुवगमादो ।

दो शक्तियोंसे युक्त मानना अभीष्ट सिद्ध होता है । ऐसा मानने पर—

वस्तुओंका आकार न करके व पदार्थोंमें विशेषता न करके जो वस्तु-सामान्यका ग्रहण किया जाता है उसे ही शास्त्रमें दर्शन कहा है ॥ १९ ॥

इस सूत्रसे प्रस्तुत व्याख्यान विरुद्ध भी नहीं पड़ता, क्योंकि, उक्त सूत्रमें ' सामान्य ' शब्दका प्रयोग आत्म-पदार्थके लिये ही किया गया है । (इसीके विशेष प्रतिपादनके लिये देखो षट्खंडागम, जीवट्ठाण, सत्प्ररूपणा, भाग १, पृष्ठ १४७ आदि) जीवका सामान्यत्व असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, नियमके विना ज्ञानके विषयभूत किये गये त्रिकालगोचर अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्यायसे संचित बहिरंग और अन्तरंग पदार्थोंका जीवमें सामान्यत्व माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—इस प्रकार सामान्यसे दर्शनकी सिद्धि और केवलदर्शनकी भी सिद्धि भले हो जाय, किन्तु उससे शेष दर्शनोंकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि—

जो चक्षुइन्द्रियोंको प्रकाशित होता है या दिखता है उसे चक्षुदर्शन समझा जाता है, और जो अन्य इन्द्रियोंसे देखे हुए पदार्थका ज्ञान होता है उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिये ॥ २० ॥

परमाणुसे लेकर अन्तिम स्कंध तक जितने मूर्तिक द्रव्य हैं उन्हें जो प्रत्यक्ष देखता है वह अवधिदर्शन है ॥ २१ ॥

इन सूत्रवचनोंमें दर्शनकी प्ररूपणा बाह्यार्थविषयक रूपसे की गई है ?

समाधान— ऐसा नहीं है, क्योंकि, तुमने इन गाथाओंका परमार्थ नहीं समझा ।

को सो परमत्थत्थो ? वुच्चदे- जं यत् चक्खूणं चक्षुषां पयासदि प्रकाशते दिस्सदि चक्षुषा दृश्यते वा तं तत् चक्खुदंसणं चक्षुर्दर्शनमिति वेंति ब्रुवते। चक्खिंदियणाणादो जो पुव्वमेव सुवसत्तीए सामण्णाए अणुहओ चक्खुणाणुप्पत्तिणिमित्तो तं चक्खुदंसणमिदि उत्तं होदि। कधमंतरंगाए चक्खिंदियविसयपडिबद्धाए सत्तीए चक्खिंदियस्स पउत्ती ? ण, अंतरंगे बहिरंगत्थोवयारेण बालजणबोहणट्ठं चक्खूणं जं दिस्सदि तं चक्खुदंसणमिदि परूवणादो। गाहाए गलभंजणमकाऊण उज्जुवत्थो किण्ण घेप्पदि ? ण, तत्थ पुव्वुत्तासेसदोसप्पसंगादो।

दिट्ठस्स शेषेन्द्रियैः प्रतिपन्नस्यार्थस्य जं यस्मात् सरणं अवगमनं णायव्वं ज्ञातव्यं तं तत् अचक्खु त्ति अचक्षुर्दर्शनमिति। सेसिंदियणाणुप्पत्तीदो जो पुव्वमेव सुवसत्तीए अप्पणो विसयम्मि पडिबद्धाए सामण्णेण संवेदो अचक्खुणाणुप्पत्तिणिमित्तो तमचक्खुदंसणमिदि उत्तं होदि।

शंका— वह परमार्थ कौनसा है ?

समाधान—कहते हैं। 'जो चक्षुओंको प्रकाशित होता है अर्थात् दिखता है, अथवा आंख द्वारा देखा जाता है वह चक्षुदर्शन है' इसका अर्थ ऐसा समझना चाहिये कि चक्षुइन्द्रियज्ञानसे जो पूर्व ही सामान्य स्वशक्तिका अनुभव होता है, जो कि चक्षुज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्तरूप है, वह चक्षुदर्शन है।

शंका—उस चक्षुइन्द्रियके विषयसे प्रतिबद्ध अंतरंग शक्तिमें चक्षुइन्द्रियकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—नहीं, यथार्थमें तो चक्षुइन्द्रियकी अन्तरंगमें ही प्रवृत्ति होती है, किन्तु बालक जनोंको ज्ञान करानेके लिये अंतरंगमें बहिरंग पदार्थोंके उपचारसे चक्षुओंको जो दिखता है वही चक्षुदर्शन है, ऐसा प्ररूपण किया गया है।

शंका—गाथाका गला न घोंटकर सीधा अर्थ क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं करते, क्योंकि वैसा करनेमें तो पूर्वोक्त समस्त दोषोंका प्रसंग आता है।

गाथाके उत्तरार्धका अर्थ इस प्रकार है — 'जो देखा गया है, अर्थात् जो पदार्थ शेष इन्द्रियोंके द्वारा जाना गया है, उससे जो सरण अर्थात् ज्ञान होता है उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिये'। चक्षुइन्द्रियको छोड़ शेष इन्द्रियज्ञानोंकी उत्पत्तिसे पूर्व ही अपने विषयमें प्रतिबद्ध स्वशक्तिका अचक्षुज्ञानकी उत्पत्तिका निमित्तभूत जो सामान्यसे संवेद या अनुभव होता है वह अचक्षुदर्शन है, ऐसा कहा गया है।

परमाणुआदियाइं परमाण्वादिकानि अंतिमखंधं ति आ पश्चिमस्कंधादिति मुत्तिदव्वाइं मूर्तिद्रव्याणि जं यस्मात् पस्सदि पश्यति जानीते ताणि तानि पच्चक्खं साक्षात् तं तत् ओहिदंसणं अवधिदर्शनमिति द्रष्टव्यम् । परमाणुमादिं कादूण जाव पच्छिमखंधो त्ति ट्ठिदपोग्गलदव्वाणमवगमादो पच्चक्खादो जो पुव्वमेव सुवसत्तीविसयउवजोगो ओहिणाणुप्पत्तिणिमित्तो तं ओहिदंसणमिदि घेत्तव्वं, अण्णहा णाण-दंसणाणं भेदाभावादो । कधं केवलणाणेण केवलदंसणं समाणं ? ण, णेयप्पमाणकेवलणाणभेएण भिण्णप्पविसयउवजोगस्स वि तत्तियमेत्तत्ताविरोहादो ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ५७ ॥

चक्खुदंसणावरणस्स देसघादिफद्दयाणमुदएण समुप्पण्णत्तादो (चक्खुदंसणं खओवसमियं)। कधमुदयगददेसघादिफद्दयाण खओवसमियत्तं ? उच्चदे – उदयम्मि पदणकाले सव्वघादिफद्दयाणं जमणंतगुणहीणत्तं सो तेसिं खओ णाम; देसघादिफद्दयाणं सरूवेण

द्वितीय गाथाका अर्थ इस प्रकार है — ' परमाणुसे लगाकर अन्तिम स्कंधपर्यन्त जितने मूर्तिक द्रव्य हैं उन्हें जिसके द्वारा साक्षात् देखता है या जानता है वह अवधिदर्शन है, ऐसा जानना चाहिये ' । परमाणुसे लेकर अन्तिम स्कंधपर्यंत जो पुद्गलद्रव्य स्थित हैं उनके प्रत्यक्ष ज्ञानसे पूर्व ही जो अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका निमित्तभूत स्वशक्तिविषयक उपयोग होता है वही अवधिदर्शन है ऐसा ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा ज्ञान और दर्शनमें कोई भेद नहीं रहता ।

शंका—केवलज्ञानसे केवलदर्शन समान किस प्रकार होता है ?

समाधान—क्यों न हो, क्योंकि, जानने योग्य पदार्थके प्रमाणानुसार केवलज्ञानके भेदसे भिन्न आत्मविषयक उपयोगको भी तत्प्रमाण माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी होता है ॥ ५७ ॥

चक्षुदर्शनावरणके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण चक्षुदर्शन क्षायोपशमिक होता है ।

शंका—उदयमें आये हुए देशघाती स्पर्धकोंके क्षायोपशमिक भाव कैसे हुआ ?

समाधान—बताते हैं । उदयमें आकर गिरनेके समयमें सर्वघाती स्पर्धकोंका जो अनन्तगुण हीन हो जाना है वही उनका क्षय है, और देशघाती स्पर्धकोंके स्वरूपसे

जमवट्ठाणं सो उवसमो; तदुभयगुणसमण्णिदचक्खुदंसणावरणीयकम्मक्खंधविवागजणिद-जीवपरिणामो लद्धि त्ति घेत्तव्वो। अचक्खुदंसणावरणीयस्स देसघादिफद्दयाणमुदएण अचक्खुदंसणं होदि त्ति कट्टु खओवसमियाए लद्धीए अचक्खुदंसणमिदि उत्तं। ओधिदंसणावरणीयस्स देसघादिफद्दयाणमुदयजणिदलद्धीदो ओधिदंसणी होदि त्ति खओवसमियाए लद्धीए ओधिदंसणी णिद्दिट्ठो।

केवलदंसणी णाम कधं भवदि? ॥ ५८ ॥

सुगममेदं।

खइयाए लद्धीए ॥ ५९ ॥

दंसणावरणीयस्स णिम्मूलविणासो खओ णाम। तत्तो जादजीवपरिणामो खइया लद्धी। तत्तो केवलदंसणी होदि। एत्थुवउज्जंती गाहा—

एवं सुत्तपसिद्धं भणंति जे केवलं ण चत्थि त्ति।
मिच्छादिट्ठी अण्णो को तत्तो एत्थ जियलोए ॥ २२ ॥

जो उनका अवस्थान है वही उपशम है। इन्हीं क्षय और उपशम रूप दो गुणोंसे युक्त चक्षुदर्शनावरणीय कर्मके स्कंधोंके उदयसे जो जीवपरिणाम उत्पन्न होता है वही क्षायोपशमिक लब्धि है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

अचक्षुदर्शनावरणीयके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे अचक्षुदर्शन होता है, ऐसा मानकर 'क्षायोपशमिक लब्धिसे अचक्षुदर्शन होता है' ऐसा कहा गया है। अवधिदर्शनावरणीयके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उत्पन्न हुई लब्धि द्वारा अवधिदर्शनी होता है, इसीसे क्षायोपशमिक लब्धिसे अवधिदर्शनीके होनेका निर्देश किया गया है।

जीव केवलदर्शनी कैसे होता है? ॥ ५८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

क्षायिक लब्धिसे जीव केवलदर्शनी होता है ॥ ५९ ॥

दर्शनावरणीय कर्मका निर्मूल विनाश क्षय है। उस क्षयसे उत्पन्न जीवपरिणामको क्षायिक लब्धि कहते हैं। उसी क्षायिक लब्धिसे केवलदर्शनी होता है। यहां यह उपयोगी गाथा है—

इस प्रकार सूत्र द्वारा प्रसिद्ध होते हुए भी जो कहते हैं कि केवलदर्शन नहीं है उनसे बड़ा इस जीवलोकमें कौन मिथ्यात्वी होगा? ॥ २२ ॥

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिओ णीललेस्सिओ काउलेस्सिओ तेउलेस्सिओ पम्मलेस्सिओ सुक्कलेस्सिओ णाम कधं भवदि ? ॥६०॥

एत्थ पुव्वं व णिक्खेवे अस्सिदूण चालणा परूवेदव्वा । एत्थ णोआगमभाव-लेस्साए अहियारो ।

ओदइएण भावेण ॥ ६१ ॥

कसायाणुभागफद्दयाणमुदयमागदाणं जहण्णफद्दयप्पहुडि जाव उक्कस्सफद्दया त्ति ठइदाणं छब्भागविहत्ताणं पढमभागो मंदतमो, तदुदएण जादकसाओ सुक्कलेस्सा णाम । बिदियभागो मंदतरो, तदुदएण जादकसाओ पम्मलेस्सा णाम । तदियभागो मंदो, तदुदएण जादकसाओ तेउलेस्सा णाम । चउत्थभागो तिव्वो, तदुदएण जादकसाओ काउलेस्सा णाम । पंचमभागो तिव्वयरो, तस्सुदएण जादकसाओ णीललेस्सा णाम । छट्ठो तिव्वतमो, तस्सुदएण जादकसाओ किण्णलेस्सा णाम । जेणेदाओ छप्पि लेस्साओ कसायाणमुदएण होंति तेण ओदइयाओ । जदि कसाओदएण[1] लेस्साओ उच्चंति तो

लेश्यामार्गणानुसार जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाला कैसे होता है ? ॥ ६० ॥

यहां पूर्वानुसार निक्षेपोंका आश्रय लेकर चालना करना चाहिये । प्रस्तुतमें नोआगम भावलेश्याका अधिकार है ।

औदयिक भावसे जीव कृष्ण आदि लेश्यावाला होता है ॥ ६१ ॥

उदयमें आये हुए कषायानुभागके स्पर्धकोंके जघन्य स्पर्धकसे लेकर उत्कृष्ट स्पर्धक पर्यंत स्थापित करके उनको छह भागोंमें विभक्त करनेपर प्रथम भाग मंदतम कषायानुभागका होता है और उसीके उदयसे जो कषाय उत्पन्न होती है उसीका नाम शुक्ललेश्या है । दूसरा भाग मन्दतर कषायानुभागका है, और उसीके उदयसे उत्पन्न हुई कषायका नाम पद्मलेश्या है । तृतीय भाग मन्द कषायानुभागका है, और उसके उदयसे उत्पन्न कषाय तेजोलेश्या है । चतुर्थ भाग तीव्र कषायानुभागका है, और उसके उदयसे उत्पन्न कषाय कापोतलेश्या होती है । पांचवां भाग तीव्रतर कषायानुभागका है, और उसके उदयसे उत्पन्न कषायको नीललेश्या कहते हैं । छठवां भाग तीव्रतम कषाया-नुभागका है, और उससे उत्पन्न कषायका नाम कृष्णलेश्या है । चूंकि ये छहों ही लेश्यायें कषायोंके उदयसे होती हैं, इसीलिये वे औदयिक हैं ।

शंका—यदि कषायोंके उदयसे लेश्याओंका उत्पन्न होना कहा जाता है तो

१ प्रतिषु ' कसाओदइएण ' इति पाठः ।

खीणकसायाणं लेस्साभावो पसज्जदे ? सच्चमेदं जदि कसाओदयादो चेव लेस्सुप्पत्ती इच्छिज्जदि । किंतु सरीरणामकम्मोदयजणिदजोगो वि लेस्सा त्ति इच्छिज्जदि, कम्म-बंधणिमित्तत्तादो । तेण कसाए फिट्टे वि जोगो अत्थि त्ति खीणकसायाणं लेस्सत्तं ण विरुज्झदे । जदि बंधकारणाणं लेस्सत्तं उच्चदि तो पमादस्स वि लेस्सत्तं किण्ण इच्छि-ज्जदि ? ण, तस्स कसाएसु अंतब्भावादो । असंजमस्स किण्ण इच्छिज्जदि ? ण, तस्स वि लेस्सायम्मे अंतब्भावादो । मिच्छत्तस्स किण्ण इच्छिज्जदि ? होदु तस्स लेस्सावएसो, विरोहाभावादो । किंतु कसायाणं चेव एत्थ पहाणत्तं हिंसादिलेस्सायम्मकारणादो, सेसेसु तदभावादो ।

अलेस्सिओ णाम कधं भवदि ? ॥ ६२ ॥

एत्थ वि णिक्खेवमस्सिदूण परूवणा कादव्वा ।

बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणकषाय जीवोंके लेश्याके अभावका प्रसंग आता है ?

समाधान—सचमुच ही क्षीणकषाय जीवोंमें लेश्याके अभावका प्रसंग आता यदि केवल कषायोदयसे ही लेश्याकी उत्पत्ति मानी जाती । किन्तु शरीरनाम-कर्मके उदयसे उत्पन्न योग भी तो लेश्या माना गया है, क्योंकि, वह भी कर्मके बन्धमें निमित्त होता है । इस कारण कषायके नष्ट हो जानेपर भी चूंकि योग रहता है इसीलिये क्षीणकषाय जीवोंके लेश्या माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—यदि बन्धके कारणोंको ही लेश्याभाव कहा जाता है तो प्रमादको भी लेश्याभाव क्यों न मान लिया जाय ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रमादका तो कषायोंमें ही अन्तर्भाव हो जाता है ?

शंका—असंयमको भी लेश्याभाव क्यों नहीं मानते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि असंयमका भी तो लेश्याकर्ममें अन्तर्भाव हो जाता है ।

शंका— मिथ्यात्वको लेश्याभाव क्यों नहीं मानते ?

समाधान—मिथ्यात्वको लेश्या कह सकते हैं, क्योंकि, उसमें कोई विरोध नहीं आता । किन्तु यहां कषायोंका ही प्राधान्य है, क्योंकि कषाय ही लेश्याकर्मके कारण हैं और अन्य बन्धकारणोंमें उसका अभाव है ।

जीव अलेश्यिक कैसे होता है ? ॥ ६२ ॥

यहां भी निक्षेपके आश्रयसे प्ररूपणा करना चाहिये ।

खइयाए लद्धीए ॥ ६३ ॥

लस्साए कारणकम्माणं खएणुप्पण्णजीवपरिणामो खइया लद्धी, तीए अलेस्सिओ होदि त्ति उत्तं होदि। ण सरीरणामकम्मसंतस्स अत्थित्तं पडुच्च खइयत्तं विरुज्झदे, तस्स तंतत्ताभावादो।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिओ अभवसिद्धिओ णाम कधं भवदि? ॥ ६४ ॥

सुगममेदं।

पारिणामिएण भावेण ॥ ६५ ॥

एदं पि सुगमं।

णेव भवसिद्धिओ णेव अभवसिद्धिओ णाम कधं भवदि? ॥ ६६ ॥

एदं पि सुगमं।

खइयाए लद्धीए ॥ ६७ ॥

सुगममेदं।

क्षायिक लब्धिसे जीव अलेश्यिक होता है ॥ ६३ ॥

लेश्याके कारणभूत कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए जीव-परिणामको क्षायिक लब्धि कहते हैं; उसी क्षायिक लब्धिसे जीव अलेश्यिक होता है यह सूत्रका तात्पर्य है। शरीर-नामकर्मकी सत्ताका होना क्षायिकत्वके विरुद्ध नहीं है, क्योंकि क्षायिक भाव शरीर-नामकर्मके अधीन नहीं है।

भव्यमार्गणानुसार जीव भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक कैसे होता है? ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

पारिणामिक भावसे जीव भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक होता है ॥ ६५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

जीव न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक कैसे होता है? ॥ ६६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

क्षायिक लब्धिसे जीव न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक होता है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ६८ ॥

किमोदइएण किमुवसमिएण किं खइएण किं खओवसमिएण किं पारिणामिएणेत्ति बुद्धीए काऊणेदं कधं होदि त्ति वुत्तं ।

उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए ॥ ६९ ॥

दंसणमोहणीयस्स उवसमेण उवसमसम्मत्तं होदि, खएण खइयं होदि, खओवसमेण वेदगसम्मत्तं । एदेसिं तिण्हं सम्मत्ताण जमेयत्तं तं सम्माइट्ठी णाम । तिस्से इमे तिण्णि भावा जेण अत्थि तेण सम्माइट्ठी उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए होदि त्ति उत्तं । कधमेयस्स तिण्णि भावा ? ण, पुधसामण्णस्स एक्कस्स अक्कमेणाणेयवण्णाणं जहा विरोहो णत्थि तहा एयस्स बहुपरिणामेहि विरोहाभावादो ।

खइयसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ७० ॥

सुगममेदं ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार जीव सम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ६८ ॥

क्या औदयिक भावसे सम्यग्दृष्टि होता है, कि औपशमिक भावसे, कि क्षायिक भावसे, कि क्षायोपशमिक भावसे, कि पारिणामिक भावसे, ऐसा मनमें विचार कर पूछा गया है कि कैसे होता है ।

औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव सम्यग्दृष्टि होता है ॥ ६९ ॥

दर्शनमोहनीयके उपशमसे उपशम सम्यक्त्व होता है, क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है, और क्षयोपशमसे वेदक सम्यक्त्व होता है । इन तीनों सम्यक्त्वोंका जो एकत्व है उसीका नाम सम्यग्दृष्टि है । चूंकि उस सम्यग्दृष्टिके ये तीन भाव होते हैं, इसीलिये सम्यग्दृष्टि औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक लब्धिसे होता है, ऐसा कहा गया है ।

शंका— एक ही सम्यग्दृष्टिके तीन भाव कैसे होते हैं ?

समाधान— जैसे स्पष्ट है सामान्य जिसका ऐसी एक ही वस्तुमें एक साथ अनेक वर्ण होते हुए भी कोई विरोध नहीं आता, उसी प्रकार एक ही सम्यग्दर्शनके अनेक परिणाम होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

खइयाए लद्धीए ॥ ७१ ॥

दंसणमोहणीयस्स णिस्सेसविणासो खओ णाम। तम्हि उप्पण्णजीवपरिणामो लद्धी णाम। तीए लद्धीए खइयसम्मादिट्ठी होदि।

वेदगसम्मादिट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ७२ ॥

सुगममेदं।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ७३ ॥

तं जहा– सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणमणंतगुणहाणीए उदयमागदाणमइदहरदेसघादित्तणेण उवसंताणं जेण खओवसमसण्णा अत्थि तेण तत्थुप्पण्णजीवपरिणामो खओवसमलद्धीसण्णिदो। तीए खओवसमलद्धीए वेदगसम्मत्तं होदि।

उवसमसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ७४ ॥

सुगमं।

उवसमियाए लद्धीए ॥ ७५ ॥

....

क्षायिक लब्धिसे जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है ॥ ७१ ॥

दर्शनमोहनीय कर्मके निश्शेष विनाशको क्षय कहते हैं, और उस क्षयसे जो जीवपरिणाम उत्पन्न होता है वह क्षायिक लब्धि कहलाती है। उसी क्षायिक लब्धिसे जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है।

जीव वेदकसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

क्षायोपशामिक लब्धिसे जीव वेदकसम्यग्दृष्टि होता है ॥ ७३ ॥

वह इस प्रकार है— अनन्तगुणी हानिके द्वारा उदयमें आये हुए तथा अत्यन्त अल्प देशघातित्वके रूपसे उपशान्त हुए सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंका चूंकि क्षयोपशम नाम दिया गया है, इसीलिये उस क्षयोपशमसे उत्पन्न जीवपरिणामको क्षयोपशम लब्धि कहते हैं। उसी क्षयोपशम लब्धिसे वेदक सम्यक्त्व होता है।

जीव उपशमसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

औपशमिक लब्धिसे जीव उपशमसम्यग्दृष्टि होता है ॥ ७५ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयस्स उवसमेणेदस्सुप्पत्तिदंसणादो ।

सासणसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ७६ ॥

एत्थ पुव्वं व णिक्खेवे काऊण णोआगमदो भावसासणसम्माइट्ठी घेत्तव्वो । सो कधं होदि केण पयारेण होदि त्ति पुच्छा ।

पारिणामिएण भावेण ॥ ७७ ॥

एसो सासणपरिणामो खईओ ण होदि, दंसणमोहक्खएणाणुप्पत्तीदो । ण खओवसमिओ वि, देसघादिफद्दयाणमुदएण अणुप्पत्तीए । उवसमिओ वि ण होदि, दंसणमोहुवसमेणाणुप्पत्तीदो । ओदइओ वि ण होदि, दंसणमोहस्सुदएणाणुप्पत्तीदो । पारिसेसादो पारिणामिएण भावेण सासणो होदि । अणंताणुबंधीणमुदएण सासणगुणस्सुवलंभादो ओदइओ भावो किण्ण उच्चदे ? ण, दंसणमोहणीयस्स उदय-उवसम-खय-खओवसमेहि विणा उप्पज्जदि त्ति सासणगुणस्स कारणं चरित्तमोहणीयं[1] तस्स दंसण-

क्योंकि, दर्शनमोहनीय कर्मके उपशमसे उपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

जीव सासादनसम्यग्दृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७६ ॥

यहां पूर्वानुसार निक्षेपोंको करके नोआगम भावसासादनसम्यग्दृष्टिका ग्रहण करना चाहिये । वह सासादनसम्यग्दृष्टि कैसे होता है अर्थात् किस प्रकार होता है ऐसा सूत्रमें प्रश्न किया गया है ।

पारिणामिक भावसे जीव सासादनसम्यग्दृष्टि होता है ॥ ७७ ॥

यह सासादन परिणाम क्षायिक नहीं होता, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके क्षयसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती । सासादन परिणाम क्षायोपशमिक भी नहीं है, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती । सासादन परिणाम औपशमिक भी नहीं है, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उपशमसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती । सासादन परिणाम औदयिक भी नहीं है, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदयसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती । अतएव पारिशेष न्यायसे पारिणामिक भावसे ही सासादन परिणाम होता है ।

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयसे सासादन गुणस्थान पाया जाता है, अतएव उसे औदयिक भाव क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं कहते, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके उदय, उपशम, क्षय व क्षयोपशमके विना उत्पन्न होनेसे सासादन गुणस्थानका कारण चरित्र मोहनीय कर्म ही हो

१ प्रतिषु ' चरित्तमोहणीयस्स ' इति पाठः ।

मोहणीयत्तविरोहादो । अणंताणुबंधीचदुक्कं तदुभयमोहणं चे ? होदु णाम, किंतु णेदमेत्थ विवक्खियं । अणंताणुबंधीचदुक्कं चरित्तमोहणीयं चेवेत्ति विवक्खाए सासणगुणो पारिणामिओ त्ति भणिदो ।

सम्मामिच्छादिट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ७८ ॥

सुगमं ।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ७९ ॥

सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण सम्मामिच्छादिट्ठी जदो होदि तेण तस्स खओवसमिओ भावो त्ति ण जुज्जदे ? होदु णाम सम्मत्तं पडुच्च सम्मामिच्छत्त-फद्दयाणं सव्वघादित्तं, किंतु असुद्धणए विवक्खिए ण सम्मामिच्छत्तफद्दयाणं सव्वघादित्त-मत्थि, तेसिमुदए संते वि मिच्छत्तसंवलिदसम्मत्तकणस्सुवलंभादो । ताणि सव्वघादि-फद्दयाणि उच्चंति जेसिमुदएण सव्वं घादिज्जदि[1] । ण च एत्थ सम्मत्तस्स णिम्मूल-

सकता है और चरित्रमोहनीयके दर्शनमोहनीय माननेमें विरोध आता है ।

शंका—अनन्तानुबन्धीचतुष्क तो दर्शन और चारित्र दोनोंमें मोह उत्पन्न करनेवाला है ?

समाधान—भले ही अनन्तानुबन्धीचतुष्क उभयमोहनीय हो, किन्तु यहां वैसी विवक्षा नहीं है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क चारित्रमोहनीय ही है, इसी विवक्षासे सासादन गुणस्थानको पारिणामिक कहा है ।

जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि कैसे होता है ? ॥ ७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है ॥ ७९ ॥

शंका—चूंकि सम्यग्मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहनीय प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है, इसलिये उसके क्षायोपशमिक भाव उपयुक्त नहीं है ?

समाधान—सम्यक्त्वकी अपेक्षा भले ही सम्यग्मिथ्यात्वके स्पर्धकोंमें सर्वघाती-पना हो, किन्तु अशुद्धनयकी विवक्षासे सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके स्पर्धकोंमें सर्वघातीपना नहीं होता, क्योंकि, उनका उदय रहनेपर भी मिथ्यात्वमिश्रित सम्यक्त्वका कण पाया जाता है । सर्वघाती स्पर्धक तो उन्हें कहते हैं जिनका उदय होनेसे समस्त (प्रतिपक्षी गुणका) घात हो जाय । किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्पत्तिमें तो हम

१ प्रतिषु 'होदिज्जदि' इति पाठः ।

विणासं पेच्छामो, सब्भूदासब्भूदत्थेसु तुल्लस्सद्दहणदंसणादो। तदो जुज्जदे सम्मामिच्छत्तस्स खओवसमिओ भावो त्ति।

मिच्छादिट्ठी णाम कधं भवदि ? ॥ ८० ॥

सुगमं।

मिच्छत्तकम्मस्स उदएण ॥ ८१ ॥

एदं पि सुगमं।

सण्णियाणुवादेण सण्णी णाम कधं भवदि ? ॥ ८२ ॥

सुगमं।

खओवसमियाए लद्धीए ॥ ८३ ॥

णोइंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणं जादिवसेण अणंतगुणहाणीए हाइदूण देसघादित्तं पाविय उवसंताणमुदएण सण्णित्तदंसणादो।

असण्णी णाम कधं भवदि ? ॥ ८४ ॥

सम्यक्त्वका निर्मूल विनाश नहीं देखते, क्योंकि, यहां सद्भूत और असद्भूत पदार्थोंमें समान श्रद्धान होता देखा जाता है। इसलिये सम्यग्मिथ्यात्वको क्षायोपशमिक भाव मानना उपयुक्त है।

जीव मिथ्यादृष्टि कैसे होता है ? ॥ ८० ॥

यह सूत्र सुगम है।

मिथ्यात्वकर्मके उदयसे जीव मिथ्यादृष्टि होता है ? ॥ ८१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

संज्ञीमार्गणानुसार जीव संज्ञी कैसे होता है ? ॥ ८२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

क्षायोपशमिक लब्धिसे जीव संज्ञी होता है ॥ ८३ ॥

क्योंकि, नोइन्द्रियावरण कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके अपनी जातिविशेषके प्रभावसे अनन्तगुणी हानिरूप घातके द्वारा देशघातित्वको प्राप्त होकर उपशान्त हुए पुनः उन्हींके उदय होनेसे संज्ञित्व उत्पन्न होता देखा जाता है।

जीव असंज्ञी कैसे होता है ? ॥ ८४ ॥

सुगमं ।

ओदइएण भावेण ॥ ८५ ॥

णोइंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण असण्णित्तस्स दंसणादो । ण च णोइंदियावरणमसिद्धं कज्जण्णय-वदिरेगेहि कारणस्स अत्थित्तसिद्धीदो ।

णेव सण्णी णेव असण्णी णाम कधं भवदि ? ॥ ८६ ॥

सुगममेदं ।

खइयाए लद्धीए ॥ ८७ ॥

णाणावरणस्स णिम्मूलक्खएणुप्पण्णपरिणामो इंदियणिरवेक्खलक्खणो खइया लद्धी णाम । तीए खइयाए लद्धीए णेव-सण्णी णेव-असण्णित्तं होदि ।

आहाराणुवादेण आहारो णाम कधं भवदि ? ॥ ८८ ॥

सुगममेदं ।

ओदइएण भावेण ॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदयिक भावसे जीव असंज्ञी होता है ॥ ८५ ॥

क्योंकि, नोइन्द्रियावरणकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे असंज्ञी भाव देखा जाता है । नोइन्द्रियावरण कर्म असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, कार्यके अन्वय और व्यतिरेकके द्वारा कारणके अस्तित्वकी सिद्धि हो जाती है ।

जीव न संज्ञी न असंज्ञी कैसे होता है ? ॥ ८६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिक लब्धिसे जीव न संज्ञी न असंज्ञी होता है ॥ ८७ ॥

ज्ञानावरण कर्मके निर्मूल क्षयसे जो इन्द्रियनिरपेक्ष लक्षणवाला जीवपरिणाम उत्पन्न होता है उसीको क्षायिक लब्धि कहते हैं । उसी क्षायिक लब्धिसे जीव न संज्ञी न असंज्ञी होता है ।

आहारमार्गणानुसार जीव आहारक कैसे होता है ? ॥ ८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदयिक भावसे जीव आहारक होता है ॥ ८९ ॥

ओरालिय-वेउव्विय-आहारसरीराणमुदएण चाहारो होदि । तेजा-कम्मइयाण-मुदएण आहारो किण्ण वुच्चदे ? ण, विग्गहगदीए वि आहारित्तप्पसंगादो । ण च एवं, विग्गहगदीए अणाहारित्तदंसणादो ।

अणाहारो णाम कधं भवदि ? ॥ ९० ॥

सुगममेदं ।

ओदइएण भावेण पुण खइयाए लद्धीए ॥ ९१ ॥

अजोगिभयवंतस्स सिद्धाणं च अणाहारत्तं खइयं घादिकम्माणं सव्वकम्माणं च खएण । विग्गहगदीए पुण ओदइएण भावेण, तत्थ सव्वकम्माणमुदयदंसणादो ।

एवमेगजीवेण सामित्तं णाम अणियोगद्दारं समत्तं ।

औदारिक, वैक्रियिक व आहारक शरीरनामकर्म प्रकृतियोंके उदयसे जीव आहारक होता है ।

शंका—तैजस और कार्मण शरीरोंके उदयसे जीव आहारक क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं होता, क्योंकि वैसा माननेपर विग्रहगतिमें भी जीवके आहारक होनेका प्रसंग आजायगा । और वैसा है नहीं, क्योंकि, विग्रहगतिमें जीवके अनाहारक-भाव पाया जाता है ।

जीव अनाहारक कैसे होता है ? ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदयिक भावसे तथा क्षायिक लब्धिसे जीव अनाहारक होता है ॥ ९१ ॥

अयोगिकेवली भगवान् और सिद्धोंके क्षायिक अनाहारत्व होता है, क्योंकि, उनके क्रमशः घातिया कर्मोंका व समस्त कर्मोंका क्षय होता है । किन्तु विग्रहगतिमें औदयिक भावसे अनाहारत्व होता है, क्योंकि, विग्रहगतिमें सभी कर्मोंका उदय पाया जाता है ।

इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

एगजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १ ॥

एत्थ मूलोहो किण्ण परूविदो ? ण, चउग्गइपरूवणेण तदवगमादो । णिरयगइणिद्देसो सेसगइणिसेहट्ठो ।

जहण्णेण दसवस्ससहस्साणि ॥ २ ॥

तिरिक्खस्स वा मणुस्सस्स वा दसवस्ससहस्साउट्ठिदीएसु णेरइएसु उप्पज्जिदूण णिप्फिडिदस्स दसवस्ससहस्समेत्तट्ठिदिदंसणादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३ ॥

तिरिक्खस्स वा मणुस्सस्स वा सत्तमाए पुढवीए तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिं बंधिऊण तत्थुप्पज्जिय सगाट्ठिदिमणुपालिय णिप्फिडिदस्स तेत्तीससागरोवममेत्तणिरयभावुवलंभादो ।

एक जीवकी अपेक्षा कालानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १ ॥

शंका—यहां मूलौघ अर्थात् गतिसामान्यकी अपेक्षा प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—नहीं की, क्योंकि, चारों गतियोंके प्ररूपणसे उसका ज्ञान हो ही जाता है।

सूत्रमें नरकगतिका निर्देश शेष गतियोंके निषेध करनेके लिये किया गया है ।

जीव कमसे कम दश हजार वर्ष तक नरकगतिमें रहता है ॥ २ ॥

क्योंकि, किसी तिर्यंच या मनुष्यके दश हजार वर्षकी आयुस्थितिवाले नारकियोंमें उत्पन्न होकर वहांसे निकल आनेपर नरकमें दस हजार वर्षमात्रकी स्थिति पायी जाती है।

जीव अधिकसे अधिक तेतीस सागरोपम काल तक नरकमें रहता है ॥ ३ ॥

किसी तिर्यंच या मनुष्यके सातवीं पृथिवीमें तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिको बांधकर व वहां उत्पन्न होकर अपनी स्थिति पूरी करके निकल आनेपर तेतीस सागरोपममात्र नरकभाव पाया जाता है ।

पढमाए पुढवीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४ ॥

'केवचिरं' सद्दो समय-खण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पल्ल-सागरोवमादीणि अवेक्खदे । सेसं सुगमं ।

जहण्णेण दसवाससहस्साणि ॥ ५ ॥

सुगममेदं, णिरओघम्मि परूविदत्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमं ॥ ६ ॥

पढमाए पुढवीए सागरोवमाउट्ठिदिं बंधिदूण पढमाए पुढवीए उप्पज्जिय सगट्ठिदिमणुपालिय णिप्पिडिदतिरिक्ख-मणुस्सेसु तदुवलंभादो । एदं पढमाए पुढवीए वुत्तजहण्णुक्कस्साउअं सीमंत-णिरय-रोरुअ-भंत-उब्भंत-संभंत-असंभंत[1]-विब्भंत-तत्त-तसिद-वक्कंत-अवक्कंत-विक्कंतसण्णिदतेरसण्हमिंदयाणं ससेडीबद्ध-पइण्णयाणं किमेवं चेव होदि आहो ण होदि त्ति ? एदेसिं सव्वेसिं एदं चेव जहण्णुक्कस्साउअं ण होदि, किंतु

प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४ ॥

'कितने काल तक' यह शब्द समय, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, पूर्व, पल्य व सागर आदि कालमानोंकी अपेक्षा रखता है ।

प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव कमसे कम दश हजार वर्ष तक रहते हैं ॥ ५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, इसकी प्ररूपणा ओघ नारकियोंकी प्ररूपणामें की जा चुकी है ।

प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव अधिकसे अधिक एक सागरोपम तक रहते हैं ॥ ६ ॥

क्योंकि, प्रथम पृथिवीकी एक सागरोपम आयुस्थितिको बांधकर प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न होकर व अपनी स्थितिको पूरी करके वहांसे निकलनेवाले तिर्यंच व मनुष्योंके एक सागरोपमकी नरकस्थिति पायी जाती है ।

शंका — यह जो प्रथम पृथिवीकी जघन्य और उत्कृष्ट आयु बतलायी गई है सो क्या सीमन्त, नरक, रौरव, भ्रान्त, उद्भ्रान्त, संभ्रान्त, असंभ्रान्त, विभ्रान्त, तप्त, त्रसित, वक्रान्त, अवक्रान्त और विक्रान्त नामक तेरहों इन्द्रकों तथा उनसे सम्बद्ध श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक सब बिलोंकी यही आयुस्थिति होती है, या नहीं होती ?

समाधान—प्रथम पृथिवीके उक्त समस्त बिलोंकी जघन्य और उत्कृष्ट आयु

१ प्रतिषु ' -सब्भंत-असब्भंत- ' इति पाठः ।

सव्वेसिं पुध पुध जहण्णुक्कस्साउअं होदि । तं जहा—

सीमंतम्मि ससेडीबद्ध-पइण्णयम्मि जहण्णमाउअं दसवस्ससहस्साणि, उक्कस्सं णउदिवस्ससहस्साणि |१००००|९००००|। बिदियपत्थडे णउदिवस्ससहस्साणि समयाहियाणि जहण्णमाउअं, उक्कस्सं पुण णउदिवस्ससदसहस्साणि । ९०००००० । तदियपत्थडे जहण्णमाउअं णउदिवस्ससदसहस्साणि समयाहियाणि । ९०००००० । उक्कस्समसंखेज्जाओ पुव्वकोडीओ । चउत्थपत्थडे जहण्णमसंखेज्जाओ पुव्वकोडीओ समयाहियाओ, उक्कस्सं सागरोवमस्स दसमभागो । इमं मुहं होदि अप्पत्तादो, सागरोवमं भूमी होदि बहुदरत्तादो । भूमिदो कयसरिसच्छेदादो मुहमवणिय इविदे सुद्धसेसमेत्तियं होदि | $\frac{९}{१०}$ |। पुणो उस्सेधो दस होदि, दससु अवट्ठिदवड्ढिहाणिदंसणादो । तत्थ दससु पढमस्स वड्ढी णत्थि त्ति एगरूवमवणिय सुद्धसेसणओवट्टिदे लद्धं वड्ढि-हाणिपमाणं होदि | $\frac{१}{१०}$ |। एत्थ उवउज्जंती करणगाहा—

इतनी ही नहीं होती, किन्तु सब बिलोंकी पृथक् पृथक् जघन्य और उत्कृष्ट आयु होती है। वह इस प्रकार है—

अपने श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों सहित सीमन्त नामक प्रथम इन्द्रकमें जघन्य आयु दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु नब्बे हजार वर्षकी होती है |१०००० | ९००००|। दूसरे पाथड़ेमें जघन्य आयु एक समय अधिक नब्बे हजार वर्ष और उत्कृष्ट नब्बे लाख वर्षकी होती है । ९०००००० । तीसरे पाथड़ेमें जघन्य आयु एक समय अधिक नब्बे लाख वर्ष ९०००००० और उत्कृष्ट आयु असंख्यात पूर्वकोटियोंकी होती है । चतुर्थ पाथड़ेमें जघन्य आयु एक समय अधिक असंख्यात पूर्वकोटि और उत्कृष्ट आयु एक सागरोपमके दशम भाग होती है । यही सागरोपमका दशमांस 'मुख' कहलाता है, क्योंकि, वह अल्प है, तथा पूरा एक सागरोपम 'भूमि' कहलाता है, क्योंकि, वह मुखकी अपेक्षा बड़ा है। भूमिको मुखके समान भागोंमें खंडित करके उसमेंसे मुखको घटादेनेपर शेष मान होता है— $\frac{१०}{१०} - \frac{१}{१०} = \frac{९}{१०}$ । उत्सेध दश है, क्योंकि, चतुर्थ आदि तेरहवें पाथड़े पर्यन्त दश पाथड़ोंका आयुप्रमाण निकालना है और इन्हीं दश स्थानोंमें अवस्थित हानि-वृद्धि पायी जाती है । इन दश स्थानोंमें चतुर्थ पाथड़े संबंधी प्रथम स्थानमें तो वृद्धि है नहीं। इसलिये एकको दशमेंसे घटाकर शेष नौका नौ बटे दशमें भाग देनेसे जो लब्ध आता है वह वृद्धि-हानिका प्रमाण होता है। ($१० - १ = ९; \frac{९}{१०} \div ९ = \frac{१}{१०}$)। यहां निम्न करण गाथा उपयोगी है—

मुह-भूमीण विसेसो उच्छयभजिदो दु जो हवे वड्ढी ।
वड्ढी इच्छागुणिदा मुहसहिया होइ वड्ढिफलं ॥ १ ॥

पुणो एवमाणिदवड्ढिं दससु ठाणेसु ठविय एगादिएगुत्तरसलागाहि गुणिय मुह-पक्खेवे कदे इच्छिद-इच्छिदपत्थडाणमाउअं होदि । तस्स पमाणमेदं | १/१० | १/५ | ३/१० | २/५ | १/२ | ३/५ | ७/१० | ४/५ | ९/१० | १ |[१] । एसो अत्थो सुत्ते अवुत्तो कधं णव्वदे ? किमिदि ण वुत्तो, वुत्तो चेव देसामासियभावेण । एदं सुत्तं देसामासियमिदि कुदो णव्वदे ? गुरूवदेसादो ।

बिदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ७ ॥

मुख और भूमिका जो विशेष अर्थात् अन्तर हो उसे उत्सेधसे भाजित करदेनेपर जो वृद्धिका प्रमाण आता है, उस वृद्धिको अभीष्टसे गुणा करके मुखमें जोड़नेपर वृद्धिका फल प्राप्त हो जाता है ॥ १ ॥

पुनः इस प्रकार लाये हुए वृद्धिके प्रमाणको दश स्थानोंमें स्थापित कर एकादि उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शलाकाओंसे गुणितकर लब्धको मुखमें मिला देनेसे प्रत्येक अभीष्ट पाथड़का आयुप्रमाण निकल आता है । इस प्रकार निकाला हुआ चतुर्थ आदि पाथड़ोंका आयुप्रमाण निम्न प्रकार है —

क्रम सं.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
पाथड़ा	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
आयुप्र.	१/१०	२/५	३/१०	२/५	१/२	३/५	७/१०	४/५	९/१०	१

शंका—ऐसा अर्थ सूत्रमें तो कहा नहीं गया, फिर वह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान—कैसे नहीं कहा गया ? देशामर्शक भावसे कहा तो गया है ।

शंका—प्रस्तुत सूत्र देशामर्शक है यह कैसे जान लिया ?

समाधान—गुरुजीके उपदेशसे हमने जाना कि प्रस्तुत सूत्र देशामर्शक है ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नरकोंमें नारकी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ७ ॥

१ प्रतिषु ' आद्यचतुर्षु कोष्ठेषु | १/१० | १/४ | ४/१० | १/५ | ' इति पाठः ।

सुगममेदं ।

जहण्णेण एक्क तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ८ ॥

बिदियाए पुढवीए समयाहियमेक्कं सागरोवमं । तदियाए पुढवीए तिण्णि सागरोवमाणि समयाहियाणि । चउत्थीए पुढवीए सत्त सागरोवमाणि समयाहियाणि । पंचमीए पुढवीए दस सागरोवमाणि समयाहियाणि । छट्ठीए पुढवीए सत्तारस सागरोवमाणि समयाहियाणि । सत्तमीए पुढवीए बावीस सागरोवमाणि समयाहियाणि । सादिरेयमिदि वुत्ते एक्को चेव समओ अहिओ त्ति कधं णव्वदे ? 'उवरिल्लुक्कस्सट्ठिदी समयाहिया हेट्ठिमपुढवीणं जहण्णा' त्ति[1] वयणादो णव्वदे ।

उक्कस्सेण तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्रमसे कम दूसरी पृथिवीमें कुछ अधिक एक सागरोपम, तीसरीमें कुछ अधिक तीन, चौथीमें कुछ अधिक सात, पांचवींमें कुछ अधिक दश, छठवींमें कुछ अधिक सत्तरह और सातवींमें कुछ अधिक बाईस सागरोपम तक नारकी जीव रहते हैं ॥ ८ ॥

दूसरी पृथिवीमें एक समय अधिक एक सागरोपम, तीसरी पृथिवीमें एक समय अधिक तीन सागरोपम, चौथी पृथिवीमें एक समय अधिक सात सागरोपम, पांचवीं पृथिवीमें एक समय अधिक दश सागरोपम, छठी पृथिवीमें एक समय अधिक सत्तरह सागरोपम और सातवीं पृथिवीमें एक समय अधिक बाईस सागरोपम आयुका प्रमाण है ।

शंका—सूत्रमें जो 'सातिरेक' अर्थात् 'कुछ अधिक' शब्द आया है उससे एक मात्र समय ही अधिक होता है यह कैसे जान लिया ?

समाधान—क्योंकि 'उत्तरोत्तर ऊपरकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय अधिक होकर नीचे नीचेकी पृथिवियोंकी जघन्य स्थिति होती है' इस आगमवचनसे ही जाना जाता है कि उपर्युक्त पृथिवियोंकी जघन्यायुमें सातिरेकका प्रमाण एक मात्र समय अधिक है ।

द्वितीयादि पृथिवियोंमें नारकी जीव अधिकसे अधिक क्रमशः तीन, सात, दश, सत्तरह, बाईस और तेतीस सागरोपम काल तक रहते हैं ॥ ९ ॥

१ नारकाणां च द्वितीयादिषु । त. सू. ४, ३५. उवरिमउक्कस्साऊ समयजुदो हेट्ठिमे जहण्णं खु ॥ ति. प. २, २१४.

एत्थ जहासंखणाओ अल्लिएदव्वो। एदाणि दो वि सुत्ताणि देसामासियाणि, पादेक्कं पुढवीणं जहण्णुक्कस्सट्ठिदीपरूवणामुहेण सव्वपत्थडाणमाउट्ठिदिसूचणादो। एदेहि दोहि वि सुत्तेहि सूचिदत्थस्स परूवणं कस्सामो। तं जहा- तणओ[1] थणओ वणओ मणओ घादो संघादो जिब्भो जिब्भओ लोलो लोलुवो थणलोलुवो चेदि एदे बिदिय-पुढवीए इंदया। एदेसिमाउट्ठिदीए आणिज्जमाणाए पढमपुढविउक्कस्साउअं मुहं काऊण बिदियाए पुढवीए उक्कस्साउअं तिण्णिसागरोवमपमाणं भूमिं काऊण एक्कारस इंदए उस्सेहं काऊण पुव्विल्लकरणगाहाए बिदियपुढवीएक्कारसपत्थडाणं पादेक्कमाउपमाण-माणेदव्वं। तेसिं पमाणमेदं

$१\frac{२}{११}$	$१\frac{४}{११}$	$१\frac{६}{११}$	$१\frac{८}{११}$	$१\frac{१०}{११}$	$२\frac{१}{११}$	$२\frac{३}{११}$	$२\frac{५}{११}$	$२\frac{७}{११}$	$२\frac{९}{११}$	३

। तदियाए पुढवीए तत्तो तसिदो तवणो तावणो णिदाहो पज्जलिदो उज्जलिदो सुपज्जलिदो संपज्ज-

यहां पर सूत्रके अर्थ करनेमें 'यथासंख्य' न्यायका आश्रय लेना चाहिये अर्थात् तीन, सात आदि सागरोपमोंको क्रमशः दूसरी, तीसरी आदि पृथिवियोंके आयुप्रमाण रूपसे योजित करना चाहिये। पूर्वोक्त दोनों सूत्र देशामर्शक हैं, क्योंकि, वे प्रत्येक पृथिवीकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिकी प्ररूपणा द्वारा अपने अपने समस्त पाथड़ोंकी आयुस्थितिकी सूचना करते हैं। अब हम यहां इन दोनों सूत्रोंके द्वारा सूचित अर्थका प्ररूपण करते हैं। वह इस प्रकार है -

तनक, स्तनक, वनक, मनक, घात, संघात, जिव्ह, जिव्हक, लोल, लोलुप और स्तनलोलुप ये क्रमशः द्वितीय पृथिवीके ग्यारह इन्द्रकोंके नाम हैं। इनकी आयुस्थिति लानेके लिये प्रथम पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थितिको मुख करके तथा दूसरी पृथिवीकी तीन सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयुको भूमि करके और ग्यारह इन्द्रकोंको उत्सेध करके पूर्वोक्त करणगाथानुसार द्वितीय पृथिवीके ग्यारह पाथड़ोंमेंसे प्रत्येकका आयुप्रमाण ले आना चाहिये।

उदाहरण—द्वि. पृ. संबंधी मुख = १ सा., भूमि = ३ सा., उत्सेध = ११. अतएव प्रत्येक प्रस्तरके लिये वृद्धिका प्रमाण हुआ— $(३-१) \div ११ = \frac{२}{११}$। इसको इच्छा अर्थात् प्रस्तरकी क्रमसंख्यासे गुणा करनेपर व भूमिमें मिलानेपर ग्यारहों प्रस्तरोंका आयुप्रमाण इस प्रकार आता है—

प्रस्तर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
आ. प्र. सा.	$१\frac{२}{११}$	$१\frac{४}{११}$	$१\frac{६}{११}$	$१\frac{८}{११}$	$१\frac{१०}{११}$	$२\frac{१}{११}$	$२\frac{३}{११}$	$२\frac{५}{११}$	$२\frac{७}{११}$	$२\frac{९}{११}$	३

तीसरी पृथिवीमें तप्त, त्रसित, तपन, तापन, निदाघ प्रज्वलित, उज्वलित,

१ प्रतिषु 'थदओ' इति पाठः।

लिदो त्ति एदे णव इंदया। एदेसिमाउअं पुव्वं व जाणिदूण आणेदव्वं। तेसिं संदिट्ठी एसा

$३\frac{४}{९}$	$३\frac{८}{९}$	$४\frac{३}{९}$	$४\frac{७}{९}$	$५\frac{२}{९}$	$५\frac{६}{९}$	$६\frac{१}{९}$	$६\frac{५}{९}$	७

। चउत्थीए पुढवीए आरो तारो मारो वंतो तमो खादो खदखदो चेदि सत्त इंदया। एदेसिमाउअपमाणं[1] पुव्वं व आणेदव्वं। तस्स संदिट्ठी एसा

$७\frac{३}{७}$	$७\frac{६}{७}$	$८\frac{२}{७}$	$८\frac{५}{७}$	$९\frac{१}{७}$	$९\frac{४}{७}$	१०

। पंचमीए पुढवीए तमो भमो झसो अंधो तिमिसो चेदि पंच इंदया। एदेसिमाउअपमाणस्स संदिट्ठी एसा

$११\frac{२}{५}$	$१२\frac{४}{५}$	$१४\frac{१}{५}$	$१५\frac{३}{५}$	१७

। छट्ठीए पुढवीए हिमो वद्दलो लल्लंको[2] चेदि तिण्णि इंदया। तेसिमाउअपमाणस्स संदिट्ठी एसा

$१८\frac{२}{३}$	$२०\frac{१}{३}$	२२

। सत्तमाए पुढवीए अवहिट्ठाणमिदि एक्को चेव इंदओ। तत्थ जहण्णु-

सुप्रज्वलित और संप्रज्वलित नामक नव इन्द्रक हैं। इनकी आयु भी पूर्वोक्त विधिसे जानकर ले आना चाहिये। उनकी संदृष्टि इस प्रकार है —

प्रस्तर	१	२	३	४	५	६	७	८	९
आ. प्र. सा.	$३\frac{४}{९}$	$३\frac{८}{९}$	$४\frac{३}{९}$	$४\frac{७}{९}$	$५\frac{२}{९}$	$५\frac{६}{९}$	$६\frac{१}{९}$	$६\frac{५}{९}$	७

चौथी पृथिवीमें आर, तार, मार, वान्त, तम, खात और खातखात नामक सात इन्द्रक हैं। इनका आयुप्रमाण भी पूर्वानुसार ले आना चाहिये। उसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

प्रस्तर	१	२	३	४	५	६	७
आ. प्र. सा.	$७\frac{३}{७}$	$७\frac{६}{७}$	$८\frac{२}{७}$	$८\frac{५}{७}$	$९\frac{१}{७}$	$९\frac{४}{७}$	१०

पांचवीं पृथिवीमें तम, भ्रम, झष, अन्ध, और तिमिस्र नामक पांच इन्द्रक हैं। उनके आयुप्रमाणकी संदृष्टि इस प्रकार है—

प्रस्तर	१	२	३	४	५
आ. प्र. सा.	$११\frac{२}{५}$	$१२\frac{४}{५}$	$१४\frac{१}{५}$	$१५\frac{३}{५}$	१७

छठी पृथिवीमें हिम, वर्दल और लल्लंक नामक तीन इन्द्रक हैं। उनके आयु-प्रमाणकी संदृष्टि यह है —

प्रस्तर	१	२	३
आ. प्र. सा.	$१८\frac{२}{३}$	$२०\frac{१}{३}$	२२

सातवीं पृथिवीमें अवधिस्थान नामक एक ही इन्द्रक हैं। वहां जघन्य आयु

---

१ कप्रतौ ' एदेसिमाउआणं पमाणं ' इति पाठः।

२ प्रतिषु ' अल्लंको ' इति पाठः।

क्कस्साउअं च समयाहियं बावीसं तेत्तीसं सागरोवमाणि २२ । २३ ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खो केवचिरं कालादो होदि? ॥ १० ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११ ॥

मणुस्सेहिंतो आगंतूण तिरिक्खअपज्जत्तेसुप्पज्जिय तत्थ जहण्णाउट्ठिदिमच्छिय णिप्फिडिदूण गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तजहण्णकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १२ ॥

अणप्पिदगदीहिंतो आगंतूण तिरिक्खेसुप्पज्जिय आवलियाए असंखेज्जदिभाग-मेत्तपोग्गलपरियट्टे तिरिक्खेसु परियट्टिदूण अण्णगदिं गदस्स सुत्तुत्तकालुवलंभादो । असंखेज्जपोग्गलपरियट्टेत्ति वुत्ते आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता चेव होंति ।

एक समय अधिक बाईस सागरोपम तथा उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरोपम है । २२ । ३३ ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव कितने काल तक रहता है ? ॥ १० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव कमसे कम एक क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहता है ॥ ११ ॥

क्योंकि, मनुष्यगतिसे आकर तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर वहां जघन्य आयुस्थितिमात्र काल रहकर वहांसे निकलनेवाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य काल पाया जाता है ।

तिर्यंचगतिमें जीव अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक रहता है ॥ १२ ॥

क्योंकि, अविवक्षित गतियोंसे आकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर और आवलीके असंख्यातवें भागमात्र वार पुद्गलपरिवर्तन काल तक तिर्यंचोंमें परिभ्रमण करके अन्य-गतिमें जानेवाले जीवके सूत्रोक्त असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल पाया जाता है । असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन कहनेका तात्पर्य आवलीके असंख्यातवें भागमात्र वारसे है ।

---

१ छत्तीसं तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि । अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तो सि णिगोयवासम्मि ॥ वियलिंदिए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेह । पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतोमुहुत्तस्स ॥ भावप्राभृत २८–२९.

वड्डिया ण होंति त्ति कधं णव्वदे? ण, आइरियपरंपरागदुवदेसादो ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १३ ॥

(सुगममेदं ।)

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥

पंचिंदियतिरिक्खाणं खुद्दाभवग्गहणं, तत्थ अपज्जत्ताणं संभवादो । सेसेसु अंतोमुहुत्तं, तत्थ अपज्जत्ताणमभावादो । ण च पज्जत्तेसु जहण्णाउट्ठिदिपमाणं खुद्दाभवग्गहणं होदि, अंतोमुहुत्तुवदेसस्स एदस्स अणत्थयत्तप्पसंगादो ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ १५ ॥

शंका—असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनोंका तात्पर्य आवलीके असंख्यातवें भागमात्र वारसे ही है, अधिक नहीं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे ।

जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १३ ॥

(यह सूत्र सुगम है ।)

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणकाल व अन्तर्मुहूर्तकाल तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती होते हैं ॥ १४ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका कमसे कम काल क्षुद्रभवग्रहणमात्र है, कारण कि पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें अपर्याप्त जीवोंका होना भी संभव है । शेष तिर्यंचोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, उनमें अपर्याप्त नहीं होते । पर्याप्तक जीवोंमें जघन्यायुस्थितिका प्रमाण क्षुद्रभवग्रहणकाल मात्र नहीं होता, अर्थात् उससे अधिक होता है, क्योंकि, यदि पर्याप्तकोंका जघन्य आयुप्रमाण भी क्षुद्रभवग्रहणकाल मात्र होता तो प्रस्तुत सूत्रमें अन्तर्मुहूर्त कालके उपदेशके निरर्थक होनेका प्रसंग आजाता ।

अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपमप्रमाण काल तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती रहते हैं ॥ १५ ॥

अण्णिदिएहिंतो[1] आगंतूण पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिणीसु उप्पज्जिय जहाकमेण पंचाणउदि-सत्तेत्तालीस-पण्णारसपुव्वकोडीओ परिभमिय दाणेण दाणाणुमोदणेण वा तिपलिदोवमाउट्ठिदिएसु तिरिक्खेसु उप्पज्जिय सगआउट्ठिदिमच्छिय देवेसु उप्पण्णस्स एत्तियमेत्तकालस्सुवलंभादो। कधं तिरिक्खेसु दाणस्स संभवो? ण, तिरिक्खसंजदासंजदाणं सचित्तभंजणे गहिदपच्चक्खाणं सल्लइपल्लवादिं देंततिरिक्खाणं तदविरोधादो। इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ अच्छदि त्ति कधं णव्वदे? आइरियपरंपरागयउवदेसादो।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? ॥ १६ ॥

सुगममेदं।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १७ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रियोंको छोड़ एकेन्द्रिय आदि अन्य जातीय जीवोंमेंसे आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें उत्पन्न होकर क्रमशः पंचानवे, सैंतालीस व पन्द्रह पूर्वकोटिप्रमाण काल तक परिभ्रमण करके दान देनेसे अथवा दानका अनुमोदन करनेसे तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले भोगभूमिक तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर अपनी आयुस्थितिमात्र वहां रहकर देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके सूत्रोक्त काल घटित होता पाया जाता है।

शंका—तिर्यंचोंमें दान देना कैसे संभव हो सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, जो तिर्यंच संयतासंयत जीव सचित्तभंजनके प्रत्याख्यान अर्थात् व्रतको ग्रहणकर लेते हैं उनके लिये शल्लकीके पत्तों आदिका दान करनेवाले तिर्यंचोंके दान देना मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—स्त्री, पुरुष व नपुंसक वेदी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें आठ आठ पूर्वकोटिप्रमाण काल तक ही जीव रहता है यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे।

जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं? ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त रहते हैं ॥ १७ ॥

१ प्रतिषु 'अणिदिएहिंतो' इति पाठः।

अणप्पिदेहिंतो आगंतूण पंचिंदिय (-तिरिक्ख-) अपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वजहण्ण-कालेण भुंजमाणाउअं कदलीघादेण घादिय खुद्दाभवग्गहणमच्छिय णिप्पिडिदस्स एतदुवलंभादो। पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तएसु कदलीघादेण घादिदभुंजमाणाउएसु खुद्दाभवग्गहणकालो किमिदि णोवलब्भदे? ण, तत्थ अइसुट्ठु घादं पत्तस्स वि भुंजमाणाउअस्स अंतोमुहुत्तस्स हेट्ठदो पदणाभावा। देव-णेरइएसु खुद्दाभवग्गहणमेत्ता अंतोमुहुत्तमेत्ता वा आउट्ठिदी किण्ण लब्भदे? ण, तत्थ दसण्हं वस्ससहस्साणं हेट्ठदो आउअस्स बंधाभावा, तत्थतण-भुंजमाणाउअस्स कदलीघादाभावादो च।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८ ॥

कुदो? अणप्पिदेहिंतो आगंतूण पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वुक्कस्सियं भवट्ठिदिमच्छिय णिप्पिडिदस्स वि अंतोमुहुत्तादो अहियकालस्साणुवलंभा।

....

क्योंकि, किन्हीं भी अविवक्षित पर्यायोंसे आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर व सर्वजघन्य कालसे भुज्यमान आयुको कदलीघातसे नष्ट करके क्षुद्रभवग्रहणकालमात्र जीकर निकल जानेवाले जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है।

शंका—कदलीघातसे भुज्यमान आयुको नष्ट करनेवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंमें क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल क्यों नहीं पाया जाता?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, पर्याप्तकोंमें अत्यन्त शीघ्र आयुका घात करनेवाले जीवके भी भुज्यमान आयुका अन्तर्मुहूर्तकालसे कममें नष्ट होना संभव नहीं है।

शंका—देव और नारकी जीवोंमें क्षुद्रभवग्रहणमात्र अथवा अन्तर्मुहूर्तमात्र आयुस्थिति क्यों नहीं पायी जाती?

समाधान—नहीं पायी जाती, क्योंकि, देव और नारकियों सम्बन्धी आयुका बंध दश हजार वर्षसे कम नहीं होता, और उनकी भुज्यमान आयुका कदलीघात भी नहीं होता।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त रहते हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, किन्हीं भी अविवक्षित पर्यायोंसे आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर और वहां सर्वोत्कृष्ट भवस्थितिमात्र काल तक रहकर निकलनेवाले जीवके भी अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल नहीं पाया जाता।

(मणुसगदीए) मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १९ ॥

एगजीवस्स कालाणुगमे कीरमाणे 'मणुसो केवचिरं कालादो होदि' त्ति एगजीवविसयपुच्छाए होदव्वमिदि ? ण, एक्कम्हि वि जीवे एयाणेयसंखोवलक्खिए असुद्धदव्वट्ठियविवक्खाए अणेयत्तस्स अविरोहादो । सव्वत्थ पुच्छापुव्वो चेव अत्थणिद्देसो किमट्ठं कीरदे ? ण, वयणपवुत्तीए परट्ठत्तपदुप्पायणफलत्तादो ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं ॥ २० ॥

सामण्णमणुस्साणं जहण्णाउट्ठिदिपमाणं खुद्दाभवग्गहणं होदि, तत्थ अपज्जत्ताणं संभवादो। पज्जत्त-मणुसिणीसु जहण्णाउट्ठिदिपमाणमंतोमुहुत्तं, तत्थ तत्तो हेट्ठिमआउट्ठिदिवियप्पाणमणुवलंभादो । सेसं सुगमं ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ २१ ॥

(मनुष्यगतिमें) जीव मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यिनी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १९ ॥

शंका—जब एक जीवकी अपेक्षा कालानुगम किया जा रहा है तब 'जीव मनुष्य कितने काल तक रहता है' इस प्रकार एक जीव विषयक ही प्रश्न होना चाहिये, (न कि बहुवचनात्मक जैसा कि सूत्रमें पाया जाता है) ?

समाधान— नहीं, क्योंकि एक व अनेक संख्यासे उपलक्षित जीवमें अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा अनेकत्वके कथनसे कोई विरोध नहीं उत्पन्न होता ।

शंका— सर्वत्र प्रश्नपूर्वक ही अर्थका निर्देश क्यों किया जा रहा है ?

समाधान—'यह वचनप्रवृत्ति परोपकारार्थ है' ऐसी श्रद्धा उत्पन्न करने रूप फलकी अभिलाषासे ही यहां प्रश्नपूर्वक अर्थका निर्देश किया जा रहा है।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र या अन्तर्मुहूर्तमात्र काल तक जीव मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यिनी रहते हैं ॥ २० ॥

सामान्य मनुष्योंकी जघन्य आयुस्थितिका प्रमाण क्षुद्रभवग्रहणमात्र होता है, क्योंकि, सामान्य मनुष्योंमें अपर्याप्त जीवोंका होना संभव है। किन्तु पर्याप्तक मनुष्य और मनुष्यिनियोंमें जघन्य आयुस्थितिका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, उनमें (अपर्याप्तकोंके अभावसे) आयुस्थितिके विकल्प अन्तर्मुहूर्तसे कमके नहीं पाये जाते। शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम काल तक जीव मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त व मनुष्यिनी रहते है ॥ २१ ॥

कुदो ? अणप्पिदेहिंतो आगंतूण अप्पिदमणुसेसुववज्जिय सत्तेतालीस-तेवीस-सत्तपुव्वकोडीओ जहाकमेण परिभमिय दाणेण दाणाणुमोदेण वा तिपलिदोवमाउट्ठिदि-मणुस्सेसुप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

मणुस्सअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? ॥ २२ ॥

कधमेत्थ बहुवयणणिद्देसो जुज्जदे ? ण, पुव्वुत्तकमेण एक्कम्हि बहुत्तणिद्देसस्स अविरोधादो । अधवा ण एत्थ एक्केण चेव जीवेण अहियारो, किंतु पादेक्कं सव्वजीवेहि अहियारो त्ति काऊण बहुवयणणिद्देसो उववज्जदे ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ २३ ॥

कुदो ? अणप्पिदेहिंतो आगंतूण तत्थुप्पज्जिय घादखुद्दाभवग्गहणमच्छिय णिप्फिडिदूण अणप्पिएसु उप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४ ॥

क्योंकि, किन्हीं भी अविवक्षित पर्यायोंसे आकर विवक्षित मनुष्योंमें उत्पन्न होकर क्रमशः सैंतालीस, तेईस व सात पूर्वकोटि काल परिभ्रमण करके दान देकर अथवा दानका अनुमोदन करके तीन पल्योपम आयुस्थितिवाले (भोगभूमिज) मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

जीव अपर्याप्तक मनुष्य कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २२ ॥

शंका—सूत्रमें बहुवचनात्मक निर्देश कैसे उपयुक्त ठहरता है ?

समाधान – क्योंकि, जैसा पहले कह चुके हैं उसी क्रमसे चूंकि जीव एक भी है, अनेक भी है, अतएव अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे बहुवचनके निर्देशसे कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता । अथवा, यहां केवल एक ही जीवकी अपेक्षाका अधिकार नहीं है, किन्तु प्रत्येक रूपसे सभी जीवोंकी अपेक्षा अधिकार है, ऐसा समझकर बहुवचननिर्देश उपयुक्त सिद्ध हो जाता है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक जीव अपर्याप्त मनुष्य रहते हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, किन्हीं भी अन्य पर्यायोंसे आकर अपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होकर कदलीघातसे भुज्यमान आयुके घात द्वारा क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक रहकर व वहांसे निकलकर किसी भी अन्य पर्यायमें उत्पन्न होनेवाले जीवके सूत्रोक्त कालकी प्राप्ति होती है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव अपर्याप्त मनुष्य रहते हैं ॥ २४ ॥

कुदो ? अइबहुवारमेदेसु अइदीहाउओ होदूण उप्पण्णस्स वि दोघडियामेत्तभव-ट्ठिदीए अभावादो ।

देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २५ ॥

सुगममेदं[1]

जहण्णेण दसवाससहस्साणि ॥ २६ ॥

तिरिक्ख मणुस्सेहिंतो जहण्णाउट्ठिदिदेवेसुप्पाज्जिय णिग्गयस्स एत्तियमेत्तकालु-वलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ २७ ॥

सव्वट्ठसिद्धिदेवेसु आउअं बंधिय कमेण तत्थुप्पज्जिय तेत्तीससागरोवमाणि तत्थच्छिदूण णिग्गयस्स तदुवलंभादो । सत्तट्ठभवग्गहणाणि दीहाउट्ठिदिएसु देवेसु उप्पाइदे कालो बहुओ लब्भदि त्ति वुत्ते ण, देव-णेरइयाणं भोगभूमितिरिक्ख-मणुस्साणं

....

क्योंकि, अनेक बहुवार अपर्याप्त मनुष्योंमें अतिदीर्घायु होकर भी उत्पन्न हुए जीवके दो घड़ी मात्र भवस्थितिका होना असंभव है ।

देवगतिमें जीव देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम दश हजार वर्ष तक जीव देव रहते हैं ॥ २६ ॥

क्योंकि, तिर्यंचों या मनुष्योंमेंसे निकलकर व जघन्य आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर वहांसे निकले हुए जीवके सूत्रोक्त मात्र काल ही देवपर्यायमें पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक तेतीस सागरोपम काल तक जीव देव रहते हैं ॥ २७ ॥

क्योंकि, सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें आयुको बांधकर क्रमशः वहां उत्पन्न होकर व तेतीस सागरोपम काल मात्र वहां रहकर निकले हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

शंका—दीर्घायुस्थितिवाले देवोंमें सात आठ भवोंका ग्रहण करनेसे और भी अधिक काल देवगतिमें पाया जा सकता है ?

समाधान—नहीं पाया जा सकता, क्योंकि देव, नारकी, भोगभूमिज तिर्यंच

....

१ प्रतिषु ' सुगममेयं ' इति पाठः ।

च मुदाणं पुणो तत्थेत्राणंतरमुप्पत्तीए अभावादो । कुदो ? अच्चंताभावादो ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २८ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण दसवाससहस्साणि, (दसवाससहस्साणि,) पलिदोवमस्स अट्ठमभागो ॥ २९ ॥

भवणवासिय-वाणवेंतराणं दसवाससहस्साणि जहण्णाउट्ठिदी, जोदिसियाणं पलिदोवमस्स अट्ठमो भागो । वियच्चासो किण्ण होदि ? ण, समेसु उद्देसाणुद्देसीसु जहासंखं मोत्तूण अण्णस्सासंभवादो । सेसं सुगमं ।

उक्कस्सेण सागरोवमं सादिरेयं, पलिदोवमं सादिरेयं, पलिदोवमं सादिरेयं ॥ ३० ॥

और भोगभूमिज मनुष्य, इनके मरनेपर पुनः उसी पर्यायमें अनन्तर उत्पत्ति नहीं पायी जाती, चूंकि इसका अत्यन्त अभाव है।

जीव भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम दश हजार वर्ष तक, दश हजार वर्ष तक तथा पल्योपमके अष्टम भाग काल तक जीव क्रमशः भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव रहते हैं ॥२९॥

भवनवासी और वानव्यन्तर देवोंकी जघन्य आयुस्थिति दश हजार वर्ष है, तथा ज्योतिषी देवोंमें जघन्य आयुस्थिति पल्योपमके अष्टम भागप्रमाण है ।

शंका—जघन्य आयुस्थिति इसके विपर्यासरूपसे अर्थात् भवनवासी और वानव्यन्तर देवोंमें पल्योपमके अष्टम भाग और ज्योतिषी देवोंमें दश हजार वर्षकी क्यों नहीं हो सकती ?

समाधान—नहीं हो सकती, क्योंकि उद्दिष्ट और अनुद्दिष्ट पदोंके समान होनेपर यथासंख्य न्यायको छोड़कर अन्य प्रकार विधान होना असंभव है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

अधिकसे अधिक क्रमशः सातिरेक एक सागरोपम, सातिरेक एक पल्योपम व सातिरके एक पल्योपम काल तक जीव भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव रहते हैं ॥ ३० ॥

भवणवासिएसु सागरोवममद्धसागरोवमहियं । वाणवेंतर-जोदिसिएसु पलिदोवमं अद्धपलिदोवमहियं उक्कस्सट्ठिदिपमाणं होदि । ण च बंधसुत्तेण सह विरोहो, उवरिम-आउवमोवट्टणाघादेण घादिय उप्पण्णेसु एदेसिमाउवाणमुवलंभादो । एत्थ सव्वत्थ किंचूण-पमाणं जाणिदूण वत्तव्वं । एदेसु तिसु वि देवलोएसु जहण्णाउअप्पहुडि जावुक्कस्साउवं त्ति समउत्तरवड्ढीए आउवं वड्ढदि, पत्थडाणमभावा । सेसं सुगमं ।

सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३१ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण पलिदोवमं बे सत्त दस चोद्दस सोलस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३२ ॥

सोधम्मीसाणेसु दिवड्ढपलिदोवमं जहण्णाउअं, सणक्कुमार-माहिंदेसु अड्ढाइज्ज-

भवनवासी देवोंमें उत्कृष्ट आयुस्थितिका प्रमाण अर्ध सागरोपम अधिक एक सागरोपम होता है, तथा वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें अर्ध पल्योपम अधिक एक पल्योपम होता है । इस प्रकार उत्कृष्ट आयुके प्रमाणके कथनका आयुबन्धसम्बन्धी सूत्रमें कहे गये प्रमाणसे विरोध नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि, ऊपरकी आयुके उद्वर्तनाघातसे घात करके उत्पन्न हुए भवनवासी आदि देवोंमें आयुओंका प्रमाण इसी प्रकार पाया जाता है । इन सब आयुओंमें जो किंचित् हीन प्रमाण होता है उसका कथन जानकर करना चाहिये । (देखो जीवट्ठाण, कालानुगम, सूत्र ९६ टीका, भाग ४ पृ. ३८२)

इन तीनों देवलोकोंमें जघन्यायुसे लेकर उत्कृष्ट आयु पर्यन्त उत्तरोत्तर एक एक समय अधिक क्रमसे आयु बढ़ती है, क्योंकि यहां प्रस्तरोंका अभाव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

जीव सौधर्म-ईशानसे लगाकर शतार-सहस्रार पर्यन्त कल्पवासी देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम सातिरेक एक पल्योपम, दो सागरोपम, सात सागरोपम, दश सागरोपम, चौदह सागरोपम व सोलह सागरोपम काल तक जीव सौधर्म-ईशानसे लेकर शतार-सहस्रार तकके कल्पवासी देव होते हैं ॥ ३२ ॥

सौधर्म और ईशान स्वर्गोंमें डेढ़ पल्योपम जघन्य आयु है । सनत्कुमार और

सागरोवमाणि, बम्ह-बम्होत्तरेसु साद्धसत्तसागरोवमाणि, लांतव-काविट्ठेसु साद्धदससागरोवमाणि। सुक्क-महासुक्केसु साद्धचोद्दससागरोवमाणि सदर-सहस्सारकप्पेसु साद्धसोलससागरोवमाणि जहण्णाउवं।

उक्कस्सेण वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३३ ॥

सोहम्मीसाणेसु[1] अड्ढाइज्जसागरोवमाणि देसूणाणि, सणक्कुमार-माहिंदेसु साद्धसत्तसागरोवमाणि देसूणाणि, बम्ह-बम्होत्तरेसु साद्धदससागरोवमाणि देसूणाणि, लांतव-कापिट्ठेसु साद्धचोद्दससागरोवमाणि देसूणाणि, सुक्क-महासुक्केसु साद्धसोलससागरोवमाणि देसूणाणि, सदर-सहस्सारेसु साद्धअट्ठारससागरोवमाणि देसूणाणि। एत्थ देसूणपमाणं जाणिदूण वत्तव्वं। एदाणि दो वि सुत्ताणि देसामासयाणि। तेणेदेहि सूइदत्थस्स परूवणं कस्सामो। तं जहा– उदू विमलो चंदो वग्गू वीरो अरुणो णंदणो णलिणो कांचणो[2] रुहिरो चंचो मरुदिद्धिसो वेलुरिओ रुजगो रुचिरो अंको फलिहो तवणीओ मेहो अब्भं हरिदो पउमं

माहेन्द्र स्वर्गोंमें अढ़ाई सागरोपम, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें साढ़े सात सागरोपम, लांतव और कापिष्ठ स्वर्गोंमें साढ़े दश सागरोपम, शुक्र और महाशुक्रमें साढ़े चौदह सागरोपम, तथा शतार और सहस्रार स्वर्गोंमें साढ़े सोलह सागरोपम जघन्य आयु है।

अधिकसे अधिक सातिरेक दो, सात, दश, चौदह, सोलह व अठारह सागरोपम काल तक जीव सौधर्म-ईशान आदि कल्पोंमें रहते हैं ॥ ३३ ॥

सौधर्म ईशान कल्पोंमें कुछ कम अढ़ाई सागरोपम, सनत्कुमार-माहेन्द्रमें कुछ कम साढ़े सात सागरोपम, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें कुछ कम साढ़े दश सागरोपम, लांतव-कापिष्ठमें कुछ कम साढ़े चौदह सागरोपम, शुक्र महाशुक्रमें कुछ कम साढ़े सोलह सागरोपम, तथा शतार-सहस्रार कल्पोंमें कुछ कम साढ़े अठारह सागरोपम उत्कृष्ट आयुप्रमाण होता है। यहां देशोन अर्थात् कुछ कमका प्रमाण जानकर कहना चाहिये।

उपर्युक्त दोनों सूत्र देशामर्शक हैं, इसलिये इनके द्वारा सूचित अर्थका प्ररूपण करते हैं। वह इस प्रकार है—

ऋतु, विमल, चन्द्र, वल्गु, वीर, अरुण, नन्दन, नलिन, कांचन, रुधिर, चंच, मरुत् (मारुतक्ष), ऋद्धीश (ह्रीश), वैडूर्य, रुचक, रुचिर, अङ्क, स्फटिक, तपनीय, मेघ (मेध), अभ्र, हरित, पद्म, लोहिताङ्क, वरिष्ठ, नन्दावर्त, प्रभंकर, पिष्टाक, गज, मित्र

१ प्रतिषु ' सोहम्मीसाणे ' इति पाठः।

२ अ आप्रत्योः ' कीचणो ' इति पाठः।

लोहिदंको वरिट्ठो णंदावत्तो पहंकरो पिट्ठओ गजो मित्तो पभा चेदि सोधम्मीसाणे एक्कत्तीस पत्थडा होंति[1]। एत्थ उदुम्हि पढमपत्थडे जहण्णमाउअं दिवड्ढपलिदोवमं उक्कस्समद्धसागरोवमं। एत्तो तीसण्हं इंदयाणं वड्ढी वुच्चदे। तत्थ अद्धसागरोवमं मुहं होदि, भूमी अड्ढाइज्जसागरोवमाणि। भूमीदो मुहमवणिय उच्छएण भागे हिदे सागरोवमस्स पण्णारसभागो वड्ढी होदि $\frac{१}{१५}$। एदमिच्छिदपत्थडसंखाए गुणिय मुहे पक्खित्ते विमलादीणं तीसण्हं पत्थडाणमाउआणि होंति। तेसिमेसा संदिट्ठी—

$\frac{१७}{३०}$	$\frac{१९}{३०}$	$\frac{७}{१०}$	$\frac{२३}{३०}$	$\frac{५}{६}$	$\frac{९}{१०}$	$\frac{२९}{३०}$	$\frac{३१}{३०}$	$\frac{११}{१०}$	$\frac{७}{६}$	$\frac{३७}{३०}$	$\frac{१३}{१०}$	$\frac{४१}{३०}$	$\frac{४३}{३०}$	$\frac{३}{२}$
$\frac{४७}{३०}$	$\frac{४९}{३०}$	$\frac{१७}{१०}$	$\frac{५३}{३०}$	$\frac{११}{६}$	$\frac{१९}{१०}$	$\frac{५९}{३०}$	$\frac{६१}{३०}$	$\frac{२१}{१०}$	$\frac{१३}{६}$	$\frac{६७}{३०}$	$\frac{२३}{१०}$	$\frac{७१}{३०}$	$\frac{७३}{३०}$	$\frac{५}{२}$

सोधम्मीसाणे एक्कत्तीसं पत्थडाणि त्ति कधं णव्वदे ?

> इगितीस सत्त चत्तारि दोण्णि एक्केक्क छक्क एक्काए।
> उदुआदिविमाणिंदा तिरधियसट्ठी मुणेयव्वा[2] ॥ २ ॥

और प्रभा, इन नामोंके इकतीस प्रस्तर सौधर्म ईशान कल्पमें हैं। इनमेंसे ऋतु नामक प्रथम प्रस्तरमें जघन्य आयु डेढ़ पल्योपम व उत्कृष्ट आयु अर्ध सागरोपमप्रमाण है। अब यहां द्वितीयादि तीस इन्द्रकोंमें वृद्धिका प्रमाण कहते हैं— यहां अर्ध सागरोपम तो मुख है और अढ़ाई सागरोपम भूमि है। अतएव भूमिमेंसे मुखको घटा देने व उत्सेध अर्थात् उत्सेध (३०) से भाग देनेपर $(२\frac{१}{२} - \frac{१}{२}) \div ३० = \frac{२}{३०} = \frac{१}{१५}$ एक सागरोपमका पन्द्रहवां भाग वृद्धिका प्रमाण आता है। इस $\frac{१}{१५}$ को अभीष्ट प्रस्तरकी संख्यासे गुणित करके मुखमें मिला देनेसे विमलादिक तीस प्रस्तरोंकी आयुका प्रमाण होता है। उनकी संदृष्टि इस प्रकार है। (मूलमें देखिये)

शंका— सौधर्म-ईशान कल्पमें इकतीस प्रस्तर हैं, यह कैसे जाना ?

समाधान— सौधर्म-ईशान कल्पोंमें इकतीस विमान-प्रस्तर हैं, सानत्कुमार-माहेंद्र कल्पोंमें सात, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें चार, लांतव कापिष्ठमें दो, शुक्र-महाशुक्रमें एक, शतार-सहस्रारमें एक, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पोंमें छह, तथा नौ ग्रैवेयकोंमें एक एक, अनुदिशोंमें एक और अनुत्तर विमानोंमें एक, इस प्रकार ऋतु आदिक इन्द्रक विमान तिरेसठ जानना चाहिये ॥ २ ॥

---

१ त. रा. वा. ४, १९, ८.

२ इगितीस सत्त चत्तारि दोण्णि एक्केक्क छक्क चदुकप्पे। तित्तिय एक्केक्किंदयणामा उडुआदि तेवट्ठी ॥ त्रि. सा. ४६२.

सहस्सारो त्ति एक्को चेव पत्थडो सदर-सहस्सारकप्पेसु । तस्स आउअस्स संदिट्ठी | १८ १/२ | ।

आणदप्पहुडि जाव अवराइदविमाणवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३४ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण अट्ठारस वीसं वावीसं[1] तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगुणत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं बत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३५ ॥

आणद-पाणदकप्पे साद्धअट्ठारससागरोवमाणि । आरण-अच्चुदकप्पे समयाहियवीसं सागरोवमाणि । उवरि जहाकमेण णवगेवज्जेसु बावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगुणत्तीसं तीसं सागरोवमाणि समयाहियाणि । णवाणुद्दिसेसु एक्कत्तीससागरोवमाणि समयाहियाणि । चदुसु अणुत्तरेसु बत्तीसं सागरोवमाणि

शतार-सहस्रार कल्पोंमें सहस्रार नामका एक ही प्रस्तर है । उसमें आयुप्रमाण है १८ १/२ सा. ।

जीव आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके विमानवासी देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम सातिरेक अठारह, बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस व बत्तीस सागरोपम काल तक जीव क्रमशः आनत आदि अपराजित विमानवासी देव रहते हैं ॥ ३५ ॥

आनत प्राणत कल्पमें जघन्य आयु-प्रमाण साढ़ अठारह सागरोपम व आरण-अच्युत कल्पमें एक समय अधिक बीस सागरोपम है । इससे ऊपर नव ग्रैवेयकोंमें क्रमशः सुदर्शनमें बाईस, अमोघमें तेईस, सुप्रबुद्धमें चौबीस, यशोधरमें पच्चीस, सुभद्रमें छब्बीस, विशालमें सत्ताईस, सुमनसमें अट्ठाईस, सौमनसमें उनतीस और प्रीतिंकरमें तीस सागरोपमप्रमाण जघन्य आयुस्थिति है । ग्रैवेयकोंसे ऊपर अर्चिष्, अर्चिमाली आदि नव अनुदिशोंमें एक समय अधिक इकतीस सागरोपमप्रमाण जघन्य आयुस्थिति है । अनुदिशोंसे ऊपर विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित, इन चार अनुत्तर विमानोंमें

---

१ प्रतिषु ' हिवीसं ' इति पाठः ।

समयाहियाणि । सेसं सुगमं ।

उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगुणतीसं तीसं एक्कत्तीसं बत्तीसं तेत्तीसं सागरोवमाणि ॥ ३६ ॥

एदाणि उक्कस्साउआणि जहण्णाउअविहाणेण जोजेयव्वाणि । एदेहि जहण्णुक्कस्स-सुत्तेहि देसामासिएहि सूइदत्थस्स परूवणा कीरदे । तं जहा– आणदो पाणदो पुप्फओ त्ति आणद-पाणदकप्पेसु तिण्णि पत्थडा । तेसिमाउअस्स पुव्वुत्तकमेण आणिदसंदिट्ठी एसा– [१९ | १९ १/२ | २०] । सादंकरो आरणो अच्चुदो त्ति आरण-अच्चुदकप्पेसु तिण्णि पत्थडा । एदेसिमाउआणं संदिट्ठी– [२० २/३ | २१ १/३ | २२] । एत्तो उवरि सुदंसणो अमोघो सुप्पबुद्धो जसो-

एक समय अधिक बत्तीस सागरोपमप्रमाण जघन्य आयु है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

अधिकसे अधिक बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, बत्तीस और तेतीस सागरोपम काल तक जीव आनत-प्राणत आदि विमानवासी देव रहते हैं ॥ ३६ ॥

इन उत्कृष्ट आयुओंको जघन्य आयुके विवरणानुसार योजित कर लेना चाहिये। अर्थात् आनत-प्राणतमें उत्कृष्ट आयु बीस सागरोपम, व आरण-अच्युतमें बाईस सागरोपम है। नौ ग्रैवेयकोंमें क्रमशः २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ सागरोपम है। नौ अनुदिशोंमें बत्तीस सागरोपम है और चार अनुत्तर विमानोंमें तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट आयु है ।

जघन्य और उत्कृष्ट आयुस्थितिका निर्देश करनेवाले उपर्युक्त दोनों सूत्र देशामर्शक हैं, अतएव उनके द्वारा सूचित किये गये अर्थकी यहां प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है–

आनत-प्राणत कल्पोंमें तीन प्रस्तर हैं — आनत, प्राणत और पुष्पक । इनमें पूर्वोक्त क्रमसे निकाला गया आयुप्रमाण इस प्रकार है— आनतमें १९, प्राणतमें १९ १/२ और पुष्पकमें २० सागरोपम ।

आरण-अच्युत कल्पोंमें तीन प्रस्तर हैं— सातंकर, आरण और अच्युत । इनकी आयुका प्रमाण निकालने पर सातंकरमें २० २/३, आरणमें २१ १/३ और अच्युतमें २२ सागरोपम आता है ।

अच्युत कल्पसे ऊपर नौ ग्रैवेयकोंके नौ प्रस्तर हैं जिनके नाम हैं—सुदर्शन,

हरो सुभद्दो सुविसालो सुमणसो सोमणसो पीदिंकरो त्ति एदे णव पत्थडा णवगेवज्जेसु । एदेसिमाउवाणं वड्ढि-हाणीओ णत्थि, पादेक्कमेक्केक्कपत्थडस्स पाहण्णियादो । तेसिमाउआणं संदिट्ठी एसा– |२३ २४ २५ २६|२७ २८ २९ ३० ३१| । णवाणुद्दिसेसु आइच्चो णाम एक्को चेव पत्थडो । तम्हि[1] आउअं एत्तियं होदि |३२| । पंचाणुत्तरेसु सव्वट्ठसिद्धिसण्णिदो एक्को चेव पत्थडो । विजय-वैजयंत-जयंत-अवराजिदाणं जहण्णाउअं समयाहियबत्तीससागरोवममेत्तमुक्कस्सं तेत्तीससागरोवमाणि । जहण्णुक्कस्सभेदाभावादो सव्वट्ठसिद्धिविमाणस्स पुध परूवणा कीरदे—

सव्वट्ठसिद्धियविमाणवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३७ ॥

गयत्थमेदं ।

जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि ॥ ३८ ॥

एदं पि सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३९ ॥

अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस्, सौमनस् और प्रीतिंकर । इनमें आयुओंकी हानि वृद्धि नहीं है, क्योंकि प्रत्येकमें एक एक प्रस्तरकी प्रधानता है । इनकी आयुओंकी संदृष्टि यह है । (मूलमें देखिये)

नौ अनुदिशोंमें आदित्य नामका एक ही प्रस्तर है जिसमें आयुका प्रमाण ३२ सागरोपम है ।

पांच अनुत्तरोंमें सर्वार्थसिद्धि नामका एक ही प्रस्तर है । इनमें विजय, वैजयन्त जयन्त और अपराजित, इन चार विमानोंकी जघन्य आयु एक समय अधिक बत्तीस सागरोपमप्रमाण तथा उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरोपमप्रमाण है ।

सर्वार्थसिद्धि विमानमें जघन्य और उत्कृष्ट आयुका भेद नहीं है, इसलिये उसकी पृथक् प्ररूपणा की जाती है ।

जीव सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३७ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

कमसे कम और अधिकसे अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण काल तक जीव सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव रहते हैं ॥ ३८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इन्द्रियमार्गणानुसार जीव एकेन्द्रिय कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३९ ॥

१ प्रतिषु ' तम्हा ' इति पाठः ।

सुगममेदं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४० ॥

कुदो ? अणप्पिदिंदिएहिंतो एइंदिएसुप्पज्जिय घादखुद्दाभवग्गहणमेत्तकालमच्छिय अणिंदियं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ४१ ॥

कुदो ? अणप्पिदिंदिएहिंतो एइंदिएसुप्पज्जिय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-पोग्गलपरियट्टे कुंभारचक्कं व परियट्टिय अणिंदियं गयस्स तदुवलंभादो ।

बादरेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४२ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ ॥ ४४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, अन्य अविवक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर, कदलीघातसे घातित क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल रहकर अन्य द्वीन्द्रियादि जीवोंमें गये हुए जीवके सूत्रोक्त कालप्रमाण पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक जीव एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ४१ ॥

क्योंकि, अविवक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे आकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर आवलीके असंख्यात भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन कुम्भारके चक्रके समान परिभ्रमण करके द्वीन्द्रियादिक अन्य जीवोंमें गये हुए जीवके सूत्रोक्त काल घटित होता है ।

जीव बादर एकेन्द्रिय कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण अंगुलके असंख्यातवें भाग काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ४४ ॥

अणप्पिदिंदिएहिंतो बादरेइंदिएसुप्पज्जिय अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमसंखेज्जा-संखेज्ज-ओसप्पिणी-उवसप्पिणीमेत्तकालं कुलालचक्कं व तत्थेव परिभमिय णिग्गयस्स एदस्स संभवुवलंभा ।

बादरएइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४५ ॥

सुगममेदं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४६ ॥

पज्जत्तएसु अंतोमुहुत्तं मोत्तूण अण्णस्स जहण्णाउअस्स अणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ४७ ॥

अणप्पिदिंदिएहिंतो बादरेइंदियपज्जत्तएसुप्पज्जिय संखेज्जाणि वाससहस्साणि तत्थेव परिभमिय णिग्गयस्स तदुवलंभादो । बहुवं कालं तत्थ किण्ण हिंडदे ? ण, केवलणाणादो विणिग्गयजिणवयणस्सेदस्स सयलपमाणेहिंतो अहियस्स विसंवादाभावा ।

अविवक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे आकर बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी मात्र काल तक कुम्हारके चक्रके समान उसी पर्यायमें परिभ्रमण करके निकलनेवाले जीवके सूत्रोक्त कालका होना संभव पाया जाता है ।

जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं ॥ ४६ ॥

क्योंकि, पर्याप्तक जीवोंमें अन्तर्मुहूर्तके सिवाय अन्य जघन्य आयु पायी ही नहीं जाती ।

अधिकसे अधिक संख्यात हजार वर्षों तक जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, विवक्षितको छोड़ अन्य इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे आकर बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यात हजार वर्षों तक उसी पर्यायमें परिभ्रमण करके निकले हुए जीवके सूत्रोक्त कालप्रमाण पाया जाता है ।

शंका—संख्यात हजार वर्षोंसे अधिक काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं भ्रमण करता ?

समाधान—नहीं करता, क्योंकि केवलज्ञानसे निकले हुए व समस्त प्रमाणोंसे अधिक प्रमाणभूत इस जिनवचनके संबंधमें विसंवाद नहीं हो सकता ।

बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४९ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५० ॥

अणेयसहस्सवारं तत्थेव पुणो पुणो उप्पण्णस्स वि अंतोमुहुत्तं मोत्तूण उवरि आउठिदीणमणुवलंभादो ।

सुहुमेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५२ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ५३ ॥

....

जीव बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ४९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहुर्त काल तक जीव एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त रहते हैं ॥ ५० ॥

क्योंकि, अनेक हजारों वार उसी पर्यायमें पुनः पुनः उत्पन्न हुए जीवके भी अन्तर्मुहूर्तको छोड़ और ऊपरकी आयुस्थितियां पायी ही नहीं जातीं ।

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ५२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय रहते हैं ॥ ५३ ॥

अणिंदिएहिंतो आगंतूण सुहुमेइंदिएसुप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्तकालमद्दहिदजलं व तत्थेव परिभमिय णिग्गयम्मि तदुवलंभादो। बादरट्ठिदीदो किमट्ठं सुहुमट्ठिदी ण अब्भहिया जादा[1] ? ण, बादरेइंदिएसु आउवबंधमाणवारेहिंतो सुहुमेइंदिएसु आउवबंधमाणवाराणमसंखेज्जगुणत्तादो। तं कधं णव्वदे ? एदम्हादो जिणवयणादो।

सुहुमेइंदिया पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५४ ॥

सुगमं।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५५ ॥

एदं पि सुगमं।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५६ ॥

अन्य इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे आकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें उत्पन्न होकर असंख्यात लोकप्रमाण काल तक तपाये हुए जलके समान उसी पर्यायमें परिभ्रमण करके निकले हुए जीवमें सूत्रोक्त काल पाया जाता है।

शंका—बादर जीवोंकी स्थितिसे सूक्ष्म जीवोंकी स्थिति अधिक क्यों नहीं हुई?

समाधान—नहीं हुई, क्योंकि बादर एकेन्द्रिय जीवोंमें जितनी वार आयुबन्ध होता है उनसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके असंख्यातगुणी अधिक वार आयुके बंध होते हैं।

शंका—यह कैसे जाना कि सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके बादर एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणी वार अधिक आयुबंध होते हैं ?

समाधान—इसी जिनवचनसे ही तो यह बात जानी जाती है।

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ५४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक रहते हैं ? ॥ ५५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक रहते हैं ॥ ५६ ॥

[1] प्रतिषु 'अब्भहिया जादो' इति पाठः।

अणेयसहस्सवारं तत्थुप्पण्णे वि अंतोमुहुत्तादो अहियभवट्ठिदीए अणुवलंभा ।

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५९ ॥

सुहुमेइंदियपज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च उक्कस्सभवट्ठिदिपमाणमंतोमुहुत्तमेव, सुहुमाणं पुण भवट्ठिदी असंखेज्जा लोगा, कधमेदं ण विरुज्झदे ? ण, पज्जत्तापज्जत्तएसु असंखेज्जालोगमेत्तवारगदिमागदिं च करेंतस्स तदविरोधादो ।

बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६० ॥

क्योंकि, अनेक सहस्रवार उसी उसी पर्यायमें उत्पन्न होने पर भी अन्तर्मुहूर्तसे अधिक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंकी भवस्थिति नहीं पायी जाती ।

जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ५८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ५९ ॥

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थितिका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त ही है, जब कि सूक्ष्म जीवोंकी भवस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, यह बात परस्पर विरुद्ध क्यों न मानी जाय ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म जीव असंख्यात लोकमात्र वार पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंमें आवागमन करते हैं, इसलिये उनके अविच्छिन्न पर्याप्त व पर्याप्त कालके अन्तर्मुहूर्तमात्र होते हुए भी सूक्ष्म पर्यायसम्बन्धी कालके असंख्यात लोकप्रमाण होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तथा द्वीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त व चतुरिन्द्रिय पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ६० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं ॥ ६१ ॥

एत्थ जहाकमेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियाणं सगंतब्भूदअपज्जत्तसंभवादो खुद्दाभवग्गहणमेदेसिं चेव पज्जत्ताणमंतोमुहुत्तं, तत्थ अपज्जत्ताणमभावादो ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ६२ ॥

अणप्पिदिंदिएहिंतो आगंतूण बारसवास-एगुणवण्णरादिंदिय-छम्मासाउएसु बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिएसुप्पज्जिय बहुवारं तत्थेव परियट्टिय णिग्गयस्स वुत्तकाल-संभवादो ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल व अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव विकलत्रय व विकलत्रय पर्याप्त होते हैं ॥ ६१ ॥

यहां क्रमानुसार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंमें उनके अपर्याप्तोंका भी अन्तर्भाव है, अतएव उन्हीं अपर्याप्तोंकी अपेक्षा उनका कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल होता है । उन्हीं द्वीन्द्रियादिक जीवोंके पर्याप्तोंका काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, उनमें अपर्याप्तोंका अभाव है ।

अधिकसे अधिक संख्यात हजार वर्षों तक जीव विकलत्रय व विकलत्रय पर्याप्त होते हैं ॥ ६२ ॥

अविवक्षित इन्द्रियवाले जीवोंमेंसे आकर बारह वर्ष, उनंचास रात्रिदिन तथा छह मासकी आयुवाले द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीवोंमें उत्पन्न होकर बहुत बार उन्हीं पर्यायोंमें परिभ्रमण करके निकलनेवाले जीवके सूत्रोक्त कालका होना संभव है ।

जीव द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त व चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव विकलत्रय अपर्याप्त रहते हैं ॥६४॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६५ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६६ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं ॥ ६७ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ६८ ॥

पंचिंदियाणं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियसागरोवमसहस्साणि । एत्थ सागरोवमसहस्समिदि एगवयणेण होदव्वं, बहूणं सहस्साणमभावादो ? ण, सागरोवमेसु बहुत्त-

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव विकलत्रय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ६५ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

जीव पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ६६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल व अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं ॥ ६७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र व सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक जीव क्रमशः पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं ॥ ६८ ॥

पंचेन्द्रिय जीवोंका काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागरोपमप्रमाण होता है ।

शंका—इस सूत्रमें 'सागरोपमसहस्रं' ऐसा एक वचनात्मक निर्देश होना चाहिये था न कि बहुवचनात्मक, क्योंकि सामान्य पंचेन्द्रिय जीवोंके भवस्थितिकालमें अनेक सहस्र सागरोपम नहीं होते ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सहस्रमें नहीं किन्तु सागरोपमोंमें

दंसणादो । ण सहस्ससहस्स पुव्वणिवादो[1] होदि त्ति आसंकणिज्जं, लक्खाणुसारेण लक्खणस्स पुवुत्तिदंसणादो । पज्जत्ताण पुण सागरोवमसदपुधत्तं । कधमेदं णव्वदे ? जहासंखणायादो ।

पंचिंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६९ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ७० ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७१ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ७२ ॥

एदं पि सुगमं ।

तो बहुत्व पाया जाता है । ऐसी भी आशंका नहीं करना चाहिये कि यदि बहुवचनका संबंध सहस्रसे न होकर सागरोपमोंसे था तो सहस्र शब्दको सागरोपमके पश्चात् न रखकर उससे पूर्व विशेषणरूपसे रखना था, क्योंकि लक्ष्यके अनुसार लक्षणकी प्रवृत्ति देखी जाती है ।

पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका काल सागरोपमशतपृथक्त्व ही है ।

शंका—पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंका सागरोपमशतपृथक्त्व काल कैसे जाना ?

समाधान—सूत्रमें यथासंख्य न्यायसे उपर्युक्त प्रमाण जाना जाता है ।

जीव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ७० ॥

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं ॥ ७१ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

कायमार्गणानुसार जीव पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक व वायुकायिक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ७२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

---

१ प्रतिषु ' पुव्वाणिवादो ' इति पाठः ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ७३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ७४ ॥

अणप्पिदकायादो आगंतूण अप्पिदकायम्मि समुप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्तकालं तत्थ परियट्टिय णिग्गयम्मि तदुवलंभादो ।

बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिपत्तेय-सरीरा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ७५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ७६ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी ॥ ७७ ॥

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेज-कायिक व वायुकायिक रहते हैं ॥ ७३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यातलोकप्रमाण काल तक जीव पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक व वायुकायिक रहते हैं ॥ ७४ ॥

क्योंकि, अविवक्षित कायसे आकर व विवक्षित कायमें उत्पन्न होकर असंख्यात-लोकमात्र काल तक उसी पर्यायमें परिभ्रमण करके निकलनेवाले जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायु-कायिक व बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव बादर पृथिवीकायादिक उपर्युक्त पर्यायोंमें रहते हैं ॥ ७६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक कर्मस्थितिप्रमाण काल तक जीव बादर पृथिवीकायादिक उपर्युक्त पर्यायोंमें रहते हैं ॥ ७७ ॥

कम्मट्ठिदि त्ति वुत्ते सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्ता घेत्तव्वा, कम्मविसेसट्ठिदिं मोत्तूण कम्मस्साउट्ठिदिगहणादो। के वि आइरिया सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरपुढविकायादीणं कायट्ठिदी होदि त्ति भणंति। तेसिं कम्मट्ठिदिववएसो कज्जे कारणोवयारादो। एदं वक्खाणमत्थि त्ति कधं णव्वदे? कम्मट्ठिदिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरट्ठिदी होदि त्ति परियम्मवयणण्णहाणुववत्तीदो। तत्थ सामण्णेण बादरट्ठिदी होदि त्ति जदि वि उत्तं तो वि पुढविकायादीणं बादराणं पत्तेयकायट्ठिदी घेत्तव्वा, असंखेज्जासंखेज्जाओ ओस्सप्पिणी-उस्सप्पिणीओ त्ति सुत्तम्हि बादरट्ठिदिपरूवणादो।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति? ॥ ७८ ॥

सुगमं।

सूत्रमें जो कर्मस्थिति शब्द है उससे सत्तर सागरोपम कोड़ाकोड़ि मात्र कालका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि विशेष कर्मोंकी स्थितिको छोड़कर कर्मसामान्यकी आयुस्थितिका ही यहां ग्रहण किया गया है। कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि सत्तर सागरोपम कोड़ाकोड़िको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर बादर पृथिवीकायादिक जीवोंकी कायस्थितिका प्रमाण आता है। किन्तु उनकी यह कर्मस्थिति संज्ञा कार्यमें कारणके उपचारसे ही सिद्ध होती है।

शंका—ऐसा व्याख्यान है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—'कर्मस्थितिको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर बादरस्थिति होती है' ऐसे परिकर्मके वचनकी अन्यथा उपपत्ति बन नहीं सकती, इसीसे उपर्युक्त व्याख्यान जाना जाता है।

वहांपर यद्यपि सामान्यसे 'बादरस्थिति होती है' ऐसा कहा है, तो भी पृथिवीकायादिक बादर प्रत्येकशरीर जीवोंकी स्थिति ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, सूत्रमें बादरस्थितिका प्ररूपण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी प्रमाण किया गया है।

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक व बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं? ॥ ७८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७९ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि ॥ ८० ॥

अणप्पिदकायादो आगंतूण बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्तएसु जहाकमेण बावीसवस्ससहस्स-सत्तवस्ससहस्स-तिण्णिदिवस-तिण्णिवस्ससहस्स-दसवस्ससहस्साउएसु उप्पज्जिय संखेज्जवस्ससहस्साणि तत्थच्छिय णिग्गदस्स तदुवलंभादो ।

बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिपत्तेय-सरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ८१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८२ ॥

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव बादर पृथिवीकायिक आदि पर्याप्त रहते हैं ॥ ७९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक संख्यात हजार वर्षों तक जीव बादर पृथिवीकायिकादि पर्याप्त रहते हैं ॥ ८० ॥

अविवक्षित कायसे आकर बादर पृथिवीकायिक, बादर अपकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तकोंमें यथाक्रमसे बाईस हजार वर्ष, सात हजार वर्ष, तीन दिवस, तीन हजार वर्ष व दश हजार वर्षकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर व संख्यात हजार वर्षों तक उसी पर्यायमें रहकर निकलनेवाले जीवके सूत्रोक्त प्रमाण काल पाया जाता है ।

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव बादर पृथिवीकायिक आदि अपर्याप्त रहते हैं ॥ ८२ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८३ ॥

एदाणि वि सुगमाणि ।

सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुम-वाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ ८४ ॥

जहा सुहुमेइंदियाणं जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा तधा एदेसिं सुहुमपुढविआदीणं छण्हं जहण्णुक्कस्सकाला[1] होंति । जहा सुहुमेइंदियपज्जत्ताणं जहण्णकालो उक्कस्सकालो वि अंतोमुहुत्तं होदि तहा सुहुमपुढविकायादीणं छण्हं पज्ज-त्ताणं जहण्णुक्कस्सकाला होंति । जहा सुहुमेइंदियअपज्जत्ताणं जहण्णकालो खुद्दाभव-ग्गहणमुक्कस्सो अंतोमुहुत्तं तहा एदेसिं छण्हमपज्जत्ताणं जहण्णुक्कस्सकाला होंति त्ति भणिदं होदि । सुहुमणिगोदग्गहणमणत्थयं, सुहुमवणप्फदिकाइयग्गहणेणेव सिद्धीदो ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव बादर पृथिवीकायिक आदि अपर्याप्त रहते हैं ॥ ८३ ॥

ये सूत्र भी सुगम हैं ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदजीव तथा इन्हीं पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंके कालका निरूपण क्रमसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त व सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है ॥ ८४ ॥

जिस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंका जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे असंख्यात लोकप्रमाण काल है उसी प्रकार इन सूक्ष्म पृथिवीकायिकादिक छहोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है । जिस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका जघन्य काल और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त होता है उसी प्रकार सूक्ष्म पृथिवीकायिकादिक छह पर्याप्तोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है । जिस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होता है उसी प्रकार इन छह अपर्याप्तोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है । यह सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका—सूत्रमें सूक्ष्म निगोदजीवोंका ग्रहण करना अनर्थक है, क्योंकि, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवोंके ग्रहणसे ही उनका ग्रहण सिद्ध है । तथा सूक्ष्म वनस्पतिकायिक

१ अप्रतौ 'छण्हं पज्जत्ताणं जहण्णुक्कस्सकाला' इति पाठः ।

ण च सुहुमवणप्फदिकाइयवदिरित्ता सुहुमणिगोदा अत्थि, तहाणुवलंभादो ? णेदं जुज्जदे, जत्थ सुत्तं णत्थि तत्थ आइरियवयणाणं वक्खाणाणं च पमाणत्तं होदि। जत्थ पुण जिणवयणविणिग्गयं सुत्तमत्थि ण तत्थ एदेसिं पमाणत्तं। सुहुमवणप्फदिकाइए भणिदूण सुहुमणिगोदजीवा सुत्तम्मि परूविदा, तदो एदेसिं पुध परूवणण्णहाणुववत्तीदो सुहुम-वणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदाणं विसेसो अत्थि त्ति णव्वदे।

वणप्फदिकाइया एइंदियाणं भंगो ॥ ८५ ॥

जहा एइंदियाणं जहण्णकालो खुद्दाभवग्गहणमुक्कस्सो अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं तहा वणप्फदिकाइयाणं जहण्णकालो उक्कस्सकालो च होदि त्ति उत्तं होइ।

णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ८६ ॥

सुगमं।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८७ ॥

एदं पि सुगमं।

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ८८ ॥

जीवोंसे भिन्न सूक्ष्म निगोद जीव हैं भी नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता ?

समाधान — यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि, जहां सूत्र नहीं है वहां आचार्य-वचनोंको और व्याख्यानोंको प्रमाणता होती है। किन्तु जहां जिन भगवानके मुखसे निर्गत सूत्र है वहां इनको प्रमाणता नहीं होती। चूंकि सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंको कह-कर सूत्रमें सूक्ष्म निगोदजीवोंका निरूपण किया गया है, अतः इनके पृथक् प्ररूपणकी अन्यथानुपपत्तिसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदजीवोंके भेद है, यह जाना जाता है।

वनस्पतिकायिक जीवोंके कालका कथन एकेन्द्रिय जीवोंके समान है ॥ ८५ ॥

जिस प्रकार एकेन्द्रियोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है उसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवोंका जघन्य काल और उत्कृष्ट काल होता है, यह सूत्रका अर्थ है।

जीव निगोदजीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ८६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

जीव जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल तक निगोदजीव रहते हैं ॥ ८७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

जीव अधिकसे अधिक अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक निगोदजीव रहते हैं ? ॥ ८८ ॥

अणिगोदजीवस्स णिगोदेसु उप्पण्णस्स उक्कस्सेण अड्डाइज्जपोग्गलपरियट्टेहिंतो उवरि परिभवणाभावादो[1] ।

बादरणिगोदजीवा बादरपुढविकाइयाणं भंगो ॥ ८९ ॥

जहा बादरपुढविकाइयाणं जहण्णकालो खुद्दाभवग्गहणमुक्कस्सो कम्मट्ठिदी तहा एदेसिं जहण्णुक्कस्सकाला होंति । जहा बादरपुढविकाइयपज्जत्ताणं कालो तहा बादर-णिगोदपज्जत्ताणं होदि । णवरि बादरपुढविकाइयपज्जत्ताणं उक्कस्साउट्ठिदी संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, बादरणिगोदपज्जत्ताणं पुण उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं । जहा बादर-पुढविकाइयअपज्जत्ताणं जहण्णकालो खुद्दाभवग्गहणमुक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं तहा बादर-णिगोदअपज्जत्ताणं जहण्णुक्कस्सकालो त्ति भणिदं होदि ।

तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ९० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं ॥ ९१ ॥

क्योंकि, निगोदजीवोंमें उत्पन्न हुए निगोदसे भिन्न जीवका उत्कर्षसे अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनोंसे ऊपर परिभ्रमण है ही नहीं ।

बादर निगोदजीवोंका काल बादर पृथिवीकायिकोंके समान है ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार बादर पृथिवीकायिकोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट कर्मस्थिति प्रमाण है, उसी प्रकार बादर निगोदजीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है । जिस प्रकार बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तोंका काल है उसी प्रकार बादर निगोद पर्याप्तोंका काल होता है । विशेष केवल इतना है कि बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तोंकी उत्कृष्ट आयुस्थिति संख्यात हजार वर्ष है, परन्तु बादर निगोद पर्याप्तोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है । जिस प्रकार बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंका जघन्य काल क्षुद्रभव-ग्रहण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है उसी प्रकार बादर निगोद अपर्याप्तकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है ।

जीव त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव क्रमसे त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त रहते हैं ॥ ९१ ॥

१ कप्रतौ 'परिभमणाभावादो' इति पाठः ।

सुगममेदं पि ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि बे सागरोवमसहस्साणि ॥ ९२ ॥

तसकाइयाणं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि बे सागरोवमसहस्साणि, तेसिं पज्जत्ताणं बे सागरोवमसहस्सं चेव । कुदो ? जहासंखणायादो ।

तसकाइयअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ९३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ९४ ॥

सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९५ ॥

एदं पि सुगमं ।

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो सागरोपमसहस्र और केवल दो सागरोपमसहस्र काल तक जीव क्रमशः त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त रहते हैं ॥ ९२ ॥

त्रसकायिकोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो सागरोपमसहस्र और त्रसकायिक पर्याप्तोंका केवल दो सागरोपमसहस्र ही है, क्योंकि, यहां यथासंख्य-न्याय लगता है ।

जीव त्रसकायिक अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव त्रसकायिक अपर्याप्त रहते हैं ॥९४॥

यह सूत्र सुगम है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव त्रसकायिक अपर्याप्त रहते हैं ॥ ९५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ९६ ॥

'जोगिणो' इदि वयणादो बहुवयणणिद्देसो किण्ण कदो ? ण, पंचण्हं पि एयत्ताविणाभावेण एयवयणुववत्तीदो । सेसं सुगमं ।

जहण्णेण एयसमओ ॥ ९७ ॥

मणजोगस्स ताव एगसमयपरूवणा कीरदे । तं जहा– एगो कायजोगेण अच्छिदो कायजोगद्धाए खएण मणजोगे आगदो, तेणेगसमयमच्छिय बिदियसमये मरिय कायजोगी जादो । लद्धो मणजोगस्स एगसमओ । अधवा कायजोगद्धाक्खएण मणजोगे आगदे बिदियसमए वाघादिदस्स पुणरवि कायजोगो चेव आगदो । लद्धो बिदियपयारेण एगसमओ । एवं सेसाणं चदुण्हं मणजोगाणं पंचण्हं वचिजोगाणं च एगसमयपरूवणा दोहि पयारेहि णादूण कायव्वा ।

योगमार्गणानुसार जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ९६ ॥

शंका—'जोगिणो' इस प्रकारके वचनसे यहां बहुवचनका निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि पांचोंके ही एकत्वके साथ अविनाभाव होनेसे यहां एकवचन उचित है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी रहते हैं ॥ ९७ ॥

प्रथमतः मनोयोगके एक समयकी प्ररूपणा की जाती है । वह इस प्रकार है— एक जीव काययोगसे स्थित था, वह काययोगकालके क्षयसे मनोयोगमें आया, उसके साथ एक समय रहकर व द्वितीय समयमें मरकर काययोगी हो गया । इस प्रकार मनोयोगका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है । अथवा काययोगकालके क्षयसे मनोयोगके प्राप्त होनेपर द्वितीय समयमें व्याघातको प्राप्त हुए उसको फिर भी काययोग ही प्राप्त हुआ । इस तरह द्वितीय प्रकारसे एक समय प्राप्त होता है । इसी प्रकार शेष चार मनोयोगों और पांच वचनयोगोंके भी एक समयकी प्ररूपणा दोनों प्रकारोंसे जानकर करना चाहिये ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९८ ॥

अणप्पिदजोगादो अप्पिदजोगं गंतूण उक्कस्सेण तत्थ अंतोमुहुत्तावट्ठाणं पडि विरोहाभावादो ।

कायजोगी केवचिरं कालादो होदि[1] ? ॥ ९९ ॥

किमट्ठमेत्थ एगवयणणिद्देसो कदो ? ण एस दोसो, एगजीवं मोत्तूण बहूहि जीवेहि एत्थ पओजणाभावादो ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०० ॥

अणप्पिदजोगादो कायजोगं गदस्स जहण्णकालस्स वि अंतोमुहुत्तपमाणं मोत्तूण एगसमयादिपमाणाणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १०१ ॥

अणप्पिदजोगादो कायजोगं गंतूण तत्थ सुट्ठु दीहद्धमच्छिय कालं करिय एइंदियेसु उप्पण्णस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणि परियट्टिदस्स कायजोगुक्कस्सकालुवलंभादो ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी रहते हैं ॥ ९८ ॥

क्योंकि, अविवक्षित योगसे विवक्षित योगको प्राप्त होकर उत्कर्षसे वहां अन्तर्मुहूर्त तक अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

जीव काययोगी कितने काल तक रहता है ? ॥ ९९ ॥

शंका—यहां एकवचनका निर्देश किस लिये किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, एक जीवको छोड़कर बहुत जीवोंसे यहां प्रयोजन नहीं है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तक जीव काययोगी रहता है ॥ १०० ॥

क्योंकि, अविवक्षित योगसे काययोगको प्राप्त हुए जीवके जघन्य कालका प्रमाण अन्तर्मुहूर्तको छोड़कर एक समयादिरूप नहीं पाया जाता ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक जीव काययोगी रहता है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, अविवक्षित योगसे काययोगको प्राप्त होकर और वहां अतिशय दीर्घ काल तक रहकर कालको करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुए जीवके आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण करते हुए काययोगका उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

१ प्रतिषु 'होंति' इति पाठः ।

ओरालियकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०२ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ १०३ ॥

मणजोगेण वचिजोगेण वा अच्छिय तेसिमद्धाखएण ओरालियकायजोगंगद-बिदियसमए कालं कादूण जोगंतरं गदस्स एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण बावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि ॥ १०४ ॥

बावीसवाससहस्साउअपुढवीकाइएसु उप्पज्जिय सव्वजहण्णेण कालेण ओरालिय-मिस्सद्धं गमिय पज्जत्तिगदपढमसमयप्पहुडि जाव अंतोमुहुत्तूणबावीसवाससहस्साणि ताव ओरालियकायजोगुवलंभादो ।

ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी आहारकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०५ ॥

जहण्णेण एगसमओ ॥ १०६ ॥

जीव औदारिककाययोगी कितने काल तक रहता है ? ॥ १०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव औदारिककाययोगी रहता है ॥ १०३ ॥

क्योंकि, मनोयोग अथवा वचनयोगके साथ रहकर उनके कालक्षयसे औदारिक-काययोगको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें मरकर योगान्तरको प्राप्त हुए जीवके एक समय देखा जाता है ।

अधिकसे अधिक बाईस हजार वर्षों तक जीव औदारिककाययोगी रहता है ॥ १०४ ॥

क्योंकि, बाईस हजार वर्षकी आयुवाले पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न होकर सर्व-जघन्य कालसे औदारिकमिश्रकालको बिताकर पर्याप्तिको प्राप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष तक औदारिककाययोग पाया जाता है ।

जीव औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी कितने काल तक रहता है ? ॥ १०५ ॥

कमसे कम एक समय तक जीव औदारिकमिश्रकाययोगी आदि रहता है ॥ १०६ ॥

ओरालियकायजोगाविणाभाविदंडादो कवाडंगदसजोगिजिणम्हि ओरालिय-मिस्सस्स एगसमओ लब्भदे, तत्थ ओरालियमिस्सेण विणा अण्णजोगाभावादो। मण-वचि-जोगेहिंतो वेउव्वियजोगंगदबिदियसमए मदस्स एगसमओ वेउव्वियकायजोगस्स उव-लब्भदे, मुदपढमसमए कम्मइय-ओरालिय-वेउव्वियमिस्सकायजोगे मोत्तूण वेउव्वियकाय-जोगाणुवलंभादो। मण-वचिजोगेहिंतो आहारकायजोगंगदबिदियसमए मुदस्स मूलसरीरं पविट्ठस्स वा आहारकायजोगस्स एगसमओ लब्भदे, मुदाणं मूलसरीरपविट्ठाणं च पढमसमए आहारकायजोगाणुवलंभादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०७ ॥

मणजोगादो वचिजोगादो वा वेउव्विय-आहारकायजोगं गंतूण सव्वुक्कस्सं अंतो-मुहुत्तमच्छिय अण्णजोगं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो, अणप्पिदजोगादो ओरा-लियमिस्सजोगं गंतूण सव्वुक्कस्सकालमच्छिय अण्णजोगं गदस्स ओरालियमिस्सस्स अंतोमुहुत्तमेत्तुक्कस्सकालुवलंभादो। सुहुमेइंदियअपज्जत्तएसु बादरेइंदियअपज्जत्तएसु च

औदारिककाययोगके अविनाभावी दण्डसमुद्घातसे कपाटसमुद्घातको प्राप्त हुए सयोगी जिनमें औदारिकमिश्रका एक समय पाया जाता है, क्योंकि, उस अवस्थामें औदारिकमिश्रके विना अन्य योग पाया नहीं जाता। मनोयोग या वचनयोगसे वैक्रियिक-काययोगको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें मृत्युको प्राप्त हुए जीवके वैक्रियिककाययोगका एक समय पाया जाता है, क्योंकि, मर जानेके प्रथम समयमें कार्मणकाययोग, औदारिक-मिश्रकाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगको छोड़कर वैक्रियिककाययोग पाया नहीं जाता। मनोयोग अथवा वचनयोगसे आहारककाययोगको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें मृत्युको प्राप्त हुए या मूल शरीरमें प्रविष्ट हुए जीवके आहारककाययोगका एक समय पाया जाता है, क्योंकि, मृत्युको प्राप्त या मूल शरीरमें प्रविष्ट हुए जीवोंके प्रथम समयमें आहारककाययोग पाया नहीं जाता।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव औदारिकमिश्रकाययोगी आदि रहता है ॥ १०७ ॥

क्योंकि, मनोयोग अथवा वचनयोगसे वैक्रियिक या आहारककाययोगको प्राप्त होकर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर अन्य योगको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त-मात्र काल पाया जाता है, तथा अविवक्षित योगसे औदारिकमिश्रयोगको प्राप्त होकर व सर्वोत्कृष्ट काल तक रहकर अन्य योगको प्राप्त हुए जीवके औदारिकमिश्रका अन्त-र्मुहूर्तमात्र उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंमें और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंमें सात

सत्तट्ठभवग्गहणाणि णिरंतरमुप्पण्णस्स बहुओ कालो किण्ण लब्भदे ? ण, ताओ सव्वाओ ट्ठिदीओ एक्कदो कदे वि अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०९ ॥

एगसमओ किण्ण लब्भदे ? ण, एत्थ मरण-जोगपरावत्तीणमसंभवादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११० ॥

सुगमं ।

कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १११ ॥

आठ भवग्रहण तक निरन्तर उत्पन्न हुए जीवके बहुत काल क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, उन सब स्थितियोंको इकट्ठा करनेपर भी अन्तर्मुहूर्तमात्र काल पाया जाता है ।

जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी कितने काल तक रहता है ? ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी रहता है ॥ १०९ ॥

शंका— यहां एक समयमात्र जघन्य काल क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, यहां मरण और योगपरावृत्तिका होना असम्भव है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी रहता है ॥ ११० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव कार्मणकाययोगी कितने काल तक रहता है ? ॥ १११ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ११२ ॥

एगविग्गहं कादूण उप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तिण्णि समया ॥ ११३ ॥

तिण्हं समयाणमुवरि विग्गहाणुवलंभादो ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा केवचिरं कालादो होंति ?॥ ११४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ११५ ॥

उवसमसेडीदो ओदरिय सवेदो होदूण बिदियसमए मुदस्स पुरिसवेदेण परिणयस्स एगसमओवलंभादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ ११६ ॥

अणप्पिदवेदादो इत्थिवेदं गंतूण पलिदोवमसदपुधत्तं तत्थेव परिभमिय पच्छा

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव कार्मणकाययोगी रहता है ॥ ११२ ॥

क्योंकि, एक विग्रह (मोड़ा) करके उत्पन्न हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक तीन समय तक जीव कार्मणकाययोगी रहता है ॥ ११३ ॥

क्योंकि, तीन समयोंके ऊपर विग्रह पाये नहीं जाते ।

वेदमार्गणानुसार जीव स्त्रीवेदी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ११४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव स्त्रीवेदी रहता है ॥ ११५ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरकर सवेद होते हुए द्वितीय समयमें मृत्युको प्राप्त होकर पुरुषवेदसे परिणत हुए जीवके एक समय पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक पल्योपमशतपृथक्त्व काल तक जीव स्त्रीवेदी रहता है ॥ ११६ ॥

जीव अविवक्षित वेदसे स्त्रीवेदको प्राप्त होकर और पल्योपमशतपृथक्त्व काल

अण्णवेदं[1] गदो। सदपुधत्तमिदि किं? तिसदप्पहुडि जाव णवसदाणि त्ति एदे सव्व-वियप्पा सदपुधत्तमिदि वुच्चंति।

पुरिसवेदा केवचिरं कालादो होंति? ॥ ११७ ॥

सुगमं।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११८ ॥

पुरिसवेदोदएण उवसमसेडिं चढिय अवगदवेदो होदूण पुणो उवसमसेडीदो ओदरमाणो सवेदो होदूण वेदस्स आदिं करिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमद्धमच्छिय पुणो उवसमसेढिं चढिय अवगदवेदभावं गदम्मि पुरिसवेदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालस्सुवलंभादो।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ११९ ॥

णवुंसयवेदम्मि अणंतकालमसंखेज्जलोगमेत्तं वा अच्छिय पुरिसवेदं गंतूण तम-छंडिय सागरोवमसदपुधत्तं तत्थेव परिभमिय अण्णवेदं गदस्स तदुवलंभादो। |९००|

तक उसमें ही परिभ्रमण करके पश्चात् अन्य वेदको प्राप्त हुआ।

शंका— शतपृथक्त्व किसे कहते हैं?

समाधान— तीन सौसे लेकर नौ सौ तक ये सब विकल्प 'शतपृथक्त्व' कहे जाते हैं।

जीव पुरुषवेदी कितने काल तक रहते हैं? ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पुरुषवेदी रहते हैं ॥ ११८ ॥

पुरुषवेदके उदयसे उपशमश्रेणी चढ़कर, अपगतवेदी होकर, पुनः उपशम-श्रेणीसे उतरता हुआ सवेद होकर, वेदका आदि करके, सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर, और फिर उपशमश्रेणी चढ़कर अपगतवेदत्वको प्राप्त हुए जीवके पुरुष-वेदका अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

अधिकसे अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक जीव पुरुषवेदी रहते हैं ॥ ११९ ॥

नपुंसकवेदमें अनन्त काल अथवा असंख्यात लोकमात्र काल तक रहकर पुरुषवेदको प्राप्त होकर और फिर उसे न छोड़कर सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक उसमें ही परिभ्रमण करके अन्य वेदको प्राप्त हुए जीवके वह सूत्रोक्त काल पाया जाता

१ अ-आप्रत्योः 'अण्णवेद' इति पाठः।

एदमेत्थ सदपुधत्तमिदि गहिदं ।

णवुंसयवेदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १२० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ १२१ ॥

णवुंसयवेदोदएण उवसमसेडिं चडिय ओदरिय सवेदो होदूण बिदियसमए कालं करिय पुरिसवेदं गदस्स एगसमयदंसणादो । पुरिसवेदस्स एगसमओ किण्ण लद्धो ? ण, अवगदवेदो होदूण सवेदजादबिदियसमए कालं करिय देवेसुप्पण्णो वि पुरिसवेदं मोत्तूण अण्णवेदस्सुदयाभावेण एगसमयाणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १२२ ॥

अणप्पिदवेदा णवुंसयवेदयं गंतूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टे परियट्टिदूण अण्णवेदं गदस्स तदुवलद्धीदो ।

है । ९०० सागरोपम यहां शतपृथक्त्वसे ग्रहण किये गये हैं ।

जीव नपुंसकवेदी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १२० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव नपुंसकवेदी रहते हैं ॥ १२१

क्योंकि, नपुंसकवेदके उदयसे उपशमश्रेणी चढ़कर, फिर उतरकर, सवेद होकर और द्वितीय समयमें मरकर पुरुषवेदको प्राप्त हुए जीवके नपुंसकवेदका कमसे कम एक समय काल देखा जाता है ।

शंका—पुरुषवेदका जघन्य काल एक समय क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि, अपगतवेद होकर और सवेद होनेके द्वितीय समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न होनेपर भी पुरुषवेदको छोड़कर अन्य वेदके उदयका अभाव होनेसे एक समय काल नहीं पाया जाता ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक जीव नपुंसकवेदी रहते हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, अविवक्षित वेदसे नपुंसकवेदको प्राप्त होकर और आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके अन्य वेदको प्राप्त हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अवगदवेदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १२३ ॥

सुगमं ।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १२४ ॥

उवसमसेडिं चडिय अवगदवेदो होदूण एगसमयमाच्छिय बिदियसमए कालं कादूण वेदभावं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२५ ॥

इत्थिवेदोदएण णवुंसयवेदोदएण वा उवसमसेडिं चडिय अवगदवेदो होदूण सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमाच्छिय वेदभावं गदस्स तदुवलंभादो ।

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२६ ॥

खवगसेडिं चडिय अवगदवेदो होदूण सव्वजहण्णेण कालेण परिणिव्वुदस्स तदुवलंभादो ।

जीव अपगतवेदी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १२३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमककी अपेक्षा कमसे कम एक समय तक जीव अपगतवेदी रहते हैं ॥ १२४ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणी चढ़कर, अपगतवेदी होकर और एक समय रहकर द्वितीय समयमें मरकर सवेदपनेको प्राप्त हुए जीवके एक समय काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव अपगतवेदी रहते हैं ॥ १२५ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदके उदयसे या नपुंसकवेदके उदयसे उपशमश्रेणी चढ़कर, अपगतवेदी होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर वेदपनेको प्राप्त हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

क्षपककी अपेक्षा कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव अपगतवेदी रहते हैं ॥ १२६ ॥

क्योंकि, क्षपकश्रेणी चढ़कर और अपगतवेदी होकर सर्वजघन्य कालसे मुक्तिको प्राप्त हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ १२७ ॥

देवस्स णेरइयस्स वा खइयसम्माइट्ठिस्स पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववज्जिय अट्ठवस्साणि गमिय संजमं पडिवज्जिय सव्वजहण्णकालेण खवगसेडिं चाडिय अवगदवेदो होदूण केवलणाणं समुप्पाइय देसूणपुव्वकोडिं विहरिय अबंधगभावं गदस्स तदुवलंभादो ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एयसमओ ॥ १२९ ॥

अणप्पिदकसायादो कोधकसायं गंतूण एगसमयमच्छिय कालं करिय णिरयगइं मोत्तूणण्णगईसुप्पण्णस्स एगसमओवलंभादो । कोधस्स वाघादेण एगसमओ णत्थि, वाघादिदे वि कोधस्सेव समुप्पत्तीदो । एवं सेसतिण्हं कसायाणं पि एगसमयपरूवणा कायव्वा । णवरि एदेसिं तिण्हं कसायाणं वाघादेण वि एगसमयपरूवणा कायव्वा ।

अधिकसे अधिक कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष तक जीव अपगतवेदी रहते हैं ॥ १२७ ॥

क्योंकि, देव अथवा नारक क्षायिकसम्यग्दृष्टिके पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, आठ वर्ष विताकर, संयमको प्राप्त कर, सर्वजघन्य कालसे क्षपकश्रेणी चढ़कर, अपगतवेदी होकर, केवलज्ञानको उत्पन्न कर, और कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक विहार करके अबंधक अवस्थाको प्राप्त होनेपर वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

कषायमार्गणानुसार जीव क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी कब तक रहता है ? ॥ १२८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव क्रोधकषायी आदि रहता है ॥ १२९ ॥

क्योंकि, अविवक्षित कषायसे क्रोधकषायको प्राप्त होकर, एक समय रहकर और फिर मरकर नरकगतिको छोड़ अन्य गतियोंमें उत्पन्न हुए जीवके एक समय पाया जाता है । क्रोधके व्याघातसे एक समय नहीं पाया जाता, क्योंकि व्याघातको प्राप्त होनेपर भी पुनः क्रोधकी ही उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार शेष तीन कषायोंके भी एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिये । विशेष इतना है कि इन तीन कषायोंके व्याघातसे भी एक समयकी प्ररूपणा करना चाहिये । मरणकी अपेक्षा एक समय

मरणेण एगसमए भण्णमाणे माणस्स मणुसगइं, मायाए तिरिक्खगइं, लोभस्स देवगइं मोत्तूण सेसासु तिसु गईसु उप्पाएअव्वो। कुदो ? णिरय-मणुस-तिरिक्ख-देवगईसु उप्पण्णाणं पढमसमए जहाकमेण कोध-माण-माया-लोभाणं चेवुदयदंसणादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३० ॥

अणप्पिदकसायादो अप्पिदकसायं गंतूणुक्कस्सकालं तत्थ ट्ठिदस्स वि अंतोमुहुत्तादो अधियकालाणुवलंभादो[1]।

अकसाई अवगदवेदभंगो ॥ १३१ ॥

जहा अवगदवेदाणं उवसमसेडिं खवगसेडिं च पडुच्च जहण्णेण एगसमय-अंतोमुहुत्तपरूवणा, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त-देसूणपुव्वकोडिपरूवणा च कदा तधा अकसायाणं पि जहण्णुक्कस्सेहि कालपरूवणा कादव्वा त्ति भणिदं होदि।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३२ ॥

कहनेपर मानकी मनुष्यगति, मायाकी तिर्यचगति और लोभकी देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंमें जीवको उत्पन्न कराना चाहिये। कारण यह कि नरक, मनुष्य, तिर्यंच और देव गतियोंमें उत्पन्न हुए जीवोंके प्रथम समयमें यथाक्रमसे क्रोध, मान, माया और लोभका उदय देखा जाता है।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव क्रोधकषायी आदि रहता है ॥ १३० ॥

क्योंकि, अविवक्षित कषायसे विवक्षित कषायको प्राप्त होकर उत्कृष्ट काल तक वहीं स्थित हुए भी जीवके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल नहीं पाया जाता।

अकषायी जीवोंका काल अपगतवेदियोंके समान है ॥ १३१ ॥

जिस प्रकार अपगतवेदियोंके उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय व अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा, तथा उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त व कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण कालकी प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार अकषायी जीवोंकी भी जघन्य और उत्कर्षसे कालप्ररूपणा करना चाहिये। यह उक्त सूत्रका अर्थ है।

ज्ञानमार्गणानुसार जीव मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी कितने काल तक रहता है ? ॥ १३२ ॥

१ अ-काप्रत्योः 'अधियकालोवलंभादो', आप्रतौ 'अधियकालावलभादो' इति पाठः।

सुगमं ।

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १३३ ॥

अभवियं पडुच्च एसो णिद्देसो, अभव्वसमाणभव्वं वा ।

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १३४ ॥

एसो भवियजीवं पडुच्च णिद्देसो कदो ।

सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १३५ ॥

एसो णिद्देसो णाणादो अण्णाणंगदभवियजीवं पडुच्च कदो ।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो– जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १३६ ॥

सम्माइट्ठिस्स मिच्छत्तं गंतूण मदि-सुदअण्णाणाणि पडिवज्जिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय सम्मत्तं गंतूण पडिवण्णमदि-सुदणाणस्स जहण्णकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंका काल अनादि-अनन्त है ॥ १३३ ॥

यह निर्देश अभव्य अथवा अभव्य समान भव्य जीवकी अपेक्षासे किया गया है ।

उक्त दोनों अज्ञानियोंका काल अनादि-सान्त है ॥ १३४ ॥

यह निर्देश भव्य जीवकी अपेक्षासे किया गया है ।

उक्त दोनों अज्ञानियोंका काल सादि-सान्त है ॥ १३५ ॥

यह निर्देश ज्ञानसे अज्ञानको प्राप्त हुए भव्य जीवकी अपेक्षासे किया गया है ।

जो वह सादि-सान्त है उसका निर्देश इस प्रकार है– सम्यग्ज्ञानसे मिथ्याज्ञानको प्राप्त हुआ भव्य जीव कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तक मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी रहता है ॥ १३६ ॥

क्योंकि, सम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानको प्राप्त कर एवं सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर सम्यक्त्वको प्राप्त होकर मतिज्ञान और श्रुतज्ञानको प्राप्त करलेनेपर जघन्य काल पाया जाता है ।

उपर्युक्त जीव अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी रहता है ॥ १३७ ॥

अणादियमिच्छाइट्ठिस्स तिण्णि वि करणाणि अद्धपोग्गलपरियट्टस्स बाहिं काऊण पोग्गलपरियट्टादिसमए उवसमसम्मत्तं घेत्तूण आभिणिबोहिय-सुदणाणाणि पडिवज्जिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय छआवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गंतूण मदि-सुदअण्णाण-मादिं करिय मिच्छत्तं गंतूण पोग्गलपरियट्टस्स अद्धं देसूणं परिभमिय पुणो अपच्छिमे भवे मदि-सुदणाणाणि उप्पाइय अंतोमुहुत्तेण अबंधगत्तं गदस्स देसूणपोग्गलपरियट्टस्स अद्धुवलंभादो ।

विभंगणाणी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ १३९ ॥

देवस्स णेरइयस्स वा उवसमसम्माइट्ठिस्स उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमयावसेसाए सासणं गंतूण विभंगणाणेण सह एगसमयमच्छिय बिदियसमए मदस्स[1] तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ १४० ॥

क्योंकि, अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालके बाहिर तीनों ही करणोंको करके पुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहणकर आभिनिबोधिक व श्रुत ज्ञानको प्राप्त करके और सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर उपशमसम्यक्त्वमें छह आवलियां शेष रहनेपर सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त होकर मति और श्रुत अज्ञानका आदि करके मिथ्यात्वको प्राप्त हो कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक भ्रमण करके पुनः अन्तिम भवमें मति एवं श्रुत ज्ञानको उत्पन्न कर अन्तर्मुहूर्त कालसे अबन्धक अवस्थाको प्राप्त होनेपर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल पाया जाता है ।

जीव विभंगज्ञानी कितने काल तक रहता है ? ॥ १३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव विभंगज्ञानी रहता है ॥ १३९ ॥

क्योंकि, देव अथवा नारकी उपशमसम्यग्दृष्टिके उपशमसम्यक्त्वकालमें एक समय शेष रहनेपर सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त होकर और विभंगज्ञानके साथ एक समय रहकर द्वितीय समयमें मृत्युको प्राप्त होनेपर वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागरोपम काल तक जीव विभंगज्ञानी रहता है ॥ १४० ॥

---

१ प्रतिषु ' गदस्स ' इति पाठः ।

तिरिक्खस्स मणुसस्स वा तेत्तीसाउट्ठिदिएसु सत्तमपुढविणेरइएसु उप्पज्जिय छपज्जत्तीओ समाणिय विभंगणाणी होदूण अंतोमुहुत्तेणूणतेत्तीसाउट्ठिदिमच्छिय णिग्गदस्स तदुवलंभादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४२ ॥

देवस्स णेरइयस्स वा मदि-सुद-विभंगअण्णाणेहि अच्छिदस्स सम्मत्तं घेत्तणुप्पाइदमदिसुदोहिणाणस्स जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गयस्स तद्दंसणादो ।

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १४३ ॥

देवस्स णेरइयस्स वा पडिवण्णउवसमसम्मत्तेण सह समुप्पण्णमदि-सुद-ओहिणाणस्स वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय अविणट्ठतिणाणेहि अंतोमुहुत्तमच्छिय एदेणंतोमुहुत्तेणूणपुव्वकोडाउअमणुस्सेसुववज्जिय पुणो वीसंसागरोवमिएसु देवेसुववज्जिय पुणो पुव्व-

क्योंकि, तिर्यंच अथवा मनुष्यके तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुवाले सप्तम पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होकर, छह पर्याप्तियोंको पूर्ण कर विभंगज्ञानी होकर अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुस्थिति तक रहकर वहांसे निकलनेपर वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

जीव आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधि ज्ञानी कितने काल तक रहता है ? ॥ १४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी एवं अवधिज्ञानी रहता है ॥ १४२ ॥

क्योंकि मति, श्रुत और विभंग अज्ञानके साथ स्थित देव अथवा नारकीके सम्यक्त्वको ग्रहणकर और मति, श्रुत एवं अवधि ज्ञानको उत्पन्न करके उनमें जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर उक्त काल देखा जाता है ।

अधिकसे अधिक साधिक छ्यासठ सागरोपम काल तक जीव आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी एवं अवधिज्ञानी रहता है ॥ १४३ ॥

देव अथवा नारकीके प्राप्त हुए उपशमसम्यक्त्वके साथ मति, श्रुत और अवधि ज्ञानको उत्पन्न करके, वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अविनष्ट तीनों ज्ञानोंके साथ अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर, इस अन्तर्मुहूर्तसे हीन पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, पुनः बीस सागरोपमप्रमाण आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर, पुनः पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें

कोडाउएसु मणुस्सेसुववज्जिय बावीससागरोवमट्ठिदीएसु देवेसुववज्जिदूण पुणो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसुववज्जिय खइयं पट्ठविय चउवीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुववज्जिदूण पुणो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसुववज्जिय थोवावसेसे जीविए केवलणाणी होदूण अबंधगत्तं गदस्स चदुहि पुव्वकोडीहि सादिरेयछावट्ठिसागरोवमाणमुवलंभादो। वेदगसम्मत्तेण छावट्ठिसागरोवमाणि भमाविय खइयं पट्ठविय तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पाइय अबंधओ किण्ण कओ ? ण, सम्मत्तेण सह जदि संसारे सुट्ठु बहुअं कालं परिभवइ तो चदुहि पुव्वकोडीहि सादिरेयछावट्ठिसागरोवमाणि चेव परिभमदि त्ति वक्खाणंतरदंसणट्ठमुवदेसणादो। अंतोमुहुत्ताहियछावट्ठिसागरोवमाणि किण्ण वुत्ताणि ? ण, केवलवेदगसम्मत्तेण छावट्ठिसागरोवमाणि संपुण्णाणि परिभमिय खइयभावं गदस्स तदुवलंभादो।

मणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १४४ ॥

सुगमं।

उत्पन्न होकर, पुनः बाईस सागरोपम आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर, पुनः पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, क्षायिकसम्यक्त्वका प्रारंभ करके, चौबीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर, पुनः पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, जीवितके थोड़ा शेष रहनेपर केवलज्ञानी होकर अबन्धक अवस्थाको प्राप्त होनेपर चार पूर्वकोटियोंसे अधिक छयासठ सागरोपम पाये जाते हैं।

शंका—वेदकसम्यक्त्वके साथ छयासठ सागरोपमप्रमाण घुमाकर और फिर क्षायिकसम्यक्त्वको प्रारंभ कर तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराकर अबन्धक क्यों नहीं किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि 'सम्यक्त्वके साथ यदि जीव संसारमें खूब बहुत काल तक भ्रमण करे तो चार पूर्वकोटियोंसे साधिक छयासठ सागरोपमप्रमाण ही भ्रमण करता है' ऐसा अन्य व्याख्यान दिखलानेके लिये वैसा उपदेश दिया है।

शंका—अन्तर्मुहूर्तसे अधिक छयासठ सागरोपम क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं कहे, क्योंकि, केवल वेदकसम्यक्त्वके साथ सम्पूर्ण छयासठ सागरोपम भ्रमणकर क्षायिकभावको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक छयासठ सागरोपम पाये जाते हैं।

जीव मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १४४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४५ ॥

दोसु संजदेसु परिणामपच्चएणुप्पाइदकेवल-मणपज्जवणाणेसु सव्वजहण्णं कालं तेहि सह अच्छिय असंजममबंधयभावं गदेसु एदस्सुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १४६ ॥

कुदो ? गब्भादिअट्ठवस्सेहि संजमं पडिवज्जिय आभिणिबोहिय-सुदणाणाणि उप्पाइय अंतोमुहुत्तेण मणपज्जवणाणमुप्पाइय पुव्वकोडिं विहरिय देवेसुप्पण्णस्स देसूणपुव्वकोडिकालोवलंभादो । एवं केवलणाणिस्स वि उक्कस्सकालो वत्तव्वो । णवरि देवेहिंतो णेरइएहिंतो वा आगंतूण पुव्वकोडाउएसु खइयसम्मत्तेण सह उप्पज्जिय गब्भादिअट्ठवस्सेहि संजमं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय केवलणाणमुप्पाइय देसूणपुव्व-कोडिं विहरिय अबंधगत्तं गदस्स वत्तव्वं ।

संजमाणुवादेण संजदा परिहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा केव-चिरं कालादो होंति ? ॥ १४७ ॥

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त तक जीव मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी रहते हैं ॥ १४५ ॥

क्योंकि, दो संयत जीवोंके परिणामोंके निमित्तसे केवलज्ञान व मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न करके और सर्वजघन्य काल तक उनके साथ रहकर असंयम एवं अबन्धक भावको प्राप्त होनेपर यह काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक जीव मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी रहते हैं ॥ १४६ ॥

क्योंकि, गर्भसे आदि लेकर आठ वर्षोंसे संयमको प्राप्त कर, अन्तर्मुहूर्तसे मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न कर और पूर्वकोटि वर्ष तक विहार करके देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके कुछ कम पूर्वकोटि काल पाया जाता है इसी प्रकार केवलज्ञानीका भी उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । विशेष यह है कि देवों या नारकियोंमेंसे आकर, पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ उत्पन्न होकर, गर्भसे आदि लेकर आठ वर्षोंसे संयमको प्राप्त कर, अन्तर्मुहूर्त रहकर, केवलज्ञान उत्पन्न कर और कुछ कम पूर्वकोटि तक विहार करके अबन्धक अवस्थाको प्राप्त हुए जीवके कुछ कम पूर्वकोटि काल पाया जाता है, ऐसा कहना चाहिये ।

जीव संयममार्गणानुसार संयत, परिहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १४७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४८ ॥

कुदो ? संजमं परिहारसुद्धिसंजमं संजमासंजमं च गंतूण जहण्णकालमच्छिय अण्णगुणं गदेसु तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १४९ ॥

कुदो ? मणुस्सस्स गब्भादिअट्ठवस्सेहि संजमं पडिवज्जिय देसूणपुव्वकोडिं संजममणुपालिय कालं काऊण देवेसुप्पण्णस्स देसूणपुव्वकोडिमेत्तसंजमकालुवलंभादो । एवं परिहारसुद्धिसंजदस्स वि उक्कस्सकालो वत्तव्वो । णवरि सव्वसुही होदूण तीसं वस्साणि गमिय तदो वासपुधत्तेण तित्थयरपादमूले पच्चक्खाणणामधेयपुव्वं पढिदूण पुणो पच्छा परिहारसुद्धिसंजमं पडिवज्जिय देसूणपुव्वकोडिकालमच्छिदूण देवेसुप्पण्णस्स वत्तव्वं । एवमट्ठतीसवस्सेहि ऊणिया पुव्वकोडी परिहारसुद्धिसंजमस्स कालो वुत्तो । के वि आइरिया सोलसवस्सेहि के वि बावीसवस्सेहि ऊणिया पुव्वकोडि त्ति भणंति । एवं संजदासंजदस्स वि उक्कस्सकालो वत्तव्वो । णवरि अंतोमुहुत्तपुधत्तेण ऊणिया

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव संयत आदि रहते हैं ॥ १४८ ॥

क्योंकि संयम, परिहारशुद्धिसंयम और संयमासंयमको प्राप्त होकर व जघन्य काल तक रहकर अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेपर वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक कुछ कम पूर्वकोटि काल तक जीव संयत आदि रहते हैं ॥ १४९ ॥

क्योंकि, गर्भसे लेकर आठ वर्षोंसे संयमको प्राप्त कर और कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक संयमका पालन कर व मरकर देवोंमें उत्पन्न हुए मनुष्यके कुछ कम पूर्वकोटि-मात्र संयमकाल पाया जाता है । इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयतका भी उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । विशेष इतना कि सर्वसुखी होकर तीस वर्षोंको बिताकर, पश्चात् वर्षपृथक्त्वसे तीर्थंकरके पादमूलमें प्रत्याख्यान नामक पूर्वको पढ़कर पुनः तत्पश्चात् परिहारशुद्धिसंयमको प्राप्त कर और कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक रहकर देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके उपर्युक्त कालप्रमाण कहना चाहिये । इस प्रकार अड़तीस वर्षोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण परिहारशुद्धिसंयमका काल कहा गया है । कोई आचार्य सोलह वर्षोंसे और कोई बाईस वर्षोंसे कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण कहते हैं । इसी प्रकार संयतासंयतका भी उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । विशेष यह कि अन्तर्मुहूर्तपृथक्त्वसे कम पूर्वकोटि वर्ष

पुव्वकोडी संजमासंजमस्स कालो त्ति वत्तव्वं ।

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १५० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ १५१ ॥

उवसमसेडीदो ओयरमाणस्स सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमादो सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमं पडिवज्जिय तत्थ एगसमयमच्छिय बिदियसमए मुदस्स एगसमओवलंभादो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १५२ ॥

पुव्वकोडाउअमणुस्सस्स गब्भादिअट्ठवस्सेहि सामाइय-च्छेदोवट्ठाणियसुद्धिसंजमं पडिवज्जिय अट्ठवस्सूणपुव्वकोडिं विहरिय देवेसुप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥१५३॥

संयमासंयमका काल होता है, ऐसा कहना चाहिये ।

जीव सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत कितने काल तक रहते हैं ? ॥१५०॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५१ ॥

उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवके सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयमसे सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयमको प्राप्त कर और उसमें एक समय तक रहकर द्वितीय समयमें मरनेपर एक समय पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण काल तक जीव सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५२ ॥

पूर्वकोटि वर्षप्रमाण आयुवाले मनुष्यके गर्भादि आठ वर्षोंसे सामायिक-छेदोपस्थानिकशुद्धिसंयमको प्राप्त कर और आठ वर्ष कम पूर्वकोटि वर्ष तक विहार करके देवोंमें उत्पन्न होनेपर वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १५३ ॥

सुगमं ।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १५४ ॥

कुदो ? चडंतो वा अणियट्टी उवसमओ उवसंतकसाओ वा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो जादो, तत्थ एगसमयमच्छिय बिदियसमए मुदस्स तदुवलंभादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५५ ॥

सुहुमसांपराइयगुणट्ठाणम्मि अंतोमुहुत्तादो अहियकालमवट्ठाणाभावा ।

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५६ ॥

कुदो ? सुहुमसांपराइयखवगस्स मरणाभावादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १५७ ॥

सुगमं ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १५८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमकी अपेक्षा कमसे कम एक समय तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५४ ॥

क्योंकि, चढ़ता हुआ अनिवृत्तिकरण उपशमक अथवा उपशान्तकषाय जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत हुआ, वहां एक समय रहकर द्वितीय समयमें मरणको प्राप्त हुए उसके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५५ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक अवस्थान ही नहीं होता ।

क्षपककी अपेक्षा कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५६ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत क्षपकके मरणका अभाव है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १५८ ।

सुगमं ।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ॥ १५९ ॥

कुदो ? सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स उवसंतकसायत्तं पडिवज्जिय एगसमयमच्छिय बिदियसमए मुदस्स एगसमओवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६० ॥

कुदो ? उवसंतकसायस्स अंतोमुहुत्तादो अहियकालाभावा ।

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६१ ॥

कुदो ? खवगसेडिं चडिय खीणकसायट्ठाणे जहाक्खादसंजमं पडिवज्जिय सजोगी होदूण अंतोमुहुत्तेण अबंधगत्तं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ॥ १६२ ॥

कुदो ? गब्भादिअट्ठवस्साणि गमिय संजमं घेत्तूण सव्वलहुएण कालेण मोहणीयं

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमकी अपेक्षा कमसे कम एक समय तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धि-संयत रहते हैं ॥ १५९ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतके उपशान्तकषायत्वको प्राप्त होकर और एक समय रहकर द्वितीय समयमें मरण करनेपर एक समय काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १६० ॥

क्योंकि, उपशान्तकषायका अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल है ही नहीं ।

क्षपककी अपेक्षा कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धि-संयत रहते हैं ॥ १६१ ॥

क्योंकि, क्षपकश्रेणीपर चढ़कर क्षीणकषाय गुणस्थानमें यथाख्यातसंयमको प्राप्त कर और फिर सयोगी होकर अन्तर्मुहूर्तसे अबन्धक अवस्थाको प्राप्त हुए जीवके वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत रहते हैं ॥ १६२ ॥

क्योंकि, गर्भादि आठ वर्षोंको विताकर संयमको प्राप्त कर, सर्वलघु कालसे

खविय जहाक्खादसंजदो होदूण देसूणपुव्वकोडिं विहरिय अबंधगत्तं गदस्स तदुवलंभादो।

असंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १६३ ॥

सुगमं ।

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १६४ ॥

अभवियं पडुच्च एसो णिद्देसो ।

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १६५ ॥

भवियं पडुच्च एसो णिद्देसो ।

सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १६६ ॥

सादि-सांतमसंजमं पडुच्च एसो णिद्देसो ।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो–जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १६७ ॥

कुदो ? संजदस्स परिणामपच्चएण असंजमं गंतूण तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्त-मच्छिय संजमं गदस्स जहण्णकालुवलंभादो ।

मोहनीयका क्षय कर, यथाख्यातसंयत होकर और कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक विहार कर अबन्धक अवस्थाको प्राप्त हुए जीवके वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है।

जीव असंयत कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंयत जीवोंका काल अनादि-अनन्त है ॥ १६४ ॥

यह निर्देश अभव्य जीवकी अपेक्षासे किया गया है।

असंयतोंका काल अनादि-सान्त है ॥ १६५ ॥

यह निर्देश भव्य जीवकी अपेक्षासे किया गया है।

असंयतोंका काल सादि-सान्त है ॥ १६६ ॥

यह निर्देश सादि-सान्त असंयमकी अपेक्षा किया गया है।

जो वह सादि-सान्त असंयम है उसका इस प्रकार निर्देश है— कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव असंयत रहते हैं ॥ १६७ ॥

क्योंकि, संयत जीवके परिणामोंके निमित्तसे असंयमको प्राप्त होकर और वहां सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुनः संयमको प्राप्त करनेपर उक्त जघन्य काल पाया जाता है।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १६८ ॥

कुदो ? अद्धपोग्गलपरियट्टस्स आदिसमए संजमं घेत्तूण उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए असंजमं गंतूण उवड्डपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण पुणो तिण्णि करणाणि कादूण संजमं पडिवण्णस्स तदुवलंभादो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी केवचिरं कालादो होंति? ॥१६९॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७० ॥

कुदो ? अचक्खुदंसणेण ट्ठिदस्स चक्खुदंसणं गंतूण जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो अचक्खुदंसणं गदस्स तदुवलंभादो । चउरिंदियअपज्जत्तएसु उप्पाइय खुद्दाभवग्गहणं जहण्णकालो त्ति किण्ण परूविदं ? ण, चक्खुदंसणीअपज्जत्तएसु[1] खुद्दाभवग्गहणमेत्तजहण्ण-कालाणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि ॥ १७१ ॥

अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक जीव असंयत रहते हैं ॥ १६८ ॥

क्योंकि, अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें संयमको ग्रहण कर उपशम सम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां शेष रहनेपर असंयमको प्राप्त होकर कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण कर पुनः तीन करणोंको करके संयमको प्राप्त हुए जीवके यह सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

दर्शनमार्गणानुसार जीव चक्षुदर्शनी कितने काल तक रहते हैं ॥ १६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव चक्षुदर्शनी रहते हैं ॥ १७० ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शन सहित स्थित जीवके चक्षुदर्शनी होकर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः अचक्षुदर्शनी होनेपर अचक्षुदर्शनका अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो जाता है ।

शंका—किसी जीवको चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न कराकर चक्षुदर्शनका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणमात्र क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि, चक्षुदर्शनी अपर्याप्तकोंमें क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य काल नहीं पाया जाता । (देखो जीवट्ठाण, कालानुगम, सूत्र २७८ टीका) ।

अधिकसे अधिक दो हजार सागरोपम काल तक जीव चक्षुदर्शनी रहता है ॥ १७१ ॥

१ प्रतिषु ' पज्जत्तएसु ' इति पाठः ।

एइंदिओ बेइंदिओ तेइंदिओ चउरिंदियादिसु उप्पाज्जिय बेसागरोवमसहस्साणि परिभमिय अचक्खुदंसणीसु उप्पण्णस्सुवलंभादो । चक्खुदंसणक्खओवसमस्स एसो कालो णिद्दिट्ठो । उवजोगं पुण पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमेत्तो चेव ।

अचक्खुदंसणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १७२ ॥

सुगमं ।

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १७३ ॥

अभवियमभवियसमाणभवियं वा पडुच्च एसो णिद्देसो । कुदो ? अचक्खुदंसणक्खओवसमरहिदछदुमत्थाणमणुवलंभादो ।

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १७४ ॥

णिच्छएण सिज्झमाणभवियजीवं पडुच्च एसो णिद्देसो । अचक्खुदंसणस्स सादित्तं णत्थि, केवलदंसणादो अचक्खुदंसणमागच्छंताणमभावादो[1] ।

ओधिदंसणी ओधिणाणीभंगो ॥ १७५ ॥

क्योंकि, किसी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय व त्रीन्द्रिय जीवके चतुरिन्द्रियादि जीवोंमें उत्पन्न होकर दो हजार सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न होनेपर चक्षुदर्शनका दो हजार सागरोपम काल प्राप्त हो जाता है । यह काल चक्षुदर्शनके क्षयोपशमका कहा गया है । उपयोगकी अपेक्षा तो चक्षुदर्शनका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है ।

जीव अचक्षुदर्शनी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १७२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव अनादि अनन्त भी अचक्षुदर्शनी होता है ॥ १७३ ॥

अभव्य या अभव्यके समान भव्यकी अपेक्षासे यह निर्देश किया गया है, क्योंकि अचक्षुदर्शनके क्षयोपशमसे रहित छद्मस्थ जीव पाये नहीं जाते ।

जीव अनादि सान्त भी अचक्षुदर्शनी होता है ॥ १७४ ॥

यह निर्देश निश्चयसे सिद्ध होनेवाले भव्य जीवकी अपेक्षा किया गया है। अचक्षुदर्शन सादि नहीं होता, क्योंकि केवलदर्शनसे पुनः अचक्षुदर्शनमें आनेवाले जीवोंका अभाव है ।

अवधिदर्शनीकी कालप्ररूपणा अवधिज्ञानीके समान है ॥ १७५ ॥

---

१ प्रतिषु ' अचक्खुदंसणस्साणंताण- ', मप्रतौ ' अचक्खुदंसणस्सागच्छंताण ' इति पाठः ।

कुदो ? ओहिणाणिस्सेव जहण्णेण अंतोमुहुत्तस्स, उक्कस्सेण सादिरेयछावट्ठिसागरोवमाणमुवलंभादो ।

केवलदंसणी केवलणाणीभंगो ॥ १७६ ॥

कुदो ? केवलणाणीणं (व) जहण्णुक्कस्सपदेहि अंतोमुहुत्त-देसूणपुव्वकोडीणं केवलदंसणीणमुवलंभादो ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १७७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७८ ॥

कुदो ? अणप्पिदलेस्सादो अविरुद्धादो अप्पिदलेस्समागंतूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अविरुद्धलेस्संतरं गयस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १७९ ॥

क्योंकि, अवधिज्ञानीके समान अवधिदर्शनका भी कमसे कम अन्तर्मुहूर्त और अधिकसे अधिक सातिरेक छयासठ सागरोपम काल पाया जाता है ।

केवलदर्शनीकी कालप्ररूपणा केवलज्ञानीके समान है ॥ १७६ ॥

क्योंकि, केवलज्ञानियोंके समान केवलदर्शनी जीवोंका भी जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि पाया जाता है ।

लेश्यामार्गणानुसार जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या व कापोतलेश्यावाले कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या व कापोतलेश्यावाले रहते हैं ॥ १७८ ॥

क्योंकि, अविवक्षित अविरुद्ध लेश्यासे विवक्षित लेश्यामें आकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रहकर अन्य अविरुद्ध लेश्यामें जानेवाले जीवके उक्त लेश्याओंका अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त होता है ।

अधिकसे अधिक सातिरेक तेतीस, सत्तरह व सात सागरोपम काल तक जीव कृष्ण, नील व कापोत लेश्यावाले रहते हैं ॥ १७९ ॥

कुदो ? तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा किण्ह-णील-काउलेस्साहि सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्त-मच्छिय पुणो तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाउट्ठिदिणेरइएसु उपज्जिय किण्ह-णील-काउ-लेस्साहि सह अप्पप्पणो आउट्ठिदिमच्छिय तत्तो णिप्फिडिदूण अंतोमुहुत्तकालं ताहि चेव लेस्साहि गमेदूण अविरुद्धलेस्संतरं गदस्स दोहि अंतोमुहुत्तेहि समहियतेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवममेत्ततिलेस्साकालुवलंभादो ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८१ ॥

कुदो ? अणप्पिदलेस्सादो अविरुद्धादो अप्पिदलेस्सं गंतूण तत्थ जहण्णमंतो-मुहुत्तमच्छिय अविरुद्धलेस्संतरं गयस्स जहण्णकालदंसणादो ।

उक्कस्सेण बे-अट्ठारस-तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १८२ ॥

क्योंकि, तिर्यंचों या मनुष्योंमें कृष्ण, नील व कापोतलेश्या सहित सबसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल रहकर फिर तेतीस, सत्तरह व सात सागरोपम आयुस्थितिवाले नारकियोंमें उत्पन्न होकर कृष्ण, नील व कापोत लेश्याओंके साथ अपनी अपनी आयु-स्थितिप्रमाण रहकर वहांसे निकल अन्तर्मुहूर्त काल उन्हीं लेश्याओं सहित व्यतीत करके अन्य अविरुद्ध लेश्यामें गये हुए जीवके उक्त तीन लेश्याओंका दो अन्तर्मुहूर्त सहित क्रमशः तेतीस, सत्तरह व सात सागरोपममात्र काल पाया जाता है।

जीव तेजलेश्या, पद्मलेश्या व शुक्ललेश्यावाले कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १८० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव तेज, पद्म व शुक्ल लेश्यावाले रहते हैं ॥ १८१ ॥

क्योंकि, अविवक्षित अविरुद्ध लेश्यासे विवक्षित लेश्यामें जाकर वहां कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर अन्य अविरुद्ध लेश्यामें जानेवाले जीवके उक्त लेश्याओंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य काल देखा जाता है ।

अधिकसे अधिक सातिरेक दो, अठारह व तेतीस सागरोपम काल तक जीव क्रमशः तेज, पद्म व शुक्ल लेश्यावाले रहते हैं ॥ १८२ ॥

कुदो ? तेउ पम्म-सुक्कलेस्साहि सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तमेत्तमच्छिय पुणो जहाकमेण अड्ढाइज्ज-साद्धट्ठारस-तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पज्जिय अवट्ठिदलेस्साहि सग-सगाउट्ठिदिमणुपालिय तत्तो चविय[1] अंतोमुहुत्तकालं ताहि चेव लेस्साहि अच्छिय अविरुद्ध-लेस्संतरं गयस्स सगसगुक्कस्सकालाणमुवलंभादो ।

भवियाणुवादेण भावसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥१८३॥

सुगमं ।

अणादिओ सपज्जवसिदो ॥ १८४ ॥

कुदो ? अणाइसरूवेणागयस्स भवियभावस्स अजोगिचरिमसमए विणासुवलंभादो । अभवियसमाणो वि भवियजीवो अत्थि त्ति अणादिओ अपज्जवसिदो भवियभावो किण्ण परूविदो ? ण, तत्थ अविणाससत्तीए अभावादो । सत्तीए चेव एत्थ अहियारो, वत्तीए[2]

क्योंकि, तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओं सहित सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तमात्र रहकर पुनः यथाक्रमसे अढ़ाई, साढ़े अठारह व तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर अवस्थित लेश्याओं सहित अपनी अपनी आयुस्थितिको पूर्ण करके वहांसे निकल कर-अन्तर्मुहूर्त काल तक उन्हीं लेश्याओं सहित रहकर अन्य अविरुद्ध लेश्यामें गये हुए जीवके उक्त लेश्याओंका अपना अपना उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है ।

भव्यमार्गणानुसार जीव भव्यसिद्धिक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १८३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव अनादि सान्त भव्यसिद्धिक होता है ॥ १८४ ॥

क्योंकि, अनादि स्वरूपसे आये हुए भव्यभावका अयोगिकेवलीके अन्तिम समयमें विनाश पाया जाता है ।

शंका—अभव्यके समान भी तो भव्य जीव होता है, तब फिर भव्यभावको अनादि और अनन्त क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान—नहीं किया, क्योंकि भव्यत्वमें अविनाश शक्तिका अभाव है। अर्थात् यद्यपि अनादिसे अनन्त काल तक रहनेवाले भव्य जीव हैं तो सही, पर उनमें शक्ति रूपसे तो संसारविनाशकी संभावना है, अविनाशत्वकी नहीं ।

शंका—यहां भव्यत्वशक्तिका अधिकार है, उसकी व्यक्तिका नहीं, यह कैसे

१ प्रतिषु 'भविय' इति पाठः । २ प्रतिषु 'अहियारोववत्तीए' इति पाठः ।

णत्थि ति कधं णव्वदे ? अणादि-सपज्जवसिदसुत्तण्णहाणुववत्तीदो ।

सादिओ सपज्जवसिदो ॥ १८५ ॥

अभविओ भवियभावं ण गच्छदि, भवियाभवियभावाणमच्चंताभावपडिग्गहियाणमेयाहियरणत्तविरोहादो । ण सिद्धो भविओ होदि, णट्ठासेसासवाणं पुणरुप्पत्तिविरोहादो । तम्हा भवियभावो ण सादि त्ति ? ण एस दोसो, पज्जवट्ठियणयावलंबणादो अप्पडिवण्णे सम्मत्ते अणादि-अणंतो भवियभावो अंतादीदसंसारादो; पडिवण्णे सम्मत्ते अण्णो भवियभावो उप्पज्जइ[1], पोग्गलपरियट्टस्स अद्धमेत्तसंसारावट्ठाणादो । एवं समऊण-दुसमऊणादिउवड्ढपोग्गलपरियट्टसंसाराणं जीवाणं पुध पुध भवियभावो वत्तव्वो । तदो सिद्धं भवियाणं सादि-सांतत्तमिदि ।

अभवियसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८६ ॥

जाना जाता है ?

समाधान—भव्यत्वको अनादि-सपर्यवसित कहनेवाले सूत्रकी अन्यथा उपपत्ति बन नहीं सकती, इसीसे जाना जाता है कि यहां भव्यत्व शक्तिसे अभिप्राय है ।

जीव सादि सान्त भव्यसिद्धिक भी होता है ॥ १८५ ॥

शंका—अभव्य भव्यत्वको प्राप्त हो नहीं सकता, क्योंकि भव्य और अभव्य भाव एक दूसरेके अत्यन्ताभावको धारण करनेवाले होनेसे एक ही जीवमें क्रमसे भी उनका अस्तित्व माननेमें विरोध आता है । सिद्ध भी भव्य होता नहीं है, क्योंकि जिन जीवोंके समस्त कर्मास्रव नष्ट होगये हैं उनके पुनः उन कर्मास्रवोंकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । अतः भव्यत्व सादि नहीं हो सकता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि पर्यायार्थिक नयके अवलम्बनसे जब तक सम्यक्त्व ग्रहण नहीं किया तब तक जीवका भव्यत्व अनादि-अनन्त रूप है, क्योंकि, तब तक उसका संसार अन्तरहित है । किन्तु सम्यक्त्वके ग्रहण कर लेनेपर अन्य ही भव्यभाव उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि, सम्यक्त्व उत्पन्न होजानेपर फिर केवल अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र काल तक संसारमें स्थिति रहती है । इसी प्रकार एक समय कम उपार्धपुद्गलपरिवर्तन संसारवाले, दो समय कम उपार्धपुद्गलपरिवर्तन संसारवाले आदि जीवोंके पृथक् पृथक् भव्यभावका कथन करना चाहिये । इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि भव्य जीव सादि-सान्त होते हैं ।

जीव अभव्यसिद्धिक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १८६ ॥

१ प्रतिषु ' उप्पज्जिय ' इति पाठः ।

सुगमं ।

अणादिओ अपज्जवसिदो ॥ १८७ ॥

अभवियभावो णाम वियंजणपज्जाओ, तेणेदस्स विणासेण होदव्वमण्णहा दव्वत्तप्पसंगादो त्ति ? होदु वियंजणपज्जाओ, ण च वियंजणपज्जायस्स सव्वस्स विणासेण होदव्वमिदि णियमो अत्थि, एयंतवादप्पसंगादो । ण च ण विणस्सदि त्ति दव्वं होदि, उप्पाय-ट्ठिदि-भंगसंगयस्स दव्वभावब्भुवगमादो ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८९ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठिस्स बहुसो सम्मत्तपज्जाएण परिणमियस्स सम्मत्तं गंतूण जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गयस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव अनादि-अनन्त काल तक अभव्यसिद्धिक रहते हैं ॥ १८७ ॥

शंका — अभव्यभाव जीवकी एक व्यंजनपर्यायका नाम है, इसलिये उसका विनाश अवश्य होना चाहिये, नहीं तो अभव्यत्वके द्रव्य होनेका प्रसंग आजायगा ?

समाधान — अभव्यत्व जीवकी व्यंजनपर्याय भले ही हो, पर सभी व्यंजनपर्यायका अवश्य नाश होना चाहिये, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेसे एकान्तवादका प्रसंग आजायगा। ऐसा भी नहीं है कि जो वस्तु विनष्ट नहीं होती वह द्रव्य ही होना चाहिये, क्योंकि जिसमें उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय पाये जाते हैं उसे द्रव्य रूपसे स्वीकार किया गया है ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार जीव सम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १८९ ॥

क्योंकि, जिसने अनेक वार सम्यक्त्व पर्याय प्राप्त कर ली है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वको जाकर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर मिथ्यात्वको जानेपर सम्यग्दर्शनका अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो जाता है ।

अधिकसे अधिक सातिरेक छयासठ सागरोपम काल तक जीव सम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९० ॥

कुदो ? तिण्णि करणाणि कादूण पढमसम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय तत्थ तीहि पुव्वकोडीहि समहियबादालीससागरोवमाणि गमिय खइयं पट्ठविय चउवीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पज्जिय पुणो पुव्वकोडिआउट्ठिदिमणुस्सेसुप्पज्जिय अवसाणे अबंधगत्तं गयस्स तदुवलंभादो ।

खइयसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १९१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९२ ॥

कुदो ? वेदगसम्मादिट्ठिस्स दंसणमोहणीयं खविय खइयसम्मत्तं पडिवज्जिय जहण्णकालेण अबंधगत्तं गयस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १९३ ॥

कुदो ? चउवीससंतकम्मियसम्माइट्ठिदेवस्स णेरइयस्स वा पुव्वकोडाउअमणुस्सेसु-

क्योंकि, किसी जीवने तीनों करण करके प्रथम सम्यक्त्व ग्रहण किया और अन्तर्मुहूर्त काल रहकर वेदकसम्यक्त्व धारणकर लिया। वहां तीन कोटि अधिक ब्यालीस सागरोपम काल व्यतीत करके क्षायिकसम्यक्त्व स्थापित किया और चौबीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् पूर्वकोटि आयुस्थितिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर आयुके अन्त समयमें अबन्धकभाव प्राप्त कर लिया। ऐसे जीवके सम्यग्दर्शनका सातिरेक (चार पूर्वकोटि अधिक) छयासठ सागरोपमप्रमाण काल प्राप्त हो जाता है।

जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १९१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९२ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके दर्शनमोहनीयका क्षपण करके क्षायिकसम्यक्त्वको उत्पन्न कर जघन्य कालसे अबन्धकभावको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

अधिकसे अधिक सातिरेक तेतीस सागरोपमप्रमाण काल तक जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९३ ॥

क्योंकि, जब चौबीस कर्मोंकी सत्तावाला सम्यग्दृष्टि देव या नारकी पूर्वकोटि

वण्णस्स गब्भादिअट्ठवस्साणमंतोमुहुत्तब्भहियाणं उवरि खइयं पट्ठविय देसूणपुव्वकोडि-मच्छिय तेत्तीसाउट्ठिदिदेवेसुप्पज्जिय पुणो पुव्वकोडिआउट्ठिदिमणुस्सेसुप्पज्जिय अंतो-मुहुत्तावसेसे संसारे अबंधभावं गयस्स दोअंतोमुहुत्ताहियअट्ठवस्सूणदोपुव्वकोडीहि साहियतेत्तीससागरोवमाणमुवलंभादो ।

वेदगसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ॥ १९४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९५ ॥

मिच्छाइट्ठिस्स दिट्ठमग्गस्स सम्मत्तं घेत्तूण जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गयस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि ॥ १९६ ॥

कुदो ? उवसमसम्मत्तादो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय सेसभुंजमाणाउएणूणवीस-सागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुववज्जिय तदो मणुस्सेसुववज्जिय पुणो मणुस्साउएणूणबावीस-

.. ..

आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर, गर्भसे आठ वर्ष व अन्तर्मुहूर्त अधिक हो जानेपर क्षायिकसम्यक्त्वको स्थापित करता है और कुछ कम पूर्वकोटि तक रहकर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर पुनः पूर्वकोटि आयुस्थितिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त मात्र संसारकालके अवशेष रहनेपर अबन्धकभावको प्राप्त हो जाता है, तब उसके क्षायिकसम्यक्त्वका काल दो अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्ष कम दो पूर्वकोटि सहित तेतीस सागरोपमप्रमाण पाया जाता है ।

जीव वेदकसम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १९४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव वेदकसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९५ ॥

क्योंकि, सन्मार्ग प्राप्त करलेनेवाले मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व ग्रहण करके कमसे कम अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः मिथ्यात्वमें चले जानेपर वेदकसम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो जाता है ।

अधिकसे अधिक छयासठ सागरोपम काल तक जीव वेदकसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ १९६ ॥

क्योंकि, एक जीव उपशमसम्यक्त्वसे वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर शेष भुज्यमान आयुसे कम बीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । फिर वहांसे मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पुनः मनुष्यायुसे कम बावीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें

सागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पज्जिय पुणो मणुस्सगदिं गंतूण भुंजमाणमणुस्साउएण दंसणमोहक्खवणपेरंतभुंजिस्समाणमणुसाउएण च ऊणचउवीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पज्जिय मणुस्सगदिं[1]गंतूण तत्थ वेदगसम्मत्तकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो अत्थि त्ति दंसणमोहक्खवणं पट्ठविय कदकरणिज्जो होदूण कदकरणिज्जचरिमसमए ट्ठिदस्स छावट्ठि-सागरोवममेत्तकालुवलंभादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १९७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९८ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठिस्स पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय छावलियावसेसे सासणं गदस्स तदुवलंभादो । एवं सम्मामिच्छाइट्ठिस्स वि जहण्णकालो वत्तव्वो । णवरि मिच्छत्तादो वेदगसम्मत्तादो वा सम्मामिच्छत्तं गंतूण जहण्णकालमच्छिय गुणंतरं गदो त्ति वत्तव्वं ।

उत्पन्न हुआ। वहांसे पुनः मनुष्यगतिमें जाकर भुज्यमान मनुष्यायुसे तथा दर्शन-मोहके क्षपण पर्यन्त आगे भोगी जानेवाली मनुष्यायुसे कम चौबीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे पुनः मनुष्यगतिमें आकर वहां वेदक-सम्यक्त्वकालके अन्तर्मुहूर्तमात्र रहनेपर दर्शनमोहके क्षपणको स्थापितकर कृतकरणीय हो गया। ऐसे कृतकरणीयके अन्तिम समयमें स्थित जीवके वेदकसम्यक्त्वका छयासठ सागरोपममात्र काल पाया जाता है।

जीव उपशमसम्यग्दृष्टि व सम्यग्मिथ्यादृष्टि कितने काल तक रहते हैं ? ॥१९७॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव उपशमसम्यग्दृष्टि व सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहते हैं ॥ १९८ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवके प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त कर प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानमें जानेपर उपशमसम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिका भी जघन्य काल कहना चाहिये। केवल विशेषता यह है कि मिथ्यात्वसे या वेदकसम्यक्त्वसे सम्यग्मिथ्यात्वमें जाकर व जघन्य काल वहां रहकर अन्य गुणस्थानमें जानेपर सम्यग्मिथ्यात्वका अन्त-र्मुहूर्तमात्र जघन्य काल पाया जाता है, ऐसा कहना चाहिये।

१ अ-काप्रत्योः ' मणुस्सस्स गदि- ' इति पाठः ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९९ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति? ॥ २०० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एयसमओ ॥ २०१ ॥

उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमयावसेसे सासणं गदस्स सासणगुणस्स एगसमयकालोवलंभादो । जेत्तिया उवसमसम्मत्तद्धा एगसमयमादिं कादूण जावुक्कस्सेण छावलियाओ त्ति अवसेसा अत्थि तत्तिया चेव सासणगुणद्धावियप्पा होंति । उवसमसम्मत्तकालं संपुण्णमच्छिदो सासणगुणं ण पडिवज्जदित्ति कधं णव्वदे? एदम्हादो चेव सुत्तादो, आइरियपरंपरागदुवदेसादो च ।

उक्कस्सेण छावलियाओ ॥ २०२ ॥

सुगमं ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव उपशमसम्यग्दृष्टि व सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहते हैं ॥ १९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जीव सासादनसम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २०० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव सासादनसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥ २०१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानमें जानेवाले जीवके सासादन गुणस्थानका एक समय काल पाया जाता है। एक समयसे प्रारम्भ कर अधिकसे अधिक छह आवलियों तक जितना उपशमसम्यक्त्वका काल शेष रहता है, उतने ही सासादनगुणस्थानकालके विकल्प होते हैं।

शंका—जो जीव उपशमसम्यक्त्वके संपूर्ण काल तक उपशमसम्यक्त्वमें रहा है वह सासादन गुणस्थानमें नहीं जाता, यह कैसे जाना ?

समाधान—प्रस्तुत सूत्रसे ही तथा आचार्यपरम्परागत उपदेशसे भी पूर्वोक्त बात जानी जाती है।

अधिकसे अधिक छह आवली काल तक जीव सासादनसम्यग्दृष्टि रहते हैं ॥२०२॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिच्छादिट्ठी मदिअण्णाणीभंगो ॥ २०३ ॥

जहा मदिअण्णाणिस्स अणादिअपज्जवसिद-अणादिसपज्जवसिद--सादिसपज्ज-वसिदवियप्पा वुत्ता तधा एदस्स वि वत्तव्वा। सादि-सपज्जवसिदअण्णाणस्स कालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं जधा वुत्तं तधा मिच्छत्तस्स वि वत्तव्वं।

सण्णियाणुवादेण सण्णी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २०४ ॥

सुगमं।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ २०५ ॥

कुदो ? असण्णीहिंतो सण्णिअपज्जत्तएसुप्पज्जिय खुद्दाभवग्गहणमच्छिय असण्णित्तं गदस्स तदुवलंभादो।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ २०६ ॥

असण्णीहिंतो सण्णीसुप्पज्जिय सागरोवमसदपुधत्तं तत्थेव परिभमिय णिग्गयस्स तदुवलंभादो।

मिथ्यादृष्टि जीवोंकी कालप्ररूपणा मतिअज्ञानी जीवोंके समान है ॥ २०३ ॥

जिस प्रकार मतिअज्ञानी जीवके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त, ये तीन विकल्प बतलाये गये हैं, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवके भी कहना चाहिये। जिस प्रकार सादि-सान्त अज्ञानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र बतलाया गया है, उसी प्रकार मिथ्यात्वका भी कहना चाहिये।

संज्ञीमार्गणानुसार जीव कितने काल तक संज्ञी रहते हैं ? ॥ २०४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक जीव संज्ञी रहते हैं ॥ २०५ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंमेंसे निकलकर संज्ञी अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर क्षुद्रभव-ग्रहणमात्र काल रहकर पुनः असंज्ञीभावको प्राप्त हुए जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है।

अधिकसे अधिक सागरोपमशतपृथक्त्वमात्र काल तक जीव संज्ञी रहते हैं ॥ २०६ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंमेंसे निकलकर संज्ञियोंमें उत्पन्न हो वहींपर सागरोपम-शतपृथक्त्व काल तक परिभ्रमण करके निकलनेवाले जीवके संज्ञित्वका सागरोपमशत-पृथक्त्वप्रमाण उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

असण्णी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २०७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ २०८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ २०९ ॥

एदं पि सुगमं ।

आहाराणुवादेण आहारा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २१० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमयूणं ॥ २११ ॥

तिण्णि विग्गहे काऊण सुहुमेइंदिएसुप्पज्जिय चउत्थसमए आहारी होदूण भुंजमाणाउअं कदलीघादेण घादिय अवसाणे विग्गहं करिय णिग्गयस्स तिसमऊणखुद्दाभवग्गहणमेत्ताहारकालुवलंभादो ।

जीव कितने काल तक असंज्ञी रहते हैं ? ॥ २०७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक जीव असंज्ञी रहते हैं ? ॥ २०८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक जीव असंज्ञी रहते हैं ॥ २०९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

आहारमार्गणानुसार जीव आहारक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २१० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम तीन समयसे हीन क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल तक जीव आहारक रहते हैं ॥ २११ ॥

क्योंकि, तीन मोड़ लेकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें उत्पन्न हो चौथे समयमें आहारक होकर भुज्यमान आयुको कदलीघातसे छिन्न करके अन्तमें विग्रह करके निकलनेवाले जीवके तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र आहारकाल पाया जाता है ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ ॥ २१२ ॥

कुदो ? विग्गहं काऊण आहारी होदूण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमसंखेज्जासंखेज्जाओसप्पिणि-उस्सप्पिणिकालमेत्तं परिभमिय कयविग्गहस्स तदुवलंभादो ।

अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २१३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेणेगसमओ ॥ २१४ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तिण्णि समया ॥ २१५ ॥

समुग्घादगयसजोगिम्हि तिण्णिविग्गहकयजीवे वा तदुवलंभादो ।

अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

अजोगिम्हि अणाहारिम्मि अंतोमुहुत्तकालुवलंभादो । बंधगाणमेसो कालो वुत्तो,

अधिकसे अधिक अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल तक जीव आहारक रहते हैं ॥ २१२ ॥

क्योंकि, विग्रह करके आहारक हो, अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल मात्र परिभ्रमण कर विग्रह करनेवाले जीवके सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

जीव अनाहारक कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २१३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम एक समय तक जीव अनाहारक रहते हैं ॥ २१४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक तीन समय तक जीव अनाहारक रहते हैं ॥ २१५ ॥

क्योंकि, समुद्घात करनेवाले सयोगिकेवली व तीन विग्रह करनेवाले जीवके अनाहारत्वका तीन समयप्रमाण काल पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक भी जीव अनाहारक रहते हैं ॥ २१६ ॥

क्योंकि, अयोगिकेवलीके अनाहारकका अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

शंका—यह कालप्ररूपणा बन्धक जीवोंकी अपेक्षा की गई है, किन्तु अयोगी

ण च अजोगी भयवंतो बंधओ, तत्थ आसवाभावादो। ण च अण्णत्थ अणाहारिस्स अंतोमुहुत्तमेत्तो कालो लब्भदि। तदो णेदं घडदि त्ति ? ण एस दोसो, अघाइचउक्ककम्म-पोग्गलक्खंधाणं लोगमेत्तजीवपदेसाणं च अण्णोण्णबंधमवेक्खिय अजोगीणं पि बंधगत्तब्भुवगमादो। ण च 'मणुस्सा अबंधा वि अत्थि' त्ति एदेण सुत्तेण सह विरोहो, जोग-कसायादीहिंतो जायमाणपच्चग्गबंधाभावं पडुच्च तत्थ तधोवदेसादो।

एगजीवेण कालो त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

भगवान् तो बन्धक नहीं होते, क्योंकि उनके कर्मोंके आस्रवका अभाव है। अन्यत्र कहीं अनाहारी जीवका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल पाया नहीं जाता। अतएव यह अनाहारीका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल घटित नहीं होता?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि चार अघातिक कर्मोंके पुद्गल-स्कंधोंका और लोकप्रमाण जीवप्रदेशोंका परस्पर बन्धन देखते हुए अयोगी जिनोंके भी बन्धकभाव स्वीकार किया गया है। ऐसा माननेपर 'मनुष्य अबन्धक भी होते हैं' इस सूत्रसे विरोध भी नहीं आता, क्योंकि उक्त सूत्रमें योग और कषाय आदिसे उत्पन्न होनेवाले नवीन बन्धके अभावकी अपेक्षासे अयोगियोंके अबन्धक होनेका उपदेश किया गया है।

एक जीवकी अपेक्षा काल नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

एगजीवेण अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइ-याणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १ ॥

मूलोघविसयपुच्छा किण्ण कया ? ण, मूलोघपडिबद्धकालपरूवणाभावादो। किमिदि तस्स कालो ण वुत्तो ? ण, तस्साणुत्तसिद्धीदो। केवचिरमिदि वुत्ते एग-बे-तिण्णि जाव अणंतमिदि अंतरपुच्छा कदा होदि। सेसं सुगमं।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २ ॥

कुदो ? णेरइयस्स णिरयादो णिग्गयस्स तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा गब्भोवक्कं-तियपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वजहण्णाउअकालब्भंतरे णिरयाउअं बंधिय कालं करिय

एक जीवकी अपेक्षा अन्तरानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १ ॥

शंका—यहां मूलोघविषयक अर्थात् गुणस्थानोंकी अपेक्षा कालसम्बन्धी प्रश्न क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं किया गया, क्योंकि मूलोघसम्बन्धी कालप्ररूपणा भी तो नहीं की गयी।

शंका—मूलोघसम्बन्धी काल क्यों नहीं बतलाया गया ?

समाधान—नहीं बतलाया गया, क्योंकि विना बतलाये भी उसके ज्ञानकी सिद्धि हो जाती है।

'कितने काल तक' ऐसा कहनेपर क्या एक समय अन्तर होता है, क्या दो समय, क्या तीन समय, इस प्रकार अनन्त समयों तककी अन्तरसम्बन्धी पृच्छा की गयी है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक नरकगतिसे नारकी जीवोंका अन्तर होता है ॥ २ ॥

क्योंकि, नरकसे निकलकर गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच जीवोंमें अथवा मनुष्योंमें उत्पन्न हो सबसे कम आयुके भीतर नरकायुको बांध, मरण कर पुनः नरकोंमें उत्पन्न

१ अ-आप्रत्योः 'जहण्णाउआकाल-' इति पाठः।

पुणो णिरएसुववण्णस्स जहण्णेणंतोमुहुत्तंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ३ ॥

णेरइयस्स णिरयादो णिग्गंतूण अणप्पिदगदीसु आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-पोग्गलपरियट्टे परियट्टिदूण पच्छा णिरएसुववण्णस्स तदंतरुवलंभादो ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ४ ॥

णेरइया इदि वुत्ते णेरइयाणं ति घेत्तव्वं । सत्तसु पुढवीसु णेरइयाणं तिरिक्ख-मणुस्सगब्भोवक्कंतियपज्जत्तएसुप्पज्जिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पिदणिरएसु-प्पण्णस्स अंतरकालो सरिसो त्ति वुत्तं होदि ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि[1] ? ॥ ५ ॥

सुगमं ।

हुए नारकी जीवके नरकगतिमें अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक नरकगतिमें नारकी जीवोंका अन्तर होता है ॥ ३ ॥

क्योंकि, नारकी जीवके नरकसे निकलकर अविवक्षित गतियोंमें आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करनेके पश्चात् पुनः नरकोंमें उत्पन्न होनेपर सूत्रोक्त अन्तरका प्रमाण पाया जाता है ।

इस प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी जीवोंका नरकगतिसे अन्तर होता है ॥ ४ ॥

सूत्रमें जो 'णेरइया' अर्थात् 'नारकी' ऐसा प्रथमान्त पद है उससे 'णेरइयाणं' अर्थात् 'नारकी जीवोंका' ऐसा सम्बन्धसूचक अर्थ ग्रहण करना चाहिये । सातों ही पृथिवियोंमें नारकी जीवोंके गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यंचों व मनुष्योंमें उत्पन्न होकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रहकर विवक्षित नरकोंमें उत्पन्न हुए जीवका अन्तरकाल सदृश ही होता है, ऐसा प्रस्तुत सूत्रके द्वारा कहा गया है ।

तिर्यंचगतिसे तिर्यंच जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिषु 'होंति' इति पाठः ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ६ ॥

तिरिक्खेहिंतो मणुस्सेसुप्पज्जिय घादखुद्दाभवग्गहणमेत्तकालमच्छिय पुणो तिरिक्खेसुप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ७ ॥

तिरिक्खस्स तिरिक्खेहिंतो णिग्गयस्स सेसगदीसु सागरोवमसदपुधत्तादो उवरि अवट्ठाणाभावादो ।

पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता मणुसगदीए मणुस्सा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ९ ॥

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक तिर्यंच जीवोंका तिर्यंचगतिसे अन्तर होता है ॥ ६ ॥

क्योंकि, तिर्यंच जीवोंमेंसे निकलकर मनुष्योंमें उत्पन्न हो कदलीघातयुक्त क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक रहकर पुनः तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व काल तक तिर्यंच जीवोंका तिर्यंचगतिमें अन्तर पाया जाता है ॥ ७ ॥

क्योंकि, तिर्यंच जीवके तिर्यंचोंमेंसे निकलकर शेष गतियोंमें सागरोपमशतपृथक्त्व कालसे ऊपर ठहरनेका अभाव है ।

तिर्यंचगतिसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, एवं मनुष्यगतिसे मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी तथा मनुष्य अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक उक्त तिर्यंचोंका तिर्यंचगतिसे तथा मनुष्योंका मनुष्यगतिसे अन्तर होता है ॥ ९ ॥

कुदो ? अप्पिदगदीदो णिग्गंतूण अणप्पिदगदीसुप्पज्जिय खुद्दाभवग्गहणमच्छिय पुणो अप्पिदगदिमागयस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ॥ १० ॥

कुदो ? अप्पिदगदीदो णिग्गंतूण एइंदिय-विगलिंदियादिअणप्पिदगदीसु आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टे भमिय अप्पिदगदिमागदस्स तदुवलंभादो ।

देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२ ॥

कुदो ? देवगदीदो आगंतूण तिरिक्ख-मणुसगब्भोवक्कंतियपज्जत्तएसुप्पाज्जिय पज्जत्तीओ समाणिय देवाउअं बंधिय देवेसुप्पण्णस्स अंतोमुहुत्तंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ॥ १३ ॥

क्योंकि, विवक्षित गतिसे निकलकर अविवक्षित गतियोंमें उत्पन्न हो व वहां क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल रहकर पुनः विवक्षित गतिमें आये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र अन्तर पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक पूर्वोक्त तिर्यंचोंका तिर्यंचगतिसे और मनुष्योंका मनुष्यगतिसे अन्तर होता है ॥ १० ॥

क्योंकि, विवक्षित गतिसे निकलकर एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय आदि अविवक्षित गतियोंमें आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण कर विवक्षित गतिमें आये हुए जीवके सूत्रोक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

देवगतिसे देवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ १२ ॥

क्योंकि, देवगतिसे आकर गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यंचों व मनुष्योंमें उत्पन्न होकर पर्याप्तियां पूर्ण कर देवायु बांध, पुनः देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके देवगतिसे अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक देवगतिसे देवोंका अन्तर होता है ॥ १३ ॥

कुदो ? देवगदीदो ओयरिय सेसतिसु गदीसु आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-पोग्गलपरियट्टे उक्कस्सेण परियट्टिदूण पुणो देवगदीए आगमणे विरोहाभावादो।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवा देवगदिभंगो ॥ १४ ॥

जधा देवगदीए जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्कस्सेण असंखेज्जपोग्गलपरियट्टमेत्तं अंतरं वुत्तं तधा एदेसिं पि जहण्णुक्कस्संतराणि। देवा इदि वुत्ते देवाणमिदि घेत्तव्वं, 'आई-मज्झंतवण्णसरलोओ' त्ति एदेण लक्खणेण लुत्त-णं-सद्दादो।

सणक्कुमार-माहिंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि[1] ? ॥ १५ ॥

सुगमं।

जहण्णेण मुहुत्तपुधत्तं ॥ १६ ॥

क्योंकि, देवगतिसे उतरकर शेष तीन गतियोंमें अधिकसे अधिक आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः देवगतिमें आगमन करनेमें कोई विरोध नहीं आता।

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी व सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवोंका अन्तर देवगतिके समान ही है ॥ १४ ॥

जिस प्रकार देवगतिसे कमसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र और अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरकाल कहा गया है, उसी प्रकार इन भवनवासी आदि देवोंका जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिये। 'देवा' ऐसा प्रथमान्त पद कहनेसे 'देवोंका' ऐसे षष्ठ्यन्त पदका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि "आदि, मध्य व अन्त व्यंजन और स्वरका प्राकृतमें विकल्पसे लोप हो जाता है" इस नियमसे यहां षष्ठी विभक्तिके सूचक 'णं' शब्दका लोप हो गया है।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम मुहूर्तपृथक्त्व काल तक सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ १६ ॥

---

१ अप्रतौ 'होंति' इति पाठः।

कुदो ? सणक्कुमार-माहिंददेवाणं तिरिक्ख-मणुस्साउअं बंधमाणाणमाउअस्स जहण्णट्ठिदीए मुहुत्तपुधत्तपमाणत्तादो । तिरिक्ख-मणुस्साउअं जहण्णेण मुहुत्तपुधत्तमेत्तं बंधिय तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा उप्पज्जिय परिणामपच्चएण पुणो सणक्कुमार-माहिंदेसु आउअं बंधिय सणक्कुमार-माहिंदेसुप्पण्णाणं जहण्णमंतरं होदि त्ति वुत्तं होदि ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १७ ॥

सुगमं ।

बम्हबम्हुत्तर-लांतवकाविट्ठकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण दिवसपुधत्तं ॥ १९ ॥

कुदो ? एदेहि बज्झमाणआउअस्स दिवसपुधत्तादो हेट्ठा ट्ठिदिबंधाभावादो ।

क्योंकि, तिर्यंच या मनुष्य आयुको बांधनेवाले सनत्कुमार और माहेन्द्र देवोंके तिर्यंच व मनुष्य भवसम्बन्धी जघन्य स्थितिका प्रमाण मुहूर्तपृथक्त्व पाया जाता है । इसी मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण जघन्य तिर्यंच व मनुष्य आयुको बांध कर तिर्यंचोंमें व मनुष्योंमें उत्पन्न होकर परिणामोंके निमित्तसे पुनः सनत्कुमार–माहेन्द्र देवोंकी आयु बांधकर सनत्कुमार माहेन्द्र देवोंमें उत्पन्न हुए जीवोंका मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ऐसा सूत्र द्वारा बतलाया गया है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक सनत्कुमार और माहेन्द्र देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ १७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर व लान्तव-कापिष्ठ कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम दिवसपृथक्त्वमात्र ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर और लान्तव-कापिष्ठ कल्पवासी देवोंका अपनी देवगतिसे अन्तर होता है ॥ १९ ॥

क्योंकि, उक्त देवों द्वारा जो आगामी भवकी आयु बांधी जाती है उसका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्वसे कम होता ही नहीं है ।

अणुव्वय-महव्वएहि विणा तिरिक्ख-मणुस्सा गब्भादो अणिक्खंता चेव कधं देवेसुप्पज्जंति ? ण, परिणामपच्चएण तिरिक्ख-मणुस्सपज्जत्ताणं दिवसपुधत्तजीवियाणं तत्थुप्पत्तीए विरोहाभावादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ २० ॥

सुगमं ।

सुक्कमहासुक्क-सदारसहस्सारकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण पक्खपुधत्तं ॥ २२ ॥

कुदो ? एदेहि बज्झमाणआउअस्स पक्खपुधत्तादो हेट्ठा जहण्णट्ठिदिबंधाभावादो ।

शंका—दिवसपृथक्त्वकी आयुमें तो तिर्यंच व मनुष्य गर्भसे भी नहीं निकल पाते और इसलिये उनमें अणुव्रत व महाव्रत भी नहीं हो सकते। ऐसी अवस्थामें वे दिवसपृथक्त्वमात्रकी आयुके पश्चात् पुनः देवोंमें कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ?

समाधान—यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि परिणामोंके निमित्तसे दिवसपृथक्त्व-मात्र जीवित रहनेवाले तिर्यंच व मनुष्य पर्याप्तक जीवोंके देवोंमें उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर व लान्तव-कापिष्ठ देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम पक्षपृथक्त्व काल तक शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ २२ ॥

क्योंकि, उक्त देवों द्वारा बांधी जानेवाली आयुका जघन्य स्थितिबन्ध पक्ष-पृथक्त्वसे कम नहीं होता ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ २३ ॥

सुगमं ।

आणदपाणद-आरणअच्चुदकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण मासपुधत्तं ॥ २५ ॥

कुदो ? एदेहि बज्झमाणमणुस्साउअस्स मासपुधत्तादो हेट्ठा जहण्णट्ठिदिबंधाभावादो । एदे मणुस्सोववाइणो मणुस्सा वि गब्भादिअट्ठवस्सेसु गदेसु अणुव्वय-महव्वयाणं गाहिणो । ण च अणुव्वय-महव्वएहि विणा एदेसुप्पत्ती अत्थि, तहोवदेसाभावादो । तदो ण मासपुधत्तंतरं जुज्जदे, किंतु वासपुधत्तंतरेण होदव्वमिदि ? एत्थ परिहारो वुच्चदे । तं

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक उक्त देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ २३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंका देवगतिसे अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ २४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम मासपृथक्त्व तक उक्त देवोंका देवगतिसे अन्तर होता है ॥ २५ ॥

क्योंकि, आनत, प्राणत, आरण व अच्युत कल्पवासी देवों द्वारा बांधी जानेवाली मनुष्यायुका स्थितिबन्ध कमसे कम मासपृथक्त्वसे नीचे होता ही नहीं है ।

शंका—जब आनत आदि चार कल्पवासी देव मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं तब मनुष्य होकर भी वे गर्भसे लेकर आठ वर्ष व्यतीत हो जानेपर अणुव्रत व महाव्रतोंको ग्रहण करते हैं । अणुव्रतोंको व महाव्रतोंको ग्रहण न करनेवाले मनुष्योंकी आनत आदि देवोंमें उत्पत्ति ही नहीं होती, क्योंकि वैसा उपदेश नहीं पाया जाता । अतएव आनत आदि चार देवोंका मासपृथक्त्व अन्तर कहना युक्त नहीं है, उनका अन्तर वर्षपृथक्त्व होना चाहिये ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है— अणुव्रत व

जहा– ण च अणुव्वद-महव्वदेहि संजुत्ता चेव तिरिक्ख-मणुस्सा आणद-पाणददेवेसुप्पज्जंति त्ति णियमो अत्थि, तिरिक्खअसंजदसम्माइट्ठीणं छरज्जुपोसणसुत्तेण सह विरोहादो। ण च आणद-पाणदअसंजदसम्माइट्ठिणो मणुस्साउअस्स जहण्णट्ठिदिं बंधमाणा वासपुधत्तादो हेट्ठा बंधंति, महाबंधे जहण्णट्ठिदिबंधद्धाछेदे सम्मादिट्ठीणमाउअस्स वासपुधत्तमेत्त-ट्ठिदिपरूवणादो। तदो आणद-पाणदमिच्छाइट्ठिस्स मणुस्साउअं मासपुधत्तमेत्तं बंधिय पुणो मणुस्सेसुप्पाज्जिय मासपुधत्तं जीविदूण पुणो सण्णिपंचिंदियतिरिक्खसम्मुच्छिम-पज्जत्तएसु अंतोमुहुत्ताउएसुववज्जिय पज्जत्तयदो होदूण संजमासंजमं पडिवज्जिय आणदादिसु आउअं बंधिय उप्पण्णस्स जहण्णमंतरं होदि त्ति वत्तव्वं।

उक्कस्समणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ २६ ॥

सुगमं।

णवगेवज्जविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २७ ॥

सुगमं।

महाव्रतोंसे संयुक्त ही तिर्यंच व मनुष्य आनत प्राणत देवोंमें उत्पन्न हों ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर तो तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका जो छह राजु स्पर्शन बतलाने वाला सूत्र है उससे विरोध उत्पन्न हो जायगा। (देखो षट्खंडागम, जीवट्ठाण, स्पर्शनानुगम, सूत्र २८ व टीका, पुस्तक ४, पृ० २०७ आदि)। और आनत-प्राणत कल्पवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देव जब मनुष्यायुकी जघन्य स्थिति बांधते हैं तब वे वर्षपृथक्त्वसे कमकी आयुस्थिति नहीं बांधते, क्योंकि महाबन्धमें जघन्य स्थितिबन्धके कालविभागमें सम्यग्दृष्टि जीवोंकी आयुस्थितिका प्रमाण वर्षपृथक्त्वमात्र प्ररूपित किया गया है। अतः आनत-प्राणत कल्पवासी मिथ्यादृष्टि देवके मासपृथक्त्वमात्र मनुष्यायु बांधकर फिर मनुष्योंमें उत्पन्न हो मासपृथक्त्व जीवित रहकर पुनः अन्तर्मुहूर्तमात्र आयु-वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच समूर्च्छन पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न होकर पर्याप्तक हो संयमा-संयम (अणुव्रत) ग्रहण करके आनतादि कल्पोंकी आयु बांधकर वहां उत्पन्न हुए जीवके सूत्रोक्त मासपृथक्त्वप्रमाण जघन्य अन्तरकाल होता है, ऐसा कहना चाहिये।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंका अन्तर होता है ॥ २६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

जहण्णेण वासपुधत्तं ॥ २८ ॥

कुदो ? वासपुधत्तादो हेट्ठा आउअस्स जहण्णट्ठिदिबंधाभावादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ २९ ॥

मिच्छादिट्ठीणमणंतसंसाराणमेत्थ संभवादो ।

अणुदिस जाव अवराइदविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण वासपुधत्तं ॥ ३१ ॥

कुदो ? सम्मादिट्ठीणं वासपुधत्तादो हेट्ठा आउअस्स जहण्णट्ठिदिबंधाभावादो ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३२ ॥

कमसे कम वर्षपृथक्त्व काल तक नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवोंका अन्तर होता है ॥ २८ ॥

क्योंकि, नौ ग्रैवेयक विमानवासी देव वर्षपृथक्त्वसे नीचेकी जघन्य आयुस्थिति बांधते ही नहीं हैं।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवोंका अन्तर होता है ॥ २९ ॥

क्योंकि, जिन्हें अभी अनन्त काल तक संसारमें परिभ्रमण करना शेष है, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी नौ ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न होना संभव है।

अनुदिश आदि अपराजित पर्यन्त विमानवासी देवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३० ॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम वर्षपृथक्त्व काल तक अनुदिश आदि अपराजित पर्यन्त विमानवासी देवोंका अन्तर होता है ॥ ३१ ॥

क्योंकि, सम्यग्दृष्टि जीवोंके आयुका जघन्य स्थितिबंध भी वर्षपृथक्त्वसे नीचे नहीं होता।

अधिकसे अधिक सातिरेक दो सागरोपमप्रमाण काल तक अनुदिशादि अपराजित पर्यन्त विमानवासी देवोंका अन्तर होता है ॥ ३२ ॥

कुदो ? अणुदिसादिदेवस्स पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुप्पाज्जिय पुव्वकोडिं जीविदूण सोहम्मीसाणं गंतूण तत्थ अड्डाइज्जसागरोवमाणि गमिय पुणो पुव्वकोडाउअमणुस्से-सुप्पज्जिय संजमं घेत्तूण अप्पप्पणो विमाणम्मि उप्पण्णस्स सादिरेयबेसागरोवममेत्तं-तरुवलंभादो ।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३३ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ ३४ ॥

कुदो ? सव्वट्ठसिद्धीदो मणुसगइमोइण्णस्स मोक्खं मोत्तूणण्णत्थ गमणाभावादो । 'णत्थि अंतरं णिरंतरं' इदि पुणरुत्तदोसप्पसंगादो दोण्णमेक्कदरस्स संगहो कायव्वो । ण एस दोसो, दो णए अवलंबिय ट्ठिददोण्हं पि सिस्साणमणुग्गहट्ठं परूवयंतस्स पुणरुत्त-

क्योंकि, अनुदिशादि देवके पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर एक पूर्वकोटि तक जी कर सौधर्म-ईशान स्वर्गको जाकर वहां अढ़ाई सागरोपम काल व्यतीत कर पुनः पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर संयमको ग्रहण कर अपने अपने विमानमें उत्पन्न होने पर उनका अन्तरकाल सातिरेक दो सागरोपम-प्रमाण प्राप्त हो जाता है ।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंका अपनी गतिसे अन्तर होता ही नहीं, वह गति निरन्तर है ॥ ३४ ॥

क्योंकि, सर्वार्थसिद्धिसे मनुष्यगतिमें उतरनेवाले जीवका मोक्षके सिवाय अन्यत्र गमन होता ही नहीं है ।

शंका—'सर्वार्थसिद्धि विमानवासियोंका कोई अन्तरकाल नहीं होता, वह गति निरन्तर है' ऐसा कहनेमें पुनरुक्ति दोषका प्रसंग आता है, अतएव दो उक्तियोंमेंसे किसी एकका ही संग्रह करना चाहिये । अर्थात् या तो 'अन्तरकाल नहीं होता' इतना कहना चाहिये, या 'निरन्तर है' इतना ही कहना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो नयोंका अवलम्बन करनेवाले दोनों प्रकारके शिष्योंके अनुग्रहके लिये उक्त प्रकारसे प्ररूपण करनेवाले सूत्रकारके पुनरुक्ति दोष उत्पन्न नहीं होता । 'अन्तर नहीं है' यह

दोसाभावादो। णत्थि अंतरमिदि वयणं पज्जवट्ठियणयट्ठिदसिस्साणमणुग्गहकारयं, विहिदो वदिरित्तपडिसेहे चेव वावदत्तादो। णिरंतरमिदि वयणं दव्वट्ठियसिस्साणुगाहयं, पडिसेह-वदिरित्तविहीए पदुप्पायणादो। सेसं सुगमं।

इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? ॥३५॥

एगवारपुच्छादो चेव सयलत्थपरूवणासंभवादो किमट्ठं पुणो पुणो पुच्छा कीरदे? ण इमाणि पुच्छासुत्ताणि, किंतु आइरियाणमासंकियवयणाणि उत्तरसुत्तुप्पत्तिणिमित्ताणि, तदो ण दोसो त्ति।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ३६ ॥

सुगमं।

उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ३७ ॥

वचन पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंका अनुग्रहकारी है, क्योंकि यह वचन विधिसे रहित प्रतिषेधमें व्यापार करता है। 'निरन्तर है' यह वचन द्रव्यार्थिक शिष्योंका अनुग्राहक है, क्योंकि यह प्रतिषेधसे रहित विधिका प्रतिपादक है।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है? ॥ ३५ ॥

शंका—केवल एक वार प्रश्न करके समस्त अर्थका प्ररूपण किया जा सकता था, फिर वार वार यह प्रश्न क्यों किया जाता है?

समाधान—ये पृच्छासूत्र नहीं हैं, किन्तु आचार्योंके आशंकात्मक वचन हैं जिनका कि निमित्त अगले सूत्रकी उत्पत्ति करना है। इसलिये यह वार वार प्रश्न करना कोई दोष नहीं है।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर होता है ॥ ३६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

अधिकसे अधिक पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपमप्रमाण काल तक एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर होता है ॥ ३७ ॥

कुदो ? एइंदिएहिंतो णिग्गयस्स तसकाइएसु चेव भमंतस्स पुव्वकोडिपुधत्तब्भहियबेसागरोवमसहस्समेत्ततसट्ठिदीदो उवरि तत्थ अवट्ठाणाभावादो ।

बादरएइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३८ ॥

सुगममेदमासंकासुत्तं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ३९ ॥

सुगमं ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ४० ॥

कुदो ? बादरेइंदिएहिंतो णिग्गंतूण सुहुमेइंदिएसु असंखेज्जलोगमेत्तकालादो उवरि अवट्ठाणाभावादो । होदु णाम एदमंतरं बादरेइंदियाणं, ण तेसिं पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च, सुहुमेइंदिएसु अणप्पिदबादरेइंदिएसु च परियट्टंतस्स पुव्विल्लंतरादो अइमहल्लंतरु-

क्योंकि, एकेन्द्रिय जीवोंमेंसे निकल कर केवल त्रसकायिक जीवोंमें ही भ्रमण करनेवाले जीवके पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपममात्र स्थितिसे ऊपर त्रसकायिकोंमें रहनेका अभाव है ।

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त व बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका अपनी गतिसे अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३८ ॥

यह आशंकासूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक उक्त एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर होता है ॥ ३९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल तक उक्त एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४० ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय जीवोंमेंसे निकलकर सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें असंख्यात लोकप्रमाण कालसे ऊपर रहना संभव नहीं है ।

शंका—यह असंख्यात लोकप्रमाण कालका अन्तर बादर एकेन्द्रिय (सामान्य) जीवोंका भले ही हो पर यह अन्तरप्रमाण पृथक् पृथक् बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकों व अपर्याप्तकोंका नहीं हो सकता, क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें तथा अविवक्षित (पर्याप्त या अपर्याप्त) बादर एकेन्द्रियोंमें जब जीव परिभ्रमण करता है, तब पूर्वोक्त अन्तरसे

वलंभादो । होदु णाम पुव्विल्लंतरादो इमस्स अंतरस्स अइमहल्लत्तं, तो वि एदेसिमंतरकालो पुव्विल्लंतरकालोव्व असंखेज्जलोगमेत्तो चेव, णाणंतो । कुदो ? अणंतंतरुवदेसाभावादो ।

सुहुमेइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४२ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ ॥ ४३ ॥

कुदो ? सुहुमेइंदिएहिंतो णिग्गयस्स बादरेइंदिएसु चेव भमंतस्स बादरेइंदिय-

अधिक बड़ा अन्तरकाल प्राप्त हो सकता है ?

समाधान—पूर्वोक्त अन्तरसे यह पर्याप्तक व अपर्याप्तकोंका अलग अलग प्राप्त अन्तर अधिक बड़ा भले ही हो जावे, पर तो भी इन पर्याप्त व अपर्याप्त एकेन्द्रिय बादर जीवोंका अन्तर पूर्वोक्त अन्तरकालके समान असंख्यात लोकप्रमाण ही रहेगा, अनन्त नहीं हो सकता, क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय जीवोंके अनन्त कालप्रमाण अन्तरका उपदेश ही नहीं है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४३ ॥

क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रियोंसे निकलकर बादर एकेन्द्रियोंमें ही भ्रमण करनेवाले

ट्ठिदीदो उवरि अवट्ठाणाभावादो। तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं पि एदम्हादो अंतरादो अहियमंतरं होदि, अणप्पिदसुहुमेइंदिएसु वि संचारोवलंभादो। किंतु तो वि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं चेव अंतरं होदि, अण्णोवएसाभावादो।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियाणं तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?॥ ४४ ॥

सुगमं।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४५ ॥

सुगमं।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ४६ ॥

कुदो ? अप्पिदइंदिएहिंतो[1] णिग्गयस्स अणप्पिदएइंदियादिसु आवलियाए असंखे-

---

जीवके बादर एकेन्द्रियकी स्थितिसे (जो कि उपर्युक्त प्रमाण है) ऊपर वहां रहनेका अभाव है। उक्त जीवोंके पर्याप्त व अपर्याप्तका (अलग अलग) अन्तर यद्यपि पूर्वोक्त प्रमाणसे अधिक होता है, क्योंकि, उन जीवोंका अविवाक्षित सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें भी संचार पाया जाता है। किन्तु फिर भी अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग ही होता है, क्योंकि इस प्रमाणसे अधिक प्रमाणका अन्य कोई उपदेश पाया नहीं जाता।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ४४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४६ ॥

क्योंकि, विवाक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमेंसे निकल कर अविवाक्षित एकेन्द्रिय

---

१ प्रतिषु 'अप्पिदेइंदिएहिंतों' इति पाठः।

ज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणि परियट्टणे विरोहाभावादो ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ४८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ४९ ॥

कुदो ? अप्पिदकायं मोत्तूण अणप्पिदेसु वणप्फदिकायादिसु आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणि परियट्टिदुं संभवोवलंभादो ।

वणप्फदिकाइयणिगोदजीवबादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५० ॥

आदि जीवोंमें आवलीके असंख्यातवें भाग पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण करनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ॥ ४७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक पृथिवीकायिक आदि उक्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक उक्त पृथिवीकायिक आदि जीवोंका अन्तर होता है ॥ ४९ ॥

क्योंकि, विवक्षित कायको छोड़कर अविवक्षित वनस्पतिकाय आदि जीवोंमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण करना संभव है ।

वनस्पतिकायिक निगोद बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५० ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ ५२ ॥

कुदो ? अप्पिदवणप्फदिकायादो णिग्गयस्स अणप्पिदपुढवीकायादिसु चेव हिंडंतस्स असंखेज्जलोगं मोत्तूण अण्णस्स अंतरस्स असंभवादो । सेसं सुगमं ।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक उक्त वनस्पतिकायिक निगोद जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल तक उक्त वनस्पतिकायिक निगोद जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५२ ॥

क्योंकि, विवक्षित वनस्पतिकायसे निकलकर अविवक्षित पृथिवीकायादिकोंमें ही भ्रमण करनेवाले जीवके असंख्यात लोकप्रमाण कालको छोड़कर अन्य प्रमाण अन्तर होना असंभव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ५५ ॥

कुदो ? अप्पिदवणप्फदिकाइएहिंतो णिग्गयस्स अणप्पिदणिगोदजीवादिसु भमंतस्स अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टेहिंतो अहियअंतराणुवलंभादो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५६ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ५७ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ५८ ॥

कुदो ? अप्पिदतसकाइएहिंतो णिग्गंतूण अणप्पिदवणप्फदिकाइयादिसु आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणमंतरसण्णियाणमुवलंभादो ।[1]

अधिकसे अधिक अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५५ ॥

क्योंकि, विवक्षित वनस्पतिकायिक जीवोंमेंसे निकलकर अविवक्षित निगोद आदि जीवोंमें भ्रमण करनेवाले जीवके अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तोंसे अधिक अन्तरकाल नहीं पाया जा सकता ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक उक्त त्रसकायादि जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक त्रसकायादि उक्त जीवोंका अन्तर होता है ॥ ५८ ॥

क्योंकि, विवक्षित त्रसकायिक जीवोंमेंसे निकलकर अविवक्षित वनस्पतिकायादि जीवोंमें आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तोंका अन्तरकाल पाया जाता है ।

---

१ अ-आप्रत्योः ' -मंतरसण्णिधाण- ' इति पाठः ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५९ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६० ॥

कुदो ? मणजोगादो कायजोगं वचिजोगं वा गंतूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो मणजोगमागदस्स जहण्णेणंतोमुहुत्तंतरुवलंभादो । सेसचत्तारिमणजोगीणं पंचवचिजोगीणं च एवं चेव अंतरं परूवेयव्वं, भेदाभावादो । एत्थ एगसमओ किण्ण लब्भदे ? ण, वाघादिदे मुदे वा मण-वचिजोगाणमणंतरसमए अणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ६१ ॥

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी औरपांच वचनयोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका अन्तर होता है ॥ ६० ॥

क्योंकि, मनयोगसे काययोगमें अथवा वचनयोगमें जाकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र रहकर पुनः मनयोगमें आनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

शेष चार मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका भी इसी प्रकार अन्तर प्ररूपित करना चाहिये, क्योंकि इस अपेक्षासे उन सबमें कोई अन्तर नहीं है ।

शंका—इन पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका एक योगसे दूसरेमें जाकर पुनः उसी योगमें लौटनेपर एक समयप्रमाण अन्तर क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि जब एक मनयोग या वचनयोगका विघात हो जाता है, या विवक्षित योगवाले जीवका मरण हो जाता है, तब केवल एक समयके अन्तरसे पुनः अनन्तर समयमें उसी मनयोग या वचनयोगकी प्राप्ति नहीं हो सकती ।

अधिकसे अधिक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक पांच मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंका अन्तर होता है ॥ ६१ ॥

कुदो ? मणजोगादो वचिजोगं गंतूण तत्थ सव्वुक्कस्समद्धमच्छिय पुणो कायजोगं गंतूण[1] तत्थ वि सव्वचिरं कालं गमिय एइंदिएसुप्पज्जिय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टणाणि परियट्टिय पुणो मणजोगं गदस्स तदुवलंभादो। सेसचत्तारिमणजोगीणं पंचवचिजोगीणं च एवं चेव अंतरं परूवेदव्वं, विसेसाभावादो।

कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६२ ॥

सुगमं।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ६३ ॥

कुदो ? कायजोगादो मणजोगं वचिजोगं वा गंतूण एगसमयमच्छिय विदियसमए मुदे वाघादिदे वा कायजोगं गदस्स एगसमयअंतरुवलंभादो।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६४ ॥

कुदो ? कायजोगादो मणजोगं वचिजोगं च परिवाडीए गंतूण दोसु वि सव्वुक्कस्सकालमच्छिय पुणो कायजोगमागदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तंतरुवलंभादो।

क्योंकि, मनयोगसे वचनयोगमें जाकर वहां अधिक काल तक रहकर पुनः काययोगमें जाकर और वहां भी सबसे अधिक काल व्यतीत करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः मनयोगमें आये हुए जीवके उक्त प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है।

शेष चार मनयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंका भी इसी प्रकार अन्तर प्ररूपित करना चाहिये, क्योंकि, इस अपेक्षासे उनमें कोई विशेषता नहीं है।

काययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ६२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कमसे कम एक समय तक काययोगी जीवोंका अन्तर होता है ॥ ६३ ॥

क्योंकि, काययोगसे मनयोगमें या वचनयोगमें जाकर एक समय रहकर दूसरे समयमें मरण करने या योगके व्याघातित होनेपर पुनः काययोगको प्राप्त हुए जीवके एक समयका जघन्य अन्तर पाया जाता है।

काययोगी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ ६४ ॥

क्योंकि, काययोगसे मनयोग और वचनयोगमें क्रमशः जाकर और उन दोनों ही योगोंमें उनके सर्वोत्कृष्ट काल तक रहकर पुनः काययोगमें आये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काययोगका अन्तर प्राप्त होता है।

---

१ अप्रतौ 'मोत्तूण' इति पाठः।

ओरालियकायजोगी-ओरालियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ६६ ॥

कुदो ? ओरालियकायजोगादो मणजोगं वचिजोगं वा गंतूण एगसमयमच्छिय बिदियसमए वाघादवसेण ओरालियकायजोगं गदस्स एगसमयअंतरुवलंभादो। ओरालियमिस्सकायजोगिस्स अपज्जत्तभावेण मण-वचिजोगविरहियस्स कधमंतरस्स एगसमओ ? ण, ओरालियमिस्सकायजोगादो एगविग्गहं करिय कम्मइयजोगम्मि एगसमयमच्छिय बिदियसमए ओरालियमिस्सं गदस्स एगसमयअंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ६७ ॥

औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय होता है ॥ ६६ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगसे मनयोग या वचनयोगमें जाकर एक समय रहकर दूसरे समयमें योगका व्याघात होनेसे औदारिककाययोगमें आये हुए जीवके औदारिककाययोगका एक समय अन्तर प्राप्त होता है ।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगी तो अपर्याप्त अवस्थामें होता है जब कि जीवके मनयोग और वचनयोग होता ही नहीं है, अतएव औदारिकमिश्रकाययोगका एक समय अन्तर किस प्रकार हो सकता है ?

समाधान—नहीं; हो सकता है, क्योंकि औदारिकमिश्रकाययोगसे एक विग्रह करके कार्मिक योगमें एक समय रहकर दूसरे समयमें औदारिकमिश्रयोगमें आये हुए जीवके औदारिकमिश्रकाययोगका एक समय अन्तर प्राप्त हो जाता है ।

औदारिककाययोगी व औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सातिरेक तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है ॥ ६७ ॥

कुदो ? ओरालियकायजोगादो चत्तारिमण-चत्तारिवचिजोगेसु परिणमिय कालं करिय तेत्तीसाउट्ठिदिएसु देवेसुववज्जिय सगट्ठिदिमच्छिय दो विग्गहे कादूण मणुस्सेसुप्पज्जिय ओरालियमिस्सकायजोगेण दीहकालमच्छिय पुणो ओरालियकायजोगं गदस्स णवहि अंतोमुहुत्तेहि वेहि[1] समएहि सादिरेयतेत्तीससागरोवममेत्तंतरुवलंभादो । एवमोरालियमिस्सकायजोगस्स वि अंतरं वत्तव्वं । णवरि अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीससागरोवमाणि अंतरं होदि, णेरइएहिंतो पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुप्पज्जिय ओरालियमिस्सकायजोगस्स आदिं करिय सव्वलहुं पज्जत्तीओ समाणिय ओरालियकायजोगेणंतरिय पुव्वकोडिं देसूणं गमिय तेत्तीसाउट्ठिदिदेवेसुप्पज्जिय पुणो विग्गहे कादूण ओरालियमिस्सकायजोगं गदस्स तदुवलंभादो ।

वेउव्वियकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६८ ॥

सुगमं ।

क्योंकि, औदारिककाययोगसे चार मनयोगों व चार वचनयोगोंमें परिणमित हो मरण कर तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर, वहां अपनी स्थितिप्रमाण रहकर, पुनः दो विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न हो औदारिकमिश्रकाययोग सहित दीर्घ काल रहकर, पुनः औदारिककाययोगमें आये हुए जीवके नौ अन्तर्मुहूर्तों व दो समयोंसे अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण औदारिककाययोगका अन्तर प्राप्त हो जाता है ।

इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगका भी अन्तर कहना चाहिये । केवल विशेषता यह है कि औदारिकमिश्रकाययोगका अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है, क्योंकि, नारकी जीवोंमेंसे निकलकर, पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हो, औदारिकमिश्रकाययोगका प्रारंभ कर, कमसे कम कालमें पर्याप्तियोंको पूर्ण करके, औदारिककाययोगके द्वारा औदारिकमिश्रकाययोगका अन्तर कर, कुछ कम पूर्वकोटि काल व्यतीत करके तेतीस सागरोपमकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हो, पुनः विग्रह करके औदारिकमिश्रकाययोगमें जानेवाले जीवके सूत्रोक्त कालप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

वैक्रियिककाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिषु ' जेहि ' इति पाठः ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ६९ ॥

वेउव्वियकायजोगादो मणजोगं वचिजोगं वा गंतूण तत्थ एगसमयमच्छिय बिदियसमए वाघादवसेण वेउव्वियकायजोगं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ७० ॥

अंतरस्स पाहण्णियादो एगवयणं णवुंसयत्तं च जुज्जदे । सेसं सुगमं ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ७१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण दसवाससहस्साणि सादिरेयाणि ॥ ७२ ॥

कुदो ? तिरिक्खेहिंतो मणुस्सेहिंतो वा देवेसु णेरइएसु वा उप्पज्जिय दीहकालेण छप्पज्जत्तीओ[1] समाणिय वेउव्वियकायजोगेण अंतरिय देसूणदसवाससहस्साणि अच्छिय तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा उप्पज्जिय सव्वजहण्णेण कालेण पुणो आगंतूण वेउव्वियमिस्सं

वैक्रियिककाययोगियोंका जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ६९ ॥

क्योंकि, वैक्रियिककाययोगसे मनयोग या वचनयोगमें जाकर वहां एक समय तक रहकर दूसरे समयमें उस योगका व्याघात होजानेके कारण वैक्रियिककाययोगमें जानेवाले जीवके एक समयप्रमाण वैक्रियिककाययोगका अन्तर पाया जाता है ।

वैक्रियिककाययोगियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है ॥ ७० ॥

सूत्रमें जो अनन्तकाल व असंख्यातपुद्गलपरिवर्त इन दोनों शब्दोंमें एकवचन और नपुंसकलिंगका उपयोग किया गया है वह अन्तरकी प्रधानता बतलानेके लिये है और इसलिये उपयुक्त ही है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ७१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका जघन्य अन्तर कुछ अधिक दश हजार वर्ष होता है ॥ ७२ ॥

क्योंकि, तिर्यंचोंसे अथवा मनुष्योंसे देवों या नारकियोंमें उत्पन्न होकर दीर्घ काल द्वारा छह पर्याप्तियां पूरी कर वैक्रियिककाययोगके द्वारा वैक्रियिकमिश्रकाययोगका अन्तर करके, कुछ कम दश हजार वर्ष तक वहीं रहकर, तिर्यंचों अथवा मनुष्योंमें उत्पन्न हो, सबसे कम कालमें पुनः देव या नारक गतिमें आकर वैक्रियिकमिश्रयोगको प्राप्त

१ अ-आप्रत्योः ' उप्पज्जत्तिओ '; काप्रतौ ' ओप्पज्जत्तीओ ' इति पाठः ।

गदस्स सादिरेयदसवस्ससहस्समेत्तंतरुवलंभादो। कधमेदेसिं सादिरेयत्तं ? ण, वेउव्वियमिस्सद्धादो तिरिक्ख-मणुस्सपज्जत्ताणं गब्भजाणं जहण्णाउवस्स बहुत्तुवलंभादो।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ७३ ॥

कुदो ? वेउव्वियमिस्सकायजोगादो वेउव्वियकायजोगं गंतूणंतरिय असंखेज्जपोग्गलपरियट्टणाणि परियट्टिय वेउव्वियमिस्सं गदस्स तदुवलंभादो।

आहारकायजोगि--आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ७४ ॥

सुगमं।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७५ ॥

कुदो ? आहारकायजोगादो अण्णजोगं गंतूण सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो

हुए जीवके सातिरेक दश हजार वर्षप्रमाण वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर पाया जाता है।

शंका—इन दश हजार वर्षोंके सातिरेकता कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रयोगके कालकी अपेक्षा तिर्यंच व मनुष्य पर्याप्त गर्भज जीवोंकी जघन्य आयु बहुत पायी जाती है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है ॥ ७३ ॥

क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगसे वैक्रियिककाययोगमें जाकर, वैक्रियिकमिश्र काययोगका अन्तर प्रारंभ कर, असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें जानेवाले जीवके सूत्रोक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ ७५ ॥

क्योंकि, आहारककाययोगसे अन्य योगको जाकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त रहकर

आहारकायजोगं गदस्स अंतोमुहुत्तंतरुवलंभादो। एगसमओ किण्ण लब्भदे? ण, आहारकायजोगस्स वाघादाभावादो। एवमाहारमिस्सकायजोगस्स वि वत्तव्वं। णवरि आहारसरीरमुट्ठाविय सव्वजहण्णेण कालेण पुणो वि उट्ठावेंतस्स पढमसमए अंतरपरिसमत्ती कायव्वा।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ७६ ॥

कुदो? अणादियमिच्छादिट्ठिस्स अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) अप्पमत्तो होदूण (२) आहारसरीरं बंधिय (३) पडिभग्गो होदूण (४) आहारसरीरमुट्ठाविय अंतोमुहुत्तमच्छिय (५) आहारकायजोगी होदूण आदिं करिय एगसमयमच्छिय कालं काऊण अंतरिय उवड्ढपोग्गलपरियट्टं भमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अद्धमंतरं करिय (६) अंतोमुहुत्तमच्छिय (७) अबंधभावं

पुनः आहारककाययोगको प्राप्त हुए जीवके आहारककाययोगका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

शंका — आहारकाययोगका एक समयमात्र अन्तर क्यों नहीं प्राप्त हो सकता?

समाधान — नहीं हो सकता, क्योंकि, आहारकाययोगका व्याघात नहीं हो सकता।

इसी प्रकार आहारमिश्रकाययोगका अन्तर भी कहना चाहिये। केवल विशेषता यह है कि आहारशरीरको उत्पन्न करके सबसे कम कालमें पुनः आहारशरीरको उठानेके प्रथम समयमें अन्तरकी समाप्ति कर देना चाहिये।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है ॥ ७६ ॥

क्योंकि, एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण संसार शेष रहनेके आदि समयमें उपशमसम्यक्त्व और संयम इन दोनोंको एक साथ ग्रहण किया और अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) अप्रमत्त होकर (२) आहारशरीरका बंध करके (३) प्रतिभग्न अर्थात् अप्रमत्तसे च्युत हो प्रमत्त होकर (४) आहारशरीरको उत्पन्न करके अन्तर्मुहूर्त रहा (५) और आहारकाययोगी होकर उसका प्रारंभ करके व एक समय रहकर मर गया। इस प्रकार आहारकाययोगका अन्तर प्रारंभ हुआ। पश्चात् वही जीव उपार्धपुद्गलपरिवर्तन भ्रमण करके ~~संसारके~~ अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहनेपर अन्तरकाल समाप्त कर अर्थात् पुनः आहारशरीर उत्पन्न कर (६) अन्तर्मुहूर्त रहकर (७) अबंधकभावको प्राप्त

गयस्स जहाकमेण अट्ठहि सत्तहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणअद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तंतरुवलंभादो ।

कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ७७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं ॥ ७८ ॥

तिण्णि विग्गहे काऊण खुद्दाभवग्गहणम्मि उप्पाज्जिय पुणो विग्गहं काऊण णिग्गयस्स तिसमऊणखुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्साप्पिणीओ ॥ ७९ ॥

कुदो ? कम्मइयकायजोगादो ओरालियमिस्सं वेउव्वियमिस्सं वा गंतूण असंखेज्जासंखेज्जओसप्पिणी-उस्सप्पिणीपमाणमंगुलस्स[1] असंखेज्जदिभागमेत्तकालमच्छिय विग्गहं

होगया। ऐसे जीवके यथाक्रम आठ या सात अर्थात् आहारककाययोगका आठ और आहारकमिश्रकाययोगका सात अन्तर्मुहूर्तसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र अन्तरकाल पाया जाता है ।

कार्मिककाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कार्मिककाययोगियोंका जघन्य अन्तर तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र होता है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, तीन विग्रह करके क्षुद्रभवग्रहणवाले जीवोंमें उत्पन्न हो पुनः विग्रह करके निकलनेवाले जीवके तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र कार्मिककाययोगका जघन्य अन्तर प्राप्त होता है ।

कार्मिककाययोगियोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल तक होता है ॥ ७९ ॥

क्योंकि, कार्मिककाययोगसे औदारिकमिश्र अथवा वैक्रियिकमिश्र काययोगमें जाकर असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र काल तक रहकर पुनः विग्रहगतिको प्राप्त हुए जीवके कार्मिककाययोगका सूत्रोक्त अन्तर-

---

१ अप्रतौ ' ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ पमाणअंगुलस्स '; आप्रतौ ' ओसप्पिणि-उस्साप्पिणीपमाणअंगुलस्स ' इति पाठः ।

गदस्स तदुवलंभादो ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥८०॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ८१ ॥

सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ८२ ॥

कुदो ? इत्थिवेदादो णिग्गयस्स पुरिस-णवुंसयवेदेसु चेव भमंतस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणमंतरसरूवेणुवलंभादो ।

पुरिसवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ८४ ॥

कुदो ? पुरिसवेदेणुवसमसेडिं चढिय अवगदवेदो होदूण एगसमयमंतरिय

काल पाया जाता है ।

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण काल होता है ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है ॥ ८२ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदसे निकलकर पुरुषवेद या नपुंसकवेदमें ही भ्रमण करनेवाले जीवके आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनरूप स्त्रीवेदका अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है ।

पुरुषवेदियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पुरुषवेदियोंका जघन्य अन्तर एक समय होता है ॥ ८४ ॥

क्योंकि, पुरुषवेद सहित उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगतवेदी हो एक समय तक

बिदियसमए कालं काऊण पुरिसवेदेसुप्पण्णस्स एगसमयमेत्तंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ८५ ॥

सुगमं ।

णवुंसयवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८६ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८७ ॥

खुद्दाभवग्गहणं किण्ण लब्भदे ? ण, अपज्जत्तएसु खुद्दाभवग्गहणमेत्ताउट्ठिदिएसु णवुंसयवेदं मोत्तूण इत्थि-पुरिसवेदाणमणुवलंभादो, पज्जत्तएसु वि अंतोमुहुत्तं मोत्तूण खुद्दाभवग्गहणस्स अणुवलंभादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ८८ ॥

कुदो ? णवुंसयवेदादो णिग्गयस्स इत्थि-पुरिसवेदेसु चेव हिंडंतस्स सागरोवम-

---

पुरुषवेदका अन्तर करके दूसरे समयमें मरण कर पुरुषवेदी जीवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवके पुरुषवेदका एक समयमात्र अन्तर पाया जाता है ।

पुरुषवेदियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है ॥ ८५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ ८७ ॥

शंका—नपुंसकवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण क्यों नहीं प्राप्त हो सकता ?

समाधान—नहीं हो सकता, क्योंकि क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुवाले अपर्याप्तक जीवोंमें नपुंसकवेदको छोड़ स्त्री व पुरुषवेद नहीं पाया जाता, और पर्याप्तकोंमें अन्तर्मुहूर्तके सिवाय क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल नहीं पाया जाता ।

नपुंसकवेदियोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व होता है ॥ ८८ ॥

क्योंकि, नपुंसकवेदसे निकलकर स्त्री और पुरुष वेदोंमें ही भ्रमण करनेवाले

सदपुधत्तादो उवरि तत्थावट्ठाणाभावादो ।

अवगदवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८९ ॥

सुगमं ।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९० ॥

कुदो ? उवसमसेडीदो ओयरिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तं सवेदी होदूणंतरिय पुणो उवसमसेडिं चडिय अवेदत्तं गयस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ९१ ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइट्ठिस्स तिण्णि वि करणाणि काऊण अद्धपोग्गलपरियट्टस्सादिसमए सम्मत्तं संजमं च जुगवं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय उवसमसेडिं चडिय अवगदवेदो होदूण हेट्ठा ओयरिय सवेदो होदूण अंतरिय उवड्ढपोग्गलपरियट्टं भमिय पुणो अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसेडिं चडिय अवगदवेदो होदूण अंतरं समाणिय पुणो

जीवके सागरोपमशतपृथक्त्वसे ऊपर वहां रहना संभव नहीं है ।

अपगतवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है ॥ ९० ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र सवेदी होकर अपगतवेदित्वका अन्तर कर पुनः उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगतवेदभावको प्राप्त होनेवाले जीवके अपगतवेदित्वका अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है ।

उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है ॥ ९१ ॥

क्योंकि, किसी अनादिमिथ्यादृष्टि जीवने तीनों करण करके अर्धपुद्गलपरिवर्तके आदि समयमें सम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण किया और अन्तर्मुहूर्त रहकर उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगतवेदी होगया । वहांसे फिर नीचे उतरकर सवेदी हो अपगतवेदका अन्तर प्रारंभ किया और उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण भ्रमण कर पुनः संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहनेपर उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगतवेदी हो अन्तरको समाप्त किया । पश्चात् फिर नीचे उतरकर क्षपकश्रेणीको चढ़कर अबन्धकभाव

तत्तो ओयरिय खवगसेडिं चडिय अबंधभावं गयस्स तदुवलंभादो ।

खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ ९२ ॥

कुदो ? खवगाणमवगदवेदाणं पुणो वेदपरिणामाणुप्पत्तीदो ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई-माणकसाई-मायकसाई-लोभकसाई णमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ९३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ ॥ ९४ ॥

कुदो ? कोधेण अच्छिय माणादिगदबिदियसमए वाघादेण, कालं कादूण णेरइएसु उप्पादेण वा, आगदकोधोदयस्स एगसमयअंतरुवलंभादो । एवं चेव सेसकसायाणमेगसमयअंतरपरूवणा कायव्वा । णवरि वाघादे अंतरस्स एगसमओ णत्थि, वाघादे कोधस्सेव उदयदंसणादो । किंतु मरणेण एगसमओ वत्तव्वो, मणुस्स-तिरिक्ख-देवेसुप्पण्ण-पढमसमए माण-माया-लोहाणं णियमेणुदयदंसणादो ।

प्राप्त किया । ऐसे जीवके अपगतवेदित्वका कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है ।

क्षपककी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ९२ ॥

क्योंकि, क्षपकश्रेणी चढ़नेवालोंके एक वार अपगतवेदी होजानेपर पुनः वेद-परिणामकी उत्पत्ति नहीं होती ।

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्रोधादि चार कषायी जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय होता है ॥ ९४ ॥

क्योंकि, क्रोधकषायमें रहकर मानादिकषायमें जानेके दूसरे ही समयमें व्याघातसे अथवा मरणकर नारकी जीवोंमें उत्पत्ति होजानेसे क्रोधोदय सहित जीवके क्रोधकषायका एक समयमात्र अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार शेष कषायोंके भी अन्तरकी प्ररूपणा करना चाहिये । केवल विशेषता यह है कि मानादि कषायोंके व्याघातके द्वारा एक समयप्रमाण अन्तरकाल नहीं होता, क्योंकि व्याघात होनेपर क्रोधका ही उदय देखा जाता है । किन्तु मरणके द्वारा मानादिकषायोंका एक समय-प्रमाण अन्तर कहना चाहिये, क्योंकि मनुष्य, तिर्यंच व देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके प्रथम समयमें क्रमशः मान, माया व लोभका नियमसे उदय देखा जाता है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९५ ॥

अप्पिदकसायादो अणप्पिदकसायं गंतूणुक्कस्समंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पिदकसाय-मागदस्स तदुवलंभादो ।

अकसाई अवगदवेदाण भंगो ॥ ९६ ॥

कुदो ? (उवसमं पडुच्च) जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं; खवगं पडुच्च णत्थि अंतरमिच्चेदेहि तत्तो भेदाभावादो ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी-सुदअण्णाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ९७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९८ ॥

कुदो ? मदि-सुदअण्णाणेहिंतो सम्मत्तं घेत्तूण णाणेसु जहण्णकालमंतरिय पुणो

क्रोधादि चार कषायी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्तमात्र है ॥ ९५ ॥

क्योंकि, विवक्षित कषायसे अविवक्षित कषायमें जाकर अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण रहकर विवक्षित कषायमें आये हुए जीवके उस कषायका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त होता है ।

अकषायी जीवोंका अन्तर अपगतवेदी जीवोंके समान होता है ॥ ९६ ॥

क्योंकि, (उपशमकी अपेक्षा) जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्त अकषायी जीवोंके भी होता है । क्षपककी अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है । इस प्रकार अकषायी और अपगतवेदी जीवोंकी अन्तर-प्ररूपणामें कोई भेद नहीं है ।

ज्ञानमार्गणानुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मतिअज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है ॥ ९८ ॥

क्योंकि, मतिअज्ञान व श्रुतअज्ञानसे सम्यक्त्व ग्रहणकर मतिज्ञान व श्रुतज्ञानमें आकर कमसे कम कालका अन्तर देकर पुनः मतिअज्ञान व श्रुतअज्ञान भावमें गये

मदि-सुदअण्णाणी गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण बेछावट्ठिसागरोवमाणि ॥ ९९ ॥

कुदो ? मदि-सुदअण्णाणिस्स सम्मत्तं घेत्तूण छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि सण्णाणेसु अंतरिय पुणो सम्मामिच्छत्तं गंतूण मिस्सणाणेहि अंतरिय पुणो सम्मत्तं घेत्तूण छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि भमिय मिच्छत्तं गदस्स तदुवलंभादो । कुदो देसूणत्तं ? उवसमसम्मत्तकालादो बेछावट्ठिअब्भंतरमिच्छत्तकालस्स बहुत्तुवलंभादो । सम्मामिच्छाइट्ठीणाणं मदि-सुदअण्णाणमिदि कट्टु केइमाइरिया सम्मामिच्छत्तेण णांतरावेंति । तण्ण घडदे, सम्मामिच्छत्तभावायत्तणाणस्स सम्मामिच्छत्तं व [1]पत्तजच्चंतरस्स मदि-सुद-अण्णाणत्तविरोहादो ।

विभंगणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०० ॥

हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है ।

मतिअज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर दो छयासठ सागरोपम अर्थात् एक सौ बत्तीस सागरोपम काल होता है ॥ ९९ ॥

क्योंकि, किसी मति-श्रुतअज्ञानी जीवके सम्यक्त्व ग्रहण करके, कुछ कम छयासठ सागरोपम कालप्रमाण सम्यग्ज्ञानोंका अन्तर देकर, पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको जाकर मिश्रज्ञानोंका अन्तर देकर पुनः सम्यक्त्व ग्रहण करके कुछ कम छयासठ सागरोपमप्रमाण परिभ्रमण कर मिथ्यात्वको जानेसे दो छयासठ सागरोपमप्रमाण मति-श्रुत अज्ञानोंका अन्तरकाल पाया जाता है ।

शंका—दो छयासठ सागरोपमोंमें जो कुछ कम काल बतलाया है वह क्यों ?

समाधान—क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वकालसे दो छयासठ सागरोपमोंके भीतर मिथ्यात्वका काल अधिक पाया जाता है । (देखो पु. ५, पृ. ६, अन्तरानुगम सूत्र ४ की टीका) ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिज्ञानको मति-श्रुत अज्ञान रूप मानकर कितने ही आचार्य उपर्युक्त अन्तर-प्ररूपणामें सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर नहीं दिलाते । पर यह बात घटित नहीं होती, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वभावके अधीन हुआ ज्ञान सम्यग्मिथ्यात्वके समान एक अन्य जातिका बन जाता है अतः उस ज्ञानको मति-श्रुत अज्ञान रूप माननेमें विरोध आता है ।

विभंगज्ञानियोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १०० ॥

---

१ काप्रतौ ' सम्मामिच्छत्तं पत्त- '; मप्रतौ ' सम्मामिच्छत्तं च पत्त- ' इति पाठः ।

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०१ ॥

कुदो ? देवस्स णेरइयस्स वा विभंगणाणिस्स दिट्ठमग्गस्स सम्मत्तं घेत्तूण ओहिणाणेण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय विभंगणाणं मिच्छत्तं च जुगवं पडिवण्णस्स जहण्णंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १०२ ॥

कुदो ? विभंगणाणादो मदिअण्णाणं गंतूणंतरिय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टे परियट्टिदूण विभंगण्णाणं गदस्स तदुवलंभादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

विभंगज्ञानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, एक विभंगज्ञानी देव या नारकी जीवके सन्मार्ग पाकर सम्यक्त्व ग्रहण कर अवधिज्ञान सहित कमसे कम अन्तर्मुहूर्त रहकर विभंगज्ञान और मिथ्यात्वको एक साथ प्राप्त होनेपर विभंगज्ञानका अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर प्राप्त होता है ।

विभंगज्ञानियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है ॥ १०२ ॥

क्योंकि, विभंगज्ञानसे मतिअज्ञानको जाकर अन्तर प्रारंभ कर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर विभंगज्ञानको प्राप्त होनेवाले जीवके विभंगज्ञानका सूत्रोक्त काल पाया जाता है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १०३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आभिनिबोधिक आदि उक्त चार ज्ञानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ १०४ ॥

कुदो ? मदि-सुद-ओहिणाणेसु ट्ठिददेवस्स णेरइयस्स वा मिच्छत्तं गंतूण मदि-सुद-विभंगअण्णाणेहि अंतरिय पुणो मदि-सुद-ओहिणाणमागदस्स जहण्णेणंतोमुहुत्तंतरुवलंभादो । एवं मणपज्जवणाणस्स वि । णवरि मणपज्जवणाणी संजदो तण्णाणं विणासिय अंतोमुहुत्तमच्छिय तस्सेव णाणस्स पुणो आणेदव्वो ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १०५ ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइट्ठिस्स अद्धपोग्गलपरियट्टस्स पढमसमए उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय तत्थेव देव-णेरइएसु विरोधाभावादो मदि-सुद-ओहिणाणाणि उप्पाइय छावलियाओ उवसमसम्मत्तद्धा अत्थि त्ति सासणं गंतूणंतरिय[1] पुणो मिच्छत्तेण अद्धपोग्गलपरियट्टं भमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे सम्मत्तं पडिवज्जिय मदि-सुदणाणाणमंतरं समा-

क्योंकि, मति, श्रुत और अवधि ज्ञानोंमें स्थित किसी देव या नारकी जीवके मिथ्यात्वको जाकर मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान व विभंगज्ञानके द्वारा अन्तर करके पुनः मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञानमें आनेपर उक्त ज्ञानोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त होता है ।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानीका भी जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है । केवल विशेषता यह है कि मनःपर्ययज्ञानी संयत जीव मनःपर्ययज्ञानको नष्ट करके अन्तर्मुहूर्तकाल तक उस ज्ञानके विना रहकर फिर उसी ज्ञानमें लाया जाना चाहिये ।

आभिनिबोधिक आदि चार ज्ञानोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है ॥ १०५ ॥

क्योंकि, किसी अनादिमिथ्यादृष्टि जीवने अपने अर्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण (संसार शेष रहनेके) प्रथम समयमें उपशमसम्यक्त्व ग्रहण किया और उसी अवस्थामें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान उत्पन्न किये; क्योंकि देव और नारकी जीवोंमें उक्त अवस्थामें इनके उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नहीं आता । फिर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली शेष रहनेपर वह जीव सासादनगुणस्थानमें गया और इस प्रकार मतिज्ञान आदि तीनों ज्ञानोंका अन्तर प्रारंभ हो गया । फिर उसी जीवने मिथ्यात्व सहित अर्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण भ्रमण कर संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहनेपर सम्यक्त्वको ग्रहण कर लिया और इस प्रकार मति-श्रुत ज्ञानोंका अन्तर समाप्त किया ।

१ बेइंदियाणं भंते किं नाणी अन्नाणी ? गोयमा ! णाणी वि अण्णाणि वि । जे णाणी ते नियमा दुनाणी । तं जहा— आभिणिबोहियनाणी सुयणाणी । जे अण्णाणी ते वि नियमा दुअन्नाणी । तं जहा— मइअन्नाणी सुयअण्णाणी य । भगवती, ८, २. बेइंदियस्स दो णाणा कहं लब्भंति ? भण्णइ, सासायणं पडुच्च तस्सापज्जत्तयस्स दो णाणा लब्भंति । प्रज्ञापना टीका । सासणभावे णाणं । कर्मग्रंथ ४, ४९.

णिय पुणो अंतोमुहुत्तं गंतूण ओहिणाणमुप्पाइय तत्थेव तदंतरं पि समाणिय अंतोमुहुत्तेण केवलणाणमुप्पाइय अबंधभावं गदस्स उवड्ढपोग्गलपरियट्टंतरुवलंभादो ।

एवं मणपज्जवणाणस्स वि । णवरि उवसमसम्मत्तेण सह मणपज्जवणाणस्स विरोहादो पढमसम्मत्तद्धं बोलाविय मुहुत्तपुधत्ते गदे मणपज्जवणाणमादीए अंतरस्स अवसाणे च उप्पाएदव्वं ।

केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०९ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ ११० ॥

कुदो ? केवलणाणे समुप्पण्णे पुणो तस्स विणासाभावादो ।

संजमाणुवादेण संजद-सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परिहार-सुद्धिसंजद-संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १०८ ॥

सुगमं ।

पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत करके उसने अवधिज्ञान उत्पन्न कर लिया और उसी समय अवधिज्ञानका अन्तर समाप्त किया। फिर उसने अन्तर्मुहूर्तकालसे केवलज्ञान उत्पन्न कर अबन्धकभाव प्राप्त कर लिया। ऐसे जीवके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानका उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानका भी उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण होता है। केवल विशेषता यह है कि उपशमसम्यक्त्वसे मनःपर्ययज्ञानका विरोध होनेके कारण प्रथमोपशमसम्यक्त्वका काल समाप्त कर मुहूर्तपृथक्त्व व्यतीत होजानेपर आदिमें व अन्तरके अन्तमें मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न कराना चाहिये।

केवलज्ञानियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

केवलज्ञानियोंके ज्ञानका कभी अन्तर ही नहीं होता, वह ज्ञान निरन्तर होता है ॥ १०७ ॥

क्योंकि, केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर फिर उसका विनाश नहीं होता।

संयममार्गणानुसार संयत, सामायिक व छेदोपस्थापन शुद्धिसंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १०९ ॥

कुदो ? अप्पिदसंजमट्ठिदजीवमसंजमं[1] णेदूण पुणो अप्पिदसंजमस्स जहण्णकालेण णीदे जहण्णमंतरं होदि । णवरि सामाइयच्छेदोवट्ठावणसंजदो उवसमसेडिं चडिय सुहुमसंजम-जहाक्खादसंजमेसु अंतरिय पुणो हेट्ठा ओयरियस्स सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमेसु पदिदस्स जहण्णमंतरं होदि । परिहारसुद्धिसंजमादो सामाइय- छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमं णेदूण जहण्णेण अंतोमुहुत्तेण पुणो परिहारसुद्धिसंजममागदस्स जहण्णमंतरं होदि ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ११० ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइट्ठिस्स अद्धपोग्गलपरियट्टस्स आदिसमए पढमसम्मत्तं संजमं च जुगवं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूणंतरिय उवड्ढपोग्गलपरियट्टं भमिय पुणो अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे संजमं पडिवज्जिय अंतरं समाणिय अंतोमुहुत्तमच्छिय अबंधगत्तं गदस्स उवड्ढपोग्गलपरियट्टमेत्तंतरुवलंभादो । एवं सामाइय छेदोवट्ठा-

संयत आदि उक्त संयमी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है ॥ १०९ ॥

क्योंकि, विवक्षित संयममें स्थित जीवको असंयममें लेजाकर कमसे कम कालमें पुनः विवक्षित संयममें लानेपर उस संयमका उक्त जघन्य अन्तर प्राप्त होता है । केवल विशेषता यह है कि सामायिक व छेदोपस्थापन शुद्धिसंयत जीवके उपशमश्रेणीको चढ़कर सूक्ष्मसाम्पराय व यथाख्यात संयमोंके द्वारा अन्तर देकर पुनः श्रेणीसे नीचे उतरनेपर सामायिक व छेदोपस्थान शुद्धिसंयमोंमें आनेपर उन दोनों संयमोंका जघन्य अन्तर होता है । तथा परिहारशुद्धिसंयमसे सामायिक व छेदोपस्थापन शुद्धिसंयममें जाकर अन्तर्मुहूर्त कालसे पुनः परिहारशुद्धिसंयममें आये हुए जीवके परिहारशुद्धिसंयमका जघन्य अन्तर होता है ।

संयत आदि उक्त संयमी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है ॥ ११० ॥

क्योंकि, किसी अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके अर्धपुद्गलपरिवर्तमात्र संसार शेष रहनेके आदि समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयम दोनोंको एक साथ ग्रहण कर अन्तर्मुहूर्त रहकर मिथ्यात्वको जाकर अन्तर प्रारंभ करके उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण भ्रमण कर पुनः अन्तर्मुहूर्तमात्र संसार शेष रहनेपर संयम ग्रहण कर व अन्तरकाल समाप्त कर अन्तर्मुहूर्त तक रह अबन्धकभावको प्राप्त होनेपर उक्त संयमोंका उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

इसी प्रकार सामायिक व छेदोपस्थापन शुद्धिसंयतोंका अन्तर कहना चाहिये,

१ अप्रतौ ' -जीवसंजम ' इति पाठः ।

वणसुद्धिसंजदाणं, भेदाभावादो । एवं परिहारसुद्धिसंजदस्स वि । णवरि अणादियमिच्छादिट्ठी अद्धपोग्गलपरियट्टस्स आदिसमए उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं घेत्तूण वासपुधत्तमच्छिय पच्छा परिहारसुद्धिसंजमं गंतूण मिच्छत्तं पुणो गमिय अंतरावेदव्वो, संजमग्गहणपढमसमयादो वासपुधत्तेण विणा परिहारसुद्धिसंजमग्गहणाभावादो । अवसाणे वि परिहारसुद्धिसंजमं गेण्हाविय[1] पच्छा सामाइयच्छेदोवट्ठावण-सुहुम-जहाक्खादसंजमाणं णेदूण अबंधगो कायव्वो । एवं संजदासंजदस्स वि । णवरि अवसाणे तिण्णि वि करणाणि काऊणुवसमसम्मत्तं संजमासंजमं च गहिदपढमसमए अंतरं समाणिय अंतोमुहुत्तमच्छिय संजमं घेत्तूण अबंधगत्तं गदो त्ति वत्तव्वं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजद-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १११ ॥

सुगमं ।

क्योंकि, उनके पूर्वोक्त संयतोंके अन्तरसे कोई भेद नहीं होता ।

इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयतका भी अन्तर होता है । केवल विशेषता यह है कि अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण कर वर्षपृथक्त्व रहकर पश्चात् परिहारशुद्धिसंयमको प्राप्त कर पुनः मिथ्यात्वमें जाकर अन्तर उत्पन्न कराना चाहिये, क्योंकि संयम ग्रहण करनेके पश्चात् वर्षपृथक्त्वके विना परिहारशुद्धिसंयम ग्रहण नहीं किया जा सकता । अन्तरके समाप्तिकालमें भी परिहारशुद्धिसंयमको ग्रहण कराकर पश्चात् सामायिक व छेदोपस्थान, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात संयमोंमें लेजाकर अबन्धकभाव उत्पन्न कराना चाहिये ।

इसी प्रकार संयतासंयत जीवका भी अन्तर उत्पन्न करना चाहिये । केवल विशेषता यह है कि अन्तमें तीनों करण करके उपशमसम्यक्त्व व संयमासंयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही अन्तरकाल समाप्त कर अन्तर्मुहूर्त रहकर संयम ग्रहण कर अबन्धकभावको प्राप्त हुआ, ऐसा कहना चाहिये ।

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतों और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? ॥ १११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ अ-आप्रत्योः ' गेण्हाविय ' इति पाठः ।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११२ ॥

कुदो ? चडमाणस्स सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स उवसंतकसाओ होदूण जहाक्खादेणंतरिय पुणो सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदे पदिदस्स तदुवलंभादो । जहाक्खादसंजमादो हेट्ठा पदिय जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो कमेणुवरि चढिय उवसंतकसाओ होदूण जहाक्खादसंजमं गदस्स जहण्णंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ११३ ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइट्ठिस्स तिण्णि वि करणाणि कादूण अद्धपोग्गलपरियट्टस्स आदिमसमए पढमसम्मत्तं संजमं च जुगवं घेत्तूण अंतोमुहुत्तेण सव्वजहण्णेण उवसमसेडिं चडिय सुहुमसांपराइओ होदूण तत्थ जहण्णंतोमुहुत्तमच्छिय उवसंतकसाओ होदूण सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो पुणो होदूण तस्स पढमसमए जहाक्खादसुद्धिसंजमंतरस्सादिं करिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अणियट्टिगुणट्ठाणे णिवदिय सामाइय-छेदोवट्ठावणं पदिदपढमसमए सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमंतरस्स आदिं करिय कमेण हेट्ठा ओयरिय

उपशमकी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात शुद्धिसंयतोंका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है ॥ ११२ ॥

क्योंकि, श्रेणी चढ़ते हुए सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतके उपशांतकषाय होकर यथाख्यातसंयमके द्वारा सूक्ष्मसाम्परायसंयमका अन्तर कर पुनः गिरकर सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयममें आनेपर अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तरकाल पाया जाता है । यथाख्यात संयमसे नीचे गिरकर कमसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र रहकर पुनः क्रमसे ऊपर चढ़कर उपशान्तकषाय होकर यथाख्यातसंयम ग्रहण करनेवाले जीवके यथाख्यातसंयमका अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात शुद्धिसंयतोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ११३ ॥

क्योंकि, कोई अनादिमिथ्यादृष्टि जीव तीनों ही करण करके अर्धपुद्गलपरिवर्तके आदि समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण कर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त कालसे उपशमश्रेणीको चढ़कर सूक्ष्मसाम्परायिक हुआ, और वहां कमसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र रहकर उपशान्तकषाय होगया । पश्चात् पुनः सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत होकर उसके प्रथम समयमें ही यथाख्यातशुद्धिसंयमका अन्तर प्रारंभ किया । पुनः अन्तर्मुहूर्त कालसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें गिरकर सामायिक व छेदोपस्थापन शुद्धिसंयमोंमें गिरनेके प्रथम समयमें सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयमका अन्तर प्रारंभ किया । फिर क्रमसे नीचे उतरकर उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण भ्रमण कर अन्तमें

उवड्ढपोग्गलपरियट्टं भमिय अवसाणे सम्मत्तं संजमं च घेत्तूणुवसमसेडिं चडिय सुहुमसांपराइओ उवसंतकसाओ च होदूण सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो पुणो होदूण कमेण अंतराणि समाणिय हेट्ठा ओयरिय पुणो खवगसेडिं चडिय अबंधगत्तं गदस्स उवड्ढपोग्गलपरियट्टंतरस्सुवलंभादो । खवगसेडीए दोण्हमंतराणं परिसमत्ती किण्ण कदा ? ण, उवसामगेहि एत्थ अहियारादो ।

खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ ११४ ॥

कुदो ? खवगाणं पुणो आगमणाभावादो ।

असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११६ ॥

सम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण कर उपशमश्रेणीपर चढ़ा तथा सूक्ष्मसाम्परायिक और उपशान्तकषाय होकर पुनः सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत होकर क्रमसे दोनों अन्तरकालोंको समाप्त कर नीचे उतरकर पुनः क्षपकश्रेणीपर चढ़ा और अबन्धकभावको प्राप्त होगया। ऐसे जीवके सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात शुद्धिसंयमका उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

शंका— क्षपकश्रेणीमें जघन्य और उत्कृष्ट इन दोनों अन्तरोंकी परिसमाप्ति क्यों नहीं की ?

समाधान—नहीं की, क्योंकि यहां तो केवल उपशामकोंका अधिकार है, क्षपकोंका नहीं ।

क्षपककी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायिक और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंका अन्तर नहीं होता, निरन्तर है ॥ ११४ ॥

क्योंकि, क्षपक जीवोंका क्षीणकषाय गुणस्थानसे लौटकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें आनेका अभाव है ।

असंयतोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ११५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंयतोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र है ॥ ११६ ॥

कुदो ? असंजदस्स संजमं घेत्तूण जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो असंजमं गदस्स तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ११७ ॥

कुदो ? सण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तयस्स छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स विस्समिय विसुद्धो होदूण संजमासंजमं घेत्तूणंतरिय देसूणपुव्वकोडिं जीविय कालं काऊण देवेसुप्पण्णपढमसमए समाणिदंतरस्स अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडिमेत्तंतरुवलंभादो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११९ ॥

कुदो ? जो जीवो चक्खुदंसणी एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदियलद्धिअपज्जत्तएसु खुद्दाभवग्गहणमेत्ताउट्ठिदिएसु अण्णदरेसु अचक्खुदंसणी होदूणुप्पज्जिय खुद्दाभवग्गहणमंतरिय पुणो चउरिंदियादिसु चक्खुदंसणी होदूणुप्पण्णो तस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभादो ।

क्योंकि, असंयत जीवके संयम ग्रहण कर कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर पुनः असंयममें जानेपर अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर प्राप्त होता है ।

असंयतोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि होता है ॥ ११७ ॥

क्योंकि, किसी संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्छिम पर्याप्त जीवने छहों पर्याप्तियोंसे पूर्ण होकर विश्राम ले विशुद्ध हो संयमासंयम ग्रहणकर असंयमका अन्तर प्रारंभ किया और कुछ कम पूर्वकोटि काल जीकर मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें अन्तर समाप्त किया अर्थात् असंयमभाव ग्रहण किया। ऐसे जीवके असंयमका अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटिमात्र अन्तरकाल पाया जाता है। (देखो पु. ४, कालानुगम सूत्र १८)।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ११८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी जीवोंका जघन्य अन्तरकाल क्षुद्रभवग्रहणमात्र होता है ॥ ११९ ॥

क्योंकि, जो चक्षुदर्शनी जीव क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुस्थितिवाले किसी भी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय व त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अचक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है और क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल चक्षुदर्शनका अन्तर कर पुनः चतुरिन्द्रियादिक जीवोंमें चक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है उस जीवके चक्षुदर्शनका क्षुद्रभवग्रहणमात्र अन्तरकाल पाया जाता है ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १२० ॥

कुदो ? चक्खुदंसणीहिंतो णिप्पिडिय अचक्खुदंसणीसु समुप्पज्जिय अंतरिदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टे गमिय पुणो चक्खुदंसणीसुप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

अचक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२१ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १२२ ॥

केवलदंसणिस्स पुणो[1] अचक्खुदंसणुप्पत्तीए अभावादो ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ १२३ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टमिच्चेदेहि दोण्हं भेदाभावादो ।

चक्षुदर्शनी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल होता है ॥ १२० ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनी जीवोंमेंसे निकलकर अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हो अन्तर प्रारम्भ कर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तोंको बिताकर पुनः चक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हुए जीवके चक्षुदर्शनका सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

अचक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अचक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर होते हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शनका अन्तर केवलदर्शन उत्पन्न होनेपर ही हो सकता है; पर एक बार जो जीव केवलदर्शनी हो गया उसके पुनः अचक्षुदर्शनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

अवधिदर्शनी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा अवधिज्ञानी जीवोंके समान है ॥ १२३ ॥

क्योंकि, अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तमात्र और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तप्रमाणमें कोई भेद नहीं है ।

---

१ प्रतिषु ' केवलदंसणिस्स णो ' इति पाठः ।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १२४ ॥

अंतराभावं पडि दोण्हं भेदाभावादो ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ १२६ ॥

कुदो ? किण्हलेस्सियस्स णीललेस्सं, णीललेस्सियस्स काउलेस्सं, काउलेस्सियस्स तेउलेस्सं गंतूण अप्पणो लेस्साए जहण्णकालेणागदस्स अंतोमुहुत्तंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १२७ ॥

कुदो ? पुव्वकोडाउओ मणुस्सो गब्भादिअट्ठवस्साणमब्भंतरे छअंतोमुहुत्तमत्थि त्ति किण्हलेस्साए परिणमिय आदिं करिय पुणो णील-काउ-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सासु

केवलदर्शनी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा केवलज्ञानी जीवोंके समान है ॥ १२४ ॥

क्योंकि, इन दोनोंमें अन्तरका अभाव होता है, और इसकी अपेक्षा दोनोंमें कोई भेद नहीं है ।

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १२५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ १२६ ॥

क्योंकि, कृष्णलेश्यावाले जीवके नीललेश्यामें, नीललेश्यावाले जीवके कापोतलेश्यामें व कापोतलेश्यावाले जीवके तेजोलेश्यामें जाकर अपनी पूर्व लेश्यामें जघन्य कालके द्वारा पुनः वापिस आनेसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है ॥ १२७ ॥

क्योंकि, एक पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य गर्भसे आदि लेकर आठ वर्षके भीतर छह अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर कृष्णलेश्या रूप परिणामको प्राप्त हुआ । इस प्रकार कृष्णलेश्याका प्रारंभ कर पुनः नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओंमें परिपाटी-

१ कृष्ण-नील कपोतलेश्यानामेकश अंतर जघन्येनान्तर्मुहूर्तः, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि साधिकानि। स. सि. ४. २२, १०.

परिवाडीए अंतरिय संजमं घेत्तूण तिसु सुहलेस्सासु देसूणपुव्वकोडिमच्छिय पुणो तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पज्जिय तत्तो आगंतूण मणुस्सेसुप्पज्जिय सुक्क-पम्म-तेउ-काउ-णीललेस्साओ कमेण परिणामिय किण्णलेस्साए परिणामयस्स दसअंतोमुहुत्तूण-अट्ठवस्सेहि ऊणियाए पुव्वकोडियाए सादिरेयाणं तेत्तीसंसागरोवमाणं अंतरत्तेणुवलंभादो। एवं चेव णील काउलेस्साणं पि वत्तव्वं। णवरि अट्ठ-छअंतोमुहुत्तूणट्ठवस्सेहि[1] ऊणियाए पुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीससागरोवमाणि त्ति वत्तव्वं।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२८ ॥

सुगमं।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२९ ॥

क्रमसे जाकर अन्तर करता हुआ, संयम ग्रहण कर तीन शुभ लेश्याओंमें कुछ कम पूर्वकोटि कालप्रमाण रहा और फिर तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। फिर वहांसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शुक्ल, पद्म, तेज, कापोत और नील-लेश्या रूप क्रमसे परिणमित हुआ और अन्तमें कृष्णलेश्यामें आगया। ऐसे जीवके दश अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षसे हीन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण कृष्णलेश्याका अन्तरकाल प्राप्त होता है। इसी प्रकार नीललेश्या और कापोतलेश्याके उत्कृष्ट अन्तर-कालका प्ररूपण करना चाहिये। विशेषता केवल इतनी है कि नीललेश्याका अन्तर कहते समय आठ और कापोत लेश्याका अन्तर कहते समय छह अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षसे हीन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण अन्तरकाल बतलाना चाहिये।

तेजलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्यावाले जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १२८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है ॥ १२९ ॥

१ अ-आप्रत्योः ' -अंतोमुहुत्तेऊण ' इति पाठः।

२ तेजःपद्मशुक्ललेश्यानामेकशः अंतरं जघन्येनांतर्मुहूर्तः, उत्कर्षेणानंतः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः। त. रा. ४, २२, १०. तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्सविरहकालो दु। पोग्गलपरिवट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण॥ गो. जी. ५५३.

कुदो ? तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साहिंतो अविरुद्धमण्णलेस्सं गंतूण जहण्णकालेण पडिणियत्तिय अप्पप्पणो लेस्साणमागदस्स जहण्णंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १३० ॥

कुदो ? अप्पिदलेस्सादो अविरुद्धाणप्पिदलेस्साणं गंतूण अंतरियावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टेसु किण्ण-णील-काउलेस्साहि अदिक्कंतेसु अप्पिदलेस्समागदस्स सुत्तुक्कस्संतरुवलंभादो ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३१ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १३२ ॥

कुदो ? भवियाणमभवियाणं च अण्णोण्णसरूवेण परिणामाभावादो ।

क्योंकि, तेज, पद्म व शुक्ल लेश्यासे अपनी अविरोधी अन्य लेश्यामें जाकर व जघन्य कालसे लौटकर पुनः अपनी अपनी पूर्व लेश्यामें आनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तरकाल पाया जाता है ।

तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल होता है ॥ १३० ॥

क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे अविरुद्ध अविवक्षित लेश्याओंको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ । पुनः आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनोंके कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंके साथ बीतनेपर विवक्षित लेश्याको प्राप्त हुए जीवके उक्त लेश्याओंका सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है ।

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर हैं ॥ १३२ ॥

क्योंकि, भव्य और अभव्य जीवोंका अन्योन्यस्वरूपसे परिणमनका अभाव है, अर्थात् भव्य कभी अभव्य नहीं हो सकता और अभव्य कभी भव्य नहीं हो सकता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेणंतोमुहुत्तं ॥ १३४ ॥

कुदो ? सम्माइट्ठिस्स मिच्छत्तं गंतूण जहण्णेण कालेण पुणो सम्मत्तमागदस्स जहण्णंतरुवलंभादो । एवं वेदगसम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं, विसेसाभावादो । एवं उवसमसम्माइट्ठिस्स वि । णवरि उवसमसेडीदो ओदिण्णस्स आदिं करिय वेदगसम्मत्तेण जहण्णद्धमंतरिय पुणो उवसमसेडिं समारुहणट्ठं दंसणमोहणीयमुवसमिय उवसमसम्मत्तं गयस्स जहण्णमंतरं वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १३५ ॥

कुदो ? अणादियमिच्छादिट्ठिस्स अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए सम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूणुवड्ढपोग्गलपरियट्टमंतरिय अवसाणे सम्मत्तं संजमं च

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्तमात्र है ॥ १३४ ॥

क्योंकि, सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जघन्य कालसे पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर उक्त जघन्य अन्तर प्राप्त होता है । इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये, क्योंकि, उसमें विशेषताका अभाव है । इसी प्रकार ही उपशमसम्यग्दृष्टिका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये । परन्तु विशेषता यह है कि उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवको आदि करके वेदकसम्यक्त्वसे जघन्य काल तक अन्तर करके पुनः उपशमश्रेणीपर चढ़नेके लिये दर्शनमोहनीयको उपशान्त करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए जीवके वह जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १३५ ॥

क्योंकि, अनादिमिथ्यादृष्टिके अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको ग्रहण कर और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर उपार्ध अर्थात् कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरको प्राप्त हो अन्तमें सम्यक्त्व एवं संयमको

जुगवं घेत्तूणंतरं समाणिय अंतोमुहुत्तेण अबंधगत्तं गदस्स उवड्डपोग्गलपरियट्टंतरुवलंभादो। एवं वेदगसम्माइट्ठिस्स वि वत्तव्वं। णवरि अणादियमिच्छादिट्ठी उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वेदगसम्मत्तं घेत्तूण तत्थ वि अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो मिच्छत्तेण अंतरिदो त्ति वत्तव्वं। अवसाणे वि उवसमसम्मत्तादो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए अंतरं समाणदेव्वं। एवमुवसमसम्माइट्ठिस्स वि वत्तव्वं, सामण्णसम्माइट्ठीहिंतो भेदाभावादो। एवं सम्मामिच्छाइट्ठिस्स वि। णवरि उवसमसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छत्तं णेदूण मिच्छत्तं गमिय अंतरावेदव्वो। अवसाणे वि उवसमसम्मत्तादो सम्मामिच्छत्तंगदपढमसमए अंतरं समाणिय अंतोमुहुत्तमच्छिय अबंधभावं णेयव्वो।

खइयसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३६ ॥

सुगमं।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १३७ ॥

खइयसम्माइट्ठीणं सम्मत्तंतरगमणाभावादो।

सासणसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३८ ॥

एक साथ ग्रहण कर अन्तरको समाप्त करते हुए अन्तर्मुहूर्तसे अबन्धकत्वको प्राप्त होने पर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र अन्तर प्राप्त होता है। इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टिका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये। विशेष इतना है कि अनादिमिथ्यादृष्टि उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः वेदकसम्यक्त्वको ग्रहणकर और वहां भी अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः मिथ्यात्वसे अन्तरित होता है, इस प्रकार कहना चाहिये। अन्तमें भी उपशमसम्यक्त्वसे वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अन्तरको समाप्त करना चाहिये। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टिका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये, क्योंकि, सामान्य सम्यग्दृष्टियोंसे उसके कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये। विशेष इतना है कि उपशमसम्यग्दृष्टिको सम्यग्मिथ्यात्वमें लेजाकर पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त कराकर अन्तर कराना चाहिये। अन्तमें भी उपशमसम्यक्त्वसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अन्तरको समाप्त कर और अन्तर्मुहूर्त रहकर अबन्धकताको प्राप्त कराना चाहिये।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर हैं ॥ १३७ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि अन्य सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं होते।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३९ ॥

कुदो ? पढमसम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय सासणगुणं गंतूणादिं करिय मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सव्वजहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुव्वेलणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पढमसम्मत्तपाओग्गसागरोवमपुधत्तमेत्तट्ठिदिसंतकम्मं ठविय तिण्णि वि करणाणि काऊण पुणो पढमसम्मत्तं घेत्तूण छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए सासणं गदस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तंतरुवलंभादो । उवसमसेडीदो ओयरिय सासणं गंतूण अंतोमुहुत्तेण पुणो वि उवसमसेडिं चडिय ओदरिदूण सासणं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तमंतरं उवलब्भदे, एदमेत्थ किण्ण परूविदं ? ण च उवसमसेडीदो ओदिण्णउवसमसम्माइट्ठिणो सासणं (ण) गच्छंति त्ति णियमो अत्थि, 'आसाणं पि गच्छेज्ज' इदि कसायपाहुडे चुण्णिसुत्तदंसणादो । एत्थ परिहारो उच्चदे– उवसमसेडीदो ओदिण्णउवसमसम्माइट्ठी दोवारमेक्को ण सासणगुणं पडिवज्जदि त्ति । तम्हि भवे सासणं

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर जघन्यसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ १३९ ॥

क्योंकि, प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहणकर और अन्तर्मुहूर्त रहकर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो आदि करके, पुनः मिथ्यात्वमें जाकर अन्तरको प्राप्त हो सर्वजघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उद्वेलनकालसे सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके प्रथमसम्यक्त्वके योग्य सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थितिसत्वको स्थापित कर तीनों ही करणोंको करके पुनः प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहणकर उपशमसम्यक्त्वकालमें छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनको प्राप्त हुए जीवके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जघन्य अन्तर प्राप्त होता है ।

शंका—उपशमश्रेणीसे उतरकर सासादनको प्राप्त हो अन्तर्मुहूर्तसे फिर भी उपशमश्रेणीपर चढ़कर व उतरकर सासादनको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर प्राप्त होता है, उसका यहां निरूपण क्यों नहीं किया? उपशमश्रेणीसे उतरे हुए उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनको नहीं प्राप्त होते ऐसा कोई नियम भी नहीं है, क्योंकि, 'सासादनको भी प्राप्त होना है' इस प्रकार कषायप्राभृतमें चूर्णिसूत्र देखा जाता है ।

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार कहते हैं— उपशमश्रेणीसे उतरा हुआ उपशमसम्यग्दृष्टि एक ही जीव दो बार सासादनगुणस्थानको प्राप्त नहीं होता । उसी

पडिवज्जिय उवसमसेडिमारुहिय तत्तो ओदिण्णो वि ण सासणं पडिवज्जदि त्ति अहि-प्पाओ एदस्स सुत्तस्स । तेणंतोमुहुत्तमेत्तं जहण्णंतरं णोवलब्भदे ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १४० ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइट्ठिस्स अद्धपोग्गलपरियट्टादिमसमए गहिदसम्मत्तस्स सासणं गंतूण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं भमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे पढमसम्मत्तं घेत्तूण एगसमयं सासणो होदूण अंतरं समाणिय पुणो मिच्छत्तं सम्मत्तं च कमेण गंतूण अबंधभावं गदस्स उवड्ढपोग्गलपरियट्टंतरुवलंभादो ।

मिच्छाइट्ठी मदिअण्णाणिभंगो ॥ १४१ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बेछावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि, इच्चेदेहि जहण्णुक्कस्संतरेहि दोण्हमभेदादो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४२ ॥

सुगमं ।

भवमें सासादनको प्राप्त कर उपशमश्रेणीपर आरूढ़ हो उससे उतरा हुआ भी जीव सासादनको प्राप्त नहीं होता, यह इस सूत्रका अभिप्राय है । इस कारण अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर प्राप्त नहीं होता ।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १४० ॥

क्योंकि, अनादिमिथ्यादृष्टिके अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको ग्रहणकर सासादनको प्राप्त हो कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण भ्रमणकर संसारके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर प्रथमसम्यक्त्वको ग्रहणकर एक समय सासादन रहकर अन्तरको समाप्त कर पुनः क्रमसे मिथ्यात्व और सम्यक्त्वको प्राप्त हो अबन्धकभावको प्राप्त होनेपर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है ।

मिथ्यादृष्टिका अन्तर मति-अज्ञानीके समान है ॥ १४१ ॥

क्योंकि, जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम दो छयासठ सागरोपम इन जघन्य व उत्कृष्ट अन्तरोंसे दोनोंके कोई भेद नहीं है ।

संज्ञिमार्गणाके अनुसार संज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १४४ ॥

सण्णीहिंतो असण्णीणं गंतूण असण्णिट्ठिदिमच्छिय सण्णीसुप्पण्णस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टंतरुवलंभादो ।

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४६ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १४७ ॥

असण्णीहिंतो सण्णीणं गंतूण सण्णिट्ठिदिं भमिय[1] असण्णीसुप्पण्णस्स सागरोवमसदपुधत्तमेत्तंतरुवलंभादो ।

संज्ञी जीवोंका अन्तर जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

संज्ञी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्येय पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है ॥ १४४ ॥

क्योंकि, संज्ञियोंसे असंज्ञियोंमें जाकर और वहां असंज्ञीकी स्थितिप्रमाण रहकर संज्ञियोंमें उत्पन्न हुए जीवके आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण है ॥ १४७ ॥

क्योंकि, असंज्ञियोंसे संज्ञियोंमें जाकर और वहां संज्ञीकी स्थितिप्रमाण भ्रमण कर असंज्ञियोंमें उत्पन्न हुए जीवके सागरोपमशतपृथक्त्वमात्र अन्तर प्राप्त होता है ।

[1] अ-काप्रत्योः ' भविय ' इति पाठः ।

आहाराणुवादेण आहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ १४९ ॥

एगविग्गहं काऊण गहिदसरीरम्मि तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तिण्णिसमयं ॥ १५० ॥

तिण्णि विग्गहे काऊण गहिदसरीरम्मि तिसमयंतरुवलंभादो ।

अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ १५१ ॥

जहण्णेण तिसमऊणखुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ, इच्चेदेहि जहण्णुक्कस्संतरेहि दोण्हमभेदा ।

एवमेगजीवेण अंतरं समत्तं ।

आहारमार्गणानुसार आहारक जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समयमात्र होता है ॥ १४९ ॥

क्योंकि, एक विग्रह करके शरीरके ग्रहण करलेनेपर उक्त एक समयमात्र अन्तर प्राप्त होता है ।

आहारक जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर तीन समयप्रमाण है ॥ १५० ॥

क्योंकि, तीन विग्रह करके शरीरके ग्रहण करलेनेपर तीन समय अन्तर प्राप्त होता है ।

अनाहारक जीवोंका अन्तर कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ १५१ ॥

क्योंकि, जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कर्षसे अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी, इन जघन्य व उत्कृष्ट अन्तरोंसे दोनोंके कोई भेद नहीं है ।

इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा अन्तर समाप्त हुआ ।

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया णियमा अत्थि ॥ १ ॥

विचयो विचारणा । केसिं ? अत्थि णत्थि त्ति भंगाणं । कुदोवगम्मदे ? 'णेरइया णियमा अत्थि ' त्ति सुत्तणिद्देसादो । ण बंधगाहियारे एदस्संतब्भावो, सव्वद्धं णियमेण पुणो अणियमेण च मग्गणाणं मग्गणविसेसाणं च अत्थित्तपरूवणाए एदिस्से सामण्णत्थित्तपरूवणम्मि अंतब्भावविरोहादो ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ २ ॥

कुदो ? णियमा अत्थित्तणेण भेदाभावादो । सामण्णपरूवणादो चेव विसेसपरूवणाए सिद्धाए किमट्ठं पुणो परूवणा कीरदे ? ण, सत्तण्हं पुढवीणं णियमेणत्थित्ताभावे वि सामण्णेण णियमा अत्थित्तस्स विरोहाभावादो ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगममे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी जीव नियमसे हैं ॥ १ ॥

' विचय ' शब्दका अर्थ यहां अस्ति नास्ति भंगोंका विचार करना है ।

शंका—यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान—यह ' नारकी जीव नियमसे हैं ' इस सूत्रके निर्देशसे जाना जाता है ।

इसका बन्धकाधिकारमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि, यहां जो सर्व काल नियमसे व अनियमसे मार्गणा एवं मार्गणाविशेषोंकी अस्तित्वप्ररूपणा है उसका सामान्य अस्तित्वप्ररूपणामें अन्तर्भाव होनेका विरोध है ।

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव नियमसे हैं ॥ २ ॥

क्योंकि, सातों पृथिवियोंमें नारकियोंके नियमित अस्तित्वसे कोई भेद नहीं हैं ।

शंका—सामान्यप्ररूपणासे ही विशेषप्ररूपणाके सिद्ध होनेपर पुनः प्ररूपणा किसलिये की जाती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि सात पृथिवियोंके नियमसे अस्तित्वके अभावमें भी सामान्यरूपसे नियमतः आस्तित्वके होनेमें कोई विरोध नहीं है । अर्थात् यदि कदाचित् किसी पृथिवीविशेषमें सदैव नियमसे नारकी जीवोंका अस्तित्व न भी होता तो भी सामान्यसे अन्य पृथिवियोंकी अपेक्षा अस्तित्वका विधान हो सकता था ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता[1] पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसणीओ णियमा अत्थि ॥ ३ ॥

कुदो ? तीदाणागद-वट्टमाणकालेसु एदासिं मग्गणाणं मग्गणविसेसाणं च गंगापवाहस्सेव वोच्छेदाभावादो ।

मणुसअपज्जत्ता सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ ४ ॥

मणुसअपज्जत्ताणं कयावि अत्थित्तं होदि कयावि ण होदि । कुदो ? सहावदो । को सहावो णाम ? अब्भंतरभावो[2] ।

देवगदीए देवा णियमा अत्थि ॥ ५ ॥

कुदो ? तिसु वि कालेसु देवाणं विरहाभावादो ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु ॥ ६ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी नियमसे हैं ॥ ३ ॥

क्योंकि अतीत, अनागत व वर्तमान कालोंमें इन मार्गणाओं व मार्गणाविशेषोंका गंगाप्रवाहके समान व्युच्छेद नहीं होता ।

मनुष्य अपर्याप्त कदाचित् हैं भी, और कदाचित् नहीं भी हैं ॥ ४ ॥

क्योंकि, मनुष्य अपर्याप्तोंका कदाचित् अस्तित्व होता है और कदाचित् नहीं होता, क्योंकि ऐसा स्वभाव ही है ।

शंका— स्वभाव किसे कहते हैं ?

समाधान— आभ्यन्तरभावको स्वभाव कहते हैं । अर्थात् वस्तु या वस्तुस्थितिकी उस व्यवस्थाको उसका स्वभाव कहते हैं जो उसका भीतरी गुण है और बाह्य परिस्थितिपर अवलम्बित नहीं है ।

देवगतिमें देव नियमसे हैं ॥ ५ ॥

क्योंकि, तीनों ही कालोंमें देवोंके विरहका अभाव है ।

इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासियों तक देव नियमसे हैं ॥ ६ ॥

---

१ प्रतिषु '-पज्जत्ताणं ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' अच्चंताभावो ' इति पाठः ।

कुदो ? सव्वकालेसु अत्थित्तणेण तेहिमेदेसिं भेदाभावादो ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ॥ ७ ॥

कुदो ? एदेसिं पवाहस्स तिसु वि कालेसु वोच्छेदाभावादो ।

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ॥ ८ ॥

सुगमं ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ॥ ९ ॥

एदासिं मग्गणाणं मग्गणविसेसाणं च पवाहस्स वोच्छेदाभावादो ।

क्योंकि, सर्व कालोंमें अस्तित्वकी अपेक्षा इनका सामान्य देवोंसे कोई भेद नहीं है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त जीव नियमसे हैं ॥ ७ ॥

क्योंकि, इनके प्रवाहका तीनों ही कालोंमें व्युच्छेद नहीं होता ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त नियमसे हैं ॥ ८ ॥

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक निगोदजीव बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त, तथा बादर वनस्पतिकायिक-प्रत्येकशरीर पर्याप्त अपर्याप्त, एवं त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त अपर्याप्त जीव नियमसे हैं ॥ ९ ॥

क्योंकि, इन मार्गणाओं व मार्गणाविशेषोंके प्रवाहका व्युच्छेद नहीं होता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी णियमा अत्थि ॥ १० ॥

सुगमं ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ ११ ॥

कुदो ? सांतरसहावादो । ण च सहावो परपज्जणुजोगारुहो, अइप्पसंगादो ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा णियमा अत्थि ॥ १२ ॥

गंगापवाहस्सेव विच्छेदाभावादो ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई णियमा अत्थि ॥ १३ ॥

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कार्मणकाययोगी नियमसे हैं ॥ १० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी कदाचित् हैं भी, कदाचित् नहीं भी हैं ॥ ११ ॥

क्योंकि, इनका सान्तर स्वभाव है। और स्वभाव दूसरोंके प्रश्नके योग्य नहीं होता, क्योंकि, ऐसा होनेसे अतिप्रसंग दोष आता है ।

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीव नियमसे हैं ॥ १२ ॥

क्योंकि, गंगाप्रवाहके समान इनका विच्छेद नहीं होता ।

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीव नियमसे हैं ॥ १३ ॥

सुगमं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणी केवलणाणी णियमा अत्थि ॥ १४ ॥

णाणिणो इदि बहुवयणणिद्देसो किण्ण कओ ? ण, इकारांतपुरिस-णवुंसयलिंग-सद्देहिंतो उप्पण्णपढमाबहुवयणस्स विहासाए लोवुवलंभादो[1] । जहा— पव्वए अग्गी जलंति, मत्ता हत्थी एंति त्ति । सेसं सुगमं ।

संजमाणुवादेण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा णियमा अत्थि ॥ १५ ॥

सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

ज्ञानमार्गणानुसार मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी नियमसे हैं ॥ १४ ॥

शंका—सूत्रमें ' णाणिणो ' ऐसा बहुवचननिर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इकारान्त पुल्लिंग और नपुंसकलिंग शब्दोंसे उत्पन्न प्रथमाबहुवचनका विकल्पसे लोप पाया जाता है । जैसे— पव्वए अग्गी जलंति (पर्वतपर अग्नि जलती हैं) , मत्ता हत्थी एंति (मत्त हाथी आते हैं) । यहां 'अग्गी' और 'हत्थी' पदोंमें प्रथमाबहुवचनका लोप होगया है । शेष सूत्र सुगम है ।

संयममार्गणानुसार सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीव नियमसे हैं ॥ १५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ अप्रतौ ' विहासालोगोवलंभादो '; आ-काप्रत्योः ' विहासालोगोवुवलंभादो '; मप्रतौ ' विहासाए लोवुवलंभादो ' इति पाठः ।

सुहुमसांपराइयसंजदा सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ १६ ॥

एदं पि सुगमं ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवल-दंसणी णियमा अत्थि ॥ १७ ॥

एदं पि सुगमं ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउ-लेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया णियमा अत्थि ॥ १८ ॥

सुगमं ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया णियमा अत्थि ॥ १९ ॥

सिद्धिपुरक्कदा भविया णाम, तव्विवरीया अभविया णाम । सिद्धा पुण ण भविया ण च अभविया, तव्विवरीयसरूवत्तादो । तहा ते वि णियमा अत्थि त्ति किण्ण

....

सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत कदाचित् हैं भी और कदाचित् नहीं भी हैं ॥ १६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी नियमसे हैं ॥ १७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजो-लेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले नियमसे हैं ॥ १८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक नियमसे हैं ॥१९॥

सिद्धिपुरस्कृत अर्थात् मुक्तिगामी जीवोंको भव्य और इनसे विपरीत जीवोंको अभव्य कहते हैं । सिद्ध जीव न तो भव्य ही हैं और न अभव्य भी हैं, क्योंकि, उनका स्वरूप भव्य और अभव्य दोनोंसे विपरीत है ।

शंका—भव्य व अभव्योंके समान 'सिद्ध भी नियमसे हैं' इस प्रकार क्यों

वुत्तं ? ण, बंधयाहियारे सिद्धाणमबंधयाणं संभवाभावादो । सेसं सुगमं ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी वेदगसम्माइट्ठी (खइयसम्माइट्ठी) मिच्छाइट्ठी णियमा अत्थि ॥ २० ॥

सुगमं ।

उवसमसम्माइट्ठी (सासण-) सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सिया अत्थि, सिया णत्थि ॥ २१ ॥

कुदो ? एदेसिं तिण्हं मग्गणावयणाणं सांतरसरूवत्तदंसणादो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी णियमा अत्थि ॥ २२ ॥

सुगमं ।

आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा णियमा अत्थि ॥ २३ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बंधकाधिकारमें अबंधक सिद्धोंकी संभावनाका अभाव है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि नियमसे हैं ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि कदाचित् हैं भी और कदाचित् नहीं भी ॥ २१ ॥

क्योंकि, इन तीन मार्गणाप्रभेदोंका सान्तर स्वरूप देखा जाता है ।

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी और असंज्ञी जीव नियमसे हैं ॥ २२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारमार्गणानुसार आहारक और अनाहारक जीव नियमसे हैं ॥ २३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

दव्वपमाणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया दव्व-पमाणेण केवडिया ? ॥ १ ॥

एदाओ मग्गणाओ सव्वकालमत्थि एदाओ च सव्वकालं णत्थि त्ति णाणाजीव-भंगविचयाणुगमेण जाणाविय संपहि तासु मग्गणासु ट्ठिदजीवाणं पमाणपरूवणट्ठं दव्वाणिओगद्दारमागदं । णिरयगदिवयणेण सेसगदीणं पडिसेहो कओ । णेरइया त्ति वयणेण णिरयगइसंबद्धणेरइयवदिरित्तदव्वादीणं पडिसेहो कओ । दव्वपमाणेण त्ति वयणेण खेत्तपमाणादीणं पडिसेहो कओ । केवडिया इदि आसंका आइरियस्स ।

असंखेज्जा ॥ २ ॥

संखेज्जाणंताणं पडिसेहट्ठमसंखेज्जवयणं । एदं पि तिविहं असंखेज्जं । तत्थ एदम्हि असंखेज्जे णेरइयरासी ठिदो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि[1] अवहिरंति कालेण ॥ ३ ॥

द्रव्यप्रमाणानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिकी अपेक्षा नारकी जीव द्रव्य-प्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १ ॥

'ये मार्गणायें सर्वकाल हैं और ये मार्गणायें सर्वकाल नहीं हैं' इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे जतलाकर अब उन मार्गणाओंमें स्थित जीवोंके प्रमाणके निरूपणार्थ द्रव्यानुयोगद्वार प्राप्त होता है । नरकगतिके वचनसे शेष गतियोंका प्रतिषेध किया है । 'नारकी' इस वचनसे नरकगतिसे सम्बद्ध नारकियोंके अतिरिक्त अन्य द्रव्यादिकोंका प्रतिषेध किया है । 'द्रव्यप्रमाणसे' इस प्रकारके वचनसे क्षेत्रप्रमाणादिकोंका प्रतिषेध किया है । 'कितने हैं' इस प्रकार यह आचार्यकी आशंका है ।

नारकी जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ २ ॥

संख्यात व अनन्तके प्रतिषेधके लिये 'असंख्यात' वचन है । यह असंख्यात भी तीन प्रकार है । उनमेंसे इस असंख्यातमें नारकराशि स्थित है, इस बातके ज्ञापनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं —

कालकी अपेक्षा नारकी जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणि-योंसे अपहृत होते हैं ॥ ३ ॥

१ अ-काप्रत्योः 'ओसप्पिणि उस्सप्पिणी' इति पाठः ।

असंखेज्जासंखेज्जाहि त्ति वयणेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो, असंखेज्जासंखेज्जस्सेव उवलद्धी जादो, 'असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसाप्पिणि-उस्सप्पिणीहि समयभावसलागभूदाहि णेरइया अवहिरंति' त्ति वयणादो। तं पि असंखेज्जासंखेज्जयं जहण्णमुक्कस्सं तव्वदिरित्तमिदि तिविहं। तत्थ एदम्हि असंखेज्जासंखेज्जे णेरइया अवट्ठिदा त्ति जाणावणट्ठं खेत्तपरूवणमागदं—

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ ॥ ४ ॥

'असंखेज्जाओ सेडीओ' त्ति सुत्तेण जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जपडिसेहो कदो, तत्थ असंखेज्जाणं सेडीणमभावादो। उक्कस्स-मज्झिमअसंखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो ण होदि, तत्थ असंखेज्जाणं सेडीणं संभवादो। एदेसु दोसु असंखेज्जासंखेज्जेसु णेरइया कम्हि अवट्ठिदा त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमागदं—

पदरस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५ ॥

एदेण सुत्तेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, पदरस्सासंखेज्जदिभागस्स उक्कस्सासंखेज्जासंखेज्जत्तविरोहादो। तं पि मज्झिममसंखेज्जासंखेज्जयमणेय-

'असंख्यातासंख्यात' इस वचनसे परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध किया जिससे केवल असंख्यातासंख्यातकी ही प्राप्ति हुई, क्योंकि, 'समयभावशलाकाभूत असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे नारकी जीव अपहृत होते हैं' ऐसा वचन है। वह असंख्यातासंख्यात भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है। उनमेंसे इस असंख्यातासंख्यातमें नारकी जीव अवस्थित हैं इसके ज्ञापनार्थ क्षेत्रप्ररूपणा प्राप्त होती है।

क्षेत्रकी अपेक्षा नारकी जीव असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण हैं ॥ ४ ॥

'असंख्यात जगश्रेणियां' इस प्रकारके सूत्रसे जघन्य असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, जघन्य असंख्यातासंख्यातमें असंख्यात जगश्रेणियोंका अभाव है। परन्तु इससे उत्कृष्ट और मध्यम असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध नहीं होता, क्योंकि, उनमें असंख्यात जगश्रेणियां संभव हैं। अतः इन दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे नारकी जीव कौनसे असंख्यातासंख्यातमें अवस्थित हैं, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र प्राप्त होता है—

उक्त नारकी जीव जगप्रतरके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण हैं ॥ ५ ॥

इस सूत्रसे उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, जगप्रतरके असंख्यातवें भागका उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातत्वसे विरोध है। वह मध्यम असं-

पयारमिदि तण्णिण्णयट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलवग्गमूलं बिदियवग्गमूलगुणिदेण ॥ ६ ॥

सूचिअंगुलपढमवग्गमूले सूचिअंगुलस्स बिदियवग्गमूलेण गुणिदे तासिं सेडीणं विक्खंभसूची होदि । गुणिदेणेत्ति णेदं तदियाए एगवयणं, किंतु सत्तमीए एगवयणेण पढमाए एगवयणेण[1] वा होदव्वमण्णहा सुत्तट्ठसंबंधाभावादो। एत्थ सामण्णणेरइयाणं वुत्तविक्खंभसूची चेव णेरइयमिच्छाइट्ठीणं जीवट्ठाणे परूविदा, कधं तेणेदं ण विरुज्झदे ? ण विरुज्झदे, आलावभेदाभावादो । अत्थदो पुण भेदो अत्थि चेव, सामण्ण-विसेसविक्खंभसूचीणं समाणत्तविरोहादो । मिच्छाइट्ठिविक्खंभसूची संपुण्णघणंगुलबिदियवग्गमूलमेत्ता किण्ण घेप्पदे ? ण, सामण्णणेरइयाणं परूविदघणंगुलबिदियवग्गमूलविक्खंभसूचिणा एदेण खुद्दाबंधसुत्तेण सह विरोहादो । ण तं पि सुत्तमिदि पच्चवट्ठादुं जुत्तं, खुद्दाबंधुव-

ख्याताऽसंख्यात भी अनेक प्रकार है, अतः उसके निर्णयार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

उन जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित उसीके प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ॥ ६ ॥

सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित करनेपर उन जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची होती है । यहां सूत्रमें ' गुणिदेण ' यह पद तृतीयाका एकवचन नहीं है, किन्तु सप्तमीका एक वचन या प्रथमाका एक वचन होना चाहिये; अन्यथा सूत्रके अर्थका सम्बन्ध नहीं बैठता ।

शंका—यहां जो सामान्य नारकियोंकी विष्कम्भसूची कही गई है वही जीवस्थानमें नारकी मिथ्यादृष्टियोंकी कही गई है, उसके साथ यह विरोधको कैसे न प्राप्त होगा ?

समाधान—जीवस्थानसे इस कथनका कोई विरोध न होगा, क्योंकि यहां आलापभेदका अभाव है। परमार्थसे तो भेद है ही, क्योंकि, सामान्य व विशेष विष्कम्भसूचियोंमें समानताका विरोध है ।

शंका—मिथ्यादृष्टियोंकी विष्कम्भसूची सम्पूर्ण घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलप्रमाण क्यों नहीं ग्रहण करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वैसा माननेपर उसका सामान्य नारकियोंकी घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र विष्कम्भसूचीको प्ररूपित करनेवाले इस क्षुद्रबन्धसूत्रके साथ विरोध होगा । वह भी तो सूत्र है इस प्रकार विरोध उत्पन्न करना भी उचित नहीं है,

---

१ प्रतिषु ' पढमाए वयणेण ' इति पाठः ।

संघारस्स तस्स एदम्हादो पहाणत्ताभावादो । तम्हा एत्थतणविक्खंभसूची संपुण्णघणंगुल-बिदियवग्गमूलमेत्ता, मिच्छाइट्ठिविक्खंभसूची पुण किंचूणघणंगुलबिदियवग्गमूलमेत्ता त्ति घेत्तव्वं । एत्थ विक्खंभसूची-अवहारकालदव्वाणं खंडिद-भाजिद-विरलिद-अवहिद-पमाण-कारण-णिरुत्ति-वियप्पेहि परूवणा कायव्वा ।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ७ ॥

सामण्णणेरइयाणं पमाणं कधं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं होदि ? ण, दोण्हमालावाणं भेदाभावादो । अत्थदो पुण अत्थि भेदो, अण्णहा छण्णं पुढवीणं णेरइयाणमभावप्पसंगादो । तम्हा पुव्विल्लविक्खंभसूची एगरूवस्स असंखेज्जदिभागेणूणा पढमपुढविणेरइयाणं विक्खंभसूची होदि । सेसं जाणिदूण वत्तव्वं ।

बिदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ८ ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्जाणंतसंखाणमवेक्खदे । एत्थ तिसु वि संखासु

....

क्योंकि, क्षुद्रबन्धके उपसंहारभूत उस सूत्रके इस सूत्रकी अपेक्षा प्रधानताका अभाव है । इसलिये यहांकी विष्कम्भसूची सम्पूर्ण घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र और मिथ्यादृष्टियोंकी विष्कम्भसूची कुछ कम घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। यहांपर विष्कम्भसूची व अवहारकाल द्रव्योंका खण्डित, भाजित, विरलित, अपहृत, प्रमाण, कारण, निरुक्ति और विकल्प, इनके द्वारा प्ररूपण करना चाहिये । (देखिये जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, सूत्र १७ की टीका) ।

सामान्य नारकियोंके समान ही प्रथम पृथिवीके नारकियोंका द्रव्य-प्रमाण है ॥ ७ ॥

शंका—सामान्य नारकियोंका प्रमाण प्रथम पृथिवीके नारकियोंका कैसे हो सकता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दोनों आलापोंमें कोई भेद नहीं है । परन्तु परमार्थसे भेद है ही, अन्यथा छह पृथिवियोंके नारकियोंके अभावका प्रसंग होगा । इस कारण पूर्व विष्कम्भसूची एक रूपके असंख्यातवें भागसे हीन होकर प्रथम पृथिवीके नारकियोंकी विष्कम्भसूची होती है । शेष जानकर कहना चाहिये ।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकी द्रव्य-प्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ८ ॥

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात और अनन्त संख्याकी अपेक्षा रखता है ।

एदीए संखाए बिदियादिछप्पुढविणेरइया अवट्ठिदा त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि। अधवा, बिदियादिछप्पुढविणेरइया णाणंता, ओघणेरइयाणमणंतसंखाभावादो। तदो दोण्णं संखाणं मज्झे एदीए संखाए छप्पुढविणेरइया अवट्ठिदा त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमागदं–

असंखेज्जा ॥ ९ ॥

असंखेज्जवयणेण संखेज्जस्स पडिसेहो कदो। असंखेज्जं पि परित्त-जुत्त-असंखेज्जासंखेज्जभेएण तिविहं। एत्थ एदम्हि असंखेज्जे छप्पुढविदव्वमवट्ठिदमिदि जाणावणट्ठं कालपमाणपरूवणसुत्तमागदं–

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ १० ॥

एदेण असंखेज्जासंखेज्जवयणेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो। एदं पि असंखेज्जासंखेज्जं जहण्णुक्कस्स-तव्वदिरित्तभेएण तिविहं। एत्थ एदम्हि संखाविसेसे छप्पुढविदव्वं होदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरं खेत्तपमाणपरूवणसुत्तमागदं—

इन तीनों ही संख्याओंमेंसे इस संख्यामें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी अवस्थित हैं, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं। अथवा, द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी अनन्त नहीं हैं, क्योंकि, सामान्य नारकियोंके अनन्त संख्याका अभाव है। इसलिये दो संख्याओंके मध्यमें इस संख्यामें छह पृथिवियोंके नारकी अवस्थित हैं, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र प्राप्त होता है—

द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ९ ॥

'असंख्यात' इस वचनसे संख्यातका प्रतिषेध किया गया है। असंख्यात भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है। उनमेंसे इस असंख्यातराशिमें छह पृथिवियोंके द्रव्यका अवस्थान है, इसके ज्ञापनार्थ कालप्रमाणकी प्ररूपणा करनेवाला सूत्र प्राप्त होता है—

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकी कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ १० ॥

इस 'असंख्यातासंख्यात' वचनसे परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है। यह असंख्यातासंख्यात भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है। उनमेंसे इस संख्याविशेषमें छह पृथिवियोंका द्रव्य है, इसके ज्ञापनार्थ अगला क्षेत्रप्रमाणप्ररूपणासूत्र प्राप्त होता है—

खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदिभागो ॥ ११ ॥

एदेण जगसेडीदो उवरिमवियप्पाणं पडिसेहो कदो। अवसेसदोसंखाणं मज्झे एदीए संखाए ट्ठिदमिदि जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

तिस्से सेडीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ ॥१२॥

एदेण सूचिअंगुलादिहेट्ठिमवियप्पाणं पडिसेहो कदो, सूचिअंगुलादिहेट्ठिमसंखाए असंखेज्जजोयणत्ताभावादो। तं पि तव्वदिरित्तअसंखेज्जासंखेज्जमसंखेज्जजोयणकोडिमेत्तं होदूण अणेयवियप्पं। तण्णिण्णयकरणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

पढमादियाणं सेडिवग्गमूलाणं संखेज्जाणमण्णोण्णब्भासो ॥१३॥

सेडिपढमवग्गमूलमादिं कादूण जाव बारसम-दसम-अट्ठम-छट्ठ-तदिय-बिदियवग्गमूलो त्ति पुध पुध गुणगारगुणिज्जमाणं कमेणावट्ठिदछण्हं वग्गपत्तीणमण्णोण्णब्भासे कदे

क्षेत्रकी अपेक्षा द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीके नारकी जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ११ ॥

इस सूत्रके द्वारा जगश्रेणीसे उपरिम विकल्पोंका प्रतिषेध किया गया है। अवशेष दो संख्याओंके मध्यमें इस संख्यामें उक्त द्रव्य स्थित है, इसके ज्ञापनार्थ उत्तरसूत्र कहते हैं—

जगश्रेणीके असंख्यातवें भागकी उस श्रेणीका आयाम असंख्यात योजनकोटि है ॥ १२ ॥

इस सूत्रके द्वारा सूच्यंगुलादि अधस्तन विकल्पोंका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, सूच्यंगुलादिरूप अधस्तन संख्यामें असंख्यात योजनत्वका अभाव है। वह तद्व्यतिरिक्त असंख्यातासंख्यात असंख्यात योजनकोटिप्रमाण होकर अनेक विकल्परूप है। उसका निर्णय करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त असंख्यात कोटि योजनोंका प्रमाण प्रथमादिक संख्यात जगश्रेणीवर्गमूलोंके परस्पर गुणनफल रूप है ॥ १३ ॥

जगश्रेणीके प्रथम वर्गमूलको आदि करके उसके बारहवें, दशवें, आठवें, छठे, तीसरे और दूसरे वर्गमूल तक पृथक् पृथक् गुणकार व गुण्य क्रमसे अवस्थित छह वर्ग-

जहाकमेण बिदिय तदिय-चउत्थ-पंचम छट्ठ-सत्तमपुढविदव्वपमाणं होदि । कधमेत्तियाणं चेव सेडिवग्गमूलाणमण्णोण्णब्भासादो एदिस्से एदिस्से पुढवीए दव्वं होदि त्ति णव्वदे ? ण, आइरियपरंपरागदअविरुद्धोवदेसेण तदवगमादो । उत्तं च—

बारस दस अट्ठेव य मूला छ तिग दुगं च णिरएसु ।
एक्कारस णव सत्त य पण य चउक्कं च देवेसु ॥ १ ॥

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १४ ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्जाणंताणि अवेक्खदे ।

अणंता ॥ १५ ॥

एदेण संखेज्ज-असंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तं च अणंतं परित्त-जुत्त-अणंताणंतभेएण तिवियप्पं[1] । तत्थ एदम्हि अणंते तिरिक्खा ट्ठिदा त्ति जाणावणट्ठमुवरिल्लसुत्तमागदं—

राशियोंका परस्पर गुणा करनेपर यथाक्रमसे द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम पृथिवीके द्रव्यका प्रमाण होता है ।

शंका— इतने ही जगश्रेणीवर्गमूलोंके परस्पर गुणनसे इस इस पृथिवीका द्रव्य होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, आचार्यपरम्परागत अविरुद्ध उपदेशसे उसका ज्ञान प्राप्त है । कहा भी है—

नरकोंमें द्वितीयादि पृथिवियोंका द्रव्यप्रमाण लानेके लिये जगश्रेणीका बारहवां, दशवां, आठवां, छठा, तीसरा और दूसरा वर्गमूल अवहारकाल है । तथा देवोंमें सानत्कुमारादि पांच कल्पयुगलोंका द्रव्यप्रमाण लानेके लिये जगश्रेणीका ग्यारहवां, नौवां, सातवां, पांचवां और चौथा वर्गमूल अवहारकाल है ॥ १ ॥

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १४ ॥

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात और अनन्तकी अपेक्षा रखता है ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १५ ॥

इस सूत्रसे संख्यात और असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । वह अनन्त भी परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमेंसे इस अनन्तमें तिर्यंच जीव स्थित हैं इसके ज्ञापनार्थ उपरिम सूत्र प्राप्त होता है—

१ प्रतिषु '-भेएणेतिवियप्पं ' इति पाठः ।

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ १६ ॥

किमट्ठमणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि तिरिक्खा ण अवहिरिज्जंति ? अतीदकालग्गहणादो । अवहरिदे संते को दोसो ? ण, भव्वजीवाणं सव्वेसिं[1] वोच्छेदप्पसंगादो । एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं पडिसेहो कदो । अणंताणंतं पि जहण्णुक्कस्स-तव्वदिरित्तभेएण तिविहं होदि । तत्थ एदम्हि अणंताणंते तिरिक्खा ट्ठिदा त्ति जाणावणट्ठमुवरिल्लिसुत्तमागदं—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १७ ॥

एदेण जहण्णअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो । कुदो ? तत्थ अणंताणंतलोगाणमभावादो । एदं पि कधं णव्वदे ? लोगेण जहण्णे अणंताणंते भागे हिदे लद्धम्मि अणंता-

तिर्यंच जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ १६ ॥

शंका—तिर्यंच जीव अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे क्यों नहीं अपहृत होते ?

समाधान—क्योंकि, यहां केवल अतीत कालका ग्रहण किया गया है । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. २९.) ।

शंका—अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे इनके अपहृत होनेपर कौनसा दोष उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसा होनेपर सब भव्य जीवोंके व्युच्छेदका प्रसंग आता है ।

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त और युक्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है । अनन्तानन्त भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमेंसे इस अनन्तानन्तमें तिर्यंच जीव स्थित हैं, इसके ज्ञापनार्थ उपरिम सूत्र प्राप्त होता है—

तिर्यंच जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ १७ ॥

इस सूत्रके द्वारा जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, जघन्य अनन्तानन्तमें अनन्तानन्त लोकोंका अभाव है ।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, लोकका जघन्य अनन्तानन्तमें भाग देनेपर लब्ध राशिमें

१ प्रतिषु ' संखेसिं ' इति पाठः ।

णंतसंखाभावादो। उक्कस्साणंताणंतस्स वि पडिसेहो कदो, अणंताणंताणि सव्वपज्जयपढम-वग्गमूलाणि त्ति अभणिदूण अणंताणंता लोगा त्ति णिद्देसादो।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १८ ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्ज-अणंताणि अवेक्खदे[1]।

असंखेज्जा ॥ १९ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो, असंखेज्जम्मि तदुभयसंभवविरोहादो। तं पि असंखेज्जं परित्त-जुत्त-असंखेज्जासंखेज्जभेएण तिविहं। तत्थ इमम्मि असंखेज्जे एदेसिमवट्ठाणमिदि जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि ---

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ २० ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो, तत्थ असंखेज्जासंखेज्जाणं[2]

अनन्तानन्त संख्याका अभाव है।

उत्कृष्ट अनन्तानन्तका भी प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, 'अनन्तानन्त सर्व पर्यायोंके प्रथम वर्गमूल' ऐसा न कहकर 'अनन्तानन्त लोक' ऐसा निर्देश किया है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १८ ॥

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात और अनन्तकी अपेक्षा करता है।

उपर्युक्त तिर्यंच द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ १९ ॥

इसके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, असंख्यातमें संख्यात व अनन्त इन दोनोंकी संभावनाका विरोध है। वह असंख्यात भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है। उनमेंसे इस असंख्यातमें उक्त जीवोंका अवस्थान है, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उक्त चारों तिर्यंच जीव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ २० ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है,

१ प्रतिषु 'उवेक्खदे' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः 'असखेज्जसंखेज्जाण' इति पाठः।

ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो। एदेण चेव जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स वि पडिसेहो कदो। कुदो? तत्थ वि असंखेज्जासंखेज्जाणं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो। अवसेसेसु दोसु असंखेज्जासंखेज्जेसु कम्हि असंखेज्जासंखेज्जे इमं होदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणेण कालेण असंखेज्जगुणहीणेण कालेण ॥ २१ ॥

बेछप्पण्णंगुलसदवग्गपमाणदेवअवहारकालमावलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदे पंचिंदियतिरिक्खाणं अवहारकालो होदि। तम्हि चेव देवअवहारकाले तप्पाओग्गसंखेज्जरूवेहि भागे हिदे पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागो आगच्छदि। सो पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ताणमवहारकालो होदि। देवावहारकाले संखेज्जरूवेहि गुणिदे पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणमवहारकालो होदि। देवअवहारकाले आवलियाए असंखेज्जदिभाएण भागे

क्योंकि, उन दोनोंमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है। इसीसे ही जघन्य असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, जघन्य असंख्यातासंख्यातमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है। अवशेष दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे किस असंख्यातासंख्यातमें उक्त तिर्यंच जीव हैं, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंके द्वारा क्रमशः देवअवहारकालसे असंख्यातगुणे हीन कालसे, संख्यातगुणे हीन कालसे, संख्यातगुणे कालसे और असंख्यातगुणे हीन कालसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ २१ ॥

दो सौ छप्पन सूच्यंगुलके वर्गप्रमाण देवअवहारकालको आवलीके असंख्यातवें भागसे खंडित करनेपर पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका अवहारकाल होता है। उसी देवअवहारकालको तत्प्रायोग्य संख्यात रूपोंसे भाजित करनेपर प्रतरांगुलका संख्यातवां भाग आता है। वह पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीवोंका अवहारकाल होता है। देवअवहारकालको संख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंका अवहारकाल होता है। देवअवहारकालमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर प्रतरां-

हिदे पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि। सो पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणमवहारकालो होदि। एदे अवहारकाले जहाकमेण सलागभूदे ठविय पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तपमाणेण जगपदरे अवहिरिज्जमाणे सलागाओ जगपदरं च जुगवं समप्पंति। तत्थ एगवारमवहिरिदपमाणं जहाकमेण पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता[1] च होंति त्ति वुत्तं होदि। एदेण एदेसिं जगपदरस्स असंखेज्जदिभागत्तपरूवएण सुत्तेण उक्कस्सासंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो। ण च तव्वदिरित्तस्स असंखेज्जासंखेज्जस्स सव्वस्स गहणं, तत्थतणसव्ववियप्पाणं पडिसेहं काऊण तत्थेक्कवियप्पस्सेव णिण्णयसरूवेण परूविदत्तादो।

मणुसगदीए मणुस्सा मणुसअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ २२ ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्ज-अणंतावेक्खं। सेसं सुगमं।

असंखेज्जा ॥ २३ ॥

गुलका असंख्यातवां भाग आता है। वह पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंका अवहारकाल होता है। इन अवहारकालोंको यथाक्रमसे शलाकाभूत स्थापित कर पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके प्रमाणसे जगप्रतरके अपहृत करनेपर शलाकायें और जगप्रतर एक साथ समाप्त होते हैं। उनमें एक वार अपहृत प्रमाण यथाक्रमसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव होते हैं, यह उक्त कथनका अभिप्राय है। इन जीवोंके जगप्रतरके असंख्यातवें भागत्वका प्ररूपण करनेवाले इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है। और तद्व्यतिरिक्त असंख्यातासंख्यातका भी सबका ग्रहण नहीं होता, क्योंकि, उसके सब विकल्पोंका प्रतिषेध करके उनमेंसे एक विकल्पका ही निर्णयस्वरूपसे निरूपण किया गया है।

मनुष्यगतिमें मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्त द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ २२ ॥

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात व अनन्तकी अपेक्षा रखता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्त द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ २३ ॥

---

१ प्रतिषु '-तिरिक्खा अपज्जत्ता ' इति पाठः।

एदेण वयणेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो, पडिवक्खणिराकरणेण सवक्ख[1]-पदुप्पायणादो। तं पि असंखेज्जं तिवियप्पमिदि कट्टु इदमिदि णिण्णओ णत्थि। इदं चेव होदि त्ति णिण्णयउप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ २४ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो, पडिवक्खणिसेहं काऊण असंखेज्जासंखेज्जवयणस्स सवक्खपदुप्पायणादो। तं पि[2] जहण्णुक्कस्स-तव्वदिरित्तभेएण तिविहमिदि कट्टु ण तत्थ णिच्छओ अत्थि। तत्थ णिच्छउप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदिभागो ॥ २५ ॥

एदेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, सेडीए असंखेज्जदिभागस्स

इस वचनसे संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, प्रतिपक्षका निराकरण करनेसे अपने पक्षका प्रतिपादन होता है। वह असंख्यात भी तीन प्रकार है, ऐसा करके उनमेंसे 'यह असंख्यात है' इस प्रकार निर्णय नहीं हैं, अतः 'यही असंख्यात है' इसका निर्णय उत्पन्न करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्तक कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ २४ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, प्रतिपक्षका निषेध करके असंख्यातासंख्यात वचनको स्वपक्ष निरूपण करना है। वह असंख्यातासंख्यात भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है, ऐसा करके उनमें विशेष निश्चय नहीं है। अतः उक्त तीन भेदोंमेंसे विशेषके निश्चयोत्पादनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा मनुष्य व मनुष्य अपर्याप्त जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ २५ ॥

इसके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि,

---

१ प्रतिषु 'सव्वक्ख' इति पाठः।

२ अप्रतौ 'वि' इति पाठः।

रूवूणपरित्ताणंतत्तविरोहादो[1]। सेसेसु दोसु एक्कस्स अवणयणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

तिस्से सेडीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ ॥२६॥

एदेण जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो। कुदो? तत्थ असंखेज्जाणं जोयणकोडीणमभावादो। असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ वि अणेयवियप्पाओ त्ति काऊण णिच्छयाभावादो तत्थ सुट्ठु णिच्छउप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

मणुस-मणुसअपज्जत्तएहि रूवं रूवापक्खित्तएहि सेडी अवहिरदि अंगुलवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेण ॥ २७ ॥

सूचिअंगुलपढमवग्गमूलं तस्सेव तदियवग्गमूलेण गुणिय सलागभूदं ठविय रूवाहियमणुस्सरासिपमाणेण सेडि अवहिरिज्जदि। किमट्ठं रूवस्स पक्खेवो कीरदे? कदजुम्माए सेडीए तेजोजमणुसरासिम्हि अवहिरिज्जमाणे अवहारसलागमेत्तरूवाण-

जगश्रेणीके एक कम परीतानन्तपनेका विरोध है। अब शेष दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे एकका निषेध करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

उस जगश्रेणीके असंख्यातवें भागकी श्रेणी अर्थात् पंक्तिका आयाम असंख्यात योजनकोटि है ॥ २६ ॥

इसके द्वारा जघन्य असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उसमें असंख्यात योजनकोटियोंका अभाव है। असंख्यात योजनकोटियोंके भी अनेक विकल्परूप होनेसे निश्चयका अभाव है, अतः उनमें भले प्रकार निश्चयोत्पादनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको उसके ही तृतीय वर्गमूलसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उसे शलाकारूपसे स्थापित कर रूपाधिक मनुष्यों और रूपाधिक मनुष्य अपर्याप्तों द्वारा जगश्रेणी अपहृत होती है ॥ २७ ॥

सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलको उसके तृतीय वर्गमूलसे गुणित करके लब्ध राशिको शलाकारूप स्थापित कर रूपाधिक मनुष्यप्रमाणसे जगश्रेणी अपहृत होती है।

शंका—रूपका प्रक्षेप किसलिये किया जाता है?

समाधान—चूंकि जगश्रेणी कृतयुग्म राशिरूप है। अतएव उसमेंसे तेजोजराशिरूप मनुष्यराशिके अपहृत करनेपर अवहारशलाकामात्र शेष रहे रूपोंको घटानेके

[1] प्रतिषु '-परित्ताणंतत्थविरोहादो' इति पाठः।

मुव्वरंताणमवणयणट्ठं । तं चेव सलागरासिं ठविय रूवाहियमणुस्सपज्जत्तब्भहियमणुस-अपज्जत्तरासिणा अवहिरदि । किमट्ठं रूवाहियमणुस्सपज्जत्तरासी पक्खिप्पदे ? मणुस-अपज्जत्तरासिपमाणेण[1] जगसेडीए अवहिरिज्जमाणाए सलागरासिमेत्तरूवाहियमणुसपज्जत्त-रासिस्स उव्वरंतस्स अवणयणट्ठं ।

मणुस्सपज्जत्ता मणुसिणीओ दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥२८॥

सुगमं ।

कोडाकोडाकोडीए उवरिं कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्ठदो ॥ २९ ॥

एवं सामण्णेण जदि वि सुत्ते वुत्तं तो वि आइरियपरंपरागदेण गुरूवदेसेण अविरुद्धेण पंचमवग्गस्स घणमेत्तो[2] मणुसपज्जत्तरासी होदि त्ति घेत्तव्वो । तस्स पमाणमेदं— ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ । एत्थ गाहा—

....

लिये उसमें रूपका प्रक्षेप किया जाता है। (इन राशियोंके लिये देखो पुस्तक ३, पृ. २४९)।

उपर्युक्त शलाकाराशिको ही स्थापित कर रूपाधिक मनुष्य पर्याप्त राशिसे अधिक मनुष्य अपर्याप्त राशिसे जगश्रेणी अपहृत होती है।

शंका—रूपाधिक मनुष्य पर्याप्त राशिका प्रक्षेप किस लिये किया जाता है ?

समाधान—मनुष्य अपर्याप्त राशिप्रमाणसे जगश्रेणीके अपहृत करनेपर शलाका-राशिमात्र शेष रूपाधिक मनुष्यराशिको घटानेके लिये उक्त राशिका प्रक्षेप किया जाता है।

मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियां द्रव्यप्रमाणसे कितनी हैं ? ॥ २८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

कोड़ाकोड़ाकोड़ीके ऊपर और कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीके नीचे छह वर्गोंके ऊपर व सात वर्गोंके नीचे अर्थात् छठे और सातवें वर्गके बीचकी संख्याप्रमाण मनुष्यपर्याप्त व मनुष्यनियां हैं ॥ २९ ॥

यद्यपि इस प्रकार सूत्रमें सामान्यरूपसे ही कहा है, तथापि आचार्यपरम्परागत अविरुद्ध गुरूपदेशसे पंचम वर्गके घनप्रमाण मनुष्य पर्याप्त राशि है, इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये। उसका प्रमाण यह है— ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६। यहां गाथा—

....

१ अ-आप्रत्योः ' -रासिमाणेण ' इति पाठः। २ प्रतिषु ' पुणमेचो ' इति पाठः।

तललीनमधुगविमलं धूमसिलागाविचारभयमेरू[1] ।
तटहरिखझसा[2] होंति हु माणुसपज्जत्तसंखंका[3] ॥ २ ॥

एसो उवदेसो कोडाकोडाकोडाकोडिए हेट्ठदो त्ति सुत्तेण कधं ण विरुज्झदे ? ण, एगकोडाकोडाकोडाकोडिमादिं कादूण जाव रूवूणदसकोडाकोडाकोडाकोडि त्ति एदं सव्वं पि कोडाकोडाकोडाकोडि त्ति गहणादो । ण च एदस्स ट्ठाणस्सुक्कस्सं वोलेदूण मणुसपज्जत्तरासी ट्ठिदा, अट्ठण्हं कोडाकोडाकोडाकोडीणं हेट्ठदो तस्स अवट्ठाणदंसणादो ।

तकारादि अक्षरोंसे सूचित क्रमशः छह, तीन, तीन, शून्य, पांच, नौ, तीन चार, पांच, तीन, नौ, पांच, सात, तीन, तीन, चार, छह, दो, चार, एक, पांच, दो, छह, एक, आठ, दो, दो, नौ, और सात, ये मनुष्य पर्याप्त राशिकी संख्याके अंक हैं ॥२॥

विशेषार्थ—किस अक्षरसे किस अंकका बोध होता है, इसके परिज्ञानार्थ गोम्मटसार (जीवकाण्ड) में आई हुई इसी गाथाकी (१५८) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका हिन्दी टीकामें निम्न गाथा उद्धृत की है—

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपंचाष्टकल्पितैः क्रमशः ।
स्वरञनशून्यं संख्या मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यम् ॥

अर्थात् क-ख इत्यादि नौ अक्षरोंसे क्रमशः एक-दो आदि नौ संख्या तक ग्रहण करना चाहिये। जैसे— क ख ग घ ङ च इत्यादि । इसी प्रकार ट-ठ इत्यादिसे भी एक-
१ २ ३ ४ ५ ६
दो क्रमसे नौ तक, प से म तक पांच अक्षरोंसे पांच तक, और य से ह तक आठ अक्षरोंसे क्रमशः एक-दो आदि आठ तक अंकोंका ग्रहण करना चाहिये। स्वर, ञ और न शून्यके सूचक हैं। मात्रा और उपरिम अक्षरको छोड़ना चाहिये, अर्थात् उससे किसी अंकका बोध नहीं होता।

शंका—यह उपदेश 'कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीसे नीचे' इस सूत्रसे कैसे विरोधको न प्राप्त होगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीको आदि करके एक कम दश कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ी तक इस सबको भी कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीरूपसे ग्रहण किया गया है। और इस स्थानके उत्कर्षका उलंघन कर मनुष्य पर्याप्त राशि स्थित नहीं है, क्योंकि, उसका अवस्थान आठ कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीके नीचे देखा जाता है।

१ प्रतिषु 'तललीण-' इति पाठः । २ प्रतिषु 'खजसा' इति पाठः ।

३ गो जी. १५८.

एदस्स तिण्णि चदुब्भागा मणुसिणीओ, एगो[1] चदुब्भागो पुरिस-णवुंसयरासी होदि। सहीणबुद्धीए पुण जोइज्जमाणे एदेण सुत्तेण सह वक्खाणाइरिएहि परूविदमणुसपज्जत्त-रासिपमाणं णियमेण विरुज्झदे, कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो त्ति सुत्तम्मि एगवयण-णिद्देसादो। ण च ट्ठाणसण्णा संखेज्जे वट्टदे जेण णवण्हं कोडाकोडाकोडाकोडीणं कोडाकोडाकोडाकोडित्तं होज्ज, विरोहादो। किं च ण वक्खाणाइरियपरूविदं मणुस्सपज्जत्त-रासिपमाणं होदि, मणुसखेत्तम्मि तस्स वत्तीए[2] अभावादो, एदम्हादो सत्तगुणसव्वट्ठ-सिद्धिविमाणवासियदेवाणं पि जोयणलक्खम्मि अवट्ठाणाभावादो च। सेसं सुगमं।

देवगदीए देवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ३० ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्जाणंतालंबणं।

असंखेज्जा ॥ ३१ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो,

. . . .

पर्याप्त मनुष्य राशिके चार भागोंमेंसे तीन भागप्रमाण मनुष्यनियां हैं और एक चतुर्थांश पुरुष व नपुंसक राशि है। किन्तु स्वाधीन बुद्धिसे देखनेपर अर्थात् स्वतंत्रतासे विचार करनेपर इस सूत्रके साथ व्याख्यानाचार्यों द्वारा निरूपित मनुष्य पर्याप्त राशिका प्रमाण नियमसे विरोधको प्राप्त होता है, क्योंकि, 'कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीके नीचे' इस प्रकार सूत्रमें एक वचनका निर्देश किया गया है। और स्थानसंज्ञा संख्यातमें है नहीं, जिससे नौ कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ियोंको (एकत्वरूपसे) कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ीपना हो सके, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध है। इसके अतिरिक्त व्याख्यानाचार्यों द्वारा प्ररूपित मनुष्य पर्याप्त राशिका प्रमाण बनता भी नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार मनुष्यक्षेत्रमें उक्त मनुष्यराशिकी स्थिति नहीं हो सकती, तथा इससे (मनुष्यनीराशिसे) सातगुणे सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंका भी एक लाख योजनमें अवस्थान नहीं बन सकता। (विशेष जाननेके लिये देखो पुस्तक ३, पृ. २५८ का विशेषार्थ)। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

देवगतिमें देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ३० ॥

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात व अनन्तका अवलम्बन करनेवाला है।

देवगतिमें देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ३१ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि—

---

१ प्रतिषु 'एदो' इति पाठः। २ प्रतिषु 'तत्तीए' इति पाठः।

निरस्यन्ति परस्यार्थं स्वार्थं कथयति श्रुतिः ।
तमो विधुन्वती भास्यं यथा भासयति प्रभा ॥ ३ ॥

इदि वयणादो । तं पि असंखेज्जं परित्त-जुत्त-असंखेज्जासंखेज्जभेएण तिविहं । तत्थ एदम्हि असंखेज्जे देवाणमवट्ठाणमिदि जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ३२ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । पदरावलियाए असंखेज्जासंखेज्जाणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीण सब्भावादो[1] जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स वि पडिसेहो कदो । इदरेसु दोसु एक्कस्स ग्गहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण पदरस्स बेछप्पण्णंगुलसदवग्गपडिभाएण ॥ ३३ ॥

बेछप्पण्णंगुलसदवग्गो पंचसट्ठिसहस्स-पंचसद-छत्तीसपदरंगुलाणि । जगपदरस्स एदेण पडिभाएण देवरासी होदि । एदेण वयणेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहं

जिस प्रकार प्रभा अंधकारको नष्ट करती हुई प्रकाशनीय पदार्थका प्रकाशन करती है, उसी प्रकार श्रुति परके अभीष्टका निराकरण करती है और अपने अभीष्ट अर्थको कहती है ॥ ३ ॥

इस प्रकारका वचन है । वह असंख्यात भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है । अतः उनमेंसे इस असंख्यातमें देवोंका अवस्थान है ऐसा जतलानेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

देव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी–उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ३२ ॥

इस सूत्र द्वारा परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । प्रतरावलीमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका सद्भाव होनेसे जघन्य असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध किया गया है । अब अन्य दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे एकके ग्रहण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा देवोंका प्रमाण जगप्रतरके दो सौ छप्पन अंगुलोंके वर्गरूप प्रतिभागसे प्राप्त होता है ॥ ३३

दो सौ छप्पन अंगुलोंका वर्ग पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस प्रतरांगुलप्रमाण होता है। इस जगप्रतरके प्रतिभागसे देवराशि होती है। अर्थात् दो सौ छप्पन सूच्यंगुलोंके वर्गका जगप्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध हो उतना देवराशिका प्रमाण है । इस वचनसे उत्कृष्ट

१ प्रतिषु 'उस्सप्पिणीणमभावादो' इति पाठः ।

काऊण विसिट्ठस्स अजहण्णाणुक्कस्सस्स परूवणा कदा ।

भवणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ३४ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ३५ ॥

पडिवक्खपडिसेहं काऊण सपक्खपदुप्पायणादो एदेण सुत्तेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । तं पि असंखेज्जं परित्त जुत्त-असंखेज्जासंखेज्जभेएण तिविहं होदि । तत्थ वि अणप्पिदस्स पडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ३६ ॥

एदेण परित्त जुत्तासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जं पि पडिसिद्धं, तत्थ असंखेज्जासंखेज्जओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । संपहि अवसेसेसु दोसु अणप्पिदपडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ ॥ ३७ ॥

असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध करके शेष रहे अजघन्यानुत्कृष्टकी प्ररूपणा की है ।

भवनवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भवनवासी देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ३५ ॥

प्रतिपक्षका निषेधकर स्वपक्षका प्रतिपादन करनेसे इस सूत्रके द्वारा संख्यात और अनन्तका प्रतिषेध किया गया है । वह असंख्यात भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है । उनमेंसे भी अविवक्षित असंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

कालकी अपेक्षा भवनवासी देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ३६ ॥

इसके द्वारा परीतासंख्यात और युक्तासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । इसके साथ जघन्य असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध कर दिया है, क्योंकि, उसमें असंख्याता-संख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अब अवशेष दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे अविवक्षितके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा भवनवासी देव असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण हैं ॥ ३७ ॥

एदेण सुत्तेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, लोगाणमणिद्देसादो[1]। असंखेज्जाओ सेडीओ वि अणेयभेयभिण्णाओ, तण्णिण्णयउप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

पदरस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३८ ॥

एदेण जगपदरस्स दुभाग-तिभागादीणं पडिसेहो कदो। जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो वि अणेयभेयभिण्णाओ त्ति तत्थ णिच्छयजणणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलं अंगुलवग्गमूलगुणिदेण ॥ ३९ ॥

सूचिअंगुलं तस्सेव पढमवग्गमूलेण गुणिदं सेडीणं विक्खंभसूची होदि। सेसं सुगमं।

वाणवेंतरदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ४० ॥

सुगमं।

असंखेज्जा ॥ ४१ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यहां लोकोंका निर्देश नहीं है। असंख्यात जगश्रेणियां भी अनेक भेदोंसे भिन्न हैं, अतः उनके निर्णयोत्पादनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त असंख्यात जगश्रेणियां जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण ग्रहण करना चाहिये ॥ ३८ ॥

इससे जगप्रतरके द्वितीय तृतीय भागादिकोंका प्रतिषेध किया गया है। जगप्रतरका असंख्यातवां भाग भी अनेक भेदोंसे भिन्न है, अतः उनमें निश्चयजननार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उन असंख्यात जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलको सूच्यंगुलके ही वर्गमूलसे गुणित करनेपर जो लब्ध हो उतनी है ॥ ३९ ॥

सूच्यंगुलको उसके ही प्रथम वर्गमूलसे गुणित करनेपर उन असंख्यात जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची होती है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

वानव्यन्तर देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ४० ॥

यह सूत्र सुगम है।

वानव्यन्तर देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ४१ ॥

१ प्रतिषु 'दोगामणिद्देसादो' इति पाठः।

एदेण संखेज्जाणंताणं[1] पडिसेहो कदो। असंखेज्जं पि परित्त-जुत्त-असंखेज्जा-संखेज्जभेएण तिविहं। तत्थ अणप्पिदपडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ४२ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, तत्थ असंखेज्जासंखेज्जाणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो। इदरेसु दोसु अणप्पिदपडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण पदरस्स संखेज्जजोयणसदवग्गपडिभाएण ॥ ४३ ॥

तप्पाओग्गसंखेज्जजोयणसदं वग्गिय तेण जगपदरे ओवट्टिदे वाणवेंतरदेवाणं पमाणं होदि। सेसं सुगमं।

जोदिसिया देवा देवगदिभंगो ॥ ४४ ॥

इसके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है। असंख्यात भी परीता-संख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है। उनमें अविवक्षित असंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

कालकी अपेक्षा वानव्यन्तर देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ४२ ॥

इस सूत्र द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है। अब इतर दो असंख्यातासंख्यातोंमें अविवक्षितके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा वानव्यन्तर देवोंका प्रमाण जगप्रतरके संख्यात सौ योजनोंके वर्गरूप प्रतिभागसे प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥

तत्प्रायोग्य संख्यात सौ योजनोंका वर्ग करके उससे जगप्रतरके अपवर्तित करनेपर वानव्यन्तर देवोंका प्रमाण होता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

ज्योतिषी देवोंका प्रमाण देवगतिके समान है ॥ ४४ ॥

१ प्रतिषु 'असखेज्जाणताण' इति पाठः।

कुदो ? पदरस्स बेछप्पण्णंगुलसदवग्गपडिभागत्तणेण तदो विसेसाभावादो । णवरि अत्थदो विसेसो अत्थि, सो जाणिय वत्तव्वो ।

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ४५ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ४६ ॥

एदेण संखेज्जस्स पडिसेहो कदो । अणंतस्स पुण पडिसेहो देवोघपरूवणादो चेव सिद्धो । असंखेज्जं पि पुव्वुत्तकमेण तिविहं । तत्थेक्कस्सेव गहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ४७ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, तत्थ असंखेज्जासंखेज्जाणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । अवसेसेसु दोसु एक्कस्सेव गहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

क्योंकि, जगप्रतरके दो सौ छप्पन अंगुलोंके वर्गरूप प्रतिभागपनेकी अपेक्षा सामान्य देवराशिसे ज्योतिषी देवराशिमें कोई विशेषता नहीं है । परन्तु अर्थसे विशेषता है, उसे जानकर कहना चाहिये । (देखिये जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. २६८ का विशेषार्थ) ।

सौधर्म व ईशान कल्पवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सौधर्म व ईशान कल्पवासी देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ४६ ॥

इस सूत्र द्वारा संख्यातका प्रतिषेध किया गया है । अनन्तका प्रतिषेध देवोंकी ओघप्ररूपणासे ही सिद्ध है । असंख्यात भी पूर्वोक्त क्रमसे तीन प्रकार है । उनमेंसे एकके ही ग्रहण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

सौधर्म-ईशान कल्पवासी देव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ४७ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अवशेष दो असंख्यातासंख्यातोंमें एकके ही ग्रहण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ ॥ ४८ ॥

एदेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, लोगादिणिद्देसाणमभावादो। असंखेज्जाओ सेडीओ अणेयवियप्पाओ। तासिं णिण्णयट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

पदरस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४९ ॥

एदेण जगपदरस्स दुभाग-तिभागादिपडिसेहो कदो। पदरस्स असंखेज्जदिभागो वि अणेयवियप्पो त्ति जादसंदेहविणासणट्ठं उत्तरसुत्तं भणदि—

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलस्स वग्गमूलं बिदियं तदियवग्गमूलगुणिदेण ॥ ५० ॥

सूचिअंगुलबिदियवग्गमूलं तस्सेव तदियवग्गमूलगुणिदं सेडीणं विक्खंभस्स सूची होदि। घणंगुलतदियवग्गमूलमेत्तसेडीओ सोधम्मीसाणकप्पेसु देवा होंति त्ति वुत्तं होदि।

सणक्कुमार जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्तमपुढवीभंगो ॥ ५१ ॥

उपर्युक्त देव क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण हैं ॥ ४८ ॥

इसके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यहां लोकादिकोंके निर्देशका अभाव है। असंख्यात जगश्रेणियां अनेक विकल्परूप हैं। उनके निर्णयार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं--

ये असंख्यात जगश्रेणियां जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ४९ ॥

इस सूत्र द्वारा जगप्रतरके द्वितीय तृतीय भागादिकोंका प्रतिषेध किया गया है। जगप्रतरका असंख्यातवां भाग भी अनेक विकल्परूप है, इस कारण उत्पन्न हुए सन्देहके विनाशनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं--

उन असंख्यात जगश्रेणियोंकी विष्कम्भसूची सूच्यंगुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलप्रमाण है ॥ ५० ॥

सूच्यंगुलका द्वितीय वर्गमूल उसीके तृतीय वर्गमूलसे गुणित होकर असंख्यात जगश्रेणियोंके विष्कम्भकी सूची होता है। घनांगुलके तृतीय वर्गमूलमात्र जगश्रेणीप्रमाण सौधर्म-ईशान कल्पोंमें देव हैं, यह उक्त कथनका फलितार्थ है।

सनत्कुमारसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तकके कल्पवासी देवोंका प्रमाण सप्तम पृथिवीके समान है ॥ ५१ ॥

कुदो ? सेडीए असंखेज्जभागत्तणेण एदेसिं तत्तो भेदाभावादो । विसेसदो पुण भेदो अत्थि, सेडीए एक्कारस-णवम-सत्तम पंचम-चउत्थवग्गमूलाणं जहाकमेण सेडीभागहाराणमेत्थुवलंभादो । एदे भागहारा एत्थ होंति त्ति कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागद-अविरुद्धुवदेसादो ।

आणद जाव अवराइदविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ५२ ॥

सुगमं ।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५३ ॥

एदेण संखेज्जस्स पडिसेहो कदो । पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो वि अणेयपयारो, तण्णिण्णयट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ ५४ ॥

एदेहि पुव्वुत्तदेवेहि पलिदोवमे अवहिरिज्जमाणे अंतोमुहुत्तेण पलिदोवममवहिरदि ।

क्योंकि, इनके जगश्रेणीके असंख्यातवें भागत्वकी अपेक्षा सप्तम पृथिवीके नारकियोंसे कोई भेद नहीं है । परन्तु विशेषकी अपेक्षा भेद है, क्योंकि, यहां यथाक्रमसे ग्यारहवां, नौवां, सातवां, पांचवां और चौथा, इन जगश्रेणीके वर्गमूलोंकी श्रेणीभागहाररूपसे उपलब्धि है ।

शंका—ये भागहार यहां हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह आचार्यपरम्परागत अविरुद्ध उपदेशसे जाना जाता है ।

आनतसे लेकर अपराजित विमान तकके विमानवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ५२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त देव द्रव्यप्रमाणसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं ॥ ५३ ॥

इस सूत्र द्वारा संख्यातका प्रतिषेध किया है । पल्योपमका असंख्यातवां भाग भी अनेक प्रकार है, उसके निर्णयार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

इन देवोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ ५४ ॥

इन पूर्वोक्त देवों द्वारा पल्योपमके अपहृत करनेपर अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत

एत्थ अंतोमुहुत्तपमाणमावलियाए असंखेज्जदिभागो । संखेज्जावलियासु संखेज्जाणं जीवाणमुवक्कमे संते कधं पलिदोवमस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागो भागहारो होदि ? ण एत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो संखेज्जावलियाओ वा अंतोमुहुत्तं, किंतु असंखेज्जावलियाओ एत्थ अंतोमुहुत्तमिदि घेत्तव्वाओ । कधमसंखेज्जावलियाणमंतोमुहुत्तत्तं ? ण, कज्जे कारणोवयारेण तासिं तदविरोहादो ।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ५५ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ५६ ॥

एदं पि सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ५७ ॥

होता है । यहां अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग है ।

शंका — संख्यात आवलियोंमें संख्यात जीवोंका उपक्रम होनेपर आवलीका असंख्यातवां भाग पल्योपमका भागहार कैसे हो सकता है ?

समाधान — यहां आवलीका असंख्यातवां भाग अथवा संख्यात आवलियां अन्तर्मुहूर्त नहीं है, किन्तु यहां असंख्यात आवलियां अन्तर्मुहूर्त है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. २८१)।

शंका — असंख्यात आवलियोंके अन्तर्मुहूर्तपना कैसे बन सकता ?

समाधान — कार्यमें कारणका उपचार करनेसे असंख्यात आवलियोंके अन्तर्मुहूर्तपनेका कोई विरोध नहीं है ।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ५६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ५७ ॥

एदमासंकासुत्तं संखेज्जासंखेज्जाणंतालंबणं । सेसं सुगमं ।

अणंता ॥ ५८ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तं पि अणंतं परित्त जुत्ताणंताणंत-भेएण तिविहं । तत्थेक्कस्सेव गहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ ५९ ॥

एदेण जहण्णअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, अदीदकालादो अणंतगुणस्स जहण्ण-अणंताणंतत्तविरोहादो । अजहण्णअणुक्कस्स-उक्कस्सअणंताणंताणं दोण्हं पि गहणप्पसंगे तत्थेक्कस्सेव गहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ६० ॥

एदेण उक्कस्सअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, अणंताणंतसव्वपज्जयपढमवग्गमूलस्स

यह आशंकासूत्र संख्यात, असंख्यात और अनन्तका आलम्बन करनेवाला है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उपर्युक्त प्रत्येक एकेन्द्रिय जीव अनन्त हैं ? ॥ ५८ ॥

इस सूत्र द्वारा संख्यात और असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । वह अनन्त भी परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमेंसे एकके ही ग्रहणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ ५९ ॥

इस सूत्र द्वारा जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, अतीत-कालसे अनन्तगुणे कालको जघन्य अनन्तानन्तत्वका विरोध है । अजघन्यानुत्कृष्ट और उत्कृष्ट अनन्तानन्त इन दोनोंके भी ग्रहणका प्रसंग होनेपर उनमेंसे एकके ही ग्रहणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा उक्त नौ प्रकारके एकेन्द्रिय जीव अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ ६० ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, अनन्तानन्त सर्व पर्यायोंके प्रथम वर्गमूलस्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्तको अनन्तानन्त

उक्कस्सअणंताणंतस्स अणंताणंतलोगत्तविरोहादो । सेसं जीवट्ठाणभंगो ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ६१ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ६२ ॥

एदेण संखेज्जाणंतपडिसेहो कदो । तं पि असंखेज्जं परित्त-जुत्त-असंखेज्जासंखेज्जभेएण तिविहं । तत्थ दोण्हमवणयणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ६३ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, एदेसु तिसु असंखेज्जासंखेज्जओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमत्थित्तविरोहादो । अजहण्णुक्कस्सुक्कस्सअसंखेज्जाणं दोण्हं पि गहणप्पसंगे तत्थेक्कस्स अवणयणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

लोकत्वका विरोध है । शेष प्ररूपणा जीवस्थानके समान है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और उन्हींके पर्याप्त व अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त द्वीन्द्रियादिक जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ६२ ॥

इसके द्वारा संख्यात और अनन्तका प्रतिषेध किया गया है । वह असंख्यात भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है । उनमेंसे दोका निराकरण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त द्वीन्द्रियादिक जीव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ६३ ॥

इस सूत्र द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, इन तीनोंमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणियोंके अस्तित्वका विरोध है । अजघन्यानुत्कृष्ट और उत्कृष्ट दोनों ही असंख्यातासंख्यातोंके ग्रहणका प्रसंग होनेपर उनमेंसे एकके निषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं —

खेत्तेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तेहि पदरं अवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ ६४ ॥

एदेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, रूवूणजहण्णपरित्ताणंतस्स पदरस्स असंखेज्जदिभागत्तविरोहादो । सूचिअंगुले आवलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे लद्धं वग्गिदे बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियाणमवहारकालो होदि । तम्हि चेव विसेसाहिए कदे एदेसिमपज्जत्ताणमवहारकालो होदि । सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागे वग्गिदे एदेसिं पज्जत्ताणमवहारकालो होदि । सेसं जीवट्ठाणम्मि वुत्तविहाणं णाऊण वत्तव्वं ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइय-

क्षेत्रकी अपेक्षा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय तथा उन्हींके पर्याप्त एवं अपर्याप्त जीवों द्वारा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे, सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे और सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ६४ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, एक कम जघन्य परीतानन्तको जगप्रतरके असंख्यातवें भागपनेका विरोध है । सूच्यंगुलमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध हो उसका वर्ग करनेपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका अवहारकाल होता है । इसीको विशेष अधिक करनेपर इन्हींके अपर्याप्त जीवोंका अवहारकाल होता है । सूच्यंगुलके संख्यातवें भागका वर्ग करनेपर इन्हींके पर्याप्त जीवोंका अवहारकाल होता है । शेष जीवस्थानमें कहे हुए विधानको जानकर कहना चाहिये । (देखो पुस्तक ३, पृ. ३१३ आदि) ।

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर बनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और इन्हींके अपर्याप्त, तथा सूक्ष्म पृथिवीकायिक,

सुहुमआउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ६५ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा लोगा ॥ ६६ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णुक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जाणं च पडिसेहो कदो । सेसं सुगमं ।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेय-सरीरपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ६७ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ६८ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । तं पि असंखेज्जं तिविहं । तत्थेक्कस्सेव गहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि--

सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं चार सूक्ष्मोंके पर्याप्त व अपर्याप्त, ये प्रत्येक जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंमें प्रत्येक जीवराशि असंख्यात लोकप्रमाण है ॥ ६६ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात, अनन्त, परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात, जघन्य असंख्यातासंख्यात और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ६८ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है । वह असंख्यात भी तीन प्रकार है । उनमें एकके ही ग्रहणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ६९ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, तेसु असंखेज्जासंखेज्जोसप्पिणी-उस्सप्पिणीणमभावादो[1]। उक्कस्सासंखेज्जासंखेज्जपडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ ७० ॥

एत्थ सूचिअंगुलस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो होदि। सेसं सुगमं।

बादरतेउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ७१ ॥

सुगमं।

उक्त जीव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ६९ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणियोंका अभाव है। उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं —

क्षेत्रकी अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवों द्वारा सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ७० ॥

यहां पल्योपमका असंख्यातवां भाग सूच्यंगुलका भागहार है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

बादर तेजकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ॥ ७१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

१ प्रतिषु ' संखेज्जोसप्पिणीणमभावादो ' इति पाठः।

असंखेज्जा ॥ ७२ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो। असंखेज्जं पि तिविहं परित्त-जुत्त-असंखेज्जासंखेज्जभेएण। तत्थ परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णुक्कस्सासंखेज्जासंखेज्जाणं च पडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जावलियवग्गो आवलियघणस्स अंतो ॥ ७३ ॥

असंखेज्जावलियवग्गो त्ति वुत्ते पदरावलियप्पहुडिउवरिमवग्गाणं गहणं पत्ते तण्णिवारणट्ठमावलियघणस्स अंतो इदि वुत्तं। सेसं सुगमं।

बादरवाउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? ॥ ७४ ॥

सुगमं।

असंखेज्जा ॥ ७५ ॥

संखेज्जाणंताणं पडिसेहो एदेण कदो। तिविहेसु असंखेज्जेसु एदम्हि असंखेज्जे

बादर तेजकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ७२ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है। असंख्यात भी परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकार है। उनमें परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात, जघन्य असंख्यातासंख्यात और उत्कृष्ट असंख्याता-संख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उक्त असंख्यातका प्रमाण असंख्यात आवलियोंके वर्गरूप है जो आवलीके घनके भीतर आता है ॥ ७३ ॥

'उक्त असंख्यातका प्रमाण असंख्यात आवलियोंके वर्गरूप है' ऐसा कहनेपर प्रतरावली आदि उपरिम वर्गोंके ग्रहणके प्राप्त होनेपर उनके निवारणार्थ 'आवलीके घनके भीतर है' ऐसा कहा गया है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ७५ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया है। तीन प्रकारके असं-

बादरवाउपज्जत्तरासी ट्ठिदो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ७६ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, तेसु असंखेज्जासंखेज्जाणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । अजहण्णुक्कस्स-उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जाण गहणप्पसंगे उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण असंखेज्जाणि पदराणि ॥ ७७ ॥

एदेण अजहण्णुक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स सिद्धी कदा । असंखेज्जाणि जगपदराणि अणेयविहाणि त्ति तण्णिण्णयट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ७८ ॥

घणलोगे तप्पाओग्गसंखेज्जरूवे हिदे बादरवाउकाइयपज्जत्तरासी होदि । सेसं सुगमं ।

ख्यातोंमेंसे इस असंख्यातमें बादर वायुकायिक पर्याप्त राशि स्थित है इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ७६ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अजघन्यानुत्कृष्ट और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातोंके ग्रहणका प्रसंग होनेपर उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात जगप्रतरप्रमाण हैं ॥ ७७ ॥

इस सूत्रके द्वारा अजघन्यानुत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातकी सिद्धि की गई है। असंख्यात जगप्रतर अनेक प्रकार हैं, इस कारण उनके निर्णयार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उन असंख्यात जगप्रतरोंका प्रमाण लोकका असंख्यातवां भाग है ॥ ७८ ॥

घनलोकमें तत्प्रायोग्य संख्यात रूपोंका भाग देनेपर बादर वायुकायिक पर्याप्त राशि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ७९ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ ८० ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । अणंतं पि तिविहं । तत्थ एदम्हि अणंते एदेसिमवट्ठाणमिदि जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ ८१ ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो । एदेमि अणंताणंताणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । अजहण्णुक्कस्सअणंताणंतस्स गहणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर जीव, निगोद सूक्ष्म जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, ये प्रत्येक द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ७९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त प्रत्येक जीवराशि द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ ८० ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । अनन्त भी तीन प्रकार है । उनमेंसे इस अनन्तमें इनका अवस्थान है, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त प्रत्येक जीवराशि कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होती है ॥ ८१ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त, और जघन्य अनन्तानन्तका निषेध किया है, क्योंकि, इनके अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्तके ग्रहणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ८२ ॥

एदेण उक्कस्सअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो । सेसं सुगमं ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ ८३ ॥

तसकाइयाणं पंचिंदियभंगो, तसकाइयपज्जत्ताणं पंचिंदियपज्जत्ताणं भंगो, तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्ताणं भंगो । कुदो ? समाणाणं जहासंखाए संबंधादो । आवलियाए असंखेज्जदिभागेण संखेज्जदिरूवेहि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण च पुध पुध ओवट्टिदपदरंगुलेहि जगपदरम्मि भागे हिदे पंचिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-पंचिंदियअपज्जत्ताणं रासीओ होंति त्ति वुत्तं होदि । सेसं जहा जीवट्ठाणे वुत्तं तहा वत्तव्वं ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी तिण्णिवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ८४ ॥

सुगमं ।

उपर्युक्त प्रत्येक जीवराशि क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण है ॥ ८२ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण क्रमशः पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है ॥८३॥

त्रसकायिकोंका प्रमाण पंचेन्द्रियोंके समान, त्रसकायिक पर्याप्तोंका प्रमाण पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंके समान, और त्रसकायिक अपर्याप्तोंका प्रमाण पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके समान है, क्योंकि समान पदोंका सम्बन्ध संख्याके अनुसार होता है । आवलीके असंख्यातवें भागसे, संख्यात रूपोंसे और आवलीके असंख्यातवें भागसे पृथक् पृथक् अपवर्तित प्रतरांगुलोंका जगप्रतरमें भाग देनेपर क्रमशः पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंकी राशियां होती हैं, यह उक्त कथनका अभिप्राय है । शेष जैसे जीवस्थानमें कहा है वैसे यहां भी कहना चाहिये ।

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और सत्य, असत्य व उभय ये तीन वचनयोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

देवाणं संखेज्जदिभागो ॥ ८५ ॥

देवाणमवहारकाले बेछप्पण्णंगुलसदवग्गे तप्पाओग्गसंखेज्जरूवेहि गुणिदे एदेसिमवहारकाला होंति । एदेहि जगपदरम्हि भागे हिदे पुव्वुत्तट्ठरासीओ होंति । सेसं सुगमं ।

वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ८६ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ ८७ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । कुदो ? उभयसत्तिसंजुत्तत्तादो । असंखेज्जं पि तिविहं । तत्थेदम्हि एदेसिमवट्ठाणमिदि जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ ८८ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं[1] जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो,

पांच मनोयोगी और तीन वचनयोगी द्रव्यप्रमाणसे देवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ८५ ॥

दो सौ छप्पन सूच्यंगुलोंके वर्गरूप देवोंके अवहारकालको तत्प्रायोग्य संख्यात रूपोंसे गुणित करनेपर इनके अवहारकाल होते हैं । इनसे जगप्रतरके भाजित करनेपर पूर्वोक्त आठ राशियां होती हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

वचनयोगी और असत्यमृषा अर्थात् अनुभय वचनयोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ८६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ ८७ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यह सूत्र संख्यात व अनन्तके प्रतिषेध तथा असंख्यातके विधानरूप उभय शक्तिसे संयुक्त है । असंख्यात भी तीन प्रकार है । उनमेंसे इस असंख्यातमें इनका अवस्थान है, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ ८८ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका

१ प्रतिषु ' जुत्ताणं संखेज्जाण ' इति पाठः ।

एदेसु असंखेज्जासंखेज्जाणं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो। सेसदोअसंखेज्जासंखेज्जेसु एक्कस्सावहारणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ॥ ८९ ॥

एदेण उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो, तस्स पदरस्स असंखेज्जदिभागत्तविरोहादो। संखेज्जरूवेहि ओवट्टिदपदरंगुलेण जगपदरे भागे हिदे दो वि रासीओ आगच्छंति। सेसं सुगमं।

कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइयकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९० ॥

सुगमं।

अणंता ॥ ९१ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो। अणंतं पि तिविहं। तत्थ एदम्हि अणंते एदाओ रासीओ ट्ठिदाओ त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, इनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है। शेष दो असंख्यातासंख्यातोंमेंसे एकके अवधारणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगियों द्वारा सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागसे जगप्रतर अपहृत होता है ॥ ८९ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उसको जगप्रतरके असंख्यातवें भागपनेका विरोध है। संख्यात रूपोंसे अपवर्तित प्रतरांगुलका जगप्रतरमें भाग देनेपर दोनों ही राशियां आती हैं। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ ९१ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है। अनन्त भी तीन प्रकार है। उनमेंसे इस अनन्तमें ये जीवराशियां स्थित हैं, इसके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ ९२ ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं[1] जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, तेसु अणंताणंताणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो। संपहि दोसु अणंताणंतेसु एक्कस्स पडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ९३ ॥

एदेण उक्कस्साणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, लोगवयणण्णहाणुववत्तीदो। सेसं सुगमं।

वेउव्वियकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९४ ॥

सुगमं।

देवाणं संखेज्जदिभागूणो ॥ ९५ ॥

देवेसु पंचमण-पंचवचि-वेउव्वियमिस्सकायजोगिरासीओ देवाणं संखेज्जदिभागमेत्ताओ देवरासीदो अवणिदे अवसेसं वेउव्वियकायजोगिपमाणं होदि।

उपर्युक्त जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंमे अपहृत नहीं होते हैं ॥ ९२ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, उनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणियोंका अभाव है। अब दो अनन्तानन्तोंमेंसे एकके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ ९३ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, अन्यथा लोकनिर्देशकी उपपत्ति नहीं बनती। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

वैक्रियिककाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

वैक्रियिककाययोगी देवोंके संख्यातवें भागसे कम हैं ॥ ९५ ॥

देवोंमें पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, इन देवोंके संख्यातवें भागमात्र राशियोंको देवराशिमेंसे घटा देनेपर अवशेष वैक्रियिककाययोगियोंका प्रमाण होता है।

१ प्रतिषु 'परित्त-जुत्ताण' इति पाठः।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९६ ॥

सुगमं ।

देवाणं संखेज्जदिभागो ॥ ९७ ॥

देवरासिं संखेज्जवाससहस्सुवक्कमणकालसंचिदसंखेज्जखंडे कदे एगखंडं वेउव्विय-मिस्सरासिपमाणं होदि ।

आहारकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ९८ ॥

सुगमं ।

चदुवण्णं ॥ ९९ ॥

एदं पि सुगमं ।

आहारमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १०० ॥

सुगमं ।

संखेज्जा ॥ १०१ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे देवोंके संख्यातवें भागमात्र हैं ॥ ९७ ॥

संख्यात वर्षसहस्रमें होनेवाले उपक्रमणकालोंमें संचित देवराशिके संख्यात खण्ड करनेपर उनमेंसे एक खण्ड वैक्रियिकमिश्रकाययोगी राशिका प्रमाण होता है। (देखो जीवस्थान द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. ४०० का विशेषार्थ)।

आहारकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ९८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारककाययोगी द्रव्यप्रमाणसे चौवन हैं ॥ ९९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

आहारकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाणसे संख्यात हैं ॥ १०१ ॥

संखेज्जा त्ति वयणेण असंखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । संखेज्जं जदि वि अणेयपयारं तो वि चदुवण्णब्भंतरे चेव ते होंति, णो बहिद्धा, आहारमिस्सकालम्मि तिजोगावरुद्धपज्जत्ताहारसरीरकालादो संखेज्जगुणहीणम्मि संचिदाणं जीवाणं चदुवण्ण-संखाविरोहादो । आइरियपरंपरागदउवदेसेण पुण सत्तावीस जीवा होंति ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १०२ ॥

सुगमं ।

देवीहि सादिरेयं ॥ १०३ ॥

देवरासिं तेत्तीसखंडाणि काऊणेगखंडमवणिदे देवीणं पमाणं होदि । पुणो तत्थ तिरिक्ख-मणुस्साण इत्थिवेदरासिं पक्खित्ते सव्वित्थिवेदरासी होदि त्ति देवीहि सादिरेय-मिदि वुत्तं ।

पुरिसवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १०४ ॥

सुगमं ।

'संख्यात हैं' इस वचनसे असंख्यात और अनन्तका प्रतिषेध किया है । यद्यपि संख्यात भी अनेक प्रकार है तथापि वे चौवनके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं, क्योंकि तीन योगोंसे अवरुद्ध पर्याप्त आहारक शरीरकालसे संख्यातगुणे हीन आहारमिश्रकालमें संचित जीवोंके चौवन संख्याका विरोध है । किन्तु आचार्यपरम्परागत उपदेशसे सत्ताईस जीव होते हैं । (देखो जीवस्थान द्रव्यप्रमाणानुगम, सूत्र १२० की टीका) ।

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवियोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १०३ ॥

देवराशिके तेतीस खण्ड करके उनमेंसे एक खण्डके कम कर देनेपर देवियोंका प्रमाण होता है । पुनः उसमें तिर्यंच व मनुष्य सम्बन्धी स्त्रीवेदराशिको जोड़ देनेपर सर्व स्त्रीवेदराशि होती है, इसीलिये 'स्त्रीवेदी देवियोंसे कुछ अधिक हैं' ऐसा कहा है ।

पुरुषवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

देवेहि सादिरेयं ॥ १०५ ॥

देवरासिं तेत्तीसखंडाणि कादूण तत्थेगखंडं देवाणं पुरिसवेदपमाणं । पुणो तत्थ तिरिक्ख-मणुस्सपुरिसवेदरासिम्हि पक्खित्ते सव्वपुरिसवेदपमाणं होदि त्ति देवेहि सादिरेयपमाणं होदि त्ति वुत्तं ।

णवुंसयवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १०६ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ १०७ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तिविहे अणंते दोण्हमणंताणं पडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ १०८ ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, एदेसु अणंताणं-

पुरुषवेदी द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १०५ ॥

देवराशिके तेतीस खण्ड करके उनमेंसे एक खण्ड देवोंमें पुरुषवेदियोंका प्रमाण है । पुनः उसमें तिर्यंच व मनुष्य सम्बन्धी पुरुषवेदराशिको जोड़ देनेपर सर्व पुरुषवेदियोंका प्रमाण होता है, इसी कारण 'पुरुषवेदियोंका प्रमाण देवोंसे कुछ अधिक है' ऐसा कहा है ।

नपुंसकवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदी द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १०७ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । अब तीन प्रकारके अनन्तमेंसे दो अनन्तोंके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं —

नपुंसकवेदी कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ १०८ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया

ताणमोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो। दोसु अणंताणंतेसु एक्कस्सावहारणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १०९ ॥

एदेण उक्कस्साणंताणंतस्स पडिसेहो कदो। कुदो? लोगणिद्देसण्णहाणुववत्तीदो।

अवगदवेदा दव्वपमाणेण केवडिया? ॥ ११० ॥

सुगमं।

अणंता ॥ १११ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो। तिविहे अणंते कम्हि अवगदवेदाणं पमाणं होदि? अणंताणंते। कुदो? अदीदकालस्स उक्कस्सजुत्ताणंतं जहण्णमणंताणंतं च उल्लंघिय अजहण्णाणुक्कस्साणंताणंतम्मि अवट्ठिदस्स असंखेज्जदिभागभूदअवगदवेदरासी अणंताणंतो होदि त्ति अविरुद्धाइरियउवदेसादो। सेसं सुगमं।

गया है, क्योंकि, इनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है। शेष दो अनन्तानन्तोंमेंसे एकके अवधारणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

नपुंसकवेदी क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ १०९ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, अन्यथा लोकनिर्देशकी उपपत्ति नहीं बनती।

अपगतवेदी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? ॥ ११० ॥

यह सूत्र सुगम है।

अपगतवेदी द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १११ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है।

शंका—तीन प्रकारके अनन्तमेंसे कौनसे अनन्तमें अपगतवेदियोंका प्रमाण है?

समाधान—अपगतवेदियोंका प्रमाण अनन्तानन्त संख्यामें है, क्योंकि, उत्कृष्ट युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्तको लांघकर अजघन्यानुत्कृष्ट अनन्तानन्तमें अवस्थित अतीत कालके असंख्यातवें भागभूत अपगतवेदराशी अनन्तानन्त है, ऐसा अविरुद्ध अर्थात् एक मतसे आचार्योंका उपदेश है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ११२ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ ११३ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तिविहे अणंते एक्कस्सावहारणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ ११४ ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, एदेसु अणंताणंतोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । दोसु अणंताणंतेसु एक्कस्सावहारणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ ११५ ॥

एदेण उक्कस्सअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, लोगणिद्देसण्णहाणुववत्तीदो । सेसं सुगमं ।

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ११२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त चारों कषायवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ ११३ ॥

इस सूत्र द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । अब तीन प्रकारके अनन्तोंमेंसे एकके अवधारणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त चारों कषायवाले जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ ११४ ॥

इस सूत्र द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त, और जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, इनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणियोंका अभाव है । अब दो अनन्तानन्तोंमेंसे एकके अवधारणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उक्त चारों कषायवाले जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ ११५ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, अन्यथा लोकनिर्देशकी उपपत्ति नहीं बनती । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

अकसाई दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ११६ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ ११७ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । णवविधेसु अणंतेसु कम्हि अकसाइरासी होदि ? अजहण्णाणुक्कस्सअणंताणंते । कुदो ? जम्हि जम्हि अणंताणंतयं[1] मग्गिज्जदि तम्हि तम्हि अजहण्णाणुक्कस्समणंताणंतयं घेत्तव्वं इदि परियम्मवयणादो । जदि अणंताणंतयस्स गहणं तो 'अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि णावहिरंति कालेणेत्ति' किण्ण वुच्चदे ? ण, अदीदकालादो असंखेज्जगुणहीणाणमणवहरणविरोहादो । अणंताणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ त्ति किण्ण वुच्चदे ? ण, ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिपमाणेण कीरमाणे अणंताणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ होंति त्ति जुत्तिसिद्धत्तादो ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयभंगो ॥ ११८ ॥

अकषायी जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ११६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकषायी जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ ११७ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात व असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है ।

शंका — नौ प्रकारके अनन्तोंमें किस अनन्तमें अकषायी जीवराशि है ?

समाधान — अजघन्यानुत्कृष्ट अनन्तानन्तमें अकषायी जीवराशि है, क्योंकि, 'जहां जहां अनन्तानन्तकी खोज करना हो वहां वहां अजघन्यानुत्कृष्ट अनन्तानन्तका ग्रहण करना चाहिये' ऐसा परिकर्मका वचन है ।

शंका — यदि अनन्तानन्तका ग्रहण करना है तो 'कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे नहीं अपहृत होते हैं' ऐसा क्यों नहीं कहते ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, अतीत कालसे असंख्यातगुणे हीन अकषायी जीवोंके अपहृत न होनेका विरोध है ।

शंका — तो फिर अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण हैं, ऐसा क्यों नहीं कहते ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, उनके अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाणसे करनेपर अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियां होती हैं, यह युक्तिसे ही सिद्ध है ।

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंका प्रमाण नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ ११८ ॥

१ प्रतिषु 'अणतय' इति पाठः ।

जधा णवुंसयवेदस्स पमाणपरूवणा कदा तधा कादव्वा, विसेसाभावादो ।

विभंगणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ ११९ ॥

सुगमं ।

देवेहि सादिरेयं ॥ १२० ॥

बेछप्पण्णंगुलसदवग्गेण सादिरेगेण जगपदरम्मि भागे हिदे देवविभंगणाणिपमाणं होदि । पुणो एत्थ तिगदिविभंगणाणिपमाणे पक्खित्ते सव्वविभंगणाणिपमाणं होदि त्ति देवेहि सादिरेयमिदि पमाणपरूवणं कदं । सेसं सुगमं ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १२१ ॥

सुगमं ।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२२ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो, परित्त-जुत्तासंखेज्जाणमुक्कस्सअसंखेज्जा-

---

जिस प्रकार नपुंसकवेदियोंकी प्रमाणप्ररूपणा की है उसी प्रकार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंके प्रमाणकी प्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

विभंगज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

विभंगज्ञानी द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १२० ॥

साधिक दोसौ छप्पन अंगुलोंके वर्गका जगप्रतरमें भाग देनेपर देव विभंगज्ञानियोंका प्रमाण होता है । पुनः इसमें तीन गतियोंके विभंगज्ञानियोंका प्रमाण जोड़नेपर समस्त विभंगज्ञानियोंका प्रमाण होता है, इसी कारण ' विभंगज्ञानी देवोंसे कुछ अधिक हैं ' इस प्रकार उनकी प्रमाणप्ररूपणा की गयी है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त तीन ज्ञानवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ १२२ ॥

इस सूत्रसे संख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, साथ ही परीतासं-

संखेज्जस्स वि । जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जपडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १२३ ॥

एत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो अंतोमुहुत्तमिदि घेत्तव्वो । कुदो ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो ।

मणपज्जवणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १२४ ॥

सुगमं ।

संखेज्जा ॥ १२५ ॥

एदेण असंखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो । सेसं सुगमं ।

केवलणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १२६ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ १२७ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । सेसं सुगमं ।

ख्यात, युक्तासंख्यात और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध किया गया है । जघन्य असंख्यातासंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

उक्त तीन ज्ञानवाले जीवों द्वारा अन्तर्मुहूर्तमें पल्योपम अपहृत होता है ॥१२३॥

यहां आवलीका असंख्यातवां भाग अन्तर्मुहूर्त है इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि ऐसा आचार्यपरम्परागत उपदेश है ।

मनःपर्ययज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनःपर्ययज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे संख्यात हैं ॥ १२५ ॥

इस सूत्रके द्वारा असंख्यात व अनन्तका प्रतिषेध किया गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

केवलज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

केवलज्ञानी द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १२७ ॥

इस सूत्र द्वारा संख्यात और असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १२८ ॥

सुगमं ।

कोडिपुधत्तं ॥ १२९ ॥

एदं पि सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १३० ॥

सुगमं ।

सहस्सपुधत्तं ॥ १३१ ॥

एदस्स परूवणाए जीवट्ठाणभंगो ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥१३२॥

सुगमं ।

सदपुधत्तं ॥ १३३ ॥

संयममार्गणाके अनुसार संयत और सामायिक छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १२८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयत और सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कोटिपृथक्त्वप्रमाण हैं ॥ १२९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे सहस्रपृथक्त्वप्रमाण हैं ॥ १३१ ॥

इसकी प्ररूपणा जीवस्थानके समान है । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, सूत्र १५० की टीका) ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे शतपृथक्त्वप्रमाण हैं ॥ १३३ ॥

एदं पि सुगमं ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? ॥ १३४ ॥

सुगमं ।

सदसहस्सपुधत्तं ॥ १३५ ॥

एदस्स परूवणाए जीवट्ठाणभंगो ।

संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १३६ ॥

सुगमं ।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३७ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणमुक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, एदेसिं पडिवक्खसंखाणिद्देसादो । जहण्णअसंखेज्जासंखेज्जाओ हेट्ठिमसंखेज्जाणं पडिसेहट्ठ-मुत्तरसुत्तं भणदि—

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १३८ ॥

एत्थ अंतोमुहुत्तमिदि वुत्ते[1] असंखेज्जावलियाओ त्ति घेत्तव्वं । कुदो ?

यह सूत्र भी सुगम है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाणसे शतसहस्रपृथक्त्वप्रमाण हैं ॥ १३५ ॥

इसकी प्ररूपणा जीवस्थानके समान है । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ ९७, ४५०) ।

संयतासंयत द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतासंयत द्रव्यप्रमाणसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं ॥ १३७ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात, अनन्त और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यहां इनके प्रतिपक्षभूत संख्याका निर्देश है । जघन्य असंख्याता संख्यातसे नीचेके असंख्यातोंके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

संयतासंयतों द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १३८ ॥

यहां 'अन्तर्मुहूर्त' ऐसा कहनेपर 'असंख्यात आवलियां' ऐसा ग्रहण करना

१ प्रतिषु 'वुत्त' इति पाठः ।

वइपुल्लवाइयस्स अंतोमुहुत्तस्स गहणादो । एदेण पलिदोवमे भागे हिदे संजदासंजद-दव्वमागच्छदि । सेसं सुगमं ।

असंजदा मदिअण्णाणिभंगो ॥ १३९ ॥

पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे जदि वि असंजदाणं तेहिंतो भेदो अत्थि तो वि असंजदा मदिअण्णाणिभंगो त्ति वुच्चदे, दव्वट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे भेदाभावादो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥१४०॥

सुगमं ।

असंखेज्जा ॥ १४१ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो, तेसिं विरुज्झणिद्देसा । असंखेज्जं पि तिविहं । तत्थ अणहियय असंखेज्जपडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तमागदं—

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ॥ १४२ ॥

चाहिये, क्योंकि, वैपुल्यवाची अन्तर्मुहूर्तका यहां ग्रहण है । इस असंख्यात आवलीरूप अन्तर्मुहूर्तका पल्योपममें भाग देनेपर संयतासंयत द्रव्य आता है । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम, पृ. ६९, ८७-८८ तथा स्पर्शनानुगम, पृ. १५७) । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

असंयतोंका प्रमाण मतिअज्ञानियोंके समान है ॥ १३९ ॥

पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर यद्यपि असंयतोंके मतिअज्ञानियोंसे भेद है, तथापि 'असंयतोंका प्रमाण मतिअज्ञानियोंके समान है' ऐसा कहा है, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर दोनोंमें कोई भेद नहीं है ।

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १४० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी द्रव्यप्रमाणसे असंख्यात हैं ॥ १४१ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात और अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यहां उनके विरुद्ध संख्याका निर्देश है । असंख्यात भी तीन प्रकार है । उनमेंसे अनधिकृत असंख्यातोंके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र प्राप्त होता है—

चक्षुदर्शनी कालकी अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत होते हैं ॥ १४२ ॥

एदेण परित्त-जुत्तासंखेज्जाणं जहण्णासंखेज्जासंखेज्जस्स य पडिसेहो कदो, एत्थ असंखेज्जासंखेज्जोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो। इच्छिदअसंखेज्जासंखेज्जस्स जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण चक्खुदंसणीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदि-भागवग्गपडिभाएण ॥ १४३ ॥

सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागं वग्गिय एदेण जगपदरम्मि भागे हिदे चक्खु-दंसणिरासी होदि। एत्थ चउरिंदियादिअपज्जत्तरासी चक्खुदंसणक्खओवसमलक्खिओ जदि घेप्पदि तो जगपदरस्स पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो होदि। णवरि सो एत्थ ण गहिदो, पज्जत्तरासिम्हि व चक्खुदंसणुवजोगाभावादो, दव्वचक्खुदंसणाभावादो वा। एदेण उक्कस्सासंखेज्जासंखेज्जस्स पडिसेहो कदो।

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ॥ १४४ ॥

कुदो? दव्वट्ठियणयावलंबणे भेदाभावादो। सेसं सुगमं।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ १४५ ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और जघन्य असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, इनमें असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है। इच्छित असंख्यातासंख्यातके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा चक्षुदर्शनियों द्वारा सूच्यंगुलके संख्यातवें भागके वर्गरूप प्रतिभागमें जगप्रतर अपहृत होता है ॥ १४३ ॥

सूच्यंगुलके संख्यातवें भागका वर्ग करके उसका जगप्रतरमें भाग देनेपर चक्षुदर्शनीराशि होती है। यहां यदि चक्षुदर्शनावरणके क्षयोपशममें उपलक्षित चतुरिन्द्रियादि अपर्याप्त राशिका ग्रहण किया जाय तो प्रतरांगुलका असंख्यातवां भाग जगप्रतरका भागहार होता है। परन्तु उसे यहां नहीं ग्रहण किया, क्योंकि, अपर्याप्तराशिमें पर्याप्तराशिके समान चक्षुदर्शनोपयोगका अभाव है, अथवा द्रव्यचक्षुदर्शनका अभाव है। (देखो जीवस्थान द्रव्यप्रमाणानुगम, सूत्र १५७ की टीका)। इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका प्रतिषेध किया गया है।

अचक्षुदर्शनियोंका प्रमाण असंयतोंके समान है ॥ १४४ ॥

क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर दोनोंमें कोई भेद नहीं है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

अवधिदर्शनियोंका प्रमाण अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १४५ ॥

सुगमं ।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १४६ ॥

एदं पि सुगमं ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिया असंजदभंगो[1] ॥ १४७ ॥

कुदो ? दव्वट्ठियणयावलंबणादो । पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो, सो जाणिय वत्तव्वो ।

तेउलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १४८ ॥

सुगमं ।

जोदिसियदेवेहि सादिरेयं[2] ॥ १४९ ॥

बेछप्पण्णंगुलसदवग्गेण सादिरेगेण जगपदरम्मि भागे हिदे जोदिसियदेवा तेउ-

यह सूत्र सुगम है ।

केवलदर्शनियोंका प्रमाण केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १४६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण असंयतोंके समान है ॥ १४७ ॥

क्योंकि, यहां द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन किया गया है । परन्तु पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर विशेषता है, उसे जानकर कहना चाहिये ।

तेजोलेश्यावाले द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तेजोलेश्यावाले द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा ज्योतिषी देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १४९ ॥

साधिक दो सौ छप्पन अंगुलोंके वर्गका जगप्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध हो

१ कृष्ण-नील कापोतलेश्या एकशो द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्ताः, अनन्तानन्ताभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिर्नापह्रियन्ते कालेन, क्षेत्रेणानन्तानन्तलोकाः । त. रा. ४. २२. १०.

२ तेजोलेश्या द्रव्यप्रमाणेन ज्योतिर्देवाः साधिकाः । त. रा. ४, २२, १०.

लेस्सिया होंति । पुणो तत्थ भवणवासिय-वाणवेंतर-तिरिक्ख-मणुस्सतेउलेस्सियरासिम्हि पक्खित्ते सव्वा तेउलेस्सियरासी होदि । तेण जोदिसियदेवेहि सादिरेयमिदि वुत्तं । सेसं सुगमं ।

पम्मलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १५० ॥

सुगमं ।

सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं संखेज्जदिभागो[1] ॥ १५१ ॥

संखेज्जपदरंगुलेहि तप्पाओग्गेहि जगपदरम्मि भागे हिदे पम्मलेस्सियरासी होदि । सेसं सुगमं ।

सुक्कलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १५२ ॥

सुगमं ।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो[2] ॥ १५३ ॥

उतने तेजोलेश्यावाले ज्योतिषी देव हैं । पुनः उसमें भवनवासी, वानव्यन्तर, तिर्यंच और मनुष्य तेजोलेश्यावालोंकी राशिको जोड़नेपर सर्व तेजोलेश्यावालोंकी राशि होती है । इसी कारण 'तेजोलेश्यावालोंका प्रमाण ज्योतिषी देवोंसे कुछ अधिक है' ऐसा कहा है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पद्मलेश्यावाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ १५१ ॥

तत्प्रायोग्य संख्यात प्रतरांगुलोंका जगप्रतरमें भाग देनेपर पद्मलेश्यावालोंका प्रमाण होता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

शुक्ललेश्यावाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १५२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्ललेश्यावाले जीव द्रव्यप्रमाणसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ १५३ ॥

१ पद्मलेश्या द्रव्यप्रमाणेण संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यग्योनीनां संख्येयभागाः । त. रा. ४, २२, १०.

२ शुक्ललेश्या पल्योपमस्यासंख्येयभागाः । त. रा. ४, २२, १०.

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो। कुदो? एदेम्मि विरुद्धसंखाणिद्देसादो। अणिच्छिदअसंखेज्जपडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १५४ ॥

एत्थ अवहारकालो असंखेज्जावलियमेत्तो। एदेण पलिदोवमे भागे हिदे सुक्कलेस्सियरासी होदि। सेसं सुगमं।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया? ॥ १५५ ॥

सुगमं।

अणंता ॥ १५६ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो, सव्वस्स वयणस्स सपडिवक्खणिराकरणेण अप्पणो अत्थस्स पदुप्पायणादो। अणिच्छिदाणंतेसु भवियरासिस्स पडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ १५७ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात और अनन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, यहां इनके विरुद्ध संख्याका निर्देश है। अनिच्छित असंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

शुक्लेश्यावाले जीवों द्वारा अन्तर्मुहूर्तमे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १५४ ॥

यहां अवहारकाल असंख्यात आवलीमात्र है। इसका पल्योपममें भाग देनेपर शुक्लेश्यावाले जीवोंका प्रमाण होता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? ॥ १५५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

भव्यसिद्धिक जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १५६ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात और असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, सभी वचन अपने प्रतिपक्षका निराकरण कर स्वकीय अभीष्ट अर्थके प्रतिपादक होते हैं। अनिच्छित अनन्तोंमें भव्यराशिके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

भव्यसिद्धिक कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते ॥ १५७ ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, एदेसु अणंताणं-तोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो। अणवहरणं पि अदीदकालग्गहणादो। सेसं सुगमं। अणिच्छिदाणंताणंतपडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १५८ ॥

एदेण उक्कस्सअणंताणंतस्स पडिसेहो कदो, अणंताणंताणि सव्वपज्जयपढम-वग्गमूलाणि त्ति अभणिय अणंताणंतलोगवयणादो। सेसं सुगमं।

अभवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया? ॥ १५९ ॥

सुगमं।

अणंता ॥ १६० ॥

जहण्णजुत्ताणंतमिदि घेत्तव्वं। कुदो? आइरियपरंपरागयउवदेसादो। कधं एदस्स

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, इनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणियोंका अभाव है। अपहृत न होनेका कारण भी यह है कि यहां अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे केवल अतीत कालका ग्रहण किया गया है। शेष सूत्रार्थ सुगम है। अनिच्छित अनन्तानन्तके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

भव्यसिद्धिक जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ १५८ ॥

इस सूत्रके द्वारा उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, 'सर्व पर्यायोंके प्रथम वर्गमूलप्रमाण अनन्तानन्त' ऐसा न कहकर अनन्तानन्त लोकोंका कथन किया गया है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

अभव्यसिद्धिक द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? ॥ १५९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

अभव्यसिद्धिक द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १६० ॥

यहां अनन्तसे 'युक्तानन्त' ऐसा ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इस प्रकार आचार्यपरम्परागत उपदेश है।

शंका—व्ययके न होनेसे व्युच्छित्तिको प्राप्त न होनेवाली अभव्यराशिके

अव्वए[1] संते अव्वोच्छिज्जमाणस्स[2] अणंतववएसो ? ण, अणंतस्स केवलणाणस्स चेव विसए अवट्ठिदाणं संखाणमुवयारेण अणंतत्तविरोहाभावादो।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्मादिट्ठी उवसमसम्मादिट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १६१ ॥

सुगमं।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६२ ॥

एदेण संखेज्जाणंताणं पडिसेहो कदो, उक्कस्सअसंखेज्जासंखेज्जस्स वि। अणिच्छिदअसंखेज्जपडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण ॥ १६३ ॥

एत्थ सम्मादिट्ठी-वेदगसम्मादिट्ठीणमवहारकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागो

'अनन्त' यह संज्ञा कैसे सम्भव है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, अनन्तरूप केवलज्ञानके ही विषयमें अवस्थित संख्याओंके उपचारसे अनन्तपना माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १६१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ १६२ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात और अनन्तका तथा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातका भी प्रतिषेध किया गया है। अनिच्छित असंख्यातके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं —

उक्त जीवों द्वारा अन्तर्मुहूर्तसे पल्योपम अपहृत होता है ॥ १६३ ॥

यहां सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टियोंका अवहारकाल आवलीके असंख्यातवें

१ प्रतिषु 'ववए' इति पाठः।

२ अप्रतौ 'वोच्छिण्णस्स माणस्स', आप्रतौ 'वोछिज्जमाणस्स', काप्रतौ 'वोछिज्जस्स माणस्स' मप्रतौ 'वोच्छिज्जमाणस्स माणस्स' इति पाठः।

त्ति घेत्तव्वो। कुदो? सुत्ताविरुद्धगुरूवदेसादो। खइयसम्माइट्ठीणं पुण संखेज्जावलियाओ, अवसेसाणमसंखेज्जावलियाओ त्ति घेत्तव्वं। सेसं सुगमं।

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो ॥ १६४ ॥

कुदो? दव्वट्ठियणयावलंबणे दोण्हं रासीणं भेदाणुवलंभादो।

सण्णियाणुवादेण सण्णी दव्वपमाणेण केवडिया? ॥ १६५ ॥

सुगमं।

देवेहि सादिरेयं ॥ १६६ ॥

कुदो? देवा सव्वे सण्णिणो, तत्थ णेरइय-मणुस्सरासिमसंखेज्जसेडिमेत्तं पुणो जगपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ततिरिक्खसण्णिरासिं च पक्खित्ते सयलसण्णीणं पमाणुप्पत्तीदो। सेसं सुगमं।

असण्णी असंजदभंगो ॥ १६७ ॥

एदं पि सुगमं।

भागमात्र ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, ऐसा सूत्रसे अविरुद्ध गुरूपदेश है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अवहारकाल संख्यात आवली तथा शेष उपशमसम्यग्दृष्टि आदि तीनका अवहारकाल असंख्यात आवलीप्रमाण ग्रहण करना चाहिये। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

मिथ्यादृष्टियोंका द्रव्यप्रमाण असंयत जीवोंके समान है ॥ १६४ ॥

क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर मिथ्यादृष्टि और असंयत इन दोनों राशियोंमें कोई भेद नहीं है।

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? ॥ १६५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

संज्ञी जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा देवोंसे कुछ अधिक हैं ॥ १६६ ॥

क्योंकि, देव सब संज्ञी हैं; उनमें असंख्यात श्रेणिमात्र नारक और मनुष्य राशिको तथा जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण तिर्यंच संज्ञिराशिको मिलानेपर समस्त संज्ञियोंका प्रमाण उत्पन्न होता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

असंज्ञी जीवोंका प्रमाण असंयतोंके समान है ॥ १६७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा दव्वपमाणेण केवडिया ? ॥ १६८ ॥

सुगमं ।

अणंता ॥ १६९ ॥

एदेण संखेज्जासंखेज्जाणं पडिसेहो कदो । तिविहेसु अणंतेसु अणिच्छिदाणंत-पडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि —

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ॥ १७० ॥

एदेण परित्त-जुत्ताणंताणं जहण्णअणंताणंतस्स य पडिसेहो कदो, एदेसु अणंताणंतोसप्पिणि-उस्सप्पिणीणमभावादो । उक्कस्सअणंताणंतस्स पडिसेहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तेण अणंताणंता लोगा ॥ १७१ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं दव्वपमाणाणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

आहारमार्गणाके अनुसार आहारक और अनाहारक जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? ॥ १६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक और अनाहारक जीव द्रव्यप्रमाणसे अनन्त हैं ॥ १६९ ॥

इस सूत्रके द्वारा संख्यात और असंख्यातका प्रतिषेध किया गया है । तीन प्रकारके अनन्तोंमें अनिच्छित अनन्तोंके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

आहारक और अनाहारक जीव कालकी अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंसे अपहृत नहीं होते हैं ॥ १७० ॥

इस सूत्रके द्वारा परीतानन्त, युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्तका प्रतिषेध किया गया है, क्योंकि, इनमें अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियोंका अभाव है । उत्कृष्ट अनन्तानन्तके प्रतिषेधार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

आहारक और अनाहारक जीव क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं ॥ १७१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार द्रव्यप्रमाणानुगम अनियोगद्वार समाप्त हुआ ।

खेत्ताणुगमो

खेत्ताणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १ ॥

तत्थ सत्थाणं दुविहं सत्थाणसत्थाणं विहारवदिसत्थाणमिदि । वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियभेएण समुग्घादो चउव्विहो । एत्थ णेरइएसु आहारसमुग्घादो णत्थि, महिड्ढिपत्ताणं[1]मिसीणमभावादो । केवलिसमुग्घादो वि णत्थि, तत्थ सम्मत्तं मोत्तूण वयगंधस्स वि अभावादो । तेजइयसमुग्घादो[2] वि तत्थ णत्थि, विणा महव्वएहि तदभावादो । उववादो एगविहो । तत्थ वेदणावसेण ससरीरादो बाहिमेगपदेसमादिं कादूण जावुक्कस्सेण ससरीर-तिगुण विपुंजणं वेयणसमुग्घादो णाम । कसायतिव्वदाए ससरीरादो जीवपदेसाणं तिगुणविपुंजणं[3] कसायसमुग्घादो णाम । विविहिड्ढिस्स[4] माहप्पेण संखेज्जासंखेज्जजोयणाणि सरीरेण ओट्ठहिय अवट्ठाणं वेउव्वियसमुग्घादो णाम । अप्पप्पणो अच्छिदपदेसादो

क्षेत्रानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १ ॥

इनमें स्वस्थान पद स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानके भेदसे दो प्रकार है । वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणंतिकके भेदसे समुद्घात चार प्रकार है । यहां नारकियोंमें आहारकसमुद्घात नहीं है, क्योंकि, महर्धिप्राप्त ऋषियोंका वहां अभाव है । केवलिसमुद्घात भी नहीं है, क्योंकि, वहां सम्यक्त्वको छोड़ व्रतका गन्ध भी नहीं है । तैजससमुद्घात भी वहां नहीं है, क्योंकि, विना महाव्रतोंके तैजससमुद्घात नहीं होता । उपपाद एक प्रकार है । इनमें वेदनाके वशसे अपने शरीरसे बाहर एक प्रदेशको आदि करके उत्कर्षतः अपने शरीरसे तिगुणे आत्मप्रदेशोंके फैलनेका नाम वेदना-समुद्घात है । कषायकी तीव्रतासे जीवप्रदेशोंका अपने शरीरसे तिगुणे प्रमाण फैलनेको कषायसमुद्घात कहते हैं । विविध ऋद्धियोंके माहात्म्यसे संख्यात व असंख्यात योजनोंको शरीरसे व्याप्त करके जीवप्रदेशोंके अवस्थानको वैक्रियिकसमुद्घात कहते हैं । आयामकी

१ प्रतिषु ' महिड्ढिपत्ताण ' इति पाठः ।

२ आ-काप्रत्योः ' तेजइयसमुग्वादे ' इति पाठः ।

३ अप्रतौ ' तिगुणाविपुजण ', आ-काप्रत्योः ' तिगुणविपुंजण- ' इति पाठः ।

४ अ-काप्रत्योः ' विविहिड्ढिस्स ' इति पाठः ।

जाव उप्पज्जमाणखेत्तं ति आयामेण एगपदेसमादिं कादूण जावुक्कस्सेण सरीर-तिगुणबाहल्लेण कंडेक्कखंभट्ठियत्तोरण-हल-गोमुत्तायारेण अंतोमुहुत्तावट्ठाणं मारणंतिय-समुग्घादो णाम । उववादो दुविहो— उजुगदिपुव्वओ विग्गहगदिपुव्वओ चेदि । तत्थ एक्केक्कओ दुविहो— मारणंतियसमुग्घादपुव्वओ तव्विवरीदओ चेदि । तेजासरीरं दुविहं पसत्थमप्पसत्थं चेदि । अणुकंपादो दक्खिणंसविणिग्गयं डमर-मारीदिपसमणक्खमं दोसयरहिदं[1] सेदवण्णं णव-बारह[2]जोयणरुंदायामं पसत्थं णाम, तव्विवरीदमियरं । आहार-समुग्घादो णाम हत्थपमाणेण सव्वंगसुंदरेण समचउरससंठाणेण हंसधवलेण रस-रुधिर-मांस-मेदट्ठि-मज्ज-सुक्कसत्तधाउवज्जिएण विसाग्गि-सत्थादिसयल[3]बाहामुक्केण वज्ज-सिला-थंभ-जलपव्वयगमणदच्छेण सीसादो उग्गएण देहेण तित्थयरपादमूलगमणं । दंड-कवाड-पदर-लोगपूरणाणि केवलिसमुग्घादो णाम । अप्पप्पणो उप्पण्णगामाईणं सीमाए अंतो परिभमणं सत्थाणसत्थाणं णाम । तत्तो बाहिरपदेसे हिंडणं विहारवदिसत्थाणं णाम । तत्थ 'णेरइया अप्पणो पदेहि केवडिखेत्ते होंति' त्ति आसंकासुत्तं । एवमासंकिय उत्तर-

अपेक्षा अपने अपने अधिष्ठित प्रदेशसे लेकर उत्पन्न होनेके क्षेत्र तक, तथा बाहल्यसे एक प्रदेशको आदि करके उत्कर्षतः शरीरसे तिगुणे प्रमाण जीवप्रदेशोंके काण्ड, एक खम्भ-स्थित तोरण, हल व गोमूत्रके आकारसे अन्तर्मुहूर्त तक रहनेको मारणान्तिकसमुद्घात कहते हैं। (देखो पुस्तक १, पृ. २९९)। उपपाद दो प्रकार है— ऋजुगतिपूर्वक और विग्रहगतिपूर्वक। इनमें प्रत्येक मारणांतिकसमुद्घातपूर्वक और तद्विपरीतके भेदसे दो प्रकार है। तैजसशरीर प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे दो प्रकार है। उनमें अनुकम्पासे प्रेरित होकर दाहिने कंधेसे निकले हुए, राष्ट्रविप्लव और मारी आदि रोगविशेषके शान्त करनेमें समर्थ, दोष रहित, श्वेतवर्ण, तथा नौ योजन विस्तृत एवं बारह योजन दीर्घ शरीरको प्रशस्त, और इससे विपरीतको अप्रशस्त तैजसशरीर कहते हैं। हस्तप्रमाण, सर्वाङ्गसुन्दर, समचतुरस्रसंस्थानसे युक्त, हंसके समान धवलः रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र, इन सात धातुओंसे रहितः विष, अग्नि एवं शस्त्रादि समस्त बाधाओंसे मुक्त; वज्र, शिला, स्तम्भ, जल व पर्वतमेंसे गमन करनेमें दक्ष; तथा मस्तकसे उत्पन्न हुए शरीरसे तीर्थंकरके पादमूलमें जानेका नाम आहारकसमुद्घात है। दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणरूप जीवप्रदेशोंकी अवस्थाको केवलिसमुद्घात कहते हैं। अपने अपने उत्पन्न होनेके ग्रामादिकोंकी सीमाके भीतर परिभ्रमण करनेको स्वस्थान-स्वस्थान और इससे बाह्य प्रदेशमें घूमनेको विहारवत्स्वस्थान कहते हैं। उनमें 'नारकी जीव अपने पदोंसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं' यह आशंकासूत्र है। इस प्रकार शंका करके

१ प्रतिषु 'दमर-मारीदिसमक्खमा दु दोसयरहिदं', मप्रतौ 'दमरमारीदिदोसक्खमा दोसयरहिदं' इति पाठः।

२ प्रतिषु 'णवारह' इति पाठः।

३ प्रतिषु 'मथल-' इति पाठः।

४ प्रतिषु 'पच्चय-' इति पाठः।

सुत्तं भणदि—

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २ ॥

एत्थ लोगो पंचविहो– उड्ढलोगो अधोलोगो तिरियलोगो मणुसलोगो सामण्णलोगो चेदि। एदेसिं पंचण्हं पि लोगाणं लोगग्गहणेण गहणं कादव्वं। कुदो? देसामासियत्तादो। णेरइया सव्वपदेहि चदुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागे होंति, माणुसलोगादो असंखेज्जगुणे। तं जहा– सत्थाणसत्थाणरासी मूलरासिस्स संखेज्जा भागा, विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादरासीओ मूलरासिस्स संखेज्जदिभागो। एदमत्थपदं सव्वत्थ वत्तव्वं। पुणो सत्थाणसत्थाणादिणेरइयरासीओ ठविय अंगुलस्स संखेज्जदिभाग-मेत्तओगाहणाहि गुणिय तेरासियकमेण पंचहि लोगेहि ओवट्टिदे चदुण्णं लोगाणमसंखे-ज्जदिभागो, माणुसलोगादो असंखेज्जगुणमागच्छदि। णवरि वेयण-कसाय-वेउव्विय-समुग्घादेसु ओगाहणा णवगुणा कायव्वा। मारणंतियखेत्ते आणिज्जमाणे बिदियपुढवि-दव्वादो आणेदव्वं, तत्थ रज्जुमेत्तायामुवलंभादो। पढमपुढविमारणंतियखेत्तं घेत्तूण ओवट्टणा किण्ण कीरदे, असंखेज्जगुणदव्वदंसणादो, आवलियाए असंखेज्जदिभाग-

उत्तर सूत्र कहते हैं—

नारकी जीव उक्त तीन पदोंमें लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २ ॥

यहां लोक पांच प्रकारका है— ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक, मनुष्यलोक और सामान्यलोक। यहां लोकके ग्रहणसे इन पांचों ही लोकोंका ग्रहण करना चाहिये क्योंकि, यह सूत्र देशामर्शक है। नारकी जीव सर्व पदोंमें चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। वह इस प्रकार है— स्वस्थान-स्वस्थानराशि मूलराशिके संख्यात बहुभाग तथा विहारवत्स्वस्थानराशि, वेदनासमुद्घातराशि, कषायसमुद्घातराशि एवं वैक्रियिकसमुद्घातराशि, ये राशियां मूलराशिके संख्यातवें भागप्रमाण होती हैं। यह अर्थपद सर्वत्र कहना चाहिये। पुनः स्वस्थान-स्वस्थानादि नारकराशियोंको स्थापित कर अंगुलके संख्यातवें भागमात्र अवगाहनाओंसे गुणित कर त्रैराशिकक्रमसे पांच लोकोंसे (पृथक् पृथक्) अपवर्तित करनेपर चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषलोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र लब्ध होता है। विशेषता यह है कि वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातमें अवगाहना नौगुणी करना चाहिये। (जीवस्थानकी क्षेत्रप्ररूपणामें वैक्रियिकसमुद्घातके लिये अवगाहना नौगुणी नहीं किन्तु संख्यातगुणी अलगसे कही गई है। देखो पु. ४, पृ. ६३)। मारणांतिक क्षेत्रके निकालते समय उसे द्वितीय पृथिवीके द्रव्यसे निकालना चाहिये, क्योंकि, वहां राजुमात्र आयामकी उपलब्धि है।

शंका—प्रथम पृथिवीके मारणांतिकक्षेत्रको ग्रहण कर अपवर्तना क्यों नहीं की जाती, क्योंकि, वहां असंख्यातगुणा द्रव्य देखा जाता है, तथा आवलीके असंख्यातवें

मेत्तुवक्कमणकालुवलंभादो च ? ण, तत्थ संखेज्जजोयणमेत्तमारणंतियखेत्तायामदंसणादो। पढमपुढवीए वि विग्गहगईए कधं मारणंतियजीवाणमसंखेज्जजोयणायामं मारणंतियखेत्तमुवलब्भदे ? ण, असंखेज्जसेडिपढमवग्गमूलमेत्तायाममारणंतियखेत्तजीवाणं बहुआणमणुवलंभादो। तेण बिदियपुढविदव्वे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालेण भागे हिदे एगसमएण मरंतजीवाण पमाणं होदि। पुणो एदेसिमसंखेज्जदिभागो मारणंतिएण विणा कालं करेदि, बहुआणं सुहपाणीणमभावादो असंखेज्जा भागा मारणंतियं करेंति। मारणंतियं करेंताणमसंखेज्जदिभागो उजुगदीए मारणंतियं करेदि, अप्पणो ट्ठिदपदेसादो कंडुज्जुवखेत्तम्हि उप्पज्जमाणाणं बहुआणमणुवलंभादो। विग्गहगदीए मारणंतियं करेंताणमसंखेज्जदिभागो मारणंतिएण विणा विग्गहगदीए उप्पज्जमाणरासी होदि, तेण मरंतजीवाणं असंखेज्जे भागे मारणंतियकालब्भंतरउवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तेण गुणिदे मारणंतियकालम्हि संचिदरासिपमाणं होदि। पुणो तम्मुहवित्थारेण णवरज्जुगुणेण गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि।

भागमात्र उपक्रमणकालकी भी उपलब्धि है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहां संख्यात योजनमात्र मारणान्तिक क्षेत्रका आयाम देखा जाता है।

शंका—तो फिर प्रथम पृथिवीमें भी विग्रहगतिमें मारणान्तिक जीवोंका असंख्यात योजन आयामवाला मारणान्तिक क्षेत्र कैसे उपलब्ध होता है ? (देखो पु. ४, पृ. ६३ ६४)

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात श्रेणियोंके प्रथम वर्गमूलमात्र आयामवाले मारणान्तिक क्षेत्रमें बहुत जीवोंकी अनुपलब्धि है।

इसलिये द्वितीय पृथिवीके द्रव्यमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमण कालका भाग देनेपर एक समयमें मारणान्तिक जीवोंका प्रमाण होता है। पुनः इनके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव मारणान्तिकसमुद्घातके विना ही कालको करते हैं, तथा वहां बहुत पुण्यवान् प्राणियोंका अभाव होनेसे असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव मारणान्तिकसमुद्घातको करते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात करनेवालोंके असंख्यातवें भागमात्र ऋजुगतिसे मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, क्योंकि, अपने स्थित प्रदेशसे बाणके समान ऋजु क्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाले बहुत जीव नहीं पाये जाते। विग्रहगतिसे मारणान्तिकसमुद्घातको करनेवालोंके असंख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिकके विना विग्रहगतिसे उत्पन्न होनेवाली राशि है, इस कारण मरनेवाले जीवोंके असंख्यात बहुभागको आवलीके असंख्यातवें भागमात्र मारणान्तिककालके भीतर उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिककालमें संचित राशिका प्रमाण होता है। पुनः उसे नौराजुगुणित मुखविस्तारसे गुणा करनेपर मारणान्तिक क्षेत्र होता है। यहां भी पांच लोकोंका अपवर्तन

एत्थ वि पंचलोगोवट्टणं पुव्वं व कायव्वं ।

उववादखेत्ते आणिज्जमाणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण बिदियपुढविदव्वे भागे हिदे तिरिक्खेहिंतो बिदियपुढवीए उप्पज्जमाणरासी होदि । एदस्स असंखेज्जदिभागो चेव उजुगदीए उप्पज्जदि, कंडुज्जुएण मग्गेण सगउप्पत्तिट्ठाणमागच्छमाणजीवाणं बहुयाणमणुवलंभादो । तेणेदस्स असंखेज्जा भागा विग्गहगदीए उप्पज्जमाणतिरिक्खरासी होदि । पुणो एदं दव्वं तिरिक्खोगाहणमुहवित्थारेण तप्पाओग्गअसंखेज्जजोयणगुणेण गुणिदे उववादखेत्तं होदि । ओवट्टणा पुव्वं व कायव्वा । सेसं जाणिय वत्तव्वं ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ३ ॥

कुदो ? सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि लोगस्स असंखेज्जदिभागत्तं पडि विसेसाभावादो । एसो दव्वट्ठियणयं पडुच्च णिद्देसो । पज्जवट्ठियणयं पडुच्च परूविज्जमाणे सत्तण्हं पुढवीणं दव्वविसेसो ओगाहणविसेसो मारणंतिय-उववादखेत्ताणमायामविसेसो च अत्थि । णवरि सो जाणिय वत्तव्वो ।

पूर्वके समान करना चाहिये ।

उपपादक्षेत्रके निकालनेमें पल्योपमके असंख्यातवें भागसे द्वितीय पृथिवीके द्रव्यको भाजित करनेपर तिर्यंचोंसे द्वितीय पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाली राशि होती है। इसका असंख्यातवां भाग ही ऋजुगतिसे उत्पन्न होता है, क्योंकि, बाणके समान ऋजु मार्गसे अपने उत्पत्तिस्थानको आनेवाले जीव बहुत नहीं पाये जाते । इसीलिये इसके असंख्यात बहुभागप्रमाण विग्रहगतिसे उत्पन्न होनेवाली तिर्यंचराशि है। पुनः इस द्रव्यको तत्प्रायोग्य असंख्यात योजनसे गुणित तिर्यंचोंकी अवगाहनारूप मुखविस्तारसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्र होता है। अपवर्तन पूर्वके समान करना चाहिये । शेष जानकर कहना चाहिये ।

इसी प्रकार सात पृथिवियोंमें नारकी जीव उपर्युक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३ ॥

क्योंकि, स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागत्वके प्रति कोई विशेषता नहीं है। यह निर्देश द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे है। पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा प्ररूपण करनेपर सात पृथिवियोंके द्रव्यकी विशेषता, अवगाहनाकी विशेषता और मारणान्तिक एवं उपपाद क्षेत्रोंके आयामकी विशेषता भी है । इसलिये उसे जानकर कहना चाहिये ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४ ॥

सत्थाणसत्थाण- विहारवदिसत्थाण- वेदण- कसाय- वेउव्विय- मारणंतिय- उववाद- पदाणि तिरिक्खेसु अत्थि, अवसेसाणि णत्थि । एदेहि पदेहि तिरिक्खा केवडिखेत्ते होंति त्ति आसंकिय परिहारं भणदि—

सव्वलोए ॥ ५ ॥

कुदो ? आणंतियादो । ण च ण समंति त्ति आसंकणिज्जं, लोगागासम्मि अणंतोगाहणसत्तिसंभवादो । विहारवदिसत्थाणखेत्तं तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणं । कुदो ? तसपज्जत्ताणं तिरिक्खाणं संखेज्जदिभागम्मि विहारुवलंभादो । तदो एदं पुध परूवेदव्वं ? ण, सत्थाणम्मि एदस्संतब्भूदत्तणेण पुध परूवणाभावादो । वेउव्वियसमुग्घादखेत्तं चदुण्हं

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, ये पद तिर्यंचोंमें होते हैं, शेष नहीं होते। 'इन पदोंसे तिर्यंच कितने क्षेत्रमें रहते हैं' इस प्रकार आशंका करके उसका परिहार कहते हैं—

तिर्यंच जीव उक्त पदोंकी अपेक्षा सर्व लोकमें रहते हैं ? ॥ ५ ॥

क्योंकि, वे अनन्त हैं। अनन्त होनेसे वे लोकमें नहीं समाते हैं, ऐसी आशंका भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि, लोकाकाशमें अनन्त अवगाहनशक्ति सम्भव है। विहारवत्स्वस्थानक्षेत्र तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, त्रस पर्याप्त तिर्यंचोंका तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें विहार पाया जाता है।

शंका— स्वस्थानस्वस्थानसे विहारवत्स्वस्थानक्षेत्रमें विशेषता होनेके कारण इसकी पृथक् प्ररूपणा करना चाहिये ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, स्वस्थानमें इसका अन्तर्भाव होनेसे पृथक् प्ररूपणा नहीं की गई।

वैक्रियिकसमुद्घातका क्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मनुष्यक्षेत्रसे

लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं। कुदो ? तिरिक्खेसु विउव्वमाणरासी पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तघणंगुलेहि गुणिदसेडीमेत्तो त्ति गुरूवदेसादो। तम्हा एदस्स पुध परूवणा कादव्वा ? ण, एदस्स समुग्घादे अंतब्भावादो। सेसं सुगमं।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ६ ॥

एदमासंकासुत्तं सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७ ॥

एदं देसामासियं सुत्तं, देसपदुप्पायणमुहेण सूचिदाणेयत्थादो[1]। एत्थ ताव पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं वुच्चदे। तं जहा— एदे

असंख्यातगुणा है, क्योंकि, तिर्यंचोंमें विक्रिया करनेवाली राशि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र घनांगुलोंसे गुणित जगश्रेणिप्रमाण है, ऐसा गुरुका उपदेश है।

शंका— चूंकि तिर्यंचोंके वैक्रियिकसमुद्घातक्षेत्रमें विशेषता है इस कारण इसकी पृथक् प्ररूपणा करना चाहिये ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, इसका समुद्घातमें अन्तर्भाव हो जाता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादमें कितने क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ६ ॥

यह आशंकासूत्र सुगम है।

उपर्युक्त चार प्रकारके तिर्यंच उक्त पदोंमें लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, क्योंकि, एक देश कथनकी मुख्यतासे अनेक अर्थोंको सूचित करता है। यहां पहले पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंका क्षेत्र कहा जाता है। वह इस प्रकार है— ये तीनों ही स्वस्थानस्वस्थान,

१ प्रतिषु ' सूचिदाणेयद्धादो ' इति पाठः।

तिण्णि वि सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। कुदो ? एदेसिं संखेज्जघणंगुलोगाहणत्तादो। पंचिंदियतिरिक्खेसु अपज्जत्तरासी होदि बहुओ, तक्खेत्तेण किण्ण ओवट्टणा कीरदे? ण, तत्थ अंगुलस्स असंखेज्जदिभागोगाहणम्मि बहुवखेत्ताणुवलंभादो। विहारपाओग्गरासिस्स संखेज्जा भागा सत्थाणसत्थाणरासीए एत्थ संखेज्जदिभागमेत्ता सेसरासीओ त्ति घेत्तव्वं।

वेउव्वियसमुग्घादखेत्तं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणं। कुदो ? तिरिक्खेसु विउव्वमाणरासिस्स असंखेज्जघणंगुलेहि गुणिदसेडिमेत्तपमाणु-वलंभादो। एदे तिण्णि वि मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अच्छंति। कुदो ? एदेसिं तिण्हं पंचिंदियतिरिक्खाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-मेत्तभागहारुवलंभादो। तं जहा— एदाओ तिण्णि वि रासीओ पहाणीभूदसंखेज्जवस्साउअ-तिरिक्खोवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे एगसमएण मरंतजीवाणं पमाणं होदि। एदेसिमसंखेज्जदिभागो चेव मारणंतिएण विणा णिप्फिड-

विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त होकर तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, ये संख्यात घनांगुलप्रमाण अवगाहनावाले हैं।

शंका—पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें अपर्याप्त राशि बहुत है, इसलिये उनके क्षेत्रसे क्यों नहीं अपवर्तन करते?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंमें अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहना होनेसे बहुत क्षेत्रकी प्राप्ति नहीं होती। विहारप्रायोग्यराशिके संख्यात बहुभागप्रमाण एवं स्वस्थानस्वस्थान राशिके संख्यातवें भागमात्र यहां शेष राशियां हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

वैक्रियिकसमुद्घातक्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि, तिर्यंचोंमें विक्रिया करनेवाली राशिका प्रमाण असंख्यात घनांगुलोंसे गुणित जगश्रेणीमात्र पाया जाता है। ये तीनों ही तिर्यंच मारणान्तिक-समुद्घातको प्राप्त होकर तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, इन तीनों पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र भागहार उपलब्ध है। वह इस प्रकार है— इन तीनों ही राशियोंमें प्रधानभूत संख्यातवर्षायुष्क तिर्यंचोंके उपक्रमण-कालरूप आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर एक समयमें मरनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है। इनके असंख्यातवें भाग ही मारणान्तिकसमुद्घातके विना मरण करने-

माणरासि त्ति कट्टु एदस्स असंखेज्जे भागे मारणंतियउवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे गुणगारुवक्कमणकालादो भागहारुवक्कमणकालो संखेज्जगुणो त्ति उवरिमगुणगारेण हेट्ठिमभागहारमावलियाए असंखेज्जदिभागमोवट्टिय सेसेण भागे हिदे सग-सगरासीणं संखेज्जदिभागो आगच्छदि। पुणो असंखेज्जजोयणाणि मुक्कमारणंतियजीवे इच्छिय अण्णेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो। पुणो एदं रासिं रज्जुगुणिदसंखेज्जपदरंगुलेहि[1] गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि। एदेण तिसु लोगेसु भागे हिदेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि त्ति तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अच्छंति त्ति वुत्तं। णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे।

तिण्हं रासीणमुववादखेत्तं पि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणं। एदस्स खेत्तस्स पमाणे आणिज्जमाणे मारणंतियभंगो। णवरि एगसमयसंचिदो एसो रासि त्ति कट्टु आवलियअसंखेज्जदिभागो गुणगारो अवणेदव्वो। पढमदंड-

वाली राशि है, ऐसा जानकर इसके असंख्यात बहुभागको मारणान्तिक उपक्रमणकालरूप आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर चूंकि गुणकारभूत उपक्रमणकालसे भागहारभूत उपक्रमणकाल संख्यातगुणा है, इसलिये उपरिम गुणकारसे आवलीके असंख्यातवें भागरूप अधस्तन भागहारका अपवर्तन करके शेषका भाग देनेपर अपनी अपनी राशियोंका संख्यातवां भाग आता है। पुनः असंख्यात योजनों तक मारणान्तिक समुद्घातको करनेवाले जीवोंकी इच्छाराशि स्थापित कर अन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र भागहारको स्थापित करना चाहिये। पुनः इस राशिको राजुसे गुणित असंख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित करनेपर मारणान्तिक क्षेत्रका प्रमाण होता है। इसका तीन लोकोंमें भाग देनेपर पल्योपमका असंख्यातवां भाग लब्ध होता है। इसीलिये 'तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं' ऐसा कहा है। उक्त जीव मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त होकर मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। (देखो पुस्तक ४, पृ. ७१-७२)।

उक्त तीन राशियोंका उपपादक्षेत्र भी तीन लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा है। इस क्षेत्रके प्रमाणके निकालनेकी रीति मारणान्तिकक्षेत्रके समान है। विशेष इतना है कि यह राशि एक समय संचित है, ऐसा जानकर आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार अलग करना चाहिये। प्रथम

१ प्रतिषु 'रज्जुगुणिदअसखेज्जपदरंगुलेहि' इति पाठः।

मुवसंहरिय बिदियदंडट्ठिदजीवे इच्छिय अवरे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो ।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? उस्सेधघणंगुले पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिदे एगखंडमेत्तोगाहणादो । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? दो-तिण्णि-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तभागहाराणं जहाकमेण मारणंतिय-उववादखेत्तेसु उवलंभादो । सेसं सुगमं ।

मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८ ॥

एत्थ सत्थाणणिद्देसेण सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणाणं गहणं, सत्थाणत्तणेण दोण्हं भेदाभावादो । सेसं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९ ॥

दण्डका उपसंहार कर द्वितीय दण्डमें स्थित जीवोंकी इच्छा कर अन्य पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त होकर चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उत्सेध घनांगुलको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे खण्डित करनेपर एक खण्डमात्र पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंकी अवगाहना लब्ध होती है। मारणान्तिक और उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, पल्योपमके दो व तीन असंख्यातवें भागमात्र भागहार यथाक्रमसे मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्रोंमें उपलब्ध हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी स्वस्थान व उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८ ॥

इस सूत्रमें ' स्वस्थान ' के निर्देशसे स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान दोनोंका ग्रहण किया गया है, क्योंकि, स्वस्थानपनेसे दोनोंमें कोई भेद नहीं है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उक्त तीन प्रकारके मनुष्य स्वस्थान व उपपाद पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९ ॥

एत्थ लोगणिद्देसो देसामासियो, तेण पंचण्हं लोगाणं गहणं होदि। एदेण सूचिदत्थस्स परूवणं कस्सामो। तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-ट्ठिदतिविहा मणुसा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अच्छंति। कुदो? मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसणीणं संखेज्जजीवाणं खेत्तग्गहणादो। सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तमणुस-अपज्जत्ताणं सत्थाणखेत्तस्स गहणं किण्ण कीरदे? ण, तस्स अंगुलस्स संखेज्जदिभागे संखेज्जंगुलेसु वा णिचियक्कमेण अवट्ठाणादो। उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति। कुदो? पहाणीकदमणुसअपज्जत्त-उववादखेत्तादो। णवरि मणुसपज्जत्त-मणुसणीणमुववादखेत्तं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणं। मणुसाणमुववादखेत्ताणयणविहाणं वुच्चदे। तं जहा— मणुसअपज्जत्तरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालेण दोहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेहि य ओवट्टिय पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोवट्टिद-पदरंगुलेण गुणिदसेडीसत्तमभागेण गुणिदे उववादखेत्तं होदि। एत्थ पंचलोगोवट्टणं जाणिय कायव्वं। सेसं सुगमं।

सूत्रमें लोकका निर्देश देशामर्शक है, इसलिये उससे पांचों लोकोंका ग्रहण होता है। इस सूत्रसे सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानमें स्थित तीन प्रकारके मनुष्य चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि यहां मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी, इन संख्यात जीवोंके क्षेत्रका ग्रहण है।

शंका— जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र मनुष्य अपर्याप्तोंके स्वस्थानक्षेत्रका ग्रहण क्यों नहीं किया जाता?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मनुष्य अपर्याप्तराशिका अंगुलके संख्यातवें भागमें अथवा संख्यात अंगुलोंमें संचितक्रमसे अवस्थान है।

उपपादको प्राप्त उक्त तीन प्रकारके मनुष्य तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां मनुष्य अपर्याप्तोंके उपपादक्षेत्रकी प्रधानता है। विशेषता यह है कि मनुष्य पर्याप्त और मनुष्य-नियोंका उपपादक्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा अढ़ाई द्वीपसे असंख्यात-गुणा है। मनुष्योंके उपपादक्षेत्रके निकालनेके विधानको कहते हैं। वह इस प्रकार है— मनुष्य अपर्याप्त राशिको आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालसे तथा पल्योपमके दो असंख्यात भागोंसे अपवर्तित करके पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित प्रतरांगुलसे गुणित जगश्रेणीके सातवें भागसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्र होता है। यहां पांच लोकोंका अपवर्तन जानकर करना चाहिये। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १० ॥

एत्थ समुग्घादणिद्देसो दव्वट्ठियणयमवलंबिय ट्ठिदो, संगहिदवेदण-कसाय-वेउव्विय मारणंतिय तेजाहार-दंड-कवाड-पदर-लोगपूरणत्तादो । सेसं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११ ॥

जेण एदं[1] देसामासियं सुत्तं तेणेदेण सूइदत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा— वेदण-कसाय-वेउव्विय-तेजहारसमुग्घादगदा तिविहा मणुसा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । णवरि मणुसिणीसु तेजाहारं णत्थि । मारणंतिय-समुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? पहाणीकदमणुसअपज्जत्तखेत्तादो । णवरि मणुसपज्जत्त मणुसिणीणं मारणंतियखेत्तं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं । एवं दंड-कवाडखेत्ताणं पि वत्तव्वं । णवरि कवाडखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो । संपहि पदर-लोगपूरण-

उक्त तीन प्रकारके मनुष्य समुद्घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १० ॥

यहां समुद्घातका निर्देश द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करके स्थित है, क्योंकि, यह पद वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, आहार, दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण, इन सब समुद्घातोंका संग्रह करनेवाला है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उक्त तीन प्रकारके मनुष्य समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११ ॥

चूंकि यह देशामर्शक सूत्र है अतः इसके द्वारा सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है—वेदना, कषाय, वैक्रियिक, तैजस और आहारक समुद्घातको प्राप्त तीन प्रकारके मनुष्य चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । विशेष इतना है कि मनुष्यनियोंमें तैजस और आहारक समुद्घात नहीं होते । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त तीन प्रकारके मनुष्य तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां मनुष्य अपर्याप्तोंका क्षेत्र प्रधान है । विशेष इतना है कि मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंका मारणान्तिक क्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा है । इसी प्रकार दण्ड और कपाट क्षेत्रोंका भी प्रमाण कहना चाहिये । परन्तु इतना विशेष है कि कपाटक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है । अब प्रतर और

१ प्रतिषु 'एद' इति पाठः ।

समुग्घादे पडुच्च खेत्तपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

असंखेज्जेसु वा भाएसु सव्वलोगे वा ॥ १२ ॥

पदरसमुग्घादे लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु अवट्ठाणं होदि, वादवलएसु जीवपदेसाणमभावादो। लोगपूरणसमुग्घादे सव्वलोगे अवट्ठाणं होदि, जीवपदेसविरहिदलोगागासपदेसाभावादो। अधवा सव्वमेदमेक्कं चेव सुत्तमेक्कस्स समुग्घादगदस्स तिसु अवट्ठाणेसु खेत्तभेदपदुप्पायणादो।

मणुसअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १३ ॥

सुगममेदं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १४ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण सूचिदत्थपरूवणं कस्सामो। तं जहा— सत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे

लोकपूरण समुद्घातोंकी अपेक्षा कर क्षेत्रनिरूपणके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

समुद्घातकी अपेक्षा उक्त तीन प्रकारके मनुष्य लोकके असंख्यात बहुभागोंमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२ ॥

प्रतरसमुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यात बहुभागोंमें अवस्थान होता है, क्योंकि, वातवलयोंमें जीवप्रदेशोंका अभाव रहता है। लोकपूरणसमुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोकमें अवस्थान होता है, क्योंकि, इस अवस्थामें जीवप्रदेशोंसे रहित लोकाकाशके प्रदेशोंका अभाव है। अथवा यह सब एक ही सूत्र है, अर्थात् उपर्युक्त दोनों सूत्र भिन्न नहीं हैं, किन्तु एक ही सूत्ररूप हैं, क्योंकि, एक केवलिसमुद्घातगत जीवकी तीन अवस्थाओंमें क्षेत्रभेदका कथन करते हैं।

मनुष्य अपर्याप्त स्वस्थान, समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

मनुष्य अपर्याप्त उपर्युक्त तीन पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ १४ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इसलिये इसके द्वारा सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त मनुष्य अपर्याप्त चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें संचित-

णिच्चियक्कमेण । विण्णासक्कमेण[1] पुण असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणाओ । मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । मारणंतियखेत्ताणयणविहाणं वुच्चदे— सूचिअंगुलपढम-तदियवग्गमूले गुणेदूण जगसेडिम्हि भागे हिदे दव्वं होदि । तम्हि आवलियाए असंखेज्जभागमेत्तउवक्कमणकालेण भागे हिदे एगसमयसंचिदमरंतरासी[2] होदि । एदस्स असंखेज्जदिभागो मारणंतिएण विणा णिप्फिडमाणरासी होदि । पुणो मारणंतियरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण मारणंतियउवक्कमणकालेण गुणिदे मारणंतियकालब्भंतरे संचिदरासी होदि । पुणो अवरेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे रज्जुआयामेण पलिदोवमअसंखेज्जदिभागेणोवट्टिदपदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागेण विक्खंभेण मुक्कमारंणतियरासी होदि । पुणो एदस्स ओगाहणगुणगारे ठविदे मारणंतियखेत्तं होदि । एत्थ ओवट्टणं जाणिय कायव्वं ।

क्रमसे रहते हैं । परन्तु विन्यासक्रमसे मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणी असंख्यात योजनकोटियां मनुष्य अपर्याप्तोंका क्षेत्र है । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए मनुष्य अपर्याप्त तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोक एवं तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिक क्षेत्रके निकालनेका विधान कहते हैं— सूच्यंगुलके प्रथम और तृतीय वर्गमूलोंका परस्परमें गुणा कर जगश्रेणीमें भाग देनेपर मनुष्य अपर्याप्तोंका द्रव्यप्रमाण प्राप्त होता है । उसमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालका भाग देनेपर एक समय संचित मरनेवाले मनुष्य अपर्याप्तोंकी राशि होती है । इसके असंख्यातवें भागप्रमाण मारणान्तिकसमुद्घातके विना मरण करनेवाली राशि है । पुनः मारणान्तिक राशिको आवलीके असंख्यातवें भागरूप मारणान्तिक उपक्रमणकालसे गुणित करनेपर मारणान्तिक कालके भीतर संचित राशिका प्रमाण होता है । पुनः अन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर जो लब्ध हो उतना, राजुप्रमाण आयामसे तथा पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण विष्कम्भसे मारणान्तिकसमुद्घातको करनेवाले मनुष्य अपर्याप्तोंका प्रमाण होता है । पुनः इसके अवगाहनागुणकारके स्थापित करनेपर, अर्थात् इस राशिको अवगाहनासे गुणित करनेपर, मनुष्य अपर्याप्तकोंका मारणान्तिक क्षेत्र होता है । यहां अपवर्तन जानकर करना चाहिये ।

१ प्रतिषु ' विणासक्कमेण ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' संचिदमारणंतियरासी ' इति पाठः ।

उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति। एत्थ उववादखेत्तं मारणंतियखेत्तं व ठवेदव्वं। णवरि एसो रासी एगसमय-संचिदो त्ति आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणगारो ण दादव्वो। पढमदंडमुवसंहरिय बिदियदंडेण सेडीए संखेज्जदिभागायामेण[1] मुक्कमारणंतियजीवे इच्छिय अण्णेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो। एत्थ ओवट्टणा पुव्वं व कायव्वं।

देवगदीए देवा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? ॥ १५ ॥

एत्थ तेजाहार-केवलिसमुग्घादा णत्थि, देवेसु तेसिमत्थित्तविरोहादो। किं सव्वलोगे किं लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु किं वा संखेज्जदिभागे किमसंखेज्जदिभागे किमणंतिमभागे किं वा संखेज्जासंखेज्जाणंतलोगेसु त्ति पुच्छिदे उत्तरसुत्तं भणदि। अधवा आसंकिदसुत्तमेदं। वासद्देण[2] विणा कधमासंकावगम्मदे? तेण विणा वि तदट्ठावगदीदो।

उपपादको प्राप्त मनुष्य अपर्याप्त तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोक एवं तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहां उपपादक्षेत्रको मारणान्तिक क्षेत्रके समान स्थापित करना चाहिये। विशेष इतना है कि यह राशि एक समयसंचित है, अतएव आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार नहीं देना चाहिये। प्रथम दण्डका उपसंहार कर द्वितीय दण्डसे जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयामसे मुक्तमारणान्तिक जीवोंकी इच्छाराशि स्थापित कर एक अन्य पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करना चाहिये। यहां अपवर्तन पूर्वके समान करना चाहिये।

देवगतिमें देव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ १५ ॥

यहां तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलिसमुद्घात नहीं हैं, क्योंकि, देवोंमें इनके अस्तित्वका विरोध है। 'क्या सर्व लोकमें, क्या लोकके असंख्यात बहुभागोंमें, क्या लोकके संख्यातवें भागमें, क्या लोकके असंख्यातवें भागमें, क्या लोकके अनन्तवें भागमें, अथवा क्या संख्यात, असंख्यात व अनन्त लोकोंमें रहते हैं' ऐसा पूछनेपर उत्तर सूत्र कहते हैं। अथवा यह आशंकासूत्र है।

शंका— वा शब्दके विना कैसे आशंकाका परिज्ञान होता है?

समाधान— क्योंकि, वा शब्दके विना भी उस अर्थका परिज्ञान हो जाता है।

१ अप्रतौ 'असखेज्जदिभागायामेण' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः 'वेसद्देण' इति पाठः।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १६ ॥

देसामासियसुत्तमिदं, तेणेदेण सूचिदत्थस्स परूवणं कीरदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा देवा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? पहाणीकदजोइसियक्खेत्तादो । विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियरासीओ सग-सगरासीणं सव्वत्थ संखेज्जदिभागमेत्ताओ, सत्थाणसत्थाणरासी सगरासिस्स सव्वत्थ संखेज्जाभागमेत्ता त्ति कधं णव्वदे ? ण, गुरूवदेसादो, एदेसु पदेसु ट्ठिददेवा तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे अच्छंति त्ति वक्खाणादो वा णव्वदे । मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एदस्स खेत्तस्स ट्ठवणविहाणं वुच्चदे । तं जहा— एत्थ वाणवेंतरखेत्तं पहाणं, तत्थतणसंखेज्ज-

देव उपर्युक्त पदोंमे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ १६ ॥

यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिये इसके द्वारा सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त देव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां ज्योतिषी देवोंका क्षेत्र प्रधान है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त राशियां सर्वत्र अपनी अपनी राशियोंके संख्यातवें भागमात्र और स्वस्थानस्वस्थानराशि सर्वत्र अपनी राशिके संख्यात बहुभागप्रमाण होती है ।

शंका—' विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त राशियां अपनी अपनी राशियोंके संख्यातवें भागमात्र हैं, तथा स्वस्थानस्वस्थानराशि सर्वत्र अपनी राशिके संख्यात बहुभागप्रमाण है ' यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपर्युक्त राशियोंका प्रमाण गुरुके उपदेशसे जाना जाता है । अथवा ' इन पदोंमें स्थित देव तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ' इस व्याख्यानसे जाना जाता है ।

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त देव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इस क्षेत्रके स्थापनाविधानको कहते हैं । वह इस प्रकार है— यहां वानव्यन्तरोंका क्षेत्र प्रधान है, क्योंकि, वहांपर

वासाउएसु तत्थ ट्ठियअसंखेज्जवासाउएहिंतो असंखेज्जगुणेसु आवलियाए असंखेज्जदि-भागमेत्तुवक्कमणकालुवलंभादो। तेण वेंतररासिं ठविय मारणंतियउवक्कमणकालेणोवट्टिद-सगुवक्कमणकालसंखेज्जरूवेहि भागे हिदे मुक्कमारणंतियजीवा होंति। तेसिमसंखेज्जदि-भागो ईसिपब्भारादि[1]उवरिमपुढवीसु उप्पज्जदि त्ति पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो दादव्वो। तिरिक्खेसु रज्जुमेत्तं गंतूणुप्पज्जमाणजीवाणमागमणट्ठं च पुणो पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेणब्भत्थसंखेज्जरज्जूहि गुणिदे मारणंतियखेत्तं होदि।

उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति। एदस्स खेत्तस्स विण्णासो मारणंतियभंगो। णवरि तिरिक्खरासिं तिरिक्खाण-मुवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेणोवट्टिय पुणो देवेसुप्पज्जमाणरासिमिच्छिय तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवेहि ओवट्टिय रज्जुमेत्तं गंतूणुप्पज्जमाणजीवाणं पमाणागमणट्ठं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो दादव्वो। पुणो बिदियदंडेण रज्जुसंखेज्जदि-भागमेत्तायदजीवाणं पउरं संभवाभावादो पुणो अण्णेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो

स्थित असंख्यातवर्षायुष्कोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणे वहांके संख्यातवर्षायुष्कोंमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालकी उपलब्धि है। इसलिये व्यन्तरराशिको स्थापित कर मारणान्तिक उपक्रमणकालसे अपवर्तित अपने उपक्रमण कालरूप संख्यात रूपोंका भाग देनेपर मुक्तमारणान्तिक जीवोंका प्रमाण होता है। उनका असंख्यातवां भाग ईषत्प्रा-ग्भारादि उपरिम पृथिवियोंमें उत्पन्न होता है, इसलिये पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार देना चाहिये। तिर्यंचोंमें राजुमात्र जाकर उत्पन्न होनेवाले जीवोंके आगमनार्थ पुनः प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे गुणित संख्यात राजुओंसे गुणित करनेपर मारणा-न्तिक क्षेत्र होता है।

उपपादको प्राप्त देव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इस क्षेत्रका विन्यास मारणान्तिक क्षेत्रके समान है। विशेष इतना है कि तिर्यंचराशिको तिर्यंचोंके उपक्रमणकालरूप आवलीके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित कर पुनः देवोंमें उत्पन्न होनेवाली राशिकी इच्छा कर तत्प्रायोग्य असंख्यात रूपोंसे अपवर्तित कर राजुप्रमाण जाकर उत्पन्न होनेवाले जीवोंके प्रमाणको लानेके लिये पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार देना चाहिये। पुनः द्वितीय दण्डसे राजुके संख्यातवें भागमात्र आयामको प्राप्त जीवोंकी प्रचुर संभावना न होनेसे पुनः एक और अन्य पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार देना चाहिये। पुनः

[1] कप्रतौ 'ईसपब्भारादि' इति पाठः।

भागहारो दादव्वो । पुणो संखेज्जपदरंगुलगुणिदजगसेडिसंखेज्जभागेण गुणिदे उववाद-खेत्तं होदि । एत्थ पंचलोगोवट्टणं जाणिय कायव्वं ।

भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवगदि-भंगो ॥ १७ ॥

एसो दव्वट्ठियणयं पडुच्च णिद्देसो, पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे अत्थि विसेसो । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय वेउव्वियसमुग्घादगदा भवणवासियदेवा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । एत्थ खेत्तविण्णासो जाणिय कायव्वो । उववादगदाणं पि एवं चेव वत्तव्वं । तिरिक्ख-मणुसाणं बे विग्गहे कादूण भवणवासियदेवेसु सेडीए संखेज्जदिभागायामेण बिदियदंडे विवादाणमुववादखेत्तं तिरियलोगादो असंखेज्जगुणं किण्ण लब्भदे ? णेदमसंभवादो । एगविग्गहं काऊण तत्थुप्पण्णाणमुववादखेत्तायामो ण ताव असंखेज्जजोयणमेत्तो 'सोलस दु खरो भागो पंकबहुलो य तह चुलसीदि । आवबहुलो असीदि-' त्ति सुत्तेण सह विरोहादो ।

संख्यात प्रतरांगुलोंसे गुणित जगश्रेणिके संख्यातवें भागसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्र होता है । यहां पांच लोकोंका अपवर्तन जानकर करना चाहिये ।

भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तकका क्षेत्र देवगतिके समान है ॥ १७ ॥

यह निर्देश द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे है, पर्यायार्थिक नयका अवलंबन करनेपर विशेषता है । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त भवनवासी देव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां क्षेत्रविन्यास जानकर करना चाहिये । उपपादको प्राप्त भवनवासी देवोंके भी क्षेत्रका इसी प्रकार कथन करना चाहिये ।

शंका— दो विग्रह करके भवनवासी देवोंमें जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयामसे द्वितीय दण्डमें प्राप्त तिर्यंच मनुष्योंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान— ऐसा नहीं पाया जाता, क्योंकि असंभव है । एक विग्रह करके भवन-वासियोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच-मनुष्योंके उपपादक्षेत्रका आयाम असंख्यात योजनमात्र नहीं है, क्योंकि, 'खरभाग सोलह सहस्र योजन, पंकबहुलभाग चौरासी सहस्र योजन, और अब्बहुलभाग अस्सी सहस्र योजन मोटा है' इस सूत्रके साथ विरोध होगा ।

लोगंते ठाइदूण हेट्ठा गंतूण एगविग्गहं करिय तिरिच्छेण रज्जूए संखेज्जदिभागं गंतूणुप्पण्णाणं बिदियदंडायामो सेडीए संखेज्जदिभागमेत्तो लब्भदि त्ति णेदं पि घडदे, तेसिं सुट्ठु थोवत्तादो। तं कुदो णव्वदे? तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति वक्खाणाइरियवयणादो। ण दोण्णि विग्गहे काऊणुप्पण्णाणं बिदिय-तदियदंडाणं संजोगो सेडीए संखेज्जदिभागायामो सेडिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिदएगखंडायामो वा लब्भदि त्ति वोत्तुं जुत्तं, कंडुज्जुवट्ठाए सव्वदिसाहिंतो आगंतूण एगविग्गहं काऊण उप्पज्जमाणजीवेहिंतो दो विग्गहे कादूण उप्पज्जमाणजीवाणमसंखेज्जदिभागत्तादो। तदो भवणवासियाणमुववादखेत्तं तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति सिद्धं। मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगादो[1] असंखेज्जगुणे अच्छंति। कुदो? सत्थाणादो अद्धरज्जुमेत्तं तिरिच्छेण गंतूण एगविग्गहं करिय संखेज्जरज्जूओ उड्ढं गंतूण सगउप्पत्तिट्ठाणं पत्ताणं तदुवलंभादो। वाणवेंतर-जोदिसियाणं देवगदिभंगो

लोकान्तमें स्थित होकर नीचे जाकर एक विग्रह करके तिर्यग्रूपसे राजुके संख्यातवें भाग जाकर उत्पन्न होनेवालोंके द्वितीय दण्डका आयाम जगश्रेणीके संख्यातवें भागमात्र प्राप्त है, यह भी घटित नहीं होता, क्योंकि, वे बहुत थोड़े हैं।

शंका—यह कहांसे जाना जाता है?

समाधान—'उपपादगत भवनवासियोंका क्षेत्र तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग है' इस प्रकार व्याख्यानाचार्योंके वचनसे जाना जाता है। दो विग्रह करके उत्पन्न हुए जीवोंके द्वितीय व तृतीय दण्डके संयोगमें जगश्रेणीके संख्यातवें भागप्रमाण आयाम, अथवा जगश्रेणीको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे खण्डित करनेपर एक खण्डप्रमाण आयाम प्राप्त है, ऐसा कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि, बाणके समान ऋजु अवस्थामें सर्व दिशाओंसे आकर एक विग्रह करके उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा दो विग्रह करके उत्पन्न होनेवाले जीव असंख्यातवें भागमात्र हैं। इसलिये भवनवासियोंका उपपादक्षेत्र तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यह बात सिद्ध हुई।

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त देव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, स्वस्थानसे अर्ध राजुमात्र तिरछे जाकर एक विग्रह करके संख्यात राजु ऊपर जाकर अपने उत्पत्तिस्थानको प्राप्त हुए उक्त देवोंके उपर्युक्त क्षेत्र पाया जाता है।

वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके क्षेत्रका प्ररूपण देवगतिके समान है, जो

[1] प्रतिषु '-भागे णतिरियलोगादो ' इति पाठः।

ण विरुज्झदे, सत्थाणादिसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागुवलंभादो। णवरि जोदिसिएसु उवक्कमणकालो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, संखेज्जवासाउआणमभावादो।

सोहम्मीसाणा[1] सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। एत्थ सग-सग-खेत्तविण्णासो कायव्वो। अप्पणो ओहिखेत्तमेत्तं देवा विउव्वंति त्ति जं वयणं तण्ण घडदे, लोगस्स असंखेज्जदि[2]भागमेत्तवेउव्वियखेत्तप्पहुडिप्पसंगादो। मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति। एत्थ ताव उववादखेत्तविण्णासो कीरदे। तं जहा— सगविक्खंभसूचिगुणिदसेडिं ठविय पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सोहम्मीसाणुवक्कमणकालेण ओवट्टिदे उप्पज्जमाणजीवा होंति। पदापत्थडे उप्पज्जमाणजीवाणमागमणट्ठमवरेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो। पुणो एदस्स पदरंगुलगुणिदसेडीए संखेज्जदिभागे गुणगारेण ठविदे उववाद-खेत्तं होदि। एवं चेव मारणंतियखेत्तपरिक्खा कायव्वा।

विरुद्ध नहीं है; क्योंकि, स्वस्थानादिक पदोंमें तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग पाया जाता है। विशेष इतना है कि ज्योतिषी देवोंमें उपक्रमणकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि, उनमें संख्यात वर्षकी आयुवालोंका अभाव है।

स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घातको प्राप्त सौधर्म ईशान कल्पवासी देव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहां अपना अपना क्षेत्रविन्यास करना चाहिये। 'देव अपने अवधिक्षेत्रप्रमाण विक्रिया करते हैं' इस प्रकार जो यह वचन है वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेमें लोकके असंख्यातवें भागमात्र वैक्रियिकक्षेत्रादिका प्रसंग आता है। (देखो पुस्तक ४, पृ. ७९-८०)।

मारणान्तिक व उपपादको प्राप्त उक्त देव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहां उपपादक्षेत्रका विन्यास करते हैं। वह इस प्रकार है—अपनी विष्कम्भसूचीसे गुणित जगश्रेणीको स्थापित कर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सौधर्म ईशान कल्पवासी देवोंके उपक्रमण कालसे अपवर्तित करनेपर उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है। प्रभा प्रस्तारमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण जाननेके लिये एक अन्य पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करना चाहिये। पुनः इसके प्रतरांगुलसे गुणित जगश्रेणीके संख्यातवें भागको गुणकार रूपसे स्थापित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता है। इसी प्रकार ही मारणान्तिकक्षेत्रकी परीक्षा करना चाहिये।

....

१ प्रतिषु 'सोहम्मीसाण' इति पाठः।   २ प्रतिषु 'संखेज्जदि-' इति पाठः।

सणक्कुमारप्पहुडिउवरिमदेवा सव्वपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति । णवरि सव्वट्ठदेवा सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणदा माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे अच्छंति । कधं ? सव्वट्ठे वेयण-कसायसमुग्घादाण तेहिंतो समुप्पज्जमाणथोवविपुंजणं पडुच्च तधोवदेसादो, कारणे कज्जोवयारादो वा । एत्थ देवाणमोगाहणाणयणे उवउज्जंतीओ गाहाओ—

> पणुवीसं असुराणं सेसकुमाराण दस धणू होंति ।
> वेंतर-जोदिसियाणं दस सत्त धणू मुणेयव्वा[1] ॥ १ ॥
>
> सोहम्मीसाणेसु य देवा खलु होंति सत्तरयणीया ।
> छच्चेव य रयणीओ सणक्कुमारे य माहिंदे ॥ २ ॥

सानत्कुमारादि उपरिम देव सर्व पदोंसे चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात, इन पदोंसे परिणत होकर मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, सर्वार्थसिद्धि विमानमें वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त देवोंके उनसे उत्पन्न होनेवाले स्तोक विसर्पणकी अपेक्षा कर उस प्रकारका उपदेश किया गया है, अथवा कारणमें कार्यका उपचार करनेसे वैसा उपदेश किया गया है । यहां देवोंकी अवगाहनाके लानेमें ये उपयुक्त गाथायें हैं—

असुरकुमारोंके शरीरकी उंचाई पचीस धनुष और शेष कुमारदेवोंकी दश धनुष होती है । व्यन्तर देवोंकी उंचाई दश धनुष और ज्योतिषी देवोंकी सात धनुषप्रमाण जानना चाहिये ॥ १ ॥

सौधर्म व ईशान कल्पमें स्थित देव सात रत्नि ऊंचे, और सनत्कुमार व माहेन्द्र कल्पमें छह रत्नि ऊंचे होते हैं ॥ २ ॥

१ असुराण पचवीसं सेसासुराण हवंति दस दंडा । एस सहाउच्छेहो विक्किरियंगेसु बहुभेया ॥ ति. प. ३, १७६. अट्ठाण वि पत्तेक्कं किण्णरपहुदीण वेंतरसुराण । उच्छेहो णादव्वो दसकोदंडप्पमाणेण ॥ ति. प. ६, ९८. णवरि य जोइसियाण उच्छेहो सत्तदंडपरिमाणं ॥ ति. प. ७, ६१८.

२ शरीर सौधर्मैशानयोर्देवानां सप्तारत्निप्रमाणम्, सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः षडरत्निप्रमाणम्, ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर-लान्तवकापिष्टेषु पंचारत्निप्रमाणम्, शुक्रमहाशुक्र-शतारसहस्रारेषु चतुररत्निप्रमाणम्, आनतप्राणतयोरर्द्धचतुर्थारत्निप्रमाणम्, आरणाच्युतयोस्त्र्यरत्निप्रमाणम्, अधोग्रैवेयकेषु अर्द्धतृतीयारत्निप्रमाणम्, मध्यग्रैवेयकेष्वरत्निद्वयप्रमाणम्, उवरिमग्रैवेयकेषु अनुदिशविमानेषु च अध्यर्द्धारत्निप्रमाणम्, अनुत्तरेष्वरत्निप्रमाणम् । स. सि. ४, २१.

बम्हे य लांतवे वि य कप्पे खलु होंति पंच रयणीयो ।
चत्तारि य रयणीयो सुक्क-महस्सारकप्पेसु ॥ ३ ॥

आणद-पाणदकप्पे आहुट्ठाओ हवंति रयणीयो ।
तिण्णेव य रयणीओ तहारणे अच्चुदे चेय[1] ॥ ४ ॥

हेट्ठिमगेवज्जेसु अ अड्ढाइज्जाओ होंति रयणीओ ।
मज्झिमगेवज्जेसु अ रयणीओ होंति दो चेय ॥ ५ ॥

उवरिमगेवज्जेसु अ दिवड्ढरयणीओ होदि उस्सेहो ।
अणुत्तरविमाणवासीणेया रयणी मुणेयव्वा ॥ ६ ॥

सेसं सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १८ ॥

एत्थ एइंदिएसु विहारवदिसत्थाणं णत्थि, थावराणं विहारभावविरोहादो ।

ब्रह्म व लान्तव कल्पमें पांच, तथा शुक्र व सहस्रार कल्पोंमें चार रत्निप्रमाण उत्सेध है ॥ ३ ॥

आनत-प्राणत कल्पमें साढ़े तीन रत्नि, और आरण व अच्युत कल्पमें एक रत्निप्रमाण शरीरकी उंचाई जानना चाहिये ॥ ४ ॥

अधस्तन ग्रैवेयकोंमें अढ़ाई रत्नि, और मध्यम ग्रैवेयकोंमें दो रत्निप्रमाण शरीरकी उंचाई है ॥ ५ ॥

उपरिम ग्रैवेयकोंमें डेढ़ रत्नि, तथा अनुत्तर विमानवासी देवोंके शरीरकी उंचाई एक रत्निप्रमाण जानना चाहिये ॥ ६ ॥

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १८ ॥

यहां एकेन्द्रियोंमें विहारवत्स्वस्थान नहीं होता, क्योंकि, स्थावरोंके विहारका

१ अप्रतौ ' चेया ', आ काप्रत्योः ' चेण ' इति पाठः ।

तेजाहार-केवलिसमुग्घादा णत्थि। सुहुमेइंदिएसु वेउव्वियसमुग्घादो वि णत्थि। सेसं सुगमं।

सव्वलोगे ॥ १९ ॥

एसो लोयसद्दो सेसलोगाणं सूचओ, देसामासियत्तादो। तेणेदेण सूचिदत्थस्स परूवणं कस्सामो। सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादपरिणदा एइंदिया तेसिं पज्जत्ता अपज्जत्ता य सव्वलोगे, आणंतियादो। वेउव्वियसमुग्घादगदा एइंदिया चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। माणुसखेत्तं ण विण्णायदे। तं जहा— वेउव्वियसमुट्ठावेंता सव्वसुहुमेइंदिएसु णत्थि, साभावियादो। बादरेइंदियपज्जत्तएसु चेव अत्थि। ते वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता। तत्थेक्कजीवोगाहणा उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो। तस्स को पडिभागो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। जदि वेउव्वियरासीदो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो होज्ज तो वेउव्वियखेत्तं माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो,

विरोध है। तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलिसमुद्घात एकेन्द्रियोंमें नहीं है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें वैक्रियिकसमुद्घात भी नहीं है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

उपर्युक्त एकेन्द्रिय जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १९ ॥

यह लोक शब्द शेष लोकोंका सूचक है, क्योंकि, देशामर्शक है। इस कारण इसके द्वारा सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं—स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंसे परिणत एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त एवं अपर्याप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं। वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त एकेन्द्रिय जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं, यह जाना नहीं जाता। वह इस प्रकार है— वैक्रियिकसमुद्घातको करनेवाले जीव सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें नहीं हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है। उक्त समुद्घातको करनेवाले एकेन्द्रिय जीव बादर एकेन्द्रियोंमें ही होते हैं। वे भी पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं। उनमें एक जीवकी अवगाहना उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

शंका— उसका प्रतिभाग क्या है?

समाधान— पल्योपमका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है।

यदि वैक्रियिकराशिसे घनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है, तो वैक्रियिकक्षेत्र मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागप्रमाण होगा, अथवा यदि वह भागहार वैक्रियिकराशिसे

अह असंखेज्जगुणो[1] तो असंखेज्जदिभागो, अह सरिसो माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो, अह भागहारादो[2] वेउव्वियरासी संखेज्जगुणो होदूण वेउव्वियखेत्तं माणुसखेत्तपमाणं होज्ज तो दो वि सरिसाणि, अह असंखज्जगुणो[1] होज्ज तो माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं वेउव्वियखेत्तं । ण च एत्थ एदं चेव होदि त्ति णिच्छओ अत्थि । तेण माणुसखेत्तं ण विण्णायदे ।

बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते? ॥२०॥

सुगममेदं ।

लोगस्स संखेज्जदिभागे ॥ २१ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण सूइदत्थस्स परूवणं कस्सामो । तं जहा— तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति त्ति वत्तव्वं । किं कारणं? जेण मंदरमूलादो उवरि जाव सदर-सहस्सारकप्पो त्ति पंचरज्जुउस्सेहेण

असंख्यातगुणा है तो वैक्रियिकक्षेत्र मानुषक्षेत्रके असंख्यातवें भागप्रमाण होगा, अथवा यदि वह भागहार वैक्रियिकराशिके सदृश है तो वैक्रियिकक्षेत्र मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग होगा। अथवा यदि वह भागहारसे वैक्रियिकराशि संख्यातगुणी होकर वैक्रियिक-क्षेत्र मानुषक्षेत्रप्रमाण है तो दोनों ही सदृश होंगे, अथवा यदि असंख्यातगुणा है तो वैक्रियिकक्षेत्र मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा होगा। परन्तु यहांपर उक्त भागहार इतना ही है, ऐसा निश्चय नहीं है, अतः मानुषक्षेत्रके विषयमें ज्ञान नहीं है।

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त बादर एकेन्द्रिय जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २१ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इसलिये इसके द्वारा सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— उपर्युक्त बादर एकेन्द्रिय जीव तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये।

शंका— उक्त क्षेत्रप्रमाणका कारण क्या है?

समाधान—क्योंकि, मन्दर पर्वतके मूल भागसे ऊपर शतार-सहस्रार कल्प

---

१ अप्रतौ ' संखेज्जगुणो ' इति पाठः ।   २ प्रतिषु ' भागहारो ' इति पाठः ।

समचउरस्सा लोगणाली वादेण आउण्णा । तम्मि एगूणवंचासरज्जुपदराणं जदि एगं जगपदरं लब्भदि तो पंचरज्जुमेत्तपदराणं[1] किं लभामो त्ति फलगुणिदमिच्छं पमाणेणोवट्टिदे वे पंचभागूणएगूणसत्तरिरूवेहि घणलोगे भागे हिदे एगभागो आगच्छदि । पुणो तम्मि लोगपेरंतट्ठिदवादक्खेत्तं संखेज्जजोयणबाहल्लजगपदरं अट्ठपुढविखेत्तं बादरजीवाहारं संखेज्जजोयणबाहल्लजगपदरमेत्तं अट्ठपुढवीणं हेट्ठा ट्ठिदसंखेज्जजोयणबाहल्लजगपदरवादखेत्तं च आणेदूण पक्खित्ते लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं अणंताणंतबादरेइंदियबादरेइंदियपज्जत्त-बादरेइंदियअपज्जत्तजीवावूरिदं[2] खेत्तं जादं । तेणेदे तिण्णि वि बादरेइंदिया सत्थाणेण तिण्हं लोगाणं वा संखेज्जदिभागे अच्छंति त्ति वुत्तं ।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ २२ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोए ॥ २३ ॥

तक पांच राजु ऊंची, समचतुष्कोण लोकनाली वायुसे परिपूर्ण है । उसमें उनंचास प्रतरराजुओंका यदि एक जगप्रतर प्राप्त होता है, तो पांच प्रतरराजुओंका कितना जगप्रतर प्राप्त होगा, इस प्रकार फलराशिसे गुणित इच्छाराशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर दो बटे पांच भाग कम उनहत्तर रूपोंसे घनलोकके भाजित करनेपर लब्ध एक भागप्रमाण प्राप्त होता है । पुनः उसमें संख्यात योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण लोकपर्यन्त स्थित वातक्षेत्रको, संख्यात योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण ऐसे बादर जीवोंके आधारभूत आठ पृथिवीक्षेत्रको, और आठ पृथिवियोंके नीचे स्थित संख्यात योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण वातक्षेत्रको लाकर मिला देनेपर लोकके संख्यातवें भागमात्र अनन्तानन्त बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त व बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंसे परिपूर्ण क्षेत्र होता है । इस कारण 'ये तीनों ही बादर एकेन्द्रिय स्वस्थानसे तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें एवं मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ' ऐसा कहा है ।

उक्त बादर एकेन्द्रिय जीव समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ २२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त बादर एकेन्द्रिय जीव समुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २३ ॥

१ अप्रतौ ' मेत्तजगपदराणं ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' -पज्जत्ता जीवावूरिदं ' इति पाठः ।

एदे तिण्णि वि बादरेइंदिया मारणंतिय-उववादपदेहि चेव सव्वलोए होंति । वेयण-कसायसमुग्घादेहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियपदेण बादरेइंदियअपज्जत्तवदिरित्तबादरेइंदिया चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे होंति । तदो समुग्घादेण सव्वलोगे इदि वयणं ण घडदे । ण एस दोसो, देसामासियत्तादो ।

बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ २४ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २५ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूइदत्थो वुच्चदे । तं जहा– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-समुग्घादगदा एदे बीइंदियादि छप्पि वग्गा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पज्जत्तखेत्तस्स

शंका— ये तीनों ही बादर एकेन्द्रिय जीव मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे ही सर्व लोकमें हैं। वेदनासमुद्घात व कषायसमुद्घातसे तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वैक्रियिकपदसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंको छोड़ शेष दो बादर एकेन्द्रिय चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । इस कारण 'समुद्घातसे सर्व लोकमें रहते हैं' यह कथन घटित नहीं होता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यह सूत्र देशामर्शक है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और इन तीनोंके पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ २४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त द्वीन्द्रियादिक जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २५ ॥

इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित अर्थ कहा जाता है । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, और कषायसमुद्घातको प्राप्त ये द्वीन्द्रियादिक छहों वर्ग तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां पर्याप्तक्षेत्रकी प्रधानता है ।

पाधण्णियादो। एदेसिं चेव तिण्णि अपज्जत्ता चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिदुस्सेहघणंगुलमेत्तोगाहणत्तादो। मारणंतिय-उववादगदा णव वि वग्गा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति। एत्थ ताव मारणंतियखेत्तविण्णासो वुच्चदे— बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिया तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्तदव्वं ठविय[1] आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तेण सगसगुवक्कमणकालेण सगसगदव्वम्मि भागे हिदे सगसगरासिम्हि मरंतजीवपमाणमागच्छदि। तस्स असंखेज्जदिभागो मारणंतिएण विणा मरदि त्ति एदस्स असंखेज्जे भागे घेत्तूण मारणंतिय-उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे सगसगमारणंतियदव्वं होदि। रज्जुमेत्तायामेण मुक्कमारणंतियदव्वमिच्छिय अण्णगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो। पुणो अप्पप्पणो विक्खंभवग्गगुणिदरज्जुए गुणिदे बीइंदियादीणं णवण्णं मारणंतियखेत्तं होदि। एत्थ ओवट्टणं जाणिय कायव्वं।

उववादखेत्तविण्णासो वुच्चदे। तं जहा— पुव्वुत्तदव्वाणि ठविय सगसगुवक्कमणकालेण भागे हिदे एगसमएण मरंतजीवाणं पमाणं होदि। एदस्स असंखेज्जभागो

इन्हींके तीन अपर्याप्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित उत्सेधघनांगुलप्रमाण अवगाहनासे युक्त होते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादको प्राप्त नौ ही जीवराशियां तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहां मारणान्तिकक्षेत्रका विन्यास कहा जाता है— द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त व अपर्याप्त द्रव्यको स्थापित कर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अपने अपने उपक्रमणकालसे अपने अपने द्रव्यके भाजित करनेपर अपनी अपनी राशिमेंसे मरनेवाले जीवोंका प्रमाण आता है। उसके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव मारणान्तिकसमुद्घातके विना मरण करते हैं, इसलिये इसके असंख्यात बहुभागोंको ग्रहणकर मारणान्तिक उपक्रमणकालरूप आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर अपना अपना मारणान्तिक द्रव्य होता है। एक राजुमात्र आयामसे मुक्तमारणान्तिक द्रव्यकी इच्छा कर एक अन्य पल्योपमका असंख्यातवां भाग भागहार स्थापित करना चाहिये। पुनः अपने अपने विष्कम्भके वर्गसे गुणित राजुसे उसे गुणित करनेपर द्वीन्द्रियादिक नौ जीवराशियोंका मारणान्तिक क्षेत्र होता है। यहां अपवर्तन जानकर करना चाहिये।

उपपादक्षेत्रका विन्यास कहते हैं। वह इस प्रकार है— पूर्वोक्त द्रव्योंको स्थापित कर अपने अपने उपक्रमणकालसे भाजित करनेपर एक समयमें मरनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है। इसके असंख्यातवें भागमात्र ही उक्त जीवराशि ऋजुगतिसे

१ प्रतिषु 'रय' इति पाठः।

चेव उजुगदीए उप्पज्जदि, असंखेज्जा भागा पुण विग्गहगदीए त्ति कट्टु एदस्स असंखेज्जे भागे घेत्तूण पुणो तेसिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ते भागहारे ठविदे पढमदंडेण अद्धरज्जुमेत्तं रज्जूए संखेज्जदिभागं वा विसप्पिय ट्ठिदजीवपमाणं होदि । पुणो तम्हि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे उप्पण्णपढमसमए पढमदंडमुव-संहरिय बिदियदंडेण सेढीए संखेज्जदिभागं तप्पाओग्गमसंखेज्जदिभागं वा विसप्पिय ट्ठिदजीवपमाणं होदि । पुणो तमप्पप्पणो विक्खंभवग्गेण गुणिदसगायामेण गुणिदे उववादखेत्तं होदि । विगलिंदिएसु वेउव्वियपदं णत्थि, साभावियादो ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ २६ ॥

एत्थ सत्थाणणिद्देसो दोण्हं सत्थाणाणं गाहओ, दव्वट्ठियणयावलंबणादो । सेसं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ २७ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण सूइदत्थो वुच्चदे– सत्थाणसत्थाण-विहारवदि-सत्थाणपज्जाएण परिणदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे,

---

उत्पन्न होती है, और असंख्यात बहुभागप्रमाण विग्रहगतिसे, ऐसा जानकर इसके असंख्यात बहुभागोंको ग्रहणकर पुनः उनके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र भाग-हारको स्थापित करनेपर प्रथम दण्डसे अर्ध राजुमात्र अथवा राजुके संख्यातवें भाग-प्रमाण फैलकर स्थित जीवोंका प्रमाण होता है। पुनः उसमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें प्रथम दण्डका उपसंहार कर द्वितीय दण्डसे जगश्रेणीके संख्यातवें भाग अथवा तत्प्रायोग्य असंख्यातवें भागप्रमाण फैलकर स्थित जीवोंका प्रमाण होता है। पुनः उसे अपने अपने विष्कम्भके वर्गसे गुणित अपने अपने आयामसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता है । विकलेन्द्रियोंमें वैक्रियिक पद नहीं है, क्योंकि, ऐसा उनका स्वभाव है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥२६॥

यहां सूत्रमें स्वस्थानपदका निर्देश दोनों स्वस्थानोंका ग्राहक है, क्योंकि, यहां द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थानसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ २७ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इस कारण इसके द्वारा सूचित अर्थको कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानरूप पर्यायसे परिणत पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और

अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पहाणीकयपज्जत्तरासिस्स संखेज्जभागत्तादो संखेज्जदिभागत्तादो च। उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति। एदस्स खेत्तस्साणयणं पुव्वं व वत्तव्वं।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ २८ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा[1] ॥ २९ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, पहाणीकदपज्जत्तरासिस्स संखेज्जदिभागत्तादो। तेजाहारसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। दंडगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे,

---

अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, स्वस्थानस्वस्थानपदगत उक्त जीव प्रधानभूत पर्याप्त राशिके संख्यात बहुभाग और विहारवत्स्वस्थानगत वे ही जीव उक्त राशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं।

उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। इस क्षेत्रके निकालनेका विधान पूर्वके समान कहना चाहिये।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ २८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २९ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, वे प्रधानभूत पर्याप्तराशिके संख्यातवें भाग हैं। तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं। दण्डसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यात-

१ प्रतिषु '-भागो ' इति पाठः।

माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । कवाडगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहितो असंखेज्जगुणे । एदेसिं खेत्तविण्णासो कायव्वो । लोयस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देसेण सूइदत्था एदे । अधवा लोगस्स असंखेज्जभागा, वादवलयं मोत्तूण पदरसमुग्घादे सेसासेसलोगमेत्तागासपदेसे विसप्पिय ट्ठिदजीवपदेसुवलंभादो । सव्वलोगे वा, लोगपूरणे सव्वलोगागासे विसप्पिय ट्ठिदजीवपदेसाणमुवलंभादो ।

पंचिंदियअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ३० ॥

एत्थ विहारवदिसत्थाणं वेउव्वियसमुग्घादो च णत्थि । सेसं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३१ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण सूइदत्थो वुच्चदे । तं जहा—सत्थाण-वेयण-

गुणे क्षेत्रमें रहते हैं । कपाटसमुद्घातको प्राप्त वे ही जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इनका क्षेत्रविन्यास जानकर करना चाहिये । 'लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं' इस निर्देशसे सूचित अर्थ ये हैं । अथवा उक्त जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण है, क्योंकि, प्रतरसमुद्घातमें वातवलयको छोड़कर शेष समस्त लोकमात्र आकाशप्रदेशमें फैलकर स्थित जीवप्रदेश पाये जाते हैं । अथवा सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, लोकपूरणसमुद्घातमें सर्व लोकाकाशमें फैलकर स्थित जीवप्रदेश पाये जाते हैं ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३० ॥

पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंमें विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात नहीं है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३१ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इसलिये इसके द्वारा सूचित अर्थको कहते हैं । वह

कसायसमुग्घादगदा पंचिंदियअपज्जत्ता चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो? उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तोगाहणत्तादो। सव्वत्थ अपज्जत्तोगाहणट्ठं भागहारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। एत्थ खेत्तविण्णासो जाणिय कायव्वो।

कायाणुवादेण पुढविकाइय आउकाइय तेउकाइय वाउकाइय सुहुमपुढविकाइय सुहुमआउकाइय सुहुमतेउकाइय सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडि-खेत्ते? ॥ ३२ ॥

सुगममेदं।

सव्वलोगे ॥ ३३ ॥

सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा एदे पुढविकाइयादिसोलस वि वग्गा

इस प्रकार है— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त पंचेन्द्रिय अपर्याप्त चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, वे उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनावाले हैं। सर्वत्र अपर्याप्तोंकी अवगाहनाके लिये भागहार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। मारणान्तिक और उपपादको प्राप्त पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहां क्षेत्रविन्यास जानकर करना चाहिये।

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ ३२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त पृथिवीकायिकादि जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ३३ ॥

स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त ये पृथिवीकायिकादि सोलह जीवराशियां सर्व लोकमें रहती हैं, क्योंकि,

सव्वलोगे। कुदो? असंखेज्जलोगपरिमाणत्तादो। तेउकाइएसु वेउव्वियसमुग्घादगदा पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तोगाहणादो। वाउकाइएसु वेउव्वियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे। माणुसखेत्तं ण णव्वदे।

बादरपुढविकाइय–बादरआउकाइय–बादरतेउकाइय–बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते? ॥ ३४ ॥

सुगममेदं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे॥ ३५ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण आमासियत्थेण अणामासियत्थो वुच्चदे। तं जहा— बादरपुढविआदिअट्ठवग्गा सत्थाणगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अच्छंति। कुदो? सापज्जत्ताणं पुढविकाइयाणं पुढवीओ चेवस्सिदूण अवट्ठाणादो। एदेहि रुद्धखेत्तजाणावणट्ठमट्ठपुढवीओ

वे असंख्यात लोकप्रमाण हैं। तेजस्कायिकोंमें वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए जीव पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, वे अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहनावाले हैं। वायुकायिकोंमें वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त हुए जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं, यह ज्ञात नहीं है।

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर व उनके अपर्याप्त जीव स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ ३४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त बादर पृथिवीकायिकादिक जीव स्वस्थानसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३५ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इस कारण इसके द्वारा आमृष्ट अर्थात् गृहीत अर्थसे अनामृष्ट अर्थात् अगृहीत अर्थको कहते हैं। वह इस प्रकार है— बादर पृथिवी आदि आठ जीवराशियां स्वस्थानको प्राप्त होकर तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, अपर्याप्तोंसे सहित पृथिवीकायिक जीवोंका अवस्थान पृथिवियोंका ही आश्रय करके है। इन जीवोंसे

जगपदरपमाणेण कस्सामो—

तत्थ पढमपुढवी एगरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुदीहा वीससहस्सूणबेजोयणलक्ख-बाहल्ला; एसा अप्पणो बाहल्लस्स सत्तमभागबाहल्लं जगपदरं होदि । बिदियपुढवी सत्तमभागूणबेरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा बत्तीसजोयणसहस्सबाहल्ला सोलससहस्स-समहियचउण्हं लक्खाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । तदियपुढवी बेसत्त-भागूणतिण्णिरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा अट्ठावीसजोयणसहस्सबाहल्ला; इमं जगपदर-पमाणेण कीरमाणे बत्तीससहस्साहियपंचलक्खजोयणाणमेगूणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । चउत्थपुढवी तिण्णिसत्तभागूणचत्तारिरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा चउवीस-जोयणसहस्सबाहल्ला; इमं जगपदरपमाणेण कीरमाणे छज्जोयणलक्खाणमेगुणवंचासभाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । पंचमपुढवी चत्तारिसत्तभागूणपंचरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जुआयदा वीसजोयणसहस्सबाहल्ला; इमं जगपदरपमाणेण कीरमाणे वीससहस्साहियछण्णं लक्खाणं एगुणवंचासभागबाहल्लं जगपदरं होदि । छट्ठपुढवी पंचसत्तभागूणछरज्जुविक्खंभा सत्त-रज्जुआयदा सोलसजोयणसहस्सबाहल्ला बाणउदिसहस्साहियपंचण्हं लक्खाणमेगूणवंचास-

रुद्ध क्षेत्रके ज्ञापनार्थ आठ पृथिवियोंको जगप्रतर प्रमाणसे करते हैं—

उनमें प्रथम पृथिवी एक राजु विस्तृत, सात राजु दीर्घ और बीस सहस्र कम दो लाख योजनप्रमाण बाहल्यसे सहित है। यह घनफलकी अपेक्षा अपने बाहल्यके सातवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है। द्वितीय पृथिवी एक बटे सात भाग कम दो राजु विस्तृत, सात राजु आयत और बत्तीस सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है। यह घनफलकी अपेक्षा चार लाख सोलह सहस्र योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है। तृतीय पृथिवी दो बटे सात भाग कम तीन राजु विस्तृत, सात राजु आयत और अट्ठाईस सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे युक्त है। इसे जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर पांच लाख बत्तीस सहस्र योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण होती है। चतुर्थ पृथिवी तीन बटे सात भाग कम चार राजु विस्तृत, सात राजु आयत और चौबीस सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है। इसे जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर वह छह लाख योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण होती है। पंचम पृथिवी चार बटे सात भाग कम पांच राजु विस्तृत, सात राजु आयत और बीस सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है। इसे जगप्रतरप्रमाणसे करनेपर छह लाख बीस सहस्र योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण होती है। छठी पृथिवी पांच बटे सात भाग कम छह राजु विस्तृत, सात राजु आयत और सोलह सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है। यह घनफलकी अपेक्षा पांच लाख बानबै सहस्र योजनोंके उनंचासवें भाग

भागबाहल्लं जगपदरं होदि । सत्तमपुढवी छसत्तभागूणसत्तरज्जुविक्खंभा सत्तरज्जु-आयदा अट्ठजोयणसहस्सबाहल्ला चउदालसहस्साहियतिण्णं लक्खाणमेगुणवंचासभाग-बाहल्लं जगपदरं होदि । अट्ठमपुढवी सत्तरज्जुआयदा एगरज्जुरुंदा अट्ठजोयणबाहल्ला सत्तमभागाहियएगजोयणबाहल्लं जगपदरं होदि । एदाणि सव्वखेत्ताणि एगट्ठे कदे तिरियलोगबाहल्लादो संखेज्जगुणबाहल्लं जगपदरं होदि ।

मेरु-कुलसेल-देविंदय-सेडीबद्ध-पइण्णयविमाणखेत्तं च एत्थेव दट्ठव्वं, सव्वत्थ तत्थ पुढविकाइयाणं संभवादो । बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइया पत्तेयसरीरा एदेसिं चेव अपज्जत्ता य भवणविमाणट्ठपुढवीसु णिचियक्कमेण णिवसंति । तेउ-आउ-रुक्खाणं कधं तत्थ संभवो ? ण, इंदिएहिं[1] अगेज्झाणं सुट्ठुसण्हाणं पुढविजोगियाणमत्थित्तस्स विरोहाभावादो ।

बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है । सप्तम पृथिवी छह बटे सात भाग कम सात राजु विस्तृत, सात राजु आयत और आठ सहस्र योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है । यह घनफलकी अपेक्षा तीन लाख चवालीस सहस्र योजनोंके उनंचासवें भाग बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है । अष्टम पृथिवी सात राजु आयत, एक राजु विस्तृत और आठ योजनप्रमाण बाहल्यसे संयुक्त है । यह घनफलकी अपेक्षा एक बटे सात भाग अधिक एक योजन बाहल्यरूप जगप्रतरप्रमाण है । इन सब क्षेत्रोंको एकत्रित करनेपर तिर्यग्लोकके बाहल्यसे संख्यात-गुणे बाहल्यरूप जगप्रतर होता है । (देखो पुस्तक ४, पृ. ८८ आदि) ।

मेरु, कुलपर्वत तथा देवोंके इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंका क्षेत्र भी यहींपर देखना चाहिये, क्योंकि, वहां सब जगह पृथिवीकायिक जीवोंकी सम्भावना है । बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पति-कायिक प्रत्येकशरीर तथा इनके ही अपर्याप्त जीव भी भवनवासियोंके विमानोंमें व आठ पृथिवियोंमें निचितक्रमसे निवास करते हैं ।

शंका—तेजस्कायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंकी वहां कैसे सम्भावना है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, इन्द्रियोंसे अग्राह्य व अतिशय सूक्ष्म पृथिवीसम्बद्ध उन जीवोंके अस्तित्वका कोई विरोध नहीं है ।

---

१ प्रतिषु ' इत्थिएहि ', मप्रतौ ' ए इदि एहि ' इति पाठः ।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ३६ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोगे ॥ ३७ ॥

देसामासियसुत्तमेदं, तेणेदेण सूइदत्थो वुच्चदे – वेयण-कसायपरिणदा एदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे अच्छंति, एदेसिं पुढवीसु चेव अवट्ठाणादो । बादरतेउकाइया वेउव्वियं गदा पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोगे । कुदो ? असंखेज्जलोग-परिमाणादो । एवं बादरणिगोदपदिट्ठिदाणं तेसिमपज्जत्ताणं च वत्तव्वं । सुत्ते बादरणिगोद-पदिट्ठिदा किण्ण परूविदा ? ण, बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरेसु तेसिमंतब्भावादो । कुदो ? पत्तेयसरीरत्तणेण तदो एदेसिं भेदाभावादो ।

उक्त बादर पृथिवीकायिकादिक जीव समुद्घात व उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त बादर पृथिवीकायिकादि जीव समुद्घात व उपपादसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ३७ ॥

यह सूत्र देशामर्शक है, इस कारण इसके द्वारा सूचित अर्थ कहते हैं— वेदना व कषाय समुद्घातको प्राप्त ये जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, इनका पृथिवियोंमें ही अवस्थान है । बादर तेजस्कायिक वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त होकर पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादको प्राप्त वे ही जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे असंख्यात लोकप्रमाण हैं । इसी प्रकार बादर निगोद-प्रतिष्ठित और उनके अपर्याप्त जीवोंका भी क्षेत्र कहना चाहिये ।

शंका— सूत्रमें बादर निगोदप्रतिष्ठित जीवोंकी प्ररूपणा क्यों नहीं की गई ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, उनका बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंमें अन्तर्भाव है, क्योंकि प्रत्येकशरीरपनेकी अपेक्षा उनसे इनके कोई भेद नहीं है ।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादर-वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता[1] सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ३८ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ३९ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— बादरपुढविपज्जत्ता सत्थाण-वेयण-कसायसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो ? एदेसिं[2] अवहारकालट्ठं पदरंगुलस्स ट्ठविदपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागादो एदेसिमोगाहणट्ठं घणंगुलस्स ट्ठविदपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागस्स असंखेज्जगुणत्तादो । मारणंतिय-उववादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे। एत्थ ओवट्टणा जाणिय ओवट्टेदव्वा। एवं बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणं।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर तेजस्कायिक पर्याप्त व बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त बादर पृथिवीकायिकादि पर्याप्त जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ३९ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त होकर चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, इन जीवोंके अवहारकालके लिये प्रतरांगुलके स्थापित पल्योपमके असंख्यातवें भागकी अपेक्षा इनकी अवगाहनाके लिये घनांगुलका स्थापित पल्योपमका असंख्यातवां भाग असंख्यातगुणा है, अर्थात् इनके अवहारकालका निमित्तभूत जो प्रतरांगुलका भागहार पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण बतलाया गया है उसकी अपेक्षा अवगाहनाका निमित्तभूत पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण घनांगुलका भागहार असंख्यातगुणा है। मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादको प्राप्त बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां अपवर्तना जानकर करना चाहिये । इसी प्रकार बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त

---

१ अ काप्रत्योः 'पत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्ता', आप्रतौ 'पत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्तापज्जत्ता' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' रासिं ' इति पाठः ।

णवरि बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरा पज्जत्ता सत्थाण-वेयण-कसायपदेसु तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे। कधं ? बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीराणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, घणंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तबीइंदियणिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणाए असंखेज्जगुणत्तण्णहाणुववत्तीदो। जदि पत्तेयसरीरपज्जत्ताण-मोगाहणभागहारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो चेव होज्ज तो वि पदरंगुलभागहारादो घणंगुलभागहारो संखेज्जगुणो त्ति तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं ण विरुज्झदे। एवं बादरतेउकाइयपज्जत्ता। णवरि सत्थाण-वेयण-कसायएहिं पंचण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे, मारणंतिय-उववादेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं। वेउव्वियपदस्स सत्थाणभंगो।

बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४० ॥

सुगमं।

और बादर निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र जानना चाहिये। विशेष इतना है कि बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषाय-समुद्घात पदोंमें तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं। इसका कारण यह है कि बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र है, क्योंकि, अन्यथा द्वीन्द्रिय निर्वृत्तिपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे वह असंख्यातगुणी नहीं बन सकती। यदि प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंकी अवगाहनाका भागहार पल्योपमका असंख्यातवां भाग ही हो तो भी प्रतरांगुलके भागहारसे घनांगुलका भागहार संख्यातगुणा है, अतएव तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग विरुद्ध नहीं है। इसी प्रकार बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंका भी क्षेत्र जानना चाहिये। विशेष इतना है कि स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा पांचों लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मारणान्तिक व उपपाद पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये। वैक्रियिक-समुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण स्वस्थानके समान समझना चाहिये।

बादर वायुकायिक और उनके ही अपर्याप्त जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४० ॥

यह सूत्र सुगम है।

लोगस्स संखेज्जदिभागे ॥ ४१ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? समचउरस्स-लोगणालिं पंचरज्जुआयदमावूरिय तेसिं सव्वकालमवट्ठाणादो ।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते, सव्वलोगे ? ॥ ४२ ॥

वेयण-कसायसमुग्घाद तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । वेउव्वियसमुग्घादेण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तादो ण णव्वदे । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगे, असंखेज्जलोगपरिमाणत्तादो ।

बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? ॥ ४३ ॥

सुगममेदं ।

बादर वायुकायिक और उनके अपर्याप्त जीव स्वस्थानमें लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिये इसका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— उक्त जीव स्वस्थानसे तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, समचतुष्कोण पांच राजु आयत लोकनालीको व्याप्त करके उनका सर्व कालमें अवस्थान है ।

उक्त जीव समुद्घात व उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४२ ॥

वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त जीव तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं, यह ज्ञात नहीं है । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदसे सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि वे असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स संखेज्जदिभागे[1] ॥ ४४ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे– सत्थाण-वेयण-कसायपदेहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति । कुदो ? एदेसिं पंचरज्जुआयद-एगरज्जु-समंतदोबाहल्लसमचउरसलोगणालीए अवट्ठाणादो । वेउव्वियपदेण चउण्हं लोगाणम-संखेज्जदिभागे । माणुसखेत्तादो ण णव्वदे । मारणंतिय-उववादेहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे[2] । सव्वलोगो किण्ण लब्भदे ? ण, अण्णेहिंतो आगंतूण एत्थुप्पज्जमाणजीवाणं एदेहिंतो अण्णत्थुप्पज्जणट्ठं मारणंतियं करेमाणजीवाणं च बहुत्ताभावादो, बादरवाउक्काइयपज्जत्ताणं पाएण पंचरज्जुखेत्तब्भंतरे चेव मारणंतिय-उववादाणमुवलंभादो ।

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोद-जीवा तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४५ ॥

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपादसे लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, इनका पांच राजु आयत और चारों ओरसे एक राजु मोटी समचतुष्कोण लोकनालीमें अवस्थान है । वैक्रियिक पदसे चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं, यह ज्ञात नहीं है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादकी अपेक्षा तीन लोकोंके संख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका—मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादकी अपेक्षा सर्व लोक क्यों नहीं प्राप्त होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अन्य जीवोंमेंसे आकर इनमें उत्पन्न होनेवाले जीव, तथा इनमेंसे अन्यत्र उत्पन्न होनेके लिये मारणान्तिकसमुद्घातको करनेवाले जीव बहुत नहीं हैं, तथा वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके प्रायः करके पांच राजुप्रमाण क्षेत्रके भीतर ही मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पद पाये जाते हैं ।

वनस्पतिकायिक, वनस्पस्पतिकायिक पर्याप्त, वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोदजीव, निगोदजीव पर्याप्त, निगोदजीव अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक,

१ प्रतिषु ' -भागो ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' -गुणो ' इति पाठः ।

सुगममेदं ।

सव्वलोए ॥ ४६ ॥

कुदो ? सव्वलोगं णिरंतरेण वाविय अवट्ठाणादो । बादराणं व[१] सुहुमाणं लोगस्सेगदेसे अवट्ठाणं किण्ण होज्ज ? ण, 'सुहुमा सव्वत्थ जल-थलागासेसु होंति' त्ति वयणेण सह विरोहादो ।

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ४८ ॥

देसामासियस्सेदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे,

---

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोदजीव, सूक्ष्म निगोदजीव पर्याप्त और सूक्ष्म निगोदजीव अपर्याप्त, ये स्वस्थान, समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ४६ ॥

क्योंकि, निरन्तररूपसे सर्व लोकको व्याप्त कर इनका अवस्थान है ।

शंका—बादर जीवोंके समान सूक्ष्म जीवोंका लोकके एक देशमें अवस्थान क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा होनेपर 'सूक्ष्म जीव जल, थल व आकाशमें सर्वत्र होते हैं' इस वचनसे विरोध होगा ।

बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोदजीव, बादर निगोदजीव पर्याप्त और बादर निगोदजीव अपर्याप्त स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ४७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव स्वस्थानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ४८ ॥

इस देशामर्शक सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— उक्त जीव

---

१ प्रतिषु 'च' इति पाठः ।

णर-तिरियलोगादो संखेज्जगुणे । कुदो ? पुढवीओ चेवस्सिदूण बादराणमवट्ठाणादो । माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे ।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ४९ ॥

सुगमं ।

सव्वलोए ॥ ५० ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे— वेयण-कसायसमुग्घादेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगादो संखेज्जगुणे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । कारणं पुव्वं व वत्तव्वं । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगे । कुदो ? आणंतियादो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ॥ ५१ ॥

जेण दोण्हं सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि[1] तिण्हं लोगाणं असंखेज्जदिभागत्तणेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तणेण, माणुसखेत्तादो

स्वस्थानसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, पृथिवियोंका आश्रय करके ही बादर जीवोंका अवस्थान है । मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

उक्त जीव समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमे रहते हैं ? ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ५० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते है— वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणे, और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । कारण पूर्वके ही समान कहना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं ।

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंके क्षेत्रका निरूपण पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है ॥५१॥

क्योंकि, दोनों (त्रस व पंचेन्द्रिय) जीवोंके स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भागत्वसे, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागत्वसे व मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा

१ प्रतिषु ' -पदाणं ' इति पाठः ।

असंखेज्जगुणत्तणेण; उववाद-मारणंतिएहि[1] तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण, णर-तिरिय-लोगेहिंतो असंखेज्जगुणत्तणेण; केवलिसमुग्घादेण तेजाहारपदेहि य अपज्जत्तजोग्गपदेहि य भेदो णत्थि । तेण पंचिंदियाणं भंगो त्ति ण विरुज्झदे ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ५२ ॥

एत्थ सत्थाणे[2] दो वि सत्थाणाणि अत्थि, समुग्घादे वेयण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहार-मारणंतियसमुग्घादा अत्थि, उट्ठाविदउत्तरसरीराणं मारणंतियगदाणं पि मण-वचि-जोगसंभवस्स विरोहाभावादो । उववादो णत्थि, तत्थ कायजोगं मोत्तूणण्णजोगाभावादो ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ५३ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-

---

असंख्यातगुणत्वसे कोई भेद नहीं है; उपपाद व मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भागत्वसे एवं मनुष्य व तिर्यग्लोककी अपेक्षा असंख्यातगुणत्वसे कोई भेद नहीं है; तथा केवलिसमुद्घात, तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घात पदोंसे एवं अपर्याप्त योग्य पदोंसे भी कोई भेद नहीं है । अत एव 'उक्त त्रस जीवोंका क्षेत्र पंचेन्द्रिय जीवोंके समान है' ऐसा कहना विरुद्ध नहीं है ।

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ॥ ५२ ॥

यहां स्वस्थानमें दोनों स्वस्थान और समुद्घातमें वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारसमुद्घात एवं मारणान्तिक-समुद्घात हैं, क्योंकि, उत्तर शरीरको उत्पन्न करनेवाले मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त जीवोंके भी मनोयोग व वचनयोगके होनेमें कोई विरोध नहीं है । मनोयोगी व वचन-योगी जीवोंमें उपपाद पद नहीं है, क्योंकि, उनमें काययोगको छोड़कर अन्य योगोंका अभाव है ।

पांचों मनोयोगी व पांचों वचनयोगी जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ५३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहार-

---

१ प्रतिपु '-मारणंतिएण' इति पाठः ।   २ प्रतिपु 'सत्थाणेण' इति पाठः ।

वेउव्वियसमुग्घादगदा एदे दस वि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे; तेजाहारसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जस्स संखेज्जदिभागे; मारणंतियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति। उववादं णत्थि, मणजोगवचिजोगाणं विवक्खादो।

कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? ॥ ५४ ॥

सुगममेदं।

सव्वलोए ॥ ५५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा— सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगे। कुदो? आणंतियादो। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि कायजोगिणो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे।

वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त ये दश ही जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई-द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपके संख्यातवें भागमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्य व तिर्यग्लोककी अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। उपपाद पद नहीं है, क्योंकि, मनोयोग व वचनयोगकी यहां विवक्षा है।

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ ५४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ५५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे काययोगी व औदारिकमिश्रकाययोगी सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे काययोगी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, जगप्रतरके

कुदो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ततसरासिस्स गहणादो । तेजाहारपदेहि कायजोगिणो चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जस्स संखेज्जदिभागे । दंड-कवाड-पदर-लोग-पूरणेहि कायजोगिणो ओघभंगो ।

ओरालियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ५६ ॥

सुगमं ।

सव्वलोए ॥ ५७ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे— सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतियेहि सव्वलोगे । कुदो ? सव्वत्थावट्ठाणाविरोहिजीवाणमोरालियकायजोगीणं मारणंतियादो । विहारपदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? तसणालिं[1] मोत्तूणण्णत्थ विहाराभावादो । वेउव्विय-तेजा-दंडसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । णवरि तेजासमुग्घादगदा माणुस-

असंख्यातवें भागमात्र त्रसराशिका यहां ग्रहण है । तैजससमुद्घात और आहारक-समुद्घात पदोंसे काययोगी जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपके संख्यातवें भागमें रहते हैं । दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा काययोगियोंके क्षेत्रका निरूपण ओघके समान है ।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ५७ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं — स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि सर्वत्र अवस्थानके अविरोधी औदारिककाययोगी जीवोंके मारणान्तिकसमुद्घात होता है । विहार पदकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई-द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, त्रसनालिको छोड़कर उक्त जीवोंका अन्यत्र विहार नहीं है । वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और दण्डसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । विशेष इतना है कि तैजससमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें

१ प्रतिषु ' तसरासिं ' इति पाठः ।

खेत्तस्स संखेज्जदिभागे । कवाड-पदर-लोगपूरणाहारपदाणि णत्थि, ओरालियकायजोगेण तेसिं विरोहादो ।

उववादं णत्थि ॥ ५८ ॥

ओरालियकायजोगेण सह एदस्स विरोहादो ।

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥५९॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६० ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-पदेहि वेउव्वियकायजोगिणो तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पहाणीकयजोइसियरासित्तादो । मारणंतिय-समुग्घादेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ ओवट्टणं जाणिय कायव्वं ।

उववादो णत्थि ॥ ६१ ॥

रहते हैं । कपाटसमुद्घात, प्रतरसमुद्घात, लोकपूरणसमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद नहीं है, क्योंकि, औदारिककाययोगके साथ उनका विरोध है ।

औदारिककायजोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ५८ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगके साथ इसका विरोध है ।

वैक्रियिककाययोगी स्वस्थान और समुद्घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥५९॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिककायजोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे वैक्रियिककाययोगी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां ज्योतिषी राशिकी प्रधानता है । मारणान्तिक-समुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोककी अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । यहां अपवर्तन जानकर करना चाहिये ।

वैक्रियिककाययोगियोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ६१ ॥

वेउव्वियकायजोगेण उववादस्स विरोहादो ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ६२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ६३ ॥

एदस्स अत्थो— तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे । कुदो ? देवरासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तवेउव्वियमिस्स कायजोगिदव्वुवलंभादो ।

समुग्घाद-उववादा णत्थि ॥ ६४ ॥

वेउव्वियमिस्सेण सह एदेसिं विरोहादो । होदु मारणंतिय-उववादेहि सह विरोहो, ण वेयण-कसायसमुग्घादेहि । तम्हा वेउव्वियमिस्सम्मि समुग्घादो णत्थि त्ति ण घडदे ? एत्थ परिहारो वुच्चदे— सत्थाणखेत्तादो वाचयदुवारेण लोगस्स असंखेज्जदिभागेण

क्योंकि, वैक्रियिककाययोगके साथ उपपाद पदका विरोध है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ६२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ६३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थानसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे, और तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, देवराशिके संख्यातवें भागमात्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्य पाया जाता है ।

समुद्घात व उपपाद पद नहीं हैं ॥ ६४ ॥

क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ इनका विरोध है ।

शंका— वैक्रियिकमिश्रकाययोगका मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंके साथ भले ही विरोध हो, किन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातके साथ कोई विरोध नहीं है । अत एव 'वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें समुद्घात नहीं है' यह वचन घटित नहीं होता ?

समाधान— उक्त शंकाका यहां परिहार कहा जाता है— स्वस्थान क्षेत्रसे

वेयण-कसाय-वेउव्विय-विहारवदिसत्थाण-तेजाहारखेत्ताणि अपुधभूदत्तादो तत्थेव लीणाणि त्ति एदाणि एत्थ खुद्दाबंधे ण परिग्गहिदाणि। तदो मारणंतियमेक्कं चेव केवलिसमुग्घादेण सहिदं एत्थ समुग्घादणिद्देसेण घेप्पदि । सो च समुग्घादो एत्थ णत्थि, तेणेसो ण दोसो त्ति । अधवा वेयण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहाराणं पि एत्थ खुद्दाबंधे अत्थि समुग्घाद-ववएसो, किंतु ण ते पहाणं, मारणंतियखेत्तादो तेसिमहियखेत्ताभावादो । तदो पहाणं मारणंतियपदं जत्थ अत्थि, तत्थ समुग्घादो वि अत्थि। जत्थ तं णत्थि, ण तत्थ समुग्घादो त्ति वुच्चदि । तदो दोहि पयारेहि ' समुग्घादो णत्थि ' त्ति ण विरुज्झदे ।

आहारकायजोगी वेउव्वियकायजोगिभंगो ॥ ६५ ॥

एसो दव्वट्ठियणिद्देसो। पज्जवट्ठियणयं पडुच्च भण्णमाणे अत्थि तदो विसेसो । तं जहा– सत्थाण-विहारवदिसत्थाणपरिणदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुस-खेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे,

कथनकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागसे वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, विहारवत्स्वस्थान, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातके क्षेत्र अभिन्न होनेसे उसीमें लीन हैं, अतएव ये यहां 'क्षुद्रकबन्ध' में नहीं ग्रहण किये गये हैं। इसी कारण केवलिसमुद्घात सहित एक मारणान्तिकसमुद्घात ही यहां समुद्घात-निर्देशसे ग्रहण किया जाता है। और वह समुद्घात यहां है नहीं, इसलिये यह कोई दोष नहीं है। अथवा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजस-समुद्घात और आहारकसमुद्घातको भी यहां 'क्षुद्रकबन्ध' में समुद्घातसंज्ञा प्राप्त है, किन्तु वे प्रधान नहीं हैं, क्योंकि, मारणान्तिक क्षेत्रकी अपेक्षा उनके अधिक क्षेत्रका अभाव है। अतएव जहां प्रधान मारणान्तिक पद है वहां समुद्घात भी है, किन्तु जहां वह नहीं है वहां समुद्घात भी नहीं है, ऐसा कहा जाता है। इस कारण दोनों प्रकारोंसे ' समुद्घात नहीं है ' यह वचन विरोधको प्राप्त नहीं होता।

आहारककाययोगियोंके क्षेत्रका निरूपण वैक्रियिककाययोगियोंके क्षेत्रके समान है ॥ ६५ ॥

यह द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा निर्देश है। पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा निरूपण करनेपर वैक्रियिककाययोगियोंके क्षेत्रसे यहां विशेषता है। वह इस प्रकार है— स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रसे परिणत आहारककाययोगी जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त

अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे त्ति ।

आहारमिस्सकायजोगी वेउव्वियमिस्सभंगो ॥ ६६ ॥

एसो वि दव्वट्ठियणिद्देसो, लोगस्स असंखेज्जदिभागत्तणेण दोण्हं खेत्ताणं समाणत्तं पेक्खिय पवुत्तीदो । पज्जवट्ठियणयं पडुच्च भेदो अत्थि । तं जहा– आहारमिस्सकायजोगी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे त्ति ।

कम्मइयकायजोगी केवडिखेत्ते ? ॥ ६७ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगे ॥ ६८ ॥

एदं देसामासियसुत्तं ण होदि, वुत्तत्थं मोत्तूणेदेण सूइदत्थाभावादो । कधं कम्मइयकायजोगिरासी सव्वलोए ? ण, तस्स अणंतस्स सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तणेण तदविरोहादो ।

जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

आहारकमिश्रकाययोगियोंका क्षेत्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ ६६ ॥

यह भी द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा निर्देश है, क्योंकि, लोकके असंख्यातवें भागत्वसे दोनों क्षेत्रोंकी समानताकी अपेक्षा कर इसकी प्रवृत्ति हुई है। पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा भेद है। वह इस प्रकार है— आहारकमिश्रकाययोगी जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं ।

कार्मणकाययोगी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कार्मणकाययोगी जीव सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ६८ ॥

यह देशामर्शक सूत्र नहीं है, क्योंकि, उक्त अर्थको छोड़कर इसके द्वारा सूचित अर्थका अभाव है ।

शंका—कार्मणकाययोगी जीवराशि सर्व लोकमें कैसे रहती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कार्मणकाययोगिराशिके अनन्त सर्व जीवराशिके असंख्यातवें भाग होनेसे उसमें कोई विरोध नहीं है ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ६९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७० ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूइदत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुद्घादगदा इत्थिवेदजीवा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो? पहाणीकयदेवित्थिवेदरासित्तादो। मारणंतिय-उववादगदा तिण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे । एत्थ मारणंतिय-उववादखेत्तविण्णासो जाणिदूण कायव्वो । एवं पुरिसवेदस्स वि वत्तव्वं । णवरि एत्थ तेजाहारपदाणि अत्थि । तेसु वट्टंता चदुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे त्ति वत्तव्वं ।

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७० ॥

इस देशामर्शक सूत्रसे सूचित अर्थको कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त स्त्रीवेदी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां देव स्त्रीवेद राशि प्रधान है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त स्त्रीवेदी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहां मारणान्तिक और उपपाद क्षेत्रोंका विन्यास जानकर करना चाहिये। इसी प्रकार पुरुषवेदियोंका क्षेत्र भी कहना चाहिये। विशेष इतना है कि पुरुषवेदियोंमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद भी हैं। उन पदोंमें वर्तमान पुरुषवेदी जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये ।

णवुंसयवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ७१ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोए ॥ ७२ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा सव्वलोए । कुदो ? आणंतियादो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । णवरि वेउव्वियसमुग्घादगदा तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे । कुदो ? तसरासिग्गहणादो ।

अवगदवेदा सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ७३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ७४ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— चदुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स

नपुंसकवेदी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ७१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदी जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७२ ॥

इसका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त नपुंसकवेदी जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। विशेष इतना है कि वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, यहां त्रसराशिका ग्रहण है ।

अपगतवेदी जीव स्वस्थानसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ७४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— अपगतवेदी जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें

संखेज्जदिभागे । कुदो ? संखेज्जुवसामग-खवगजीवग्गहणादो ।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ७५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥ ७६ ॥

मारणंतियसमुग्घादगदा उवसामगा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एवं दंडगदा वि । कवाडगदा वि एवं चेव । णवरि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे त्ति वत्तव्वं । पदरगदा लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु । कुदो ? वादवलएसु जीवपदेसाभावादो । लोगपूरणे सव्वलोगे, जीवपदेसेहि अणोट्ठद्धलोगपदेसाभावादो ।

उववादं णत्थि ॥ ७७ ॥

तत्थुप्पज्जमाणजीवाभावादो ।

और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, क्योंकि, यहां संख्यात उपशामक और क्षपक जीवोंका ग्रहण है ।

अपगतवेदी जीव समुद्घातकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदी जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ ७६ ॥

मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उपशामक जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार दण्डसमुद्घातको प्राप्त जीव भी चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । कपाटसमुद्घातको प्राप्त जीवोंका क्षेत्र भी इसी प्रकार ही है । विशेष इतना है कि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ऐसा कहना चाहिये। प्रतरसमुद्घातको प्राप्त वे ही जीव लोकके असंख्यात बहुभागोंमें रहते हैं, क्योंकि, इस अवस्थामें वातवलयोंमें जीवप्रदेशोंका अभाव रहता है । लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, जीवप्रदेशोंसे अनवष्टब्ध लोकप्रदेशोंका इस अवस्थामें अभाव रहता है ।

अपगदवेदी जीवोंमें उपपाद पद नहीं होता ॥ ७७ ॥

क्योंकि, अपगतवेदियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंका अभाव है ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णवुंसयवेदभंगो ॥ ७८ ॥

कुदो ? सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगावट्ठाणेण; वेउव्वियाहारपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागत्तणेण, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तणेण, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणत्तणेण दोण्हं भेदाभावादो । णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तणेण भेदो अत्थि, तमेत्थ ण पहाणं । णवरि एत्थ तेजाहारपदाणि अत्थि, णवुंसए णत्थि अप्पसत्थत्तणेण ।

अकसाई अवगदवेदभंगो ॥ ७९ ॥

सुगममेदं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयवेदभंगो ॥ ८० ॥

णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तणेण भेदो अत्थि, तमेत्थ

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंका क्षेत्र नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा सर्व लोकमें अवस्थानसे, तथा वैक्रियिक और आहारक समुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें व तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागत्वसे एवं अढ़ाई द्वीपकी अपेक्षा संख्यातगुणत्वसे उक्त चारों कषायवाले जीवों व नपुंसकवेदियोंके कोई भेद नहीं है । विशेष इतना है कि वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागत्वसे भेद है, किन्तु वह यहां प्रधान नहीं है । दूसरी विशेषता यह है कि यहां तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद हैं, किन्तु अप्रशस्त होनेसे नपुंसकवेदियोंमें ये नहीं होते हैं ।

अकषायी जीवोंका क्षेत्र अपगतवेदियोंके समान है ॥ ७९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ज्ञानमार्गणानुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंका क्षेत्र नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ ८० ॥

विशेष इतना है कि वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा तिर्यग्लोकके संख्यातवें

अप्पहाणं ।

विभंगणाणि-मणपज्जवणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडि खेत्ते ? ८१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८२ ॥

एत्थ ताव विभंगणाणीणं वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पहाणीकददेवपज्जत्तरासित्तादो । मारणंतिय-समुग्घादगदा एवं चेव । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं ।

मणपज्जवणाणीणं वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-समुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतिय-समुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। सेसं सुगमं ।

......

भागत्वसे दोनोंमें भेद है, परन्तु वह यहां अप्रधान है ।

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव स्वस्थान व समुद्घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८२ ॥

यहां पहले विभंगज्ञानियोंका क्षेत्र कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त विभंगज्ञानी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां देव पर्याप्त राशि प्रधान है । मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त विभंगज्ञानियोंके क्षेत्रका प्ररूपण भी इसी प्रकार है । विशेष इतना है कि वे तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ऐसा कहना चाहिये ।

मनःपर्ययज्ञानियोंका क्षेत्र कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घातको प्राप्त मनःपर्ययज्ञानी जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिक-समुद्घात प्राप्त वे ही जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उववादं णत्थि ॥ ८३ ॥

एदेसिं दोण्हं णाणाणमपज्जत्तकाले संभवाभावादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८५ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादगदा एदे चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एवं तेजाहारपदेसु वि । णवरि माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे ।

केवलणाणी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८६ ॥

सुगमं ।

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ८३ ॥

क्योंकि, अपर्याप्तकालमें इन दोनों ज्ञानोंकी संभावना नहीं है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको प्राप्त ये उपर्युक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंमें जानना चाहिये । विशेष इतना है कि इन पदोंकी अपेक्षा मनुष्यक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं ।

केवलज्ञानी जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ८७ ॥

सत्थाण-विहारवदिसत्थाणेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागं माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागं च मोत्तूणुवरि पुसणस्साभावादो ।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ८८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥ ८९ ॥

दंडगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कवाडगदा तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । पदरगदा लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु । लोगपूरणे सव्वलोगे ।

उववादं णत्थि ॥ ९० ॥

अपज्जत्तकाले केवलणाणाभावादो ।

केवलज्ञानी जीव स्वस्थानमें लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ८७ ॥

स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागको छोड़कर ऊपर स्पर्शनका अभाव है ।

समुद्घातकी अपेक्षा केवलज्ञानी जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घातकी अपेक्षा केवलज्ञानी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ? ॥ ८९ ॥

दण्डसमुद्घात केवलज्ञानी चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । कपाटसमुद्घातगत केवलज्ञानी तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । प्रतरसमुद्घातगत केवलज्ञानी लोकके असंख्यात बहुभागोंमें रहते हैं । लोकपूरणसमुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोकमें रहते हैं ।

केवलज्ञानियोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ ९० ॥

क्योंकि, अपर्याप्तकालमें केवलज्ञानका अभाव है ।

संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा अकसाई-भंगो ॥ ९१ ॥

एसो दव्वट्ठियणिद्देसो । पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे विसेसो अत्थि सं वत्तइस्सामो । तं जहा— सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहार-समुग्घादगदा संजदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतियसमुग्घादगदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । केवलिसमुग्घादगदा (लोगस्स असंखेज्जदिभागे) असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा । एवं जहाक्खादसुद्धिसंजदाणं वत्तव्वं । णवरि तेजाहारपदाणि णत्थि ।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुम-सांपराइयसुद्धिसंजदा संजदासंजदा मणपज्जवणाणिभंगो ॥ ९२ ॥

एसो दव्वट्ठियणिद्देसो । पज्जवट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे पुण अत्थि विसेसो । तं जहा– सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहारपदेहि सामाइय-

संयममार्गणानुसार संयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीवोंका क्षेत्र अकषायी जीवोंके समान है ॥ ९१ ॥

यह कथन द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे है। पर्यायार्थिक नयका अवलंबन करनेपर जो विशेषता है उसे कहते हैं । वह इस प्रकार है—स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारक-समुद्घातको प्राप्त संयत जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुष-क्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । केवलि-समुद्घातको प्राप्त वे ही संयत जीव (लोकके असंख्यातवें भागमें), अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार यथाख्यातशुद्धिसंयत जीवोंका क्षेत्र भी कहना चाहिये । विशेष इतना है कि उनके तैजस और आहार पद नहीं होते ।

समायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंका क्षेत्र मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ ९२ ॥

यह कथन द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे है । पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करने-पर विशेषता है । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात,

छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे। मारणंतियपदेण एवं चेव। णवरि माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं। एवं परिहारसुद्धिसंजदाणं। णवरि तेजाहारं णत्थि। एवं सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणं। णवरि विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदाणि त्ति णत्थि। सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपदेहि संजदासंजदा चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे त्ति भेदुवलंभादो।

असंजदा णवुंसयभंगो ॥ ९३ ॥

णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे। सेसं सुगमं।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ९४ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९५ ॥

इन पदोंकी अपेक्षा सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं। मारणान्तिकपदकी अपेक्षा भी इसी प्रकार ही क्षेत्रका निरूपण है। विशेष इतना है कि मारणान्तिकसमुद्घातगत जीव मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ऐसा कहना चाहिये। इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयत जीवोंका भी क्षेत्र है। विशेषता केवल इतनी है कि इनके तैजस और आहारकसमुद्घात नहीं होते। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंका भी क्षेत्र है। विशेष इतना है कि इनके विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक समुद्घात पद भी नहीं हैं। स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे संयतासंयत जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, इस प्रकार भेद पाया जाता है।

असंयत जीवोंका क्षेत्र नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ ९३ ॥

विशेष इतना है कि वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त असंयत जीव तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी जीव स्वस्थानसे और समुद्घातसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ९४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

चक्षुदर्शनी जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९५ ॥

एत्थ विवरणं कस्सामो । तं जहा— सत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि चक्खुदंसणी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । तेजाहारपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे । मारणंतियपदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे अच्छंति त्ति संबंधो कायव्वो ।

उववादं सिया अत्थि, सिया णत्थि । लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि । जदि लद्धिं पडुच्च अत्थि, केवडिखेत्ते ? ॥ ९६ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ९७ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे । तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणे ।

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ॥ ९८ ॥

इस सूत्रके अर्थका विवरण करते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये ।

चक्षुदर्शनी जीवोंके उपपाद पद कथंचित् होता है, और कथंचित् नहीं भी होता है । लब्धिकी अपेक्षा उपपाद पद होता है, किन्तु निर्वृत्तिकी अपेक्षा नहीं होता । यदि लब्धिकी अपेक्षा उपपाद पद होता है तो उसकी अपेक्षा वे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ९६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपादकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ९७ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— उपपादकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

अचक्षुदर्शनियोंका क्षेत्र असंयत जीवोंके समान है ॥ ९८ ॥

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ ९९ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १०० ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया असंजदभंगो ॥ १०१ ॥

कुदो ? सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगे अवट्ठाणेण; विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे अवट्ठाणेण च साधम्मियादो । णवरि वेउव्विय तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागे । तमेत्थ अप्पहाणं ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १०२ ॥

सुगमं ।

...

अवधिदर्शनियोंका क्षेत्र अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ९९ ॥

केवलदर्शनियोंका क्षेत्र केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १०० ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र असंयतोंके समान है ॥ १०१ ॥

क्योंकि, स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदोंकी अपेक्षा सर्व लोकमें अवस्थानसे; तथा विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, एवं अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें अवस्थानसे उपर्युक्त लेश्यावाले जीवोंकी असंयत जीवोंसे समानता है। विशेष इतना है कि वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त जीव तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं । किन्तु वह यहां अप्रधान है ।

तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १०३ ॥

एदस्स देसामासियसुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि तेउलेस्सिया तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? पहाणीकयदेवरासित्तादो । मारणंतियपदेण वि एवं चेव । णवरि तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं । एवं चेव उववादेण वि । एत्थ ओवट्टणे ठविज्जमाणे सोधम्मरासिं ठविय अप्पणो उवक्कमणकालेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे एगसमएण तत्थुप्पज्जमाणजीवपमाणं होदि । पुणो पभापत्थडे उप्पज्जमाणजीवाणं पमाणागमणट्ठमवरेगो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो भागहारो ठवेदव्वो । एवं ठविदे दिवड्ढरज्जुआयामेण उववादगदजीवपमाणं होदि । पुणो संखेज्जपदरंगुलमेत्तरज्जूहि गुणिदे उववादखेत्तं होदि । एत्थ ओवट्टणं जाणिय कायव्वं ।

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसायपदेहि पम्मलेस्सिया तिण्हं लोगाणं

उक्त दो लेश्यावाले जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ १०३ ॥

इस देशामर्शक सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तेजोलेश्यावाले जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां देवराशिकी प्रधानता है । मारणान्तिकसमुद्घात पदकी अपेक्षा भी इसी प्रकार ही क्षेत्र है । विशेष इतना है कि तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये । इसी प्रकार उपपाद पदकी अपेक्षा भी क्षेत्रका निरूपण जानना चाहिये । यहां अपवर्तनके स्थापित करते समय सौधर्मराशिको स्थापित कर अपने उपक्रमणकालरूप पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक समयमें वहां उत्पन्न होनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है । पुनः प्रभा पटलमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके प्रमाणके परिज्ञानार्थ एक अन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागको भागहाररूपसे स्थापित करना चाहिये । इस प्रकार उक्त भागहारके स्थापित करनेपर डेढ़ राजुप्रमाण आयामसे उपपादको प्राप्त जीवोंका प्रमाण होता है । पुनः उसे संख्यात प्रतरांगुलमात्र राजुओंसे गुणित करनेपर उपपादक्षेत्रका प्रमाण होता है । यहां अपवर्तना जानकर करना चाहिये ।

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात

असंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो? पहाणीकदतिरिक्खरासीदो। वेउव्विय-मारणंतिय-उववादेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो? सणक्कुमार-माहिंदजीवाणं पाहण्णियादो।

सुक्कलेस्सिया सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १०४ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ १०५ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-उववादेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे। एत्थ उववादजीवा संखेज्जा चेव। कुदो? मणुस्सेहिंतो चेव आगमणादो।

समुग्घादेण लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥ १०६ ॥

पदोंसे पद्मलेश्यावाले जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां तिर्यंचराशि प्रधान है। वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, यहां सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पके जीवोंकी प्रधानता है।

शुक्ललेश्यावाले जीव स्वस्थान और उपपाद पदोंमे कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ १०४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

शुक्ललेश्यावाले जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥१०५॥

इसका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान और उपपाद पदोंसे शुक्ललेश्यावाले जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। यहां उपपादपदगत जीव संख्यात ही हैं, क्योंकि, मनुष्योंमेंसे ही यहां आगमन है।

शुक्ललेश्यावाले जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १०६ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे । तं जहा— वेयण-कसाय-वेउव्विय-दंड-मारणंतियपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एवं तेजाहारपदाणं पि । णवरि माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे त्ति वत्तव्वं । सेसकेवलिपदाणि सुगमाणि ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १०७ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगे ॥ १०८ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि अभवसिद्धिया सव्वलोगे । कुदो ? आणंतियादो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । कुदो ? 'सव्वत्थोवा धुवबंधगा, सादियबंधगा असंखेज्जगुणा, अणादियबंधगा असंखेज्जगुणा, अद्धुवबंधगा विसेसाहिया धुवबंधगेणूणसादियबंधगेणेत्ति' तसरासिमस्सिदूण वुत्तबंधप्पाबहुगसुत्तादो णव्वदे ।

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, दण्डसमुद्घात और मारणान्तिक पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घात पदोंके भी क्षेत्रका निरूपण करना चाहिये । विशेष इतना है कि इन पदोंकी अपेक्षा उक्त जीव मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये । शेष केवलिसमुद्घात पद सुगम हैं ।

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १०७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १०८ ॥

इसका अर्थ कहते हैं – स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा अभव्यसिद्धिक जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं ।

शंका— यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान— 'ध्रुवबन्धक सबसे स्तोक हैं, सादिबन्धक असंख्यातगुणे हैं, अनादिबन्धक असंख्यातगुणे हैं, और अध्रुवबन्धक ध्रुवबन्धकोंसे रहित सादिबन्धकोंके प्रमाणसे विशेष अधिक हैं' इस प्रकार त्रसराशिका आश्रय कर कहे गये बन्धसम्बन्धी अल्प-

तसकाइएसु अभवसिद्धिया पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता। कधमेदं णव्वदे? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ततससादियबंधगेहिंतो तसधुवबंधगाणमसंखेज्जगुण-हीणत्तण्णहाणुववत्तीदो। भवसिद्धियाणमोघभंगो।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते? ॥ १०९ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११० ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-उववादेण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे। कुदो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तरासित्तादो।

बहुत्वामियोगद्वारके सूत्रसे जाना जाता है।

त्रसकायिकोंमें अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं।

शंका— यह कैसे जाना जाता है कि त्रसकायिकोंमें अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही हैं?

समाधान—क्योंकि, यदि ऐसा न माना जाय तो पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र त्रस सादिबन्धकोंकी अपेक्षा त्रस ध्रुवबन्धकोंके असंख्यातगुणहीनता बन नहीं सकती।

भव्यसिद्धिक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि स्वस्थान और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं? ॥ १०९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान और उपपाद पदसे उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, क्योंकि, उक्त जीवराशि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र है।

समुग्घादेण लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा ॥ १११ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिएहि सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणे । एवं केवलिदंडखेत्तं पि । एवं तेजाहारपदाणं । णवरि माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागे त्ति वत्तव्वं । सेसतिण्णि वि केवलिपदाणि सुगमाणि ।

वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ११२ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जाणिय वत्तव्वो । णवरि उवसमसम्माइट्ठीसु मारणंतिय-उववादपदट्ठिदजीवा[1] संखेज्जा चेव ।

सम्यग्दृष्टि व क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें, अथवा असंख्यात बहुभागोंमें, अथवा सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १११ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें व मानुषक्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार केवलिदण्डसमुद्घातकी अपेक्षा भी क्षेत्रका निरूपण करना चाहिये । इसी प्रकार तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा भी क्षेत्रका प्रमाण जानना चाहिये । विशेष इतना है कि उक्त दोनों समुद्घातगत जीव जीव मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये । शेष तीनों ही केवलिपद सुगम हैं ।

वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ११२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११३ ॥

इस सूत्रका अर्थ जानकर कहना चाहिये । विशेष इतना है कि उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंमें स्थित जीव संख्यात ही हैं ।

१ प्रतिषु ' उववादपदिट्ठिदजीवा ' इति पाठः ।

सम्मामिच्छाइट्ठी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? ॥ ११४ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेसु संतेसु वि समुग्घादस्स अत्थित्त-मभणिय सत्थाणपदस्स एक्कस्स चेव परूवणादो णज्जदि जधा वेयण-कसाय-वेउव्विय-पदाणि समुग्घादपदम्हि ण गहिदाणि त्ति। जदि एदम्हि गंथे ण गहिदाणि तो वि किमट्ठं एत्थ परूवणा कीरदे ? जेमिमेरिसो अहिप्पाओ ण ते तेहि परूवेंति। जेसिं पुण समुग्घादपदस्संतो वेदणादिपदाणि अत्थि ते तेहि परूवणं करेंति। जदि एवं तो सम्मा-मिच्छादिट्ठिम्हि समुग्घादपदेण होदव्वं ? ण एस दोसो, जत्थ मारणंतियमत्थि तत्थेव तेसिमत्थित्तस्स अब्भुवगमादो। किमट्ठमेवंविहअब्भुवगमो कीरदे ? ण, मारणंतिएण विणा वेदणादिखेत्ताणं पहाणत्ताभावपदुप्पायणट्ठं तहाब्भुवगमकरणे दोसाभावादो। सेसं सुगमं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ११४ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंके होनेपर भी समुद्घातके अस्तित्वको न कहकर केवल एक स्वस्थानपदके ही निरूपणसे जाना जाता है कि वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पद समुद्घातपदमें गृहीत नहीं हैं।

शंका— यदि इस ग्रंथमें वे गृहीत नहीं हैं तो किस लिये यहां उनकी प्ररूपणा की जाती है ?

समाधान—इस प्रकार जिनका अभिप्राय है वे उनकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण नहीं करते हैं। किन्तु जिनके अभिप्रायसे वेदनासमुद्घातादि पद समुद्घात पदके भीतर हैं वे उनकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण करते हैं।

शंका— यदि ऐसा है तो सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें समुद्घात पद होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जहां मारणान्तिकसमुद्घात पद है वहां ही उनका अस्तित्व स्वीकार किया गया है।

शंका— ऐसा किस लिये स्वीकार किया गया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घातके विना वेदनादिसमुद्घात क्षेत्रोंकी प्रधानताके अभावको बतलानेके लिये वैसा स्वीकार करनेमें कोई दोष नहीं है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११५ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि सम्मामिच्छादिट्ठी चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे त्ति एसो सुत्तस्सत्थो ।

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो ॥ ११६ ॥

सुगममेदं ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ११७ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे ॥ ११८ ॥

एदेण सूचिदत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण कसाय-वेउव्वियपदेहि सण्णी तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे । एवं मारणंतिय-उववादेसु वि वत्तव्वं । णवरि

...

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थानसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥११५॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव चार लोकोंके असंख्यातवें भागमें और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं, यह इस सूत्रका अर्थ है ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका क्षेत्र असंयत जीवोंके समान है ॥ ११६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी जीव उक्त पदोंसे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ॥ ११८ ॥

इस सूत्रके द्वारा सूचित अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे संज्ञी जीव तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंके विषयमें भी कहना चाहिये । विशेष इतना है कि तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे

तिरियलोगादो असंखेज्जगुणे त्ति वत्तव्वं[1] ।

असण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ ११९ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगे ॥ १२० ॥

एदस्सत्थो— सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि असण्णी सव्व-लोगे । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणे । णवरि वेउव्वियं तिरियलोगस्स असं-खेज्जदिभागे ।

आहाराणुवादेण आहारा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? ॥ १२१ ॥

सुगममेदं ।

सव्वलोगे ॥ १२२ ॥

....

क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहना चाहिये ।

असंज्ञी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२० ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे असंज्ञी जीव सर्व लोकमें रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। विशेष इतना है कि वैक्रियिक पदकी अपेक्षा तिर्यग्लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं ।

आहारमार्गणानुसार आहारक जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदसे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक जीव उक्त पदोंसे सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२२ ॥

१ अ-आप्रत्योः ' वत्तव्वं भाणिदव्वं ' इति पाठः ।

एदस्सत्थो– सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोए, आणंतियादो। विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे।

अणाहारा केवडिखेत्ते ?॥ १२३ ॥

सुगमं।

सव्वलोए ॥ १२४ ॥

कुदो ? आणंतियादो। एत्थ भवस्स पढमसमए अवट्ठिदाणं उववादं होदि, बिदियादिदोसु समएसु ट्ठिदाणं सत्थाणं होदि। एवं दोसु पदेसु लब्भमाणेसु किमट्ठं ताणि दो पदाणि ण वुत्ताणि ? ण, तत्थ खेत्तभेदाणुवलंभादो।

एवं खेत्ताणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

— — —

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे आहारक जीव सर्व लोकमें रहते हैं, क्योंकि, वे अनन्त हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमें, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं।

अनाहारक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? ॥ १२३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

अनाहारक जीव सर्व लोकमें रहते हैं ॥ १२४ ॥

क्योंकि, वे अनन्त हैं।

शंका—यहां भवके प्रथम समयमें अवस्थित जीवोंके उपपाद होता है और द्वितीयादिक दो समयोंमें स्थित जीवोंके स्वस्थान पद होता है। इस प्रकार दो पदोंकी प्राप्ति होनेपर किसलिये उन दो पदोंको यहां नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें क्षेत्रभेद नहीं पाया जाता।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

फोसणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएहि[1] सत्था-णेहि केवडिखेत्तं फोसिदं ? ॥ १ ॥

एत्थ णिरयगदीए त्ति चेवकारो अज्झाहारेयव्वो। तेण किं लद्धं ? णिरयगदीए चेव णेरइया, ण अण्णत्थ कत्थ वि त्ति पडिसेहो उवलद्धो। तेहि णेरइएहि सत्थाणत्थेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं– किं सव्वलोगो, किं लोगस्स असंखेज्जा भागा, किं लोगस्स संखेज्जदिभागो, किमसंखेज्जदिभागो त्ति एदमाइरियासंकिदं। वा[2] सद्देण विणा कधमा-संकावगम्मदे ? ण, अवुत्तस्स वि पयरणवसेण कत्थ वि अवगमुवलंभादो। सेसं सुगमं। एत्थ ओघाणुगमो किण्ण परूविदो ? ण, चोद्दसमग्गणा[3]विसिट्ठजीवाणं फोसणावगमेण

स्पर्शनानुगमसे गतिमार्गणानुसार नरकगतिमें नारकी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १ ॥

यहां सूत्रमें 'नरकगतिमें ही' ऐसा एवकारका अध्याहार करना चाहिये।

शंका— एवकारका अध्याहार करनेसे क्या लाभ है ?

समाधान— नरकगतिमें ही नारकी जीव हैं, अन्यत्र कहींपर नहीं हैं, इस प्रकार एवकारसे उनका अन्यत्र प्रतिषेध उपलब्ध होता है। उन नारकियोंके द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है— क्या सर्व लोक स्पृष्ट है, क्या लोकका असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट है, क्या लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है, किं वा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ? यह आचार्य द्वारा आशंका की गई है।

शंका— वा शब्दके विना कैसे आशंकाका परिज्ञान होता है ?

समाधान— अनुक्तका भी प्रकरणवश कहींपर अवगम पाया जाता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

शंका— यहां ओघानुगमका प्ररूपण क्यों नहीं किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, चौदह मार्गणाओंसे विशिष्ट जीवोंके स्पर्शनका ज्ञान

१ प्रतिषु '-णेरइया' इति पाठः। २ प्रतिषु 'वे' इति पाठः। ३ प्रतिषु 'मग्गाण-' इति पाठः।

तस्स वि अवगमादो ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २ ॥

होदु णाम वट्टमाणकाले[1] णेरइएहि सत्थाणेहि छुत्तं खेत्तं चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणं । किंतु णादीदकाले एदं होदि, तत्थ तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागमेत्तछुत्तखेत्तुवलंभादो । तं कधं ? णेरइया लोगणालिं समचउरसरज्जुमेत्तायामविक्खंभ-छरज्जुआयदं सव्वमदीदकाले सट्ठाणट्ठिया फुसंति त्ति ? ण, संखेज्जजोयणबाहल्लसत्तपुढवीओ मोत्तूण तेसिमदीदकाले अण्णत्थ अवट्ठाणाभावादो । जदि वि एवं तो वि तीदकाले तिरियलोगादो संखेज्जगुणेण होदव्वं, संखेज्जसूचिअंगुलबाहल्लतिरियपदरमेत्तखेत्तुवलंभादो ? ण, पुढवीणमसंखेज्जदिभागे चेव णेरइया होंति त्ति गुरूवदेसादो, सत्थाणेहि तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागो[2] चेव पोसिदो त्ति वक्खाणादो वा ।

होनेसे उसका भी ज्ञान हो जाता है ।

नारकियों द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २ ॥

शंका—वर्तमान कालमें नारकियोंसे स्पृष्ट क्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवें भागप्रमाण व माणुसक्षेत्रसे असंख्यातगुणा भले ही हो, किन्तु यह अतीतकालमें नहीं बनता, क्योंकि, अतीतकालमें तीन लोकोंके संख्यातवें भागमात्र स्पृष्ट क्षेत्र पाया जाता है ?

प्रतिशंका— वह कैसे ?

प्रतिशंकाका समाधान— नारकी जीव स्वस्थानमें स्थित होते हुए अतीतकालमें समचतुष्कोण एक राजुप्रमाण आयाम व विष्कम्भसे युक्त तथा छह राजु ऊंची सब लोकनालीको छूते हैं ।

शंकाका समाधान— नहीं, क्योंकि, संख्यात योजन बाहल्यरूप सात पृथिवियोंको छोड़कर उन नारकियोंका अतीतकालमें अन्यत्र अवस्थान नहीं है ।

शंका—यद्यपि ऐसा है तो भी अतीतकालमें तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र होना चाहिये, क्योंकि, संख्यात सूच्यंगुल बाहल्यरूप व तिर्यक् प्रतरमात्र क्षेत्र पाया जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, पृथिवियोंके असंख्यातवें भागमें ही नारकी जीव होते हैं, ऐसा गुरूपदेश है; अथवा स्वस्थानोंकी अपेक्षा तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भाग ही स्पृष्ट है, ऐसा व्याख्यान पाया जाता है ।

---

१ प्रतिषु 'कालो ' इति पाठः । २ प्रतिषु ' -भागे ' इति पाठः ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४ ॥

एदं सुत्तं वट्टमाणकालमस्सिदूण उवइट्ठं । ण च एत्थ पुणरुत्तदोसो, मंदबुद्धीणं पुणरुत्तपुव्वुत्तत्थसंभालणेण फलोवलंभादो । अहवा वेयण-कसाय-वेउव्वियपदाण-मतीदकालफोसणं पडुच्च एदं वुत्तं । तत्थ चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागस्स माणुस-खेत्तादो असंखेज्जगुणस्स फोसिदखेत्तस्सुवलंभादो ।

छच्चोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ५ ॥

एदं मारणंतिय-उववादपदाणमदीदकालमस्सिदूण वुत्तं । मारणंतियस्स छच्चोद्दस-भागा संखेज्जजोयणसहस्सेण ऊणा । अधवा एत्थ ऊणपमाणमेत्तियमिदि ण णव्वदे, पासेसु मज्झेसु एत्तियं खेत्तमूणमिदि विसिट्ठुवएसाभावादो । उववादपदे वि ऊणपमाणं

नारकियोंके द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नारकियों द्वारा उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ४ ॥

यह सूत्र वर्तमान कालका आश्रय कर उपदिष्ट है । यहां पुनरुक्त दोष भी नहीं है, क्योंकि, मन्दबुद्धि जीवोंको पुनरुक्त पूर्वोक्त अर्थका स्मरण करानेसे फलकी उपलब्धि है । अथवा, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंके वर्तमान-कालसम्बन्धी स्पर्शनकी अपेक्षा कर यह सूत्र कहा गया है, क्योंकि, उनमें चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा स्पृष्ट क्षेत्र पाया जाता है ।

अथवा, उक्त नारकियोंके द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ ५ ॥

यह सूत्र मारणान्तिक और उपपाद पदोंके अतीत कालका आश्रय कर कहा गया है । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा संख्यात योजनसहस्रसे हीन छह बटे चौदह भाग-प्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है । (देखो पुस्तक ४, पृ. १७४ आदि) । अथवा यहां हीनताका प्रमाण इतना है, यह जाना नहीं जाता, क्योंकि, स्पर्शनके मध्यमें इतना क्षेत्र कम है, इस प्रकार विशिष्ट उपदेशका अभाव है । उपपाद पदमें भी हीनताका प्रमाण पूर्वके

पुव्वं व जाणिदूण वत्तव्वं । कधं छचोद्दसभागा मारणं जुज्जदे ? ण, तिरिक्ख-णेरइयाणं सव्वदिसाहिंतो आगमण-गमणसंभवादो ।

पढमाए पुढवीए णेरइया सत्थाण-समुग्घाद-उववादपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६ ॥

एत्थ चेवकारो ण अज्झाहारेयव्वो, अवहारणाभावादो । जे पढमाए पुढवीए णेरइया तेहि सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदमिदि एत्थ संबंधो कायव्वो । सेसं सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ ७ ॥

एदेण देसामासियसुत्तेण सूइदत्थो वुच्चदे । तं जहा— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपदेहि[2] वट्टमाणकालमस्सिदूण परू-

समान जानकर कहना चाहिये ।

शंका – मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा छह बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन कैसे योग्य है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तिर्यंच व नारकी जीवोंका सब दिशाओंसे आगमन और गमन सम्भव है ।

प्रथम पृथिवीमें नारकी जीवोंके द्वारा स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६ ॥

यहां एवकारका अध्याहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि, अवधारण अर्थात् निश्चयका अभाव है । जो प्रथम पृथिवीमें नारकी जीव हैं उनके द्वारा स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है, इस प्रकार यहां सम्बन्ध करना चाहिये । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

प्रथम पृथिवीके नारकियों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ७ ॥

इस देशामर्शक सूत्रके द्वारा सूचित अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात तथा उपपाद पदोंकी अपेक्षा वर्तमान कालका आश्रय कर स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, विहार-

---

१ प्रतिषु ' भागे ' इति पाठः । २ आप्रतौ ' उववादपरिणदेहि ' इति पाठः ।

वणाए खेत्तभंगो। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणदेहि[1] णेरइएहि तीदे काले चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कुदो? असंखेज्जजोयणविक्खंभणिरयावासखेत्तफलं ठविय णेरइयाणमुस्सेहेण गुणिय लद्धं तप्पाओग्गसंखेज्जबिलसलागाहि गुणिदे तिरियलोगस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-खेत्तुवलंभादो। अदीदकाले मारणंतिय-उववादपरिणदेहि पढमपुढविणेरइयेहि तिण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं? असीदिसहस्साहियजोयणलक्खपढम-पुढविबाहल्लम्मि हेट्ठिमजोयणसहस्सं णेरइएहि सव्वकालं ण छुप्पदि त्ति काऊण एत्थ जोयणसहस्समवणिय सेसजोयणसहस्सबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय उस्सेहेण एगूणवंचास-मेत्तखंडाणि काऊण पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि। कुदो? एक्करज्जुरुंदो सत्तरज्जुआयदो जोयणलक्खबाहल्लो तिरियलोगो त्ति गुरूवएसादो। जे पुण जोयणलक्खबाहल्लं रज्जुविक्खंभं झल्लरीसमाणं तिरियलोगं भणंति तेसिं

वत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंको प्राप्त नारकियोंके द्वारा अतीत कालमें चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, असंख्यात योजन विष्कम्भरूप नारकावासके क्षेत्रफलको स्थापित कर व उसे नारकियोंके उत्सेधसे गुणित कर प्राप्त राशिको तत्प्रायोग्य संख्यात बिलशलाकाओंसे गुणित करनेपर तिर्यग्लोकका असंख्यातवां भागमात्र क्षेत्र उपलब्ध होता है। अतीत कालकी अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदको प्राप्त प्रथम पृथिवीके नारकियों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है।

शंका—तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पर्शन क्षेत्र कैसे प्राप्त होता है?

समाधान—एक लाख अस्सी सहस्र योजनप्रमाण प्रथम पृथिवीके बाहल्यमें अधस्तन एक सहस्र योजन क्षेत्र सर्व काल नारकियोंसे नहीं छुआ जाता, ऐसा समझकर, इसमेंसे एक सहस्र योजनोंको कम कर, शेष (एक लाख उन्यासी) सहस्र योजन बाहल्यरूप राजुप्रतरको स्थापित कर, उत्सेधसे उनंचास मात्र खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है, क्योंकि, 'एक राजु विस्तृत, सात राजु आयत, और एक लाख योजन बाहल्यवाला तिर्यग्लोक है' ऐसा गुरुका उपदेश है। किन्तु जो आचार्य एक लाख योजन बाहल्यसे युक्त व एक राजु विस्तृत झालरके समान तिर्य-

१ अ-काप्रत्योः 'पदेहि परिणदे णेरइएहि', आप्रतौ 'पदेहि परिणदे णेरइए' इति पाठः।

मारणंतिय-उववादखेत्ताणि तिरियलोगादो सादिरेयाणि होंति । ण चेदं घडदे, एदम्हि उवदेसे घेप्पमाणे लोगम्मि तिण्णिसदतेदालमेत्तघणरज्जूणमणुप्पत्तीदो । ण च एदाओ घणरज्जू असिद्धाओ, रज्जू सत्तगुणिदा जगसेडी, सा वग्गिदा जगपदरं, सेडीए गुणिद-जगपदरं घणलोगो होदि त्ति सयलाइरियसम्मदपरियम्मसिद्धत्तादो । ण च सव्वदो हेट्ठिम-मज्झिम-उवरिमभागेहि वेत्तासण-झल्लरी-मुइंगसमाणे लोगे घेप्पमाणे सेढी[१]-पदर-घणलोगा वग्गसमुट्ठिदा होंति, तधा संभवाभावादो । ण च एदेसिमवग्गसमुट्ठिदत्तम-ब्भुवगंतुं जुत्तं, कदजुम्मेहि पंचिंदियतिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणि-जोदिसिय-वेंतरदेवअवहार-कालेहि सुत्तसिद्धेहि अकदजुम्मजगपदरे भागे हिदे सच्छेदस्स जीवरासिस्स आगमण-प्पसंगादो । ण च एवं, जीवाणं छेदाभावादो, दव्वाणिओगद्दारवक्खाणम्मि वुत्तहेट्ठिम-उवरिमवियप्पाणमभावप्पसंगादो च । तिण्णिसदतेदालघणरज्जुपमाणो उवमालोओ, एदम्हादो अण्णो पंचदव्वाहारो लोगो त्ति के वि आइरिया भणंति । तं पि ण घडदे, उवमेएण विणा उवमाए अण्णत्थ घणंगुल-पलिदोवम-सागरोवमादिसु अणुवलंभादो । तम्हा- एत्थ वि उवमेएण लोगेण पमाणदो उवमालोगाणुसारिणा पंचदव्वाहारेण

ग्लोकको बतलाते हैं उनके मतानुसार मारणान्तिक व उपपाद क्षेत्र तिर्यग्लोकसे साधिक होते हैं। (देखो पुस्तक ४, पृ. १८३ और १८६ के विशेषार्थ) । परन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि, इस उपदेशके ग्रहण करनेपर लोकमें तीनसौ तेतालीस मात्र घनराजुओंकी उत्पत्ति नहीं बनती। तथा ये घनराजु असिद्ध भी नहीं हैं, क्योंकि, 'राजुको सातसे गुणित करनेपर जगश्रेणी, उस जगश्रेणीका वर्ग जगप्रतर और जगश्रेणीसे गुणित जगप्रतरप्रमाण घनलोक होता है' इस प्रकार समस्त आचार्यों द्वारा माने गये परिकर्मसूत्रसे वे सिद्ध हैं। दूसरी बात यह है कि सब ओरसे अधस्तन, मध्यम व उपरिम भागोंसे क्रमशः वेत्रासन, झालर व मृदंगके समान लोकके ग्रहण करनेपर जगश्रेणी, जगप्रतर और घनलोक वर्गसे उत्पन्न नहीं होंगे; क्योंकि, उक्त मान्यतामें वैसा संभव ही नहीं है। और इनकी विना वर्गके उत्पत्ति स्वीकार करना उचित भी नहीं है, क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, योनिमती तिर्यंच, ज्योतिषी और वानव्यन्तर देवोंके सूत्रसिद्ध कृतयुग्मराशिरूप अवहारकालोंका अकृतयुग्म जगप्रतरमें भाग देनेपर सछेद जीवराशिकी प्राप्तिका प्रसंग होगा। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि जीवोंके छेदोंका अभाव है। तथा द्रव्यानुयोगद्वारके व्याख्यानमें कहे गये अधस्तन व उपरिम विकल्पोंके अभावका भी प्रसंग होगा। (देखो पुस्तक ३, पृ. २१९, २४९ व पुस्तक ७, पृ. २५३)।

तीनसौ तेतालीस घनराजुप्रमाण उपमालोक है, इससे पांच द्रव्योंका आधारभूत लोक अन्य है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। परन्तु वह भी घटित नहीं होता, क्योंकि, उपमेयके विना उपमाका अन्यत्र घनांगुल, पल्योपम व सागरोपमादिकोंमें अनुपलम्भ है। अत एव यहां भी प्रमाणसे उपमालोकका अनुसरण करनेवाला

१ प्रतिषु 'सीदी-' इति पाठः ।

अण्णेण होदव्वमण्णहा एदस्स उवमालोगत्ताणुववत्तीदो। सेसं सुगमं।

बिदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९ ॥

एदस्सत्थो— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणपदपरिणदेहि अदीद-वट्टमाणकालेसु णेरइएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कुदो ? छण्णं पुढवीणं लोगणालीए रुद्धखेत्तस्स असंखेज्जदिभागे चेव णेरइयावासाणमुवलंभादो।

समुग्घाद-उववादेहि य केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १० ॥

सुगमं।

....

व पांच द्रव्योंका आधारभूत उपमेय लोक अन्य होना चाहिये, क्योंकि, इसके विना इसके उपमालोकत्व बन नहीं सकता (देखो पुस्तक ४, पृ. १०-२२)। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

द्वितीयसे लेकर सप्तम पृथिवी तकके नारकियों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त नारकियों द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ९ ॥

इस सूत्रका अर्थ— स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान पदोंसे परिणत नारकियोंके द्वारा अतीत व वर्तमान कालोंमें चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, छह पृथिवियोंके लोकनालीसे रुद्ध असंख्यातवें भागमें ही नारकावास पाये जाते हैं।

उक्त नारकियों द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १० ॥

यह सूत्र सुगम है।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो एग-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छ-चोद्दस-भागा वा देसूणा ॥ ११ ॥

वेयण-कसाय-वेउव्वियपदपरिणदेहि तीदे काले लोगस्स असंखेज्जदिभागो फोसिदो। वट्टमाणकाले पुण छपुढविणेरइएहि वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादपरिणदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। तीदे काले मारणंतिय-उववादेहि बिदियादिछपुढविणेरइएहि जहाकमेण देसूणएग-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंचचोद्दसभागा। कुदो ? तिरिक्खाणं णेरइयाणं तीदे काले सव्वदिसाहि आगमण-गमणसंभवादो।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२ ॥

सुगममेदं।

सव्वलोगो ॥ १३ ॥

उक्त नारकियों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम चौदह भागोंमेंसे क्रमशः एक, दो, तीन, चार, पांच और छह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ११ ॥

वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे परिणत उक्त नारकियों द्वारा अतीत कालकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है। किन्तु वर्तमान कालकी अपेक्षा छह पृथिवियोंके नारकियों द्वारा वेदनासमुद्घात, कपायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे परिणत होकर चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकियों द्वारा यथाक्रमसे कुछ कम चौदह भागोंमेंसे एक, दो, तीन, चार, पांच और छह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, तिर्यंच व नारकियोंका अतीत कालमें सब दिशाओंसे आगमन और गमन सम्भव है।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

तिर्यंच जीव उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ १३ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा– एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । सत्थाण-सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि तीदे काले सव्वलोगो फोसिदो । कुदो ? वट्टमाणे व सव्वलोगे अवट्ठाणुवलंभादो । विहारेण तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । असंखेज्जेसु समुद्देसु तसजीवविरहिएसु संतेसु कधं विहरंताणं तिरिक्खाणं तत्थ संभवो[1] ? ण, तत्थ पुव्ववइरियदेवाणं पओएण विहारे विरोहाभावादो । तीदे काले विहरंततिरिक्खेहि पुट्ठ-खेत्ताणयणविहाणं वुच्चदे । तं जहा– लक्खजोयणबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय उड्ढमेगूण-वंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं खेत्तं होदि । जदि वि जोयणलक्खबाहल्लेण विणा संखेज्जजोयणबाहल्लं तिरियपदरं लब्भदि, तो वि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो चेव होदि । वेउव्वियसमुग्घादगदाणं वट्टमाणे खेत्तं, तीदे काले तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, दोहि लोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? वाउकाइयजीवाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं विउव्वणखमाणं पंच-

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— यहां वर्तमानकालप्ररूपणा क्षेत्र-प्ररूपणाके समान है । स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात और उपपाद पदोंसे अतीत कालमें तिर्यंच जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, वर्तमान कालके समान अतीत कालमें भी तिर्यंच जीवोंका सर्व लोकमें अवस्थान पाया जाता है । विहारकी अपेक्षा अतीत कालमें तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है ।

शंका— असंख्यात समुद्रोंके त्रस जीवोंसे रहित होनेपर वहां विहार करनेवाले त्रस जीवोंकी सम्भावना कैसे हो सकती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वहां पूर्व वैरी देवोंके प्रयोगसे विहार होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

अतीत कालमें विहार करनेवाले तिर्यंचोंसे स्पृष्ट क्षेत्रके निकालनेका विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है— एक लाख योजन बाहल्यरूप राजुप्रतरको स्थापित कर ऊपरसे उनंचास खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र क्षेत्र होता है । यद्यपि एक लाख योजन बाहल्यके विना संख्यात योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतर प्राप्त होता है, तथापि तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग ही होता है । वैक्रियिकसमुद्घातको प्राप्त तिर्यंच जीवोंकी वर्तमानकालिक स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । किन्तु अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और दो लोकोंसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, विक्रिया करनेमें समर्थ पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण वायु-

१ प्रतिषु ' संभवादो ' इति पाठः ।

रज्जुबाहल्लरज्जुपदरमेत्तफोसणुवलंभादो ।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणि-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १४ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा — एदेसिं वट्टमाणं खेत्तं । आदिल्लेहि तिहि वि तिरिक्खेहि सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिक्खलोगस्स संखेज्जदि-भागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एदम्हि खेत्ते आणिज्जमाणे भोगभूमि-पडिभागदीवाणमंतरेसु ट्ठिदअसंखेज्जेसु समुद्देसु सत्थाणपदट्ठिदतिरिक्खा णत्थि त्ति एदं खेत्तमाणिय रज्जुपदरम्मि अवणिय सेसं संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं पंचिंदियतिरिक्खतिगस्स सत्थाणखेत्तं होदि । विहारवदि-सत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्वियचउक्केण परिणदतिविहपंचिंदियतिरिक्खेहि तिण्हं लोगाणम-

---

कायिक जीवोंका पांच राजु बाहल्यरूप राजुप्रतरप्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त चार प्रकारके तिर्यंचों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है — इनकी वर्तमानकालिक स्पर्शन-प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा प्रथम तीन प्रकारके तिर्यंचों द्वारा स्वस्थान पदसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । इस क्षेत्रके निकालते समय भोगभूमि-प्रतिभागरूप द्वीपोंके अन्तरालमें स्थित असंख्यात समुद्रोंमें स्वस्थान पदमें स्थित तिर्यंच नहीं हैं, अतः इस क्षेत्रको लाकर व राजुप्रतरमेंसे कम कर शेपको संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणित करनेपर तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र उक्त तीन पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका स्वस्थान-क्षेत्र होता है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-समुद्घात, इन चार पदोंसे परिणत तीन प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचों द्वारा तीन लोकोंका

---

१ प्रतिषु 'पदिट्ठिद-' इति पाठः ।

संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कुदो? मित्तामित्तदेवाणं वसेण एदेसिं सव्वदीव-समुद्देसु संचरणं पडि विरोहाभावादो। तेणेत्थ संखेज्जंगुलबाहल्लतिरियपदरमुड्डमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे पंचिंदियतिरिक्खतिगस्स विहारादिचउक्कखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं होदि। एसो वासद्देण सूइदट्ठो। विहारवदिसत्थाणखेत्तपरूवणाए चेव वेयण-कसाय-वेउव्विय-पदाणं पि परूवणा कदा गंथलाघवकरणट्ठं।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? ॥ १६ ॥

सुगममेदं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ॥ १७ ॥

एदस्स सुत्तस्स वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो। वेयण-कसाय-वेउव्वियपदाणं पि तीदकालपरूवणा पुव्वमेव परूविदा। मारणंतिय-उववादपरिणयपंचिंदियतिरिक्खतिएहि

असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, मित्र व शत्रुरूप देवोंके वशसे इनके सर्व द्वीपसमुद्रोंमें संचार करनेका कोई विरोध नहीं है। इसीलिये यहां संख्यात अंगुल बाहल्यरूप तिर्यक् प्रतरके ऊपरसे उनंचास खण्ड कर प्रतराकारसे स्थापित करनेपर उक्त तीन पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका विहारादि चार पदसम्बन्धी क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागमात्र होता है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। ग्रन्थलाघवके लिये विहारवत्स्वस्थान क्षेत्रकी प्ररूपणासे वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी भी प्ररूपणा कर दी गई है।

उक्त तीन प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है? ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त तिर्यचोंके द्वारा उक्त पदोंमें लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १७ ॥

इस सूत्रकी वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रके समान है। वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात व वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अतीतकालप्ररूपणा भी पूर्वमें ही की जा चुकी है। मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे परिणत उक्त तीन पंचेन्द्रिय तिर्यचों द्वारा

तीदकाले सव्वलोगो फोसिदो। लोगणालीए बाहिं तसकाइयाणं सव्वकालसंभवाभावादो सव्वलोगो त्ति वयणं ण जुज्जदे। ण एस दोसो, मारणंतिय-उववादपरिणयतसजीवे मोत्तूण सेसतसाणं बाहिमत्थित्तपडिसेहादो। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं वट्टमाण-परूवणाए खेत्तभंगो। संपदि तीदकालपरूवणं कस्सामो। तं जहा— सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसायपदपरिणएहि पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कुदो? कम्म-भूमिपडिभागे सयंपहपव्वयंपरभागे अड्ढाइज्जदीव-समुद्देसु च अदीदकाले तत्थ सव्वत्थ संभवादो। तेण तेहि फोसिदखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो। तस्साणयणविहाणं वुच्चदे—सयंपहपव्वदब्भंतरखेत्तं जगपदरस्स संखेज्जदिभागो। तं रज्जुपदरम्मि अवणिदे सेसं जगपदरस्स संखेज्जदिभागो। तं संखेज्जसूचिअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि। अपज्जत्ताणमंगुलस्सासंखेज्जदिभागोगाहणाणं कधं संखेज्जं-

---

अतीत कालमें सर्व लोक स्पृष्ट है।

शंका—लोकनालीके बाहिर सर्वदा कालमें त्रसकायिक जीवोंकी सर्वदा सम्भावना न होनेसे 'सर्व लोक स्पृष्ट है' यह कहना योग्य नहीं है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे परिणत त्रस जीवोंको छोड़कर शेष त्रस जीवोंके अस्तित्वका लोकनालीके बाहिर प्रतिषेध है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवोंकी वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रके समान है। इस समय अतीत कालकी अपेक्षा प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है— स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे परिणत पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि कर्मभूमिप्रतिभागरूप स्वयंप्रभ पर्वतके पर-भागमें और अढ़ाई द्वीप-समुद्रोंमें अतीत कालकी अपेक्षा वहां उनकी सर्वत्र सम्भावना है। इसीलिये उनके द्वारा स्पृष्ट क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। उसके निकालनेके विधानको कहते हैं— स्वयंप्रभ पर्वतका अभ्यन्तर क्षेत्र जगप्रतरके संख्यातवें भागप्रमाण है। उसे राजुप्रतरमेंसे कम करनेपर शेष जगप्रतरके संख्यातवें भागप्रमाण रहता है। उसे संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है।

शंका—अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनावाले अपर्याप्त जीवोंका

---

१ प्रतिषु 'पज्जय-' इति पाठः।

गुलुस्सेहो लब्भदे ? ण, मुदपंचिंदियादितसकाइयाणं कलेवरेसु अंगुलस्स संखेज्जदिभाग-मादिं काऊण जाव संखेज्जजोयणा त्ति[1] कमवड्ढीए ट्ठिदेसु उप्पज्जमाणाणमपज्जत्ताणं संखेज्जंगुलुस्सेहुवलंभादो । अधवा सव्वेसु दीव-समुद्देसु पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता होंति । कुदो ? पुव्ववइरियदेवसंबंधेण कम्मभूमिपडिभागुप्पण्णपंचिंदियतिरिक्खाणं एगबंधणबद्धछज्जीवणिकाओगाढओरालियदेहाणं सव्वदीव-समुद्देसु अवट्ठाणदंसणादो । मारणंतिय-उववादेहि पुण सव्वलोगो फोसिदो । कुदो ? मारणंतिय-उववादाणं सव्वलोगे पडिसेहाभावादो ।

मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९ ॥

संख्यात अंगुलप्रमाण उत्सेध कैसे पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अंगुलके संख्यातवें भागको आदि लेकर संख्यात योजन तक क्रमवृद्धिसे स्थित मृत पंचेन्द्रियादि त्रसकायिक जीवोंके शरीरोंमें उत्पन्न होनेवाले अपर्याप्तोंका संख्यात अंगुलप्रमाण उत्सेध पाया जाता है । अथवा, सभी द्वीप-समुद्रोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव होते हैं, क्योंकि, पूर्वके वैरी देवोंके सम्बन्धसे एक बन्धनमें बद्ध छह जीवनिकायोंसे व्याप्त औदारिक शरीरको धारण करनेवाले कर्म-भूमि प्रतिभागमें उत्पन्न हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका सर्व समुद्रोंमें अवस्थान देखा जाता है । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे परिणत उक्त जीवोंका सब लोकमें प्रतिषेध नहीं है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यनियों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त तीन प्रकारके मनुष्यों द्वारा स्वस्थानसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १९ ॥

१ अ-आप्रत्योः ' जोयण त्ति ' इति पाठः ।

एदस्सत्थो वुच्चदे— सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो फोसिदो, तीदे काले पुव्ववइरियदेवसंबंधेण वि माणुसुत्तरसेलादो परदो मणुसाणं गमणाभावादो। माणुसखेत्तस्स पुण संखेज्जदिभागो फोसिदो, उवरिगमणाभावादो। अधवा विहारेण माणुसलोगो देसूणो फोसिदो त्ति केई भणंति, पुव्ववइरियदेवसंबंधेण उड्ढं देसूणजोयणलक्खुप्पायणसंभवादो।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २० ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ॥ २१ ॥

वेदण-कसाय-वेउव्वियपदाणं विहारवदिसत्थाणभंगो। तेजाहारपदाणं सत्थाणसत्थाणभंगो। मारणंतिएण सव्वलोगो फोसिदो, तीदे काले सव्वम्हि लोगखेत्ते माणुसाणं

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— स्वस्थानस्वस्थान व विहारवत्स्वस्थानसे चार लोकोंका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, अतीत कालमें पूर्वके वैरी देवोंके सम्बन्धसे भी मानुषोत्तर पर्वतके आगे मनुष्योंका गमन नहीं है। परन्तु मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, मानुषक्षेत्रके ऊपर उक्त मनुष्योंका गमन नहीं है। अथवा, विहारकी अपेक्षा कुछ कम मानुषलोक स्पृष्ट है, ऐसा कोई आचार्य कहते हैं, क्योंकि, पूर्ववैरी देवोंके सम्बन्धसे ऊपर कुछ कम एक लाख योजनके उत्पादनकी सम्भावना है।

उपर्युक्त मनुष्योंके द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त मनुष्योंके द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २१ ॥

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण विहारवत्स्वस्थानके समान है। तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनप्ररूपणा स्वस्थानस्वस्थान पदके समान है। मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा उक्त मनुष्योंके द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, अतीत कालकी अपेक्षा सब लोकक्षेत्रमें मारणान्तिकसमुद्घातसे मनुष्योंका गमन पाया

मारणंतिएण गमणुवलंभादो । दंड-कवाड-लोगपूरणपरूवणा सुगमेत्ति (ण) परूविज्जदे ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ॥ २३ ॥

लोगस्सासंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देसो वट्टमाणकालावेक्खो । एदेण जाणिज्जदे वट्टमाणातीदकालसंबंधिखेत्ताणि दो वि फोसणे परूविज्जंति त्ति । अदीदे घणसव्वलोगो फोसिदो, सुहुमेहि सव्वलोगावट्ठिएहि आगंतूण मणुस्सेसु उप्पज्जमाणेहि आवूरिज्ज-माणलोगदंसणादो । कधं पंचेचालीसजोयणलक्खबाहल्लतिरियपदरमेत्तागासपदेसट्ठिद-मणुस्सेहि सव्वलोगो आवूरिज्जदि ? ण, मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विविवागजोग्गागास-पदेसेहि सव्वलोगपेरंतेसु मज्झे च समयाविरोहेण अवट्ठिएहि णिग्गंतूण संखेज्जासंखेज्ज-जोयणायामेण मणुसगइमुवगएहि सव्वादीदकालम्मि सव्वलोगावूरणं पडि विरोहाभावादो ।

जाता है । दण्ड, कपाट, प्रतर व लोकपूरण समुद्घातपदोंकी प्ररूपणा सुगम है, इसलिये उनकी प्ररूपणा यहां नहीं की जाती है ।

उपर्युक्त मनुष्योंके द्वारा उत्पादपदकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपाद पदकी अपेक्षा उक्त मनुष्यों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २३ ॥

'लोकका असंख्यातवां भाग' यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षा है । इससे जाना जाता है कि वर्तमान व अतीत कालसम्बन्धी क्षेत्र दोनों ही स्पर्शनमें प्ररूपित हैं । अतीत कालकी अपेक्षा सर्व घनलोक स्पृष्ट है, क्योंकि, मनुष्योंमें आकर उत्पन्न होनेवाले सर्व लोकमें स्थित सूक्ष्म जीवोंसे परिपूर्ण लोक देखा जाता है ।

शंका—पैंतालीस लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरमात्र आकाशप्रदेशोंमें स्थित मनुष्योंके द्वारा सर्व लोक कैसे पूर्ण किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि लोकके पर्यन्तभागोंमें व मध्यमें भी समयाविरोधसे स्थित ऐसे मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विपाकयोग्य आकाशप्रदेशोंसे निकलकर संख्यात एवं असंख्यात योजन आयामरूपसे मनुष्यगतिको प्राप्त हुए मनुष्यों द्वारा सर्व अतीत कालमें सर्व लोकके पूर्ण करनेमें कोई विरोध नहीं है ।

मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं भंगो ॥२४॥

वट्टमाणं खेत्तं। सत्थाणसत्थाण-वेदण-कसायसमुग्घादेहि चदुण्हं लोगाणमसंखे-ज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो तीदे काले फोसिदो। मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो। तेण पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं भंगो ण होदि त्ति ? ण, दव्वट्ठियणए अवलंबिज्जमाणे दोसाभावादो।

देवगदीए देवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २५ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दस भागा वा देसूणा ॥ २६ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे– वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो। सत्थाणेण देवेहि तिण्हं

मनुष्य अपर्याप्तोंके स्पर्शनका निरूपण पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान है ॥ २४ ॥

मनुष्य अपर्याप्तोंके वर्तमानकालिक स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग व मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग अतीत कालमें स्पृष्ट है। मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादपदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है।

शंका—इसी कारण मनुष्य अपर्याप्तोंके स्पर्शनको पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तोंके समान कहना ठीक नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर वैसा कहनेमें कोई दोष नहीं है।

देवगतिमें देव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ २५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

देव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ २६ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—वर्तमानकालिक स्पर्शनकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। देवों द्वारा स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग,

लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कधं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं? ण एस दोसो, चंदाइच्च-बुह-भेसइ-कोण-सुक्कंगार-णक्खत्त-तारागण-अट्ठविहवेंतरविमाणेहि य रुद्धखेत्ताणं तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्ताणमुवलंभादो। विहारेण अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। मेरु-मूलादो उवरि छरज्जुमेत्तो हेट्ठा दोरज्जुमेत्तो देवाणं विहारो, तेण अट्ठचोद्दसभागो त्ति वुत्तो। केण ते ऊणा? तदियपुढवीए हेट्ठिमजोयणसहस्सेण।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं? ॥ २७ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २८ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देसो वट्टमाणक्खेत्तपरूवणाओ, तेण

तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है।

शंका—तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग कैसे घटित होता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, चन्द्र, आदित्य, बुध, बृहस्पति, शनि, शुक, अंगारक (मंगल), नक्षत्र, तारागण और आठ प्रकारके व्यन्तर विमानोंसे रुद्ध क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण पाये जाते हैं। विहारकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं। मेरुमूलसे ऊपर छह राजुमात्र और नीचे दो राजुमात्र क्षेत्रमें देवोंका विहार है, इसलिये 'आठ बटे चौदह भाग' ऐसा कहा है।

शंका—वे आठ बटे चौदह भाग किससे कम हैं?

समाधान—तृतीय पृथिवीके नीचे एक सहस्र योजनसे कम हैं।

देवों द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है? ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह वा नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २८ ॥

'लोकका असंख्यातवां भाग' यह निर्देश वर्तमानक्षेत्रप्ररूपणाकी अपेक्षासे है,

एत्थ खेत्ताणिओगद्दारपरूवणा जा जोग्गा सा सव्वा परूवेदव्वा । संपहि तीद-कालखेत्तपरूवणा कीरदे– वेयण-कसाय-वेउव्वियएहि अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा । कुदो ? विहरमाणाणं देवाणं सगविहारखेत्तस्संतरे वेयण-कसाय-विउव्वणाणमुवलंभादो । मारणं-तिएण णवचोद्दसभागा फोसिदा, मेरुमूलादो उवरि सत्त हेट्ठा दोरज्जुमेत्तखेत्तब्भंतरे तीदे काले सव्वत्थ कयमारणंतियदेवाणमुवलंभादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा वा देसूणा ॥३०॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति वट्टमाणखेत्तं पडुच्च णिद्देसो कदो । तेणेत्थ खेत्तपरूवणा सव्वा कायव्वा । तीदकालखेत्तपरूवणं कस्सामो– छचोद्दसभागा देसूणा । कुदो ? आरणच्चुदकप्पो त्ति तिरिक्ख-मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं संजदासंजदाणं च उववादु-वलंभादो ।

इसलिये यहां जो क्षेत्रानुयोगद्वारप्ररूपणा योग्य हो उस सबकी प्ररूपणा करना चाहिये । अब अतीत कालसम्बन्धी क्षेत्रप्ररूपणा की जाती है— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, विहार करनेवाले देवोंके अपने विहारक्षेत्रके भीतर वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पद पाये जाते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, मेरुमूलसे ऊपर सात और नीचे दो राजुमात्र क्षेत्रके भीतर सर्वत्र अतीत कालमें मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त देव पाये जाते हैं ।

उपपादकी अपेक्षा देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपादकी अपेक्षा देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ३० ॥

'लोकका असंख्यातवां भाग' यह निर्देश वर्तमान क्षेत्रकी अपेक्षासे किया गया है । इस कारण यहां सब क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । अतीत कालकी अपेक्षा क्षेत्रकी प्ररूपणा करते हैं— उपपादकी अपेक्षा अतीत कालमें कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं; क्योंकि, आरण-अच्युत कल्प तक तिर्यंच व मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टियों और संयतासंयतोंका उपपाद पाया जाता है ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धुट्ठा वा अट्ठचोद्दस भागा वा देसूणा ॥ ३२ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देसो वट्टमाणं पडुच्च वुत्तो । तेण एत्थ खेत्तपरूवणा कायव्वा । तीदकालं पडुच्च परूवणं कस्सामो— सत्थाणेण वाणवेंतर-जोदिसियदेवेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? वट्टमाणकाले व तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमोट्ठहिय अवट्ठाणादो । भवणवासियदेवेहि सत्थाणेण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाणेण आहुट्ठचोद्दसभागा । कुदो ? भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवाणं मेरुमूलादो अधो दोण्णि, उवरि जाव सोहम्मविमाणसिहरधयदंडो त्ति दिवड्ढरज्जुमेत्तसगणिमित्तविहारस्सुवलंभादो । परपच्चएण पुण अट्ठचोद्दस भागा

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त देव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग, साढ़े तीन राजु अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ३२ ॥

'लोकका असंख्यातवां भाग' यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षा कहा गया है। इस कारण यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये। अतीत कालकी अपेक्षा प्ररूपणा करते हैं– स्वस्थानपदसे वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, वर्तमान कालके समान अतीत कालमें भी तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागको व्याप्तकर उनका अवस्थान है । भवनवासी देवों द्वारा स्वस्थानकी अपेक्षा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा चौदह भागोंमेंसे साढ़े तीन भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंका स्वनिमित्तक विहार मेरुमूलसे नीचे दो राजु और ऊपर सौधर्म विमानके शिखरपर स्थित ध्वजादण्ड तक डेढ़ राजुमात्र पाया जाता है । परन्तु परनिमित्तक विहारकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कुछ

देसूणा । कुदो ? उवरिमदेवेहि णिज्जमाणा णं अद्धुवंचमरज्जूओ सगपच्चएण अद्धुट्ठ-रज्जूओ गच्छंति त्ति देवाणमट्ठचोद्दसभागफोसणं होदि ।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धुट्ठा वा अट्ठ-णवचोद्दस भागा वा देसूणा ॥ ३४ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति वयणं वट्टमाणखेत्त-परूवणट्ठं भणिदं । तेण एत्थ खेत्तपरूवणा सव्वा कायव्वा । संपधि उवरिल्लेहि सुत्ता-वयवेहि अदीदकालखेत्तपरूवणा कीरदे— वेयण-कसाय-वेउव्वियएहि आहुट्ठचोद्दसभागा अट्ठचोद्दसभागा वा फोसिदा । कुदो ? सग-परपच्चएहि हिंडंताणं भवण-वासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवाणं वेयण-कसाय-वेउव्वियएहि सह परिणयाणमेत्तियवुत्त-खेत्तुवलंभादो । मारणंतिएण णवचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ? मेरुमूलादो हेट्ठदो

कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, उपरिम देवोंसे ले जाये गये वे देव साढ़े चार राजु और स्वनिमित्तसे साढ़े तीन राजुप्रमाण गमन करते हैं; इसलिये देवोंका स्पर्शन आठ बटे चौदह भागप्रमाण होता है ।

समुद्घातकी अपेक्षा उपर्युक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घातकी अपेक्षा उपर्युक्त देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा चौदह भागोंमें कुछ कम साढ़े तीन भाग, अथवा आठ व नौ भाग स्पृष्ट हैं ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं — 'लोकका असंख्यातवां भाग' यह वचन वर्तमान-क्षेत्रके प्ररूपणार्थ कहा गया है । इस कारण यहां सब क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । इस समय सूत्रके उपरिम अवयवोंसे अतीतकालसम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणा की जाती है— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा चौदह भागोंमें साढ़े तीन अथवा आठ भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, स्वनिमित्तसे या परनिमित्तसे विहार करनेवाले भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंका वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात एवं वैक्रियिकसमुद्घात पदोंके साथ परिणत होनेपर इतना ही उक्त क्षेत्र पाया जाता है । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, मेरु-

दोरज्जुमेत्तमद्धाणं गंतूण ट्ठिदभवणादिदेवाणं घणोदहिट्ठिदआउकाइयजीवेसु मुक्कमारणंतियाणं णवचोद्दसभागमेत्तफोसणुवलंभादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३५ ॥

सुगममेदं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३६ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । संपधि तीदकालखेत्तपरूवणं कस्सामो । तं जहा— उववादपरिणदेहि भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिएहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । जोइसियाणं णवजोयणसदबाहल्लं तिरियपदरं ठविय उड्ढमेगूणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं उववादखेत्तं होदि । वाणवेंतराणं जोयणलक्खबाहल्लं तिरियपदरं ठविय उड्ढमेगुणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तमुववादखेत्तं होदि । भवणवासियाणं पि जोयण-

मूलसे नीचे दो राजुमात्र मार्ग जाकर स्थित भवनवासी आदि देवोंका घनोदधि वातवलयमें स्थित अप्कायिक जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करते समय नौ बटे चौदह भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है ।

उपपाद पदकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपाद पदकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ३६ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— यहां वर्तमान प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । इस समय अतीतकालिक क्षेत्रप्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— उपपादपरिणत भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, व अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । ज्योतिषी देवोंके नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरको स्थापित कर व ऊपरसे उनंचास खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र उपपादक्षेत्र होता है । वानव्यन्तर देवोंके एक लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरको स्थापित कर व ऊपरसे उनंचास खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र उपपादक्षेत्र होता है । भवनवासियोंके भी एक लाख योजन बाहल्यरूप राजु-

१ प्रतिषु ' हेट्ठदोरज्जु ' इति पाठः ।

लक्खबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय पुव्वं व खंडिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागमेत्तमुववादखेत्तं होदि ।

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादं देवगदिभंगो ॥ ३७ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । अदीदकालमस्सिदूण परूवणाए वि दव्व-ट्ठियणयावलंबणेण देवगदिभंगो होदि, ण पज्जवट्ठियणयावलंबणम्मि । कुदो ? सत्थाणेण सोधम्मीसाणदेवेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, विहार-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणएहि अट्ठ-णवचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा त्ति णिद्दिट्ठत्तादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ३८ ॥

वट्टमाणकालं पडुच्च लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अदीदकालं पडुच्च दिवड्ढ-

---

प्रतरको स्थापित कर व पूर्वके समान ही खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र उपपादक्षेत्र होता है ।

सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवोंके स्पर्शनका निरूपण स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा देवगतिके समान है ॥ ३७ ॥

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। अतीत कालका आश्रय करके स्पर्शनकी प्ररूपणा भी द्रव्यार्थिक नयके अवलंबनसे देवगतिके समान है, किन्तु पर्यायार्थिक नयसे वह देवगतिके समान नहीं है। इसका कारण यह है कि स्वस्थानसे सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, तथा विहार, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-समुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे परिणत उक्त देवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह और नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है ।

उपपाद पदकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? उपपाद पदकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा चौदह भागोंमें कुछ कम डेढ़ भागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ ३८ ॥

वर्तमान कालकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग और अतीत कालकी

चोद्दसभागा देसूणा । कुदो ? तिरिक्ख-मणुस्साणं तीदे काले पहापत्थडे उप्पज्जंताणं दिवड्ढरज्जुबाहल्लरज्जुपदरमेत्तफोसणुवलंभादो ।

सणक्कुमार जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ३९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४० ॥

वट्टमाणकालं पडुच्च लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्दिट्ठं । तेणेत्थ खेत्त-परूवणा सव्वा कायव्वा । तीदकाले सत्थाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो फोसिदो । कुदो ? विमाणरुद्धखेत्तस्स चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागमेत्तपमाणत्तादो । विहार-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपदपरिणएहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ? तसजीवे मोत्तूणण्णत्थ एदेसिमुप्पत्तीए अभावादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४१ ॥

अपेक्षा कुछ कम चौदह भागोंमें डेढ़ भागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, अतीत कालकी अपेक्षा प्रभा पटलमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच व मनुष्योंका डेढ़ राजु बाहल्यसे युक्त राजुप्रतरमात्र स्पर्शन पाया जाता है ।

सनत्कुमारसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तकके देव स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ३९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त देव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ४० ॥

वर्तमान कालकी अपेक्षा 'लोकका असंख्यातवां भाग' ऐसा निर्देश किया है । इस कारण यहां सब क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । अतीत कालमें स्वस्थानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, विमानरुद्ध क्षेत्रका प्रमाण चार लोकोंके असंख्यातवें भागमात्र है । विहार, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे परिणत उक्त देवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, त्रस जीवोंको छोड़ अन्यत्र उनकी उत्पत्तिका अभाव है ।

उक्त देवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ४१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो तिण्णि-अद्धुट्ठ-चत्तारि-अद्धपंचम-पंचचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४२ ॥

एदस्स अत्थो– वट्टमाणकालं पडुच्च लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देसो । तेणेत्थ खेत्तपरूवणा सयला कायव्वा । अदीदेण तिण्णि-आहुट्ठ-चत्तारि-अद्धपंचम-पंच-चोद्दसभागा जहाकमेण फोसिदा । कुदो ? मेरुमूलादो तिण्णिरज्जूओ उवरि चडिय सणक्कुमार-माहिंदकप्पाणं परिसमत्ती, तदो उवरिमद्धरज्जुं गंतूण बम्ह-बम्हुत्तरकप्पाणं परिसमत्ती, तदो तत्तो उवरिमद्धरज्जुं गंतूण लंतय-काविट्ठकप्पाणं परिसमत्ती, तदो अद्ध-रज्जुं गंतूण सुक्क-महासुक्ककप्पाणमवसाणं, तत्तो अद्धरज्जुं गंतूण सदर-सहस्सारकप्पाणं परिसमत्ती होदि त्ति ।

आणद जाव अच्चुदकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४३ ॥

सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त देवों द्वारा उपपाद पदकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा चौदह भागोंमें कुछ कम तीन, साढ़े तीन, चार, साढ़े चार और पांच भाग स्पृष्ट हैं ॥ ४२ ॥

इस सूत्रका अर्थ — वर्तमान कालकी अपेक्षा 'लोकका असंख्यातवां भाग' ऐसा निर्देश किया गया है । इस कारण यहां सब क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । अतीत कालकी अपेक्षा यथाक्रमसे चौदह भागोंमें तीन, साढ़े तीन, चार, साढ़े चार और पांच भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, मेरुमूलसे तीन राजु ऊपर चढ़कर सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंकी समाप्ति है, इससे ऊपर अर्ध राजु जाकर ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पोंकी समाप्ति है, तत्पश्चात् उससे ऊपर अर्ध राजु जाकर लान्तव-कापिष्ठ कल्पोंकी समाप्ति है, उससे ऊपर अर्ध राजु जाकर शुक्र-महाशुक्र कल्पोंका अन्त है, तथा उससे अर्ध राजु ऊपर जाकर शतार-सहस्रार कल्पोंकी समाप्ति होती है ।

आनतसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवों द्वारा स्वस्थान व समुद्घात पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ४४ ॥

वट्टमाणं खेत्तभंगो । अदीदेण सत्थाणपरिणदेहि लोगस्स असंखेज्जदिभागो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय मारणंतियपरिणएहि छचोद्दसभागा फोसिदा । कुदो ? मेरुमूलादो अधो तेसिं गमणाभावेण वेउव्वियादीणमभावादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धछट्ठ-छचोद्दसभागा[1] वा देसूणा ॥ ४६ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । अदीदेण आणद-पाणदकप्पे अद्धछट्ठ-चोद्दसभागा, आरणच्चुदकप्पे छचोद्दसभागा । सेसं सुगमं ।

उपर्युक्त देवों द्वारा स्वस्थान व समुद्घात पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ४४ ॥

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान पदसे परिणत उक्त देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे परिणत उक्त देवों द्वारा छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, मेरुमूलसे नीचे उनका गमन न होनेसे वहां वैक्रियिकसमुद्घातादिकोंका अभाव है ।

उपपादकी अपेक्षा उपर्युक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपादकी अपेक्षा उक्त देवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े पांच या छह भाग स्पृष्ट हैं ॥ ४६ ॥

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा आनत-प्राणत कल्पमें चौदह भागोंमेंसे साढ़े पांच भाग और आरण-अच्युत कल्पमें छह भाग-प्रमाण स्पर्शन है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ अप्रतौ 'अद्धट्ठछचोद्दसभागा', आप्रतौ 'अद्धट्ठचोद्दसभागा', काप्रतौ 'अट्ठछचोद्दसभागा' इति पाठः ।

णवगेवज्ज जाव सवट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिय-उववादेहि अदीद-वट्टमाणेण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। णवरि सव्वट्ठसिद्धिम्हि मारणंतिय-उववादविरहिदसेसपदेहि माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो त्ति वत्तव्वं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ४९ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ ५० ॥

नौ ग्रैवेयकोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमान तकके देव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ४७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त देव उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ४८ ॥

स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्धात, कषायसमुद्धात, वैक्रियिक-समुद्धात, मारणान्तिकसमुद्धात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा अतीत व वर्तमान कालसे चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धिमें मारणान्तिक व उपपाद पदोंको छोड़ शेष पदोंकी अपेक्षा मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है, ऐसा कहना चाहिये ।

इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ५० ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो। तीदेण सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो। वेउव्वियपदेण लोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो। णवरि सुहुमाणं वेउव्वियं णत्थि।

बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ५१ ॥

सुगमं।

लोगस्स संखेज्जदिभागो॥ ५२ ॥

कुदो ? पंचरज्जुबाहल्लं रज्जुपदरं वाउक्काइयजीवावूरिदं बादरएइंदियजीवावूरिद-सत्तपुढवीओ च, तासिं पुढवीणं हेट्ठा ट्ठिदवीसवीसजोयणसहस्सबाहल्लं तिण्णि तिण्णि वादवलयखेत्ताणि लोगंतट्ठिदवाउक्काइयखेत्तं च एगट्ठं कदे तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो खेत्तविसेसो उप्पज्जदि। तेण लोगस्स संखेज्जदि-भागो अदीद-वट्टमाणेसु कालेसु लब्भदि।

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है। वैक्रियिकसमुद्घात पदसे लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है। विशेष इतना है कि सूक्ष्म जीवोंके वैक्रियिकसमुद्घात नहीं होता।

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ५२ ॥

क्योंकि, वायुकायिक जीवोंसे परिपूर्ण पांच राजु बाहल्यरूप राजुप्रतर, बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे परिपूर्ण सात पृथिवियों, उन पृथिवियोंके नीचे स्थित बीस बीस सहस्र योजन बाहल्यरूप तीन तीन वातवलयक्षेत्रों, तथा लोकान्तमें स्थित वायु-कायिकक्षेत्रको एकत्रित करनेपर तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्रविशेष उत्पन्न होता है। इसलिये अतीत व वर्तमान कालोंमें लोकका संख्यातवां भाग प्राप्त होता है।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ५३ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ ५४ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । वेदण-कसाएहि तीदे काले तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एवं वेउव्विएण वि, पंचरज्जुआयदतिरियपदरम्मि सव्वत्थ विउव्वमाणवाउक्काइयाणं तीदे काले उवलंभादो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ५५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५६ ॥

समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ५४ ॥

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे अतीत कालमें तीन लोकोंका संख्यातवां भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । इसी प्रकार वैक्रियिकसमुद्घात पदकी अपेक्षा भी तीन लोकोंका संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, अतीत कालकी अपेक्षा पांच राजु आयत तिर्यक्प्रतरमें सर्वत्र विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीव पाये जाते हैं । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है ।

द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ५६ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो। सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाणेहि तीदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो। एत्थ सत्थाणखेत्ते आणिज्जमाणे सयंपहपव्वदादो परभागट्ठियखेत्त-माणिय संखेज्जसूचीअंगुलेहि गुणिदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तं सत्थाणखेत्तं होदि। विहारवदिसत्थाणखेत्ते आणिज्जमाणे तिरियपदरं ठविय संखेज्जजोयणाणि बाहल्लं होंति त्ति संखेज्जजोयणेहि गुणिय पुणो एदं बाहल्लमेगुणवंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि। अपज्जत्ताणं विहारवदिसत्थाणं णत्थि।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?॥ ५७॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा॥ ५८॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति वट्टमाणकालावेक्खो णिद्देसो। तेणेत्थ खेत्त-परूवणा कायव्वा। वेयण-कसायपदेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। स्वस्थानस्वस्थान और विहार-वत्स्वस्थान पदोंसे अतीत कालमें तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यहां स्वस्थानक्षेत्रके निकालते समय स्वयंप्रभ पर्वतके पर भागमें स्थित क्षेत्रको लाकर संख्यात सूच्यंगुलोंसे गुणित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भागमात्र स्वस्थानक्षेत्र होता है। विहारवत्स्वस्थानक्षेत्रके निकालनेमें तिर्यक्प्रतरको स्थापित कर 'संख्यात योजन बाहल्य हैं' अतः संख्यात योजनोंसे गुणित कर पुनः इस बाहल्यके उनंचास खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है। अपर्याप्त जीवोंके विहारवत्स्वस्थान नहीं होता।

समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥५७॥

यह सूत्र सुगम है।

समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है॥ ५८॥

'लोकका असंख्यातवां भाग' यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षा है, इसलिये यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये। वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा अतीत कालमें तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और

लोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? पुव्ववेरियसंबंधेण तिरियपदरं सव्वं हिंडमाणविगलिंदियाणं सव्वत्थ तीदे कसाय-वेयणाणमुवलंभादो । एसो वासद्दत्थो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो, सव्वत्थ गमणागमणविरोहाभावादो । विगलिंदियअपज्जत्ताणं वेयण-कसायखेत्ताणं सत्थाणभंगो, तत्थ विहारवदिसत्थाणस्स अभावादो ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ५९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ ६० ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देसो वट्टमाणावेक्खो । तेणेत्थ खेत्तपरूवणा कायव्वा । संपधि वासद्दत्थो ताव उच्चदे— सत्थाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एदम्मि खेत्ते

अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, पूर्ववैरियोंके सम्बन्धसे सर्व तिर्यक्प्रतरमें घूमनेवाले विकलेन्द्रिय जीवोंके सर्वत्र अतीत कालकी अपेक्षा कषायसमुद्घात व वेदनासमुद्घात पद पाये जाते हैं । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, सर्वत्र उक्त जीवोंके गमनागमनमें कोई विरोध नहीं है । विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा क्षेत्रका निरूपण स्वस्थान पदके समान है, क्योंकि विहार वत्स्वस्थानपदका उनमें अभाव है ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थानपदोंसे कितने क्षेत्रका स्पर्श करते हैं ? ॥ ५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थानपदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ६० ॥

‘ लोकका असंख्यातवां भाग ’ यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षासे है । इसलिये यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । अब यहां वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं— स्वस्थानपदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । इस क्षेत्रके निकालनेमें राजुप्रतरको स्थापित

आणिज्जमाणे रज्जुपदरं ठविय संखेज्जंगुलेहि गुणिय तसजीववज्जियसमुद्देहि ओट्टद्ध-खेत्तमवणिय पदरागारेण ठइदे तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो होदि । पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ताणं विगलिंदियअपज्जत्ताणं च सत्थाणखेत्तं पुण सयंपहपव्वयस्स परदो चेव होदि, भोगभूमिपडिभागम्मि तेसिमुप्पत्तीए अभावादो । अधवा पुव्ववेरियदेवपओगेण भोगभूमिपडिभागदीव-समुद्दे पदिदतिरिक्खकलेवरेसु तसअपज्जत्ताणमुप्पत्ती अत्थि त्ति भणंताणमहिप्पाएण खेत्ते आणिज्जमाणे संखेज्जंगुलबाहल्लं रज्जुपदरं ठविय एगुण-वंचासखंडाणि करिय पदरागारेण ठइदे अपज्जत्तसत्थाणखेत्तं तिरियलोगस्स संखेज्जदि-भागो होदि । एवं विहारसत्थाणेण वि, मित्तामित्तदेवप्पओएण सव्वदीव-समुद्देसु विहारस्स विरोहाभावादो । णवरि देवाणं विहारमस्सिदूण अट्ठचोद्दसभागा देसूणा होंति ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ॥ ६२ ॥

कर व संख्यात अंगुलोंसे गुणित कर और उसमेंसे त्रस जीव रहित समुद्रोंसे व्याप्त क्षेत्रको कम कर प्रतराकारसे स्थापित करनेपर तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है । किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त और विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र स्वयंप्रभ पर्वतके पर भागमें ही है, क्योंकि, भोगभूमिप्रतिभागमें उनकी उत्पत्तिका अभाव है। अथवा पूर्ववैरी देवोंके प्रयोगसे भोगभूमिप्रतिभागरूप द्वीप समुद्रोंमें पड़े हुए तिर्यंच-शरीरोंमें त्रस अपर्याप्तोंकी उत्पत्ति होती है, ऐसा कहनेवाले आचार्योंके अभिप्रायसे उक्त क्षेत्रके निकालते समय संख्यात अंगुल बाहल्यरूप राजुप्रतरको स्थापित कर व उनंचास खण्ड करके प्रतराकारसे स्थापित करनेपर अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थानक्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण होता है । इसी प्रकार विहारवत्स्वस्थानपदकी अपेक्षा भी स्पर्शन-प्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, मित्र व शत्रु स्वरूप देवोंके प्रयोगसे सर्व द्वीप-समुद्रोंमें विहारका कोई विरोध नहीं है । विशेष इतना है कि देवोंके विहारका आश्रय कर कुछ कम आठ बटे चौदह भाग होते हैं ।

समुद्घातोंकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घातोंकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग, असंख्यात बहुभाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ६२ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देसो वट्टमाणावेक्खो। तेणेत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा। वेयण-कसाय-वेउव्विएहि अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा, विहरंतदेवाणं सव्वत्थ वेयण-कसाय-विउव्वणाणं विरोहाभावादो। तेजाहारपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो। दंडगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो। एवं कवाडगदेहि वि। णवरि तिरियलोगादो संखेज्जगुणो। एसो वासद्दत्थो। पदरगदेहि असंखेज्जा भागा, वादवलए मोत्तूण सव्वत्थावूरणादो। मारणंतिय-लोगपूरणेहि सव्वलोगो फोसिदो।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६३ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा ॥ ६४ ॥

लोगस्स असंखेज्जदिभागो त्ति णिद्देसो वट्टमाणावेक्खो। तेणेत्थ खेत्तवण्णणा

'लोकका असंख्यातवां भाग' यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षा है। इस कारण यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये। वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, विहार करनेवाले देवोंके सर्वत्र वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंके विरोधका अभाव है। तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घात पदोंसे चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषलोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है। दण्डसमुद्घातको प्राप्त जीवों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। इसी प्रकार कपाटसमुद्घातगत जीवों द्वारा भी स्पृष्ट है। विशेष इतना है कि उनके द्वारा तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। प्रतरसमुद्घातगत जीवों द्वारा लोकका असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, इस अवस्थामें लोक वातवलयोंको छोड़कर सर्वत्र जीवप्रदेशोंसे पूर्ण होता है। मारणान्तिकसमुद्घात व लोकपूरणसमुद्घात पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है।

उपर्युक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग, अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ६४ ॥

'लोकका असंख्यातवां भाग' यह निर्देश वर्तमान कालकी अपेक्षासे है। इस

कायव्वा । सव्वलोगट्ठिदसुहुमेइंदिएहिंतो पंचिंदिएसु आगंतूण उप्पण्णपढमसमयजीवाणं सव्वलोगे वाविसदंसणादो उववादेण सव्वलोगो फोसिदो । सत्थाण-समुग्घाद-उववादेसु एयवियप्पेसु कधं सव्वत्थ बहुवयणणिद्देसो ? ण, तेसु सगदाणेयवियप्पसंभवादो ।

पंचिंदियअपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६६ ॥

एदस्स अत्थं भण्णमाणे वट्टमाणं खेत्तं । अदीदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एदस्स कारणं पुव्वमेव परूविदं ।

समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ६७ ॥

सुगमं ।

कारण यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये । सर्व लोकमें स्थित सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमेंसे पंचेन्द्रिय जीवोंमें आकर उत्पन्न होनेके प्रथमसमयवर्ती जीवोंके सर्व लोकमें व्याप्त देखे जानेसे उपपादकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ।

शंका—स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंके एक विकल्परूप होनेपर सर्वत्र बहुवचनका निर्देश कैसे किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें स्वगत अनेक विकल्पोंकी सम्भावना है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थानकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श करते हैं ॥ ६६ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते समय वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान करना चाहिये । अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । इसका कारण पूर्वमें ही कहा जा चुका है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६८ ॥

एत्थ खेत्तपरूवणं कायव्वं ।

सव्वलोगो वा ॥ ६९ ॥

वेयण-कसायपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्दत्थो । मारणंतिय-उववादेहि सव्व-लोगो फोसिदो ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय वाउकाइय सुहुमतेउकाइय सुहुम-वाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७० ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ ७१ ॥

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा उक्त पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ६८ ॥

यहां वर्तमान कालकी अपेक्षा क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये ।

अथवा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है ॥६९॥

पंचेन्द्रिय अपर्याप्तों द्वारा वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ।

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, वायुकायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायु-कायिक और उन्हींके पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ७० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ७१ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो। अदीदेण सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो। तेउक्काइएहि वेउव्वियपदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कम्मभूमिपडिभागसयंभूरमणदीवद्धे चेव किर तेउक्काइया होंति, ण अण्णत्थेत्ति के वि आइरिया भणंति। तेसिमहिप्पाएण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो। अण्णे के वि आइरिया सव्वेसु दीव-समुद्देसु तेउक्काइयबादरपज्जत्ता संभवंति त्ति भणंति। कुदो? सयंभूरमणदीव-समुद्दुप्पण्णाणं बादरतेउपज्जत्ताणं वाएण हिरिज्जमाणाणं कीडणसीलदेवपरतंताणं वा सव्वदीव-समुद्देसु सविउव्वणाणं[1] गमणसंभवादो। केइमारिया तिरियलोगादो संखेज्जगुणो फोसिदो त्ति भणंति। कुदो? सव्वपुढवीसु बादरतेउपज्जत्ताणं संभवादो। तिसु वि उवदेसेसु को एत्थ गेज्झो? तइज्जो घेत्तव्वो, जुत्तीए अणुग्गहिदत्तादो। ण च सुत्तं तिण्हमेक्कस्स वि मुक्ककंठं होऊण परूवयमत्थि। पहिल्लओ उवएसो वक्खाणेहि वक्खाणाइरियेहि य संमदो त्ति एत्थ सो चेव णिद्दिट्ठो। वाउक्काइएहि वेउव्वियपदेण

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रके समान है। अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे उक्त जीव सर्व लोक स्पर्श करते हैं। तेजस्कायिक जीवोंके द्वारा वैक्रियिकपदकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। कर्मभूमिप्रतिभागरूप अर्ध स्वयम्भुरमण द्वीपमें ही तेजस्कायिक जीव होते हैं, अन्यत्र नहीं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। उनके अभिप्रायसे उक्त स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग होता है। अन्य कितने ही आचार्य 'सर्व द्वीप-समुद्रोंमें तेजस्कायिक बादर पर्याप्त जीव संभव हैं' ऐसा कहते हैं, क्योंकि, स्वयम्भुरमण द्वीप व समुद्रमें उत्पन्न बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंका वायुसे लेजाये जानेके कारण अथवा क्रीड़नशील देवोंके परतंत्र होनेसे सर्व द्वीप-समुद्रोंमें विक्रिया युक्त होकर गमन सम्भव है। कितने आचार्योंका कहना है कि उक्त जीवोंके द्वारा वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, सर्व पृथिवियोंमें बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंकी सम्भावना है।

शंका— उपर्युक्त तीनों उपदेशोंमें कौनसा उपदेश यहां ग्राह्य है?

समाधान— तीसरा उपदेश यहां ग्रहण करने योग्य है, क्योंकि, वह युक्तिसे अनुगृहीत है। दूसरी बात यह है कि सूत्र इन तीन उपदेशोंमेंसे एकका भी मुक्तकण्ठ होकर प्ररूपक नहीं है। पहिला उपदेश व्याख्यानों और व्याख्यानाचार्योंसे सम्मत है, इसलिये यहां उसीका निर्देश किया गया है। वायुकायिक जीवोंके द्वारा वैक्रियिकपदसे तीन लोकोंका

१ अप्रतौ '-समुद्देसु वि उप्पण्णाण' इति पाठः।

तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? पंचरज्जुबाहल्लं तिरियपदरमावूरिय तीदे काले अवट्ठाणादो ।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७३ ॥

एदस्स वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो । तीदे काले एदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? सव्वकालमट्ठपुढवीओ भवणविमाणाणि च अस्सिदूण अवट्ठाणादो ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७४ ॥

सुगमं ।

संख्यातवां भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, उक्त जीवोंका अतीत कालकी अपेक्षा पांच राजु तिर्यक्प्रतरको पूर्ण कर अवस्थान है।

बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उनमें प्रत्येकके अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ७२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥७३॥

इस सूत्रकी वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। अतीत कालकी अपेक्षा इन्हीं जीवों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, सर्व कालमें आठ पृथिवियों और भवनविमानोंका आश्रय करके उक्त जीवोंका अवस्थान है।

समुद्घात और उपपाद पदोंसे उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥७४॥

यह सूत्र सुगम है।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७५ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— तिण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो वट्टमाणे फोसिदो । सेसं खेत्तभंगो ।

सव्वलोगो वा ॥ ७६ ॥

एत्थ वासद्दत्थो वुच्चदे— वेयण-कसायपदपरिणदेहि वेउव्वियपदपरिणदेहि य तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ वेउव्वियपदस्स पुव्वं व तिविहं वक्खाणं कायव्वं । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो, वट्टमाणातीदकालदंसणादो ।

बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेय-सरीरपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७७ ॥

सुगमं ।

समुद्घात व उपपाद पदोंसे उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट हैं ॥ ७५ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— वर्तमान कालमें उक्त पदोंकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । शेष कथन क्षेत्रप्ररूपणाके समान है ।

अथवा उक्त पदोंकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ७६ ॥

यहां वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं— वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे परिणत तथा वैक्रियिक पदसे परिणत उक्त जीवोंके द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यहां वैक्रियिक पदकी अपेक्षा पूर्वके समान तीन प्रकार व्याख्यान करना चाहिये । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, इन पदोंमें वर्तमान व अतीत काल देखे जाते हैं ।

बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७८ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणं कायव्वं, वट्टमाणप्पणादो। तीदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। कुदो ? अपज्जत्ताणं व पज्जत्ताणं पि सव्वपुढवीसु अवट्ठाणविरोहाभावादो। ण च अट्ठसु पुढवीसु पुढवि-आउ-तेउ-वाउबादराणं बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीराणं च अपज्जत्ता चेव होंति त्ति जुत्ती अत्थि। अण्णाइरियवक्खाणं पुण एवं ण होदि। तं कधं ? बादरआउपज्जत्त-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि सत्थाण-वेयण-कसायपरिणएहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो, चित्ताए उवरिमभागं मोत्तूण बादरआउपज्जत्त-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ताणमण्णत्थ अवट्ठाणाभावादो। एवं बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं, पत्तेयसरीरत्तं पडि भेदाभावादो। एवं बादरतेउकाइयपज्जत्ताणं पि। कुदो ? सयंपहपव्वयस्स परभागे चेव एदेसिमवट्ठाणादो। एदं

....

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ७८ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है। अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा, और अढ़ाई-द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, अपर्याप्तोंके समान पर्याप्त जीवोंका भी सर्व पृथिवियोंमें अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है। आठ पृथिवियोंमें पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक व वायुकायिक बादर जीवों तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके अपर्याप्त जीव ही होते हैं, ऐसी कोई युक्ति भी नहीं है। परन्तु अन्य आचार्योंका व्याख्यान ऐसा नहीं है।

शंका—यह कैसे ?

समाधान—'बादर अप्कायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवों द्वारा स्वस्थान, वेदनासमुद्घात व कषायसमुद्घात पदोंसे परिणत होकर तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, चित्रा पृथिवीके उपरिम भागको छोड़कर अप्कायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंका अन्यत्र अवस्थान नहीं है। इसी प्रकार बादर निगोद-प्रतिष्ठित पर्याप्तोंका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि, प्रत्येकशरीरत्वके प्रति दोनोंमें कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंका भी समझना चाहिये, क्योंकि, स्वयंप्रभ पर्वतके पर भागमें ही इनका अवस्थान है'। यह

च अण्णाइरियवक्खाणं चक्खिदियपमाणबलपयट्टं । पुढविकाइया सव्वपुढवीसु होंति त्ति एदं पि चक्खिदियबलपयट्टं चेव । ण च पुढविकाइयादओ अंगुलस्स असंखेज्जदिभाग-मेत्तसरीरा इंदियगेज्झा, जेण इंदियबलेण विहि-पडिसेहो होज्ज । तम्हा[1] सव्व-पुढवीओ अस्सिदूण एदेसिं बादरअपज्जत्ताणं व पज्जत्ताणं पि अवट्ठाणेण होदव्वं, विरोहाभावादो । तत्थ जलंता णिरयपुढवीसु अग्गिणो वहंतीओ णईओ च णत्थि त्ति जदि अभावो वुच्चदे, तं पि ण घडदे,

> षष्ठ-सप्तमयोः शीतं शीतोष्णं पंचमे स्मृतम् ।
> चतुर्ष्वत्युष्णमुद्दिष्टंस्तासामेव महीगुणा ॥ १ ॥

इदि तत्थ वि आउ-तेऊणं संभवादो । कधं पुढवीणं हेट्ठा पत्तेयसरीराणं संभवो ? ण, सीएण वि सम्मुच्छिज्जमाणपगण-कुहुणादीणमुवलंभादो । कधमुण्हम्हि संभवो ? ण, अच्चुण्हे वि समुप्पज्जमाणजवासपाईणमुवलंभादो ।

अन्य आचार्योंका व्याख्यान चक्षु इन्द्रियरूप प्रमाणके बलसे प्रवृत्त है । ' पृथिवीकायिक जीव सर्व पृथिवियोंमें होते हैं ' यह भी व्याख्यान चक्षु इन्द्रियके बलसे ही प्रवृत्त है । और अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण शरीरवाले पृथिवीकायिकादि जीव इन्द्रियोंसे ग्राह्य हैं नहीं, जिससे इन्द्रियबलसे उनका विधान व प्रतिषेध हो सके । अतएव इनके बादर अपर्याप्त जीवोंके समान पर्याप्त जीवोंका भी अवस्थान सर्व पृथिवियोंका आश्रय करके होना चाहिये, क्योंकि, उसमें कोई विरोध नहीं है । वहां नरकपृथिवियोंमें जलती हुई अग्नियां और बहती हुई नदियां नहीं हैं, इस कारण यदि उनका अभाव कहते हो तो वह भी घटित नहीं होता, क्योंकि—

छठी और सातवीं पृथिवीमें शीत तथा पांचवींमें शीत व उष्ण दोनों माने गये हैं । शेष चार पृथिवियोंमें अत्यन्त उष्णता है । ये उनके ही पृथिवीगुण हैं ॥ १ ॥

इस प्रकार उन नरक पृथिवियोंमें अप्कायिक व तेजस्कायिक जीवोंकी सम्भावना है ।

शंका—पृथिवियोंके नीचे प्रत्येकशरीर जीवोंकी संभावना कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि शीतसे भी उत्पन्न होनेवाले पगण और कुहुन आदि वनस्पतिविशेष पाये जाते हैं ।

शंका—उष्णतामें प्रत्येकशरीर जीवोंका उत्पन्न होना कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अत्यन्त उष्णतामें भी उत्पन्न होनेवाले जवासप आदि वनस्पतिविशेष पाये जाते हैं ।

---

१ प्रतिषु ' तं जहा ' इति पाठः ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ७९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८० ॥

एत्थ खेत्तवण्णणं कायव्वं, वट्टमाणप्पणादो ।

सव्वलोगो वा ॥ ८१ ॥

एत्थ ताव वासद्दत्थो उच्चदे । तं जहा– वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि तिण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो, एदेसिं सव्वत्थ गमणागमणं पडि विरोहाभावादो ।

बादरवाउक्काइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८२ ॥

समुद्घात व उपपाद पदोंकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ७९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ८० ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, समुद्घात व उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ८१ ॥

यहां पहले वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुना क्षेत्र स्पृष्ट है । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, इन जीवोंके सर्वत्र गमनागमनके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

बादर वायुकायिक और उसके ही अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ८२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ८३ ॥

कुदो ? पंचरज्जुबाहल्लरज्जुपदरमावूरिय अवट्ठाणादो । लोगंते अट्ठपुढवीणं हेट्ठा वि अवट्ठाणमत्थि किंतु तमेदस्स असंखेज्जदिभागो ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८४ ॥

सुगमं ।

(लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ८५ ॥

सुगमं ।)

सव्वलोगो वा ॥ ८६ ॥

एत्थ वासद्दत्थो वुच्चदे— वेयण-कसाय-वेउव्विएहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदि-

....

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ८३ ॥

क्योंकि, पांच राजु बाहल्यरूप राजुप्रतरको पूर्ण कर उक्त जीवोंका अवस्थान है । उनका अवस्थान लोकान्तमें तथा आठ पृथिवियोंके नीचे भी है, किन्तु वह इसके असंख्यातवें भागमात्र है ।

उपर्युक्त जीव समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

(उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ८५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।)

अथवा, सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ८६ ॥

यहां वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते है— वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंका संख्यातवां भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्य-

भागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्दत्थो । णवरि वेउव्वियं वट्टमाणेण खेत्तभंगो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो ।

बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?॥ ८७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ८८ ॥

अदीद-वट्टमाणेहि पंचरज्जुबाहल्लरज्जुपदरमाऊरिय अवट्ठाणादो ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ८९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स संखेज्जदिभागो ॥ ९० ॥

एदं वट्टमाणमस्सिदूण परूविदं । तेण वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि तिण्हं

ग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । विशेष इतना है कि वर्तमान कालकी अपेक्षा वैक्रियिकपदका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ८७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका संख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ८८ ॥

क्योंकि, अतीत और वर्तमान कालोंकी अपेक्षा उक्त जीवोंका पांच राजु बाहल्य-रूप राजुप्रतरको पूर्णकर अवस्थान है ।

समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त पदोंकी अपेक्षा लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ ९० ॥

यह वर्तमान कालका आश्रय कर कथन किया गया है । इसलिये वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे तीन लोकोंका

लोगाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो वट्टमाणे किण्ण पुसिज्जदि ? ण, पंचरज्जुबाहल्लरज्जुपदरं मोत्तूण अण्णत्थ मारणंतिय-उववादे करेमाणजीवाणं सुट्टु थोवत्तुवलंभादो । वेउव्वियपदेण खेत्तभंगो ।

सव्वलोगो वा ॥ ९१ ॥

वेयण-कसाय-वेउव्विएहि तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासदत्थो । मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगो फोसिदो, तीदकालप्पणादो ।

वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुम-णिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९२ ॥

सुगमं ।

....

संख्यातवां भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है ।

शंका—मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे वर्तमानमें सर्व लोक स्पर्श क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पांच राजु बाहल्यरूप राजुप्रतरको छोड़कर अन्यत्र मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादको करनेवाले जीव बहुत थोड़े पाये जाते हैं । वैक्रियिक पदकी अपेक्षा क्षेत्रप्ररूपणाके समान जानना चाहिये ।

अथवा, उपर्युक्त जीवों द्वारा समुद्घात व उपपादसे सर्व लोक स्पृष्ट है ॥९१॥

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंका संख्यातवां भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, अतीत कालकी विवक्षा है ।

वनस्पतिकायिक, निगोदजीव, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदजीव तथा उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ९२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सव्वलोगो ॥ ९३ ॥

कुदो ? आणंतियादो, सव्वत्थ जल-थलागासेसु अवट्ठाणं पडि विरोहाभावादो च।

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपजत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ९५ ॥

कुदो ? अट्ठपुढवीओ चेवमस्सिदूण अवट्ठाणादो। तदो एदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगादो संखेज्जगुणो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो अदीद-वट्टमाणेहि फोसिदो ।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९६ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ ९७ ॥

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ ९३ ॥

क्योंकि, वे अनन्त हैं; तथा जल, थल व आकाशमें सर्वत्र उनके अवस्थानमें कोई विरोध नहीं है।

बादर वनस्पतिकायिक व बादर निगोदजीव तथा उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ९४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥९५॥

क्योंकि, आठ पृथिवियोंका ही आश्रय कर उनका अवस्थान है। अत एव इन जीवोंके द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीत व वर्तमान कालोंकी अपेक्षा स्पृष्ट है।

समुद्घात व उपपाद पदोंसे उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ ९६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

समुद्घात व उपपाद पदोंसे उक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ ९७ ॥

तीदवट्टमाणेसु मारणंतिय-उववादेहि सव्वलोगावूरणादो ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्तभंगो ॥ ९८ ॥

सुगममेदं ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ९९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०० ॥

एसो वट्टमाणणिद्देसो । तेणेत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १०१ ॥

एत्थ ताव वासद्दत्थो वुच्चदे– सत्थाणेण अप्पिदजीवेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-

..

क्योंकि, अतीत व वर्तमान कालोंमें मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे उनके द्वारा सर्व लोक पूर्ण किया जाता है ।

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंके स्पर्शनका निरूपण पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है ॥९८॥

यह सूत्र सुगम है ।

योगमार्गणानुसार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥१००॥

यह कथन वर्तमान कालकी अपेक्षा है । अतएव यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये ।

अथवा, उक्त जीव स्वस्थान पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ १०१ ॥

यहां प्रथम वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं— स्वस्थानकी अपेक्षा प्रकृत जीवों

भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो वासद्दत्थो। विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। कुदो? अट्ठरज्जुबाहल्ललोगणालीए मण-वचिजोगीणं विहारुवलंभादो।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १०२ ॥

सुगममेदं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १०३ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो[1]।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १०४ ॥

आहार-तेजइयपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो। एसो वासद्दत्थो। वेयण-कसाय-वेउव्विएहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, अट्ठरज्जुआयदलोगणालीए सव्वत्थ तीदे काले वेयण-कसाय-विउव्वणाणमुवलंभादो। मारणंतिएण सव्वलोगो।

द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि, मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंका विहार आठ राजु बाहल्ययुक्त लोकनालीमें पाया जाता है।

उपर्युक्त जीवों द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १०२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त जीवों द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १०३ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी प्रधानता है।

अथवा, उन्हीं जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग या सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १०४ ॥

आहारकसमुद्घात और तैजससमुद्घात पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और मानुषक्षेत्रका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है। यह वा शब्दसे-सूचित अर्थ है। वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, आठ राजु आयत लोकनालीमें सर्वत्र अतीत कालकी अपेक्षा वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पाये जाते हैं। मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है।

---

१ प्रतिषु 'वट्टमाणप्पमाणादो' इति पाठः।

उववादो णत्थि ॥ १०५ ॥

तत्थ मण-वचिजोगाणमभावादो ।

कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १०६ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ १०७ ॥

एदस्स अत्थो— सत्थाण-वेयण-कसाय मारणंतिय-उववादेहि वट्टमाणादीदेसु सव्वलोगो फोसिदो । कुदो ? सव्वत्थ गमणागमणावट्ठाणं पडि विरोहाभावादो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियपदेहि वट्टमाणं खेत्तं । अदीदेण अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । णवरि वेउव्वियपदेण तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो । तेजाहारपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । एत्थ वासद्देण विणा कधमेसो

.....

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥१०५॥

क्योंकि, उपपाद पदमें मनोयोग व वचनयोगका अभाव है ।

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ १०७ ॥

इसका अर्थ- स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंसे वर्तमान व अतीत कालोंमें उक्त जीवोंने सर्व लोकका स्पर्श किया है, क्योंकि, उन जीवोंके सर्वत्र गमनागमन और अवस्थानमें कोई विरोध नहीं है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे वर्तमानकालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है । विशेष इतना है कि वैक्रियिक पदकी अपेक्षा तीन लोकोंके संख्यातवें भागका स्पर्श किया है । तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंसे चार लोकोंके असंख्यातवें भाग व मानुपक्षेत्रके संख्यातवें भागका स्पर्श किया है ।

शंका—प्रस्तुत सूत्रमें वा शब्दके विना यहां इस अर्थका व्याख्यान कैसे किया जाता है ?

अत्थो एत्थ वक्खाणिज्जदि ? ण एस दोसो, एदस्स सुत्तस्स देसामासियत्तादो । विहार-वदिसत्थाण-वेउव्विय-तेजाहारपदाणि ओरालियमिस्से णत्थि ।

ओरालियकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १०८ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ १०९ ॥

सत्थाणसत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिएहि वट्टमाणातीदेसु सव्वलोगो फोसिदो विहारवदिसत्थाणेण वट्टमाणं खेत्तं । अदीदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरिय-लोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । वेउव्वियपदेण वट्टमाणं खेत्तं । अदीदेण तिण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एदं सुत्तं देसामासियं काऊण सव्वमेदं वक्खाणं सुत्तारूढं कायव्वं ।

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह सूत्र देशामर्शक है ।

विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद औदारिकमिश्रयोगमें नहीं होते हैं ।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श करते हैं ॥ १०९ ॥

स्वस्थानस्वस्थान वेदनासमुद्घात कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे उक्त जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थानसे वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यात-गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । वैक्रियिक पदसे वर्तमान कालकी प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । इस सूत्रको देशामर्शक करके यह सब सूत्रविहित व्याख्यान करना चाहिये ।

उववादं णत्थि ॥ ११० ॥

उववादकाले ओरालियकायजोगस्स अभावादो ।

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥१११॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११२ ॥

एदस्स अत्थो — तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो ? वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा ॥ ११३ ॥

वेउव्वियकायजोगीहि सत्थाणेहि तीदे काले तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदि-सत्थाणेण अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा, अट्ठरज्जुबाहल्ललोगणालीए वेउव्वियकायजोगेण

औदारिककाययोगमें उपपाद पद नहीं होता ॥ ११० ॥

क्योंकि, उपपादकालमें औदारिककाययोगका अभाव रहता है ।

वैक्रियिककाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिककाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११२ ॥

इस सूत्रका अर्थ — उक्त जीवोंने स्वस्थानपदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि, वर्तमानकालकी प्रधानता है ।

अतीत कालकी अपेक्षा वैक्रियिककाययोगी जीव कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११३ ॥

वैक्रियिककाययोगी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि, आठ राजु बाहल्यवाली लोकनालीमें वैक्रियिककाययोगसे देवोंका

देवाणं विहारुवलंभादो ।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ११४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११५ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठ-तेरहचोद्दसभागा देसूणा ॥ ११६ ॥

वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा । मारणंतिएण तेरह-चोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ? मेरुमूलादो उवरि सत्त हेट्ठा छरज्जुआयामलोग-णालिमावूरिय वेउव्वियकायजोगेण तीदे कयमारणंतियजीवाणमुवलंभादो ।

उववादं णत्थि ॥ ११७ ॥

तत्थ वेउव्वियकायजोगाभावादो ।

....

विहार पाया जाता है ।

उक्त जीव समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ११४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११५ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी प्रधानता है ।

उक्त जीव अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११६ ॥

अतीत कालकी अपेक्षा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे उक्त जीवोंने आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घातसे कुछ कम तेरह बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि, मेरुमूलसे ऊपर सात और नीचे छह राजु आयामवाली लोकनालीको पूर्णकर वैक्रियिककाययोगके साथ अतीत कालमें मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त जीव पाये जाते हैं ।

वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें उपपाद पद नहीं होता ॥ ११७ ॥

क्योंकि, उपपाद पदमें वैक्रियिककाययोगका अभाव है ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ ११८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११९ ॥

एत्थ वट्टमाणं खेत्तं । अदीदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । विहारवदिसत्थाणं णत्थि ।

समुग्घाद-उववादं णत्थि ॥ १२० ॥

होदु णाम मारणंतिय-उववादाणमभावो, एदेसिं दोण्हं वेउव्वियमिस्सकायजोगेण सह विरोहादो । वेउव्वियस्स वि तत्थ अभावो होदु णाम, अपज्जत्तकाले तदसंभवादो । ण पुण वेयण कसायाणं तत्थ असंभवो, णेरइएसु अपज्जत्तकाले चेव ताणमुवलंभादो ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंमे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ ११८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंमे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ ११९ ॥

यहां वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श करते हैं । विहारवत्स्वस्थान उनके होता नहीं है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समुद्घात और उपपाद नहीं होते ॥ १२० ॥

शंका—वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदोंका अभाव भले ही हो, क्योंकि, इनका वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ विरोध है । इसी प्रकार वैक्रियिकसमुद्घातका भी उनके अभाव रहा आवे, क्योंकि, अपर्याप्तकालमें वैक्रियिकसमुद्घातका होना असंभव है । किन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी उनमें असंभावना नहीं है, क्योंकि, नारकियोंके ये दोनों समुद्घात अपर्याप्तकालमें ही पाये जाते हैं ? (जीवस्थान स्पर्शनानुगमके सूत्र ९४ की टीकामें धवलाकारने यहां उपपाद पद भी स्वीकार किया है ।)

एत्थ परिहारो वुच्चदे । तं जहा— होदु णाम तेसिं संभवो, किंतु तत्थ सत्थाणखेत्तादो अहियं खेत्तं ण लब्भदि त्ति तेसिं पडिसेहो कदो । किमिदि ण लब्भदे ? जीवपदेसाणं तत्थ सरीरतिगुणविप्फुज्जणाभावादो ।

आहारकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२२ ॥

एत्थ वट्टमाणस्स खेत्तभंगो । अदीदेण सत्थाणसत्थाण-विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसायपदेहि चदुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । मारणंतिएण चदुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तादो असंखेज्जगुणो ।

....

समाधान—उक्त शंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है— नारकियोंके अपर्याप्तकालमें वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंकी सम्भावना रही आवे, किन्तु उनमें स्वस्थानक्षेत्रसे अधिक क्षेत्र नहीं पाया जाता, इसी कारण उनका प्रतिषेध किया है ।

शंका—स्वस्थानक्षेत्रसे अधिक क्षेत्र वहां क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—क्योंकि, उनमें जीवप्रदेशोंके शरीरसे तिगुणे विसर्पणका अभाव है ।

आहारककाययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारककाययोगी जीव उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ? ॥ १२२ ॥

यहां वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे आहारककाययोगी जीवोंने चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागका स्पर्श किया है । मारणान्तिकसमुद्घातसे चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्रसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

उववादं णत्थि ॥ १२३ ॥

कुदो ? अच्चंताभावेण ओसारिदत्तादो ।

आहारमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १२५ ॥

एत्थ वट्टमाणस्स खेत्तभंगो । अदीदेण चदुण्णं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, माणुसखेत्तस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । विहारवदिसत्थाणं णत्थि ।

समुग्घाद-उववादं णत्थि ॥ १२६ ॥

कुदो ? अच्चंताभावेण ओसारिदत्तादो ।

कम्मइयकायजोगीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२७ ॥

आहारककाययोगी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ १२३ ॥

क्योंकि, वह अत्यन्ताभावसे निराकृत है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १२४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १२५ ॥

यहां वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्रके संख्यातवें भागका स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान उनके होता नहीं है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते ॥ १२६ ॥

क्योंकि, वे अत्यन्ताभावसे निराकृत हैं ।

कार्मणकाययोगी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १२७ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ १२८ ॥

एदं पि सुगमं ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १२९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३० ॥

एत्थ खेत्तपरूवणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा ॥ १३१ ॥

एदं देसामासियसुत्तं । तेणेदेण सूइदत्थस्स ताव परूवणं कस्सामो । तं जहा— सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एत्थ वाणवेंतर-जोदिसियाणं विमाणेहि रुद्धखेत्तं घेत्तूण तिरिय-

यह सूत्र सुगम है ।

कार्मणकाययोगियों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १२८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १२९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १३० ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी प्रधानता है ।

अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है ॥ १३१ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है, इस कारण इससे सूचित अर्थकी प्ररूपणा करते हैं । वह इस प्रकार है— स्वस्थानकी अपेक्षा उक्त जीवोंने तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। यहां वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके विमानोंसे रुद्ध क्षेत्रको ग्रहणकर तिर्यग्लोकका

लोगस्स संखेज्जदिभागो साहेयव्वो। एसो सुइदत्थो। विहारवदिसत्थाणेहि पुण अट्ठचोद्दस-भागा देसूणा फोसिदा, देवीहि सह देवाणमट्ठचोद्दसभागेसु तीदे काले संचारुवलंभादो।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १३२ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३३ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणं कायव्वं, वट्टमाणप्पणादो।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा ॥ १३४ ॥

वेयण कसाय-वेउव्वियपदपरिणदेहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। कुदो ? देवीहि सह अट्ठचोद्दसभागे भमंताणं देवाणं सव्वत्थ वेयण-कसाय-विउव्वणाणमुवलंभादो। तेजाहारसमुग्घादा ओघभंगो। णवरि इत्थिवेदे तदुभयं णत्थि। मारणंतियसमुग्घादेण

संख्यातवां भाग सिद्ध करना चाहिये। यह सूचित अर्थ है। किन्तु विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि, देवियोंके साथ देवोंका आठ बटे चौदह भागोंमें अतीत कालकी अपेक्षा गमन पाया जाता है।

स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी जीव समुद्घातोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ? ॥ १३२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

समुद्घातकी अपेक्षा उक्त जीव लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १३३ ॥

यहां क्षेत्रका वर्णन करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी प्रधानता है।

अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका अथवा सर्व लोकका स्पर्श किया है ॥ १३४ ॥

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे परिणत स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, देवियोंके साथ आठ बटे चौदह भागमें भ्रमण करनेवाले देवोंके सर्वत्र वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पाये जाते हैं। तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण ओघके समान है। विशेष इतना है कि स्त्रीवेदमें वे दोनों

सव्वलोगो, तिरिक्ख-मणुस्सपुरिसित्थिवेदाणं सव्वलोगे मारणंतियसंभवादो। वासद्दो किमट्ठं ? समुच्चयट्ठो। देव-देवीणं मारणंतियं घेप्पमाणे णवचोद्दसभागा होंति त्ति फोसणविसेसजाणावणट्ठं वा वासद्दो परूविदो।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १३५ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३६ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो।

सव्वलोगो वा ॥ १३७ ॥

कुदो ? सव्वदिसादो आगंतूण इत्थि-पुरिसवेदेसु उप्पज्जमाणाणमुवलंभादो। देव-देवीओ च अस्सिदूण भण्णमाणे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो त्ति जाणावणट्ठं वासद्दग्गहणं कयं।

....

पद नहीं होते। मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्य पुरुष-स्त्रीवेदियोंके सर्व लोकमें मारणान्तिकसमुद्घातकी सम्भावना है।

शंका—सूत्रमें वा शब्दका प्रयोग किस लिये किया गया है ?

समाधान—वा शब्दका प्रयोग समुच्चयके लिये किया गया है। अथवा देव-देवियोंके मारणान्तिकसमुद्घातको ग्रहण करनेपर नौ बटे चौदह भाग होते हैं, इस स्पर्शनविशेषके ज्ञापनार्थ वा शब्दका प्रयोग किया गया है।

उपपादकी अपेक्षा स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १३५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपपादकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १३६ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है।

अथवा, उपपादकी अपेक्षा अतीत कालमें उक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १३७ ॥

क्योंकि, सर्व दिशाओंसे आकर स्त्री व पुरुष वेदियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव पाये जाते हैं। देव-देवियोंका आश्रय कर स्पर्शनके कहनेपर तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, छह बटे चौदह भाग और तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है, इसके ज्ञापनार्थ सूत्रमें वा शब्दका ग्रहण किया है।

णवुंसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? ॥ १३८ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ १३९ ॥

एदस्स अत्थो— सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि अदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो फोसिदो । विहारवदिसत्थाण-वेउव्वियसमुग्घादेहि वट्टमाणे खेत्तं । अदीदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो । णवरि वेउव्वियपदेण तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो, णर-तिरिय-लोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । कुदो? वाउक्काइयाणं विउव्वमाणाणं पंचचोद्दस-भागमेत्तफोसणस्सुवलंभादो । तेजाहारसमुग्घादा णत्थि ।

अवगदवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? ॥ १४० ॥

सुगमं ।

नपुंसकवेदी जीवोंने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? ॥ १३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदी जीवोंने उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ १३९ ॥

इस सूत्रका अर्थ— स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात और उपपाद पदोंसे अतीत व वर्तमान कालकी अपेक्षा नपुंसकवेदियोंने सर्व लोकका स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है । अतीत कालकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । विशेषता इतनी है कि वैक्रियिकपदसे तीन लोकोंके संख्यातवें भाग तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि, विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीवोंके पांच बटे चौदह भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है । तैजस व आहारक समुद्घात नपुंसकवेदियोंके होते नहीं हैं ।

अपगतवेदी जीव स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं? ॥ १४० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४१ ॥

सुगमं ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १४२ ॥

एदं पि सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १४३ ॥

दंड-कवाड-मारणंतियसमुग्घादगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो अदीद-वट्टमाणेण फोसिदो । णवरि कवाडगदेहि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो संखेज्जगुणो वा फोसिदो ।

असंखेज्जा वा भागा ॥ १४४ ॥

एदं पदरगदाणं फोसणं, वादवलएसु जीवपदेसाणं पवेसाभावादो ।

सव्वलोगो वा ॥ १४५ ॥

अपगतवेदी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ १४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंने समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ॥ १४२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंने समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १४३ ॥

दण्ड, कपाट व मारणान्तिक समुद्घातोंको प्राप्त हुए अपगतवेदियों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीत और वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पृष्ट है । विशेष इतना है कि कपाटसमुद्घातगत अपगतवेदियों द्वारा तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग अथवा संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है ।

अथवा, उक्त जीवों द्वारा समुद्घातसे लोकका असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट है ॥ १४४ ॥

यह प्रतरसमुद्घातगत अपगतवेदियोंका स्पर्शनक्षेत्र है, क्योंकि, यहां वातवलयोंमें जीवप्रदेशोंके प्रवेशका अभाव है ।

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट हैं ॥ १४५ ॥

एदं लोगपूरणफोसणं । सेसं सुगमं ।

उववादं णत्थि ॥ १४६ ॥

अच्चंताभावेण ओसारिदत्तादो ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णवुंसयवेदभंगो ॥ १४७ ॥

जहा णवुंसयवेदस्स अदीद-वट्टमाणकाले अस्सिदूण परूविदं तधा एत्थ वि परूवेदव्वं, णत्थि एत्थ विसेसो । णवरि पदविसेसो जाणिय वत्तव्वो । वेउव्वियं वट्ट-माणेण तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अदीदेण अट्ठचोद्दसभागा देसूणा ।

अकसाई अवगदवेदभंगो ॥ १४८ ॥

सुगमं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १४९ ॥

यह लोकपूरणसमुद्घातको प्राप्त अपगतवेदियोंका स्पर्शन है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

अपगतवेदियोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ १४६ ॥

क्योंकि, वह अत्यन्ताभावसे निराकृत है ।

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंकी प्ररूपणा नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ १४७ ॥

जिस प्रकार नपुंसकवेदकी अपेक्षा अतीत व वर्तमान कालोंका आश्रयकर निरूपण किया है उसी प्रकार यहां भी निरूपण करना चाहिये, क्योंकि, यहां उससे कोई विशेषता नहीं है। विशेष इतना है कि पदोंकी विशेषता जानकर कहना चाहिये। वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा वर्तमान कालसे तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग और अतीत कालसे कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्शन है ।

अकषायी जीवोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ज्ञानमार्गणानुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवोंने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १४९ ॥

एदं मारणंतियपदमस्सिदूण वुत्तं । कुदो ? विभंगणाणितिरिक्ख-मणुस्साणं मारणंतियस्स तीदे काले सव्वलोगुवलंभादो । देव-णेरइयाणं मारणंतियमस्सिदूण तेरह-चोद्दसभागा होंति त्ति जाणावणट्ठं वासद्दणिद्देसो कदो ।

उववादं णत्थि ॥ १५८ ॥

कुदो ? विस्ससादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १५९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६० ॥

एत्थ खेत्तवण्णणं कायव्वं, वट्टमाणावलंबणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा ॥ १६१ ॥

यह मारणान्तिकपदका आश्रयकर कहा गया है, क्योंकि, विभंगज्ञानी तिर्यंच और मनुष्योंके मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा अतीत कालमें सर्व लोक पाया जाता है। देव व नारकियोंके मारणान्तिकसमुद्घातका आश्रयकर तेरह बटे चौदह भाग होते हैं, इसके ज्ञापनार्थ सूत्रमें वा शब्दका निर्देश किया है ।

विभंगज्ञानी जीवोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १५८ ॥

क्योंकि, ऐसा स्वभाव है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंने स्वस्थान व समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंने उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६० ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा कहना चाहिये, क्योंकि वर्तमान कालकी अपेक्षा है ।

अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६१ ॥

एदं देसामासियसुत्तं, तेणेदेण सूइदत्थो ताव उच्चदे। तं जहा— सत्थाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। तेजाहारपदाणं खेत्तं। एसो सूइदत्थो। विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिएहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १६२ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६३ ॥

एदस्स अत्थपरूवणाए खेत्तभंगो। कुदो ? वट्टमाणप्पणादो।

छचोद्दसभागा देसूणा ॥ १६४ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— तिरिक्खअसंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदाणमारणादि-देवेसुप्पज्जमाणाणं छचोद्दसभागा। हेट्ठा दोरज्जुमेत्तद्धाणं गंतूण ट्ठिदावत्थाए छिण्णाउआणं

यह देशामर्शक सूत्र है, अत एव इससे सूचित अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है— उपर्युक्त तीन ज्ञानवाले जीवोंने स्वस्थानपदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रके समान है। यह सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक-समुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है।

उक्त जीवोंने उपपाद पदसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १६२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंने उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६३ ॥

इस सूत्रके अर्थका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है, क्योंकि, वर्तमानकालकी विवक्षा है।

अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— आरणादिक देवोंमें उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका उत्पादक्षेत्र छह बटे चौदह भागप्रमाण है।

शंका—नीचे दो राजुमात्र मार्ग जाकर स्थित अवस्थामें आयुके क्षीण होनेपर

मणुस्सेसुप्पज्जमाणाणं[1] देवाणं उववादखेत्तं किण्ण घेप्पदे ? ण, तस्स पढमदंडेणूणस्स छचोद्दसभागेसु चेव अंतब्भावादो, तेसिं मूलसरीरपवेसमंतरेण[2] तदवत्थाए मरणाभावादो च ।

मणपज्जवणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १६५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १६६ ॥

एदस्स अत्थे भण्णमाणे वट्टमाणं खेत्तं । अदीदेण चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो ।

उववादं णत्थि ॥ १६७ ॥

मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंका उत्पादक्षेत्र क्यों नहीं ग्रहण किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रथम दण्डसे कम उसका छह बटे चौदह भागोंमें ही अन्तर्भाव हो जाता है, तथा मूलशरीरमें जीवप्रदेशोंके प्रवेश विना उस अवस्थामें उनके मरण का अभाव भी है। (?)

मनःपर्ययज्ञानी जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनःपर्ययज्ञानी जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १६६ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते समय वर्तमान कालकी अपेक्षा क्षेत्रके समान निरूपण करना चाहिये। अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने चार लोकोंके असंख्यातवें भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंके उपपाद पद नहीं होता है ॥ १६७ ॥

---

१ प्रतिषु ' मणुस्सेसुप्पज्जमाणाणि ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' -पदेस ' इति पाठः ।

कुदो ? विस्ससादो।

केवलणाणी अवगदवेदभंगो ॥ १६८ ॥

णवरि मारणंतियपदं णत्थि, केवलणाणिम्हि तस्सत्थित्तविरोहादो।

संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा अकसाइ-भंगो ॥ १६९ ॥

एसो सुत्तणिद्देसो दव्वट्ठियणयावलंबणो। पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे संजदा अकसाइतुल्ला ण होंति, संजदेसु अकसाइजीवेसु अविज्जमाणवेउव्विय-तेजाहार-पदाणमुवलंभादो। सेसं सुगमं।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसंजदाणं मण-पज्जवणाणिभंगो ॥ १७० ॥

एसो दव्वट्ठियणिद्देसो। पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे सामाइयच्छेदो-वट्ठावणसुद्धिसंजदा पुण मणपज्जवणाणितुल्ला होंति, मणपज्जवणाणिसु तेजाहारपदाणम-

क्योंकि, वैसा स्वभाव है।

केवलज्ञानी जीवोंकी प्ररूपणा अपगतवेदियोंके समान है ॥ १६८ ॥

विशेष इतना है कि केवलज्ञानियोंके मारणान्तिक पद नहीं होता, क्योंकि, केवलज्ञानीमें उसके अस्तित्वका विरोध है।

संयममार्गणानुसार संयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीवोंकी प्ररूपणा अकषायी जीवोंके समान है ॥ १६९ ॥

इस सूत्रका निर्देश द्रव्यार्थिक नयका आलम्बन करता है। पर्यायार्थिक नयका आलम्बन करनेपर संयत जीव अकषायी जीवोंके तुल्य नहीं हैं, क्योंकि, अकषायी जीवोंमें अविद्यमान वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद संयतोंमें पाये जाते हैं। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

सामायिकछेदोपस्थापनशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंकी प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ १७० ॥

यह कथन द्रव्यार्थिक नयसे है। पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर सामायिकछेदोपस्थापनशुद्धिसंयत जीव मनःपर्ययज्ञानियोंके तुल्य होते हैं, क्योंकि, मनःपर्ययज्ञानियोंमें तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदोंका अभाव है। परन्तु

भावादो। सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा पुण मणपज्जवणाणितुल्ला ण होंति, सुहुमसांपराइय-संजदेसु वेउव्वियपदाभावादो। सेसं सुगमं।

संजदासंजदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?॥ १७१ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७२ ॥

एदस्सत्थो— वट्टमाणे खेत्तभंगो। अदीदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। होदु णाम विहारवदि-सत्थाणस्सेदं, सव्वदीव-समुद्देसु वइरियदेवसंबंधेण तीदे काले संजदासंजदाणं संभवादो। ण सत्थाणस्स, सव्वदीव-समुद्देसु सत्थाणत्थसंजदासंजदाणमभावादो ? ण एस दोसो, जदि वि सव्वत्थ णत्थि तो वि सयंपहपव्वयस्स परभाए तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागे सत्थाणत्थियसंजदासंजदाणमुवलंभादो।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव मनःपर्ययज्ञानियोंके तुल्य नहीं होते, क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयतोंमें वैक्रियिक पदका अभाव है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

संयतासंयत जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १७१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

संयतासंयत जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७२ ॥

इसका अर्थ— वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। अतीत कालमें तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है।

शंका— विहारवत्स्वस्थान पदकी अपेक्षा उपर्युक्त स्पर्शनका प्रमाण भले ही ठीक हो, क्योंकि, वैरी देवोंके सम्बन्धसे अतीत कालमें सर्व द्वीप समुद्रोंमें संयतासंयत जीवोंकी सम्भावना है। किन्तु स्वस्थानपदकी अपेक्षा उक्त स्पर्शन नहीं बनता, क्योंकि, स्वस्थानमें स्थित संयतासंयत जीवोंका सर्व द्वीप-समुद्रोंमें अभाव है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, यद्यपि सर्वत्र संयतासंयत जीव नहीं हैं, तथापि तिर्यग्लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्वयंप्रभ पर्वतके पर भागमें स्वस्थानस्थित संयतासंयत पाये जाते हैं।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १७३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १७४ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो ।

छचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १७५ ॥

एत्थ ताव वासद्दत्थो वुच्चदे । तं जहा— वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्दत्थो । मारणंतियेण पुण छचोद्दसभागा फोसिदा, तिरिक्खेहिंतो जाव अच्चुदकप्पो त्ति मारणंतियं मेल्लमाणसंजदासंजदाणं तदुवलंभादो ।

उववादं णत्थि ॥ १७६ ॥

संजदासंजदगुणेण उववादस्स विरोहादो ।

समुद्घातोंकी अपेक्षा संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ १७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतासंयत जीवोंने समुद्घातोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७४ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है ॥ १७५ ॥

यहां पहिले वा शब्दसे सूचित अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । मारणान्तिकसमुद्घातसे (कुछ कम) छह बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि, तिर्यंचोंमेंसे अच्युत कल्प तक मारणान्तिक-समुद्घातको करनेवाले संयतासंयत जीवोंके उपर्युक्त स्पर्शन पाया जाता है ।

संयतासंयत जीवोंके उपपाद पद नहीं होता ॥ १७६ ॥

क्योंकि, संयतासंयतगुणस्थानके साथ उपपादका विरोध है ।

असंजदाणं णवुंसयभंगो ॥ १७७ ॥

सुगममेदं ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १७८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ १७९ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा, वट्टमाणपरूवणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १८० ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासदत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दस-

---

असंयत जीवोंके स्पर्शनका निरूपण नपुंसकवेदियोंके समान है ॥ १७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ॥ १७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ १७९ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी प्रधानता है ।

अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान पदोंसे चक्षुदर्शनी जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ १८० ॥

चक्षुदर्शनी जीवोंने स्वस्थानसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा (कुछ कम) आठ बटे

---

१ अ-काप्रत्योः ' संखेज्जदिभागो ' इति पाठः ।

भागा चक्खुदंसणीहि फोसिदा, अट्ठरज्जुबाहल्लरज्जुपदरब्भंतरे चक्खुदंसणीणं विहारस्स विरोहाभावादो ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १८१ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८२ ॥

एत्थ खेत्तपरूवणा कायव्वा, वट्टमाणकालेण अहियारादो ।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा ॥ १८३ ॥

कुदो ? वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादेहि विहरंतदेवेसु समुप्पण्णेहि अट्ठचोद्दसभागखेत्तस्स पुसिज्जमाणस्स दंसणादो । मारणंतियफोसणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वलोगो वा ॥ १८४ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा— देव-णेरइएहि[1] मारणंतियसमुग्घादेहि तेरहचोद्दसभागा फोसिदा, लोगणालीए बाहिमेदेसि उववादाभावेण मारणंतिएण गमणा-

चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, आठ राजु बाहल्यसे युक्त राजुप्रतरके भीतर चक्षुदर्शनी जीवोंके विहारका कोई विरोध नहीं है ।

चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १८२ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालका अधिकार है ।

अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ १८३ ॥

क्योंकि, विहार करनेवाले देवोंमें उत्पन्न वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंसे स्पर्श किया जानेवाला आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र देखा जाता है । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शनके प्ररूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १८४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— देव व नारकियों द्वारा मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा तेरह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, लोकनालीके बाहिर इनके उत्पादका अभाव होनेसे मारणान्तिकसमुद्घातके द्वारा गमन नहीं होता ।

१ अप्रतौ ' देव-णेरइयाणं हि ' इति पाठः ।

मावादो । एसो वासद्दत्थो । तिरिक्ख-मणुस्सेहि पुण सव्वलोगो फोसिदो, तेसिं लोगणालीए बाहिमब्भंतरे च मारणंतिएण गमणुवलंभादो ।

उववादं सिया अत्थि सिया णत्थि ॥ १८५ ॥

अत्थित्त-णत्थित्ताणं चक्खुदंसणविसयाणं एक्कम्हि जीवे एक्ककालम्हि परोप्पर-परिहारलक्खणविरोहो व्व सहअणवट्ठाणलक्खणविरोहाभावपदुप्पायणट्ठं सियासद्दो ठविदो । कधमविरोहो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि ॥ १८६ ॥

लद्धी चक्खिदियावरणखओवसमो, सो अपज्जत्तकाले वि अत्थि, तेण विणा बज्झिंदियणिव्वत्तीए अभावादो । णिव्वत्ती णाम चक्खुगोलियाए णिप्पत्ती, सा अपज्जत्त-काले णत्थि, अणिप्पत्तीए णिप्पत्तिविरोहादो । जेण सरूवेण चक्खुदंसणमत्थि तेणेव सरूवेण जदि तस्स णत्थित्तं परूविज्जदि तो विरोहो पसज्जदे । ण च एवं, तम्हा सहअणवट्ठाणलक्खणो विरोहो णत्थि त्ति ।

यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । किन्तु तिर्यंच व मनुष्योंके द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, लोकनालीके बाहिर और भीतर मारणान्तिकसमुद्घातसे उनका गमन पाया जाता है ।

चक्षुदर्शनी जीवोंके उपपाद पद कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है ॥ १८५ ॥

एक जीवमें एक कालमें चक्षुदर्शनविषयक अस्तित्व और नास्तित्वके परस्पर-परिहारलक्षण विरोधके समान सहानवस्थानलक्षण विरोधका अभाव बतलानेके लिये सूत्रमें ' स्यात् ' शब्दका उपादान किया है । उक्त अस्तित्व व नास्तित्वमें अविरोध कैसे है, इस बातके ज्ञापनार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

चक्षुदर्शनी जीवोंके लब्धिकी अपेक्षा उपपाद पद है, किन्तु निर्वृतिकी अपेक्षा वह नहीं है ॥ १८६ ॥

चक्षुइन्द्रियावरणके क्षयोपशमको लब्धि कहते हैं । वह अपर्याप्तकालमें भी है, क्योंकि, उसके विना बाह्य निर्वृति नहीं होती । गोलकरूप चक्षुकी निष्पत्तिका नाम निर्वृति है । वह अपर्याप्तकालमें नहीं है, क्योंकि, अनिष्पत्तिका निष्पत्तिसे विरोध है । जिस रूपसे चक्षुदर्शन है उसी रूपसे यदि उसका नास्तित्व कहा जाय तो विरोधका प्रसंग होगा । किन्तु ऐसा है नहीं, अतएव यहां सहानवस्थानलक्षण विरोध नहीं है ।

जदि लद्धिं पडुच्च अत्थि, केवडियं खेत्तं फोसिदं ?॥ १८७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १८८ ॥

एदं सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

सव्वलोगो वा ॥ १८९ ॥

एदस्स अत्थो– देव-णेरइएहि सचक्खुतिरिक्ख-मणुस्सेहिंतो चक्खुदंसणीसुप्पण्णेहि बारहचोद्दसभागा फोसिदा, लोगणालीए बाहिं चक्खुदंसणीणमभावादो, आणदादिउवरिम-देवाणं तिरिक्खेसुप्पादाभावादो च । एसो वासद्दत्थो । एइंदिएहिंतो सचक्खिदिएसु उप्पण्णेहि पढमसमए सव्वलोगो फोसिदो, आणंतियादो सव्वपदेसेहिंतो आगमण-संभवादो च ।

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो ॥ १९० ॥

एसो दव्वट्ठियणिद्देसो । पज्जवट्ठियणए पुण अवलंबिज्जमाणे अचक्खुदंसणिणो

यदि लब्धिकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीवोंके उपपाद पद है तो उनके द्वारा इस पदसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १८७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १८८ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, यहां वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ १८९ ॥

इस सूत्रका अर्थ— चक्षुदर्शनी तिर्यंच और मनुष्योंमेंसे चक्षुदर्शनियोंमें उत्पन्न हुए देव व नारकियों द्वारा बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, लोकनालीके बाहिर चक्षुदर्शनी जीवोंका अभाव है, तथा आनतादि उपरिम देवोंका तिर्यंचोंमें उत्पाद भी नहीं है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । एकेन्द्रिय जीवोंमेंसे चक्षुइन्द्रिय सहित जीवोंमें उत्पन्न हुए जीवों द्वारा प्रथम समयमें सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि, वे अनन्त हैं तथा सर्व प्रदेशोंसे उनके आगमनकी सम्भावना भी है ।

अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है ॥ १९० ॥

यह कथन द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा है । पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर

असंजदतुल्ला ण होंति, अचक्खुदंसणीसु तेजाहारपदाणमुवलंभादो ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ १९१ ॥

सुगमं ।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ १९२ ॥

एदं पि सुगमं ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणं असंजदभंगो ॥ १९३ ॥

सुगममेदं ।

तेउलेस्सियाणं सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १९४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९५ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा वट्टमाणविवक्खाए ।

....

अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके तुल्य नहीं है, क्योंकि अचक्षुदर्शनियोंमें तैजस और आहारक समुद्घात पद पाये जाते हैं ।

अवधिदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ १९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

केवलदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा केवलज्ञानियोंके समान है ॥ १९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके समान है ॥ १९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १९४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १९५ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १९६ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्दत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दस-भागा देसूणा फोसिदा, तेउलेस्सियदेवाणं विहरमाणाणमेदस्सुवलंभादो ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ १९७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९८ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ १९९ ॥

वेयण-कसाय-वेउव्वियपरिणदेहि अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा, विहरंताणं देवाण-मेदेसिं तिण्हं पदाणं सव्वत्थुवलंभादो । मारणंतिएण णवचोद्दसभागा फोसिदा, मेरुमूलादो

अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ १९६ ॥

स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, विहार करते हुए तेजोलेश्यावाले देवोंके इतना स्पर्शन पाया जाता है ।

समुद्घातकी अपेक्षा तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ १९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ १९८ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ १९९ ॥

वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदोंसे परिणत तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, विहार करते हुए देवोंके ये तीनों पद सर्वत्र पाये जाते हैं । मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि,

हेट्ठिम दोहि रज्जूहि सह उवरि सत्तरज्जुफोसणुवलंभादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २०० ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०१ ॥

सुगमं, वट्टमाणकाले पडिबद्धत्तादो ।

दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २०२ ॥

कुदो ? मेरुमूलादो पहापत्थडस्स दिवड्ढरज्जुमेत्तमुवरि चडिदूण अवट्ठाणादो । सणक्कुमार-माहिंदाणं पढमिंदयदेवेसु[१] तेउलेस्सिएसु उप्पाइज्जमाणे सादिरेयदिवड्ढरज्जुखेत्तं किण्ण लब्भदे ? ण, सोहम्मादो थोवं चेव ट्ठाणमुवरि गंतूण सणक्कुमारादिपत्थडस्स अवट्ठाणादो । कधमेदं णव्वदे ? अण्णहा देसूणत्ताणुववत्तीदो । मारणंतिय-उववादट्ठिद-वासद्दा वुत्तमसुच्चयत्था दट्ठव्वा ।

मेरुमूलसे नीचे दो राजुओंके साथ ऊपर सात राजु स्पर्शन पाया जाता है ।

उपपादकी अपेक्षा तेजोलेश्यावाले जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥२००॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥२०१॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालसे संबद्ध है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥२०२॥

क्योंकि, मेरुमूलसे डेढ़ राजुमात्र ऊपर चढ़कर प्रभा पटलका अवस्थान है ।

शंका— सानत्कुमार माहेन्द्र कल्पोंके प्रथम इन्द्रक विमानमें स्थित तेजोलेश्यावाले देवोंमें उत्पन्न करानेपर डेढ़ राजुसे अधिक क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, सौधर्म कल्पसे थोड़ा ही स्थान ऊपर जाकर सानत्कुमार कल्पका प्रथम पटल अवस्थित है ।

शंका— यह कैसे जाना जाता ?

समाधान—क्योंकि, ऐसा न माननेपर उपर्युक्त डेढ़ राजु क्षेत्रमें जो कुछ न्यूनता बतलाई है वह बन नहीं सकती । मारणान्तिक और उपपाद पदोंमें स्थित वा शब्द उक्त अर्थके समुच्चयके लिये जानना चाहिये ।

१ अ आप्रत्योः 'पढमेंदयदेवेसु' इति पाठः ।

पम्मलेस्सिया सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २०३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०४ ॥

सुगमं, वट्टमाणणिरोहादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २०५ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्दसूइदत्थो । विहार-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियपरिणएहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । कुदो ? पम्मलेस्सिय-देवाणमेइंदिएसु मारणंतियाभावादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २०६ ॥

सुगमं ।

पद्मलेश्यावाले जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २०३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंने उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥२०४॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षारूप निरोध है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २०५ ॥

स्वस्थान पदकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे परिणत उन्हीं पद्मलेश्यावाले जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, पद्मलेश्यावाले देवोंके एकेन्द्रिय जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घातका अभाव है ।

उक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २०६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २०७ ॥

एदं पि सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

पंचचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २०८ ॥

कुदो ? मेरुमूलादो उवरि पंचरज्जुमेत्तद्धाणं गंतूण सहस्सारकप्पस्स अवट्ठाणादो । एत्थ वासद्दो वुत्तसमुच्चयट्ठो ।

सुक्कलेस्सिया सत्थाण-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २०९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २१० ॥

एत्थ खेत्तवण्णणा कायव्वा, वट्टमाणप्पणादो ।

छचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २११ ॥

उक्त जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २०७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २०८ ॥

क्योंकि, मेरुमूलसे पांच राजुमात्र मार्ग जाकर सहस्रारकल्पका अवस्थान है । सूत्रमें वा शब्द पूर्वोक्त अर्थके समुच्चयक लिये है ।

शुक्ललेश्यावाले जीवोंने स्वस्थान और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २०९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंने उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २१० ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है ॥ २११ ॥

एदस्सत्थो— सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो वासद्देण समुच्चिदत्थो। विहारवदिसत्थाण-उववादेहि छचोद्दसभागा फोसिदा, तिरियलोगादो आरणच्चुदकप्पे समुप्पज्जमाणाणं छरज्जुअब्भंतरे विहरंताणं च एत्तियमेत्तफोसणुवलंभादो।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २१२ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २१३ ॥

एत्थ खेत्तपरूवणा कायव्वा।

छचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २१४ ॥

आरणच्चुददेवेसु कयमारणंतियतिरिक्ख-मणुस्साणमुवलंभादो। वेदण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादाणं विहारवदिसत्थाणभंगो।

असंखेज्जा वा भागा ॥ २१५ ॥

इसका अर्थ— स्वस्थान पदसे तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। यह वा शब्द द्वारा समुच्चय रूपसे सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान और उपपाद पदोंसे छह बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि, तिर्यग्लोकसे आरण-अच्युत कल्पमें उत्पन्न होनेवाले और छह राजुके भीतर विहार करनेवाले उक्त जीवोंके इतना मात्र स्पर्शन पाया जाता है।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २१२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ? ॥ २१३ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २१४ ॥

क्योंकि, आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंमें मारणान्तिकसमुद्घातको करनेवाले तिर्यंच और मनुष्य पाये जाते हैं। वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण विहारवत्स्वस्थानके समान है।

अथवा, असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट हैं ॥ २१५ ॥

एदं[1] पदरगदकेवलिमस्सिदूण भणिदं, वादवलए मोत्तूण तत्थ सव्वलोगंगदजीव-पदेसाणमुवलंभादो। दंडगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्ज-गुणो फोसिदो। एवं कवाडगदेहि वि। णवरि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो तत्तो संखेज्जगुणो वा फोसिदो त्ति वत्तव्वं। एसो वासद्देण यउत्तसमुच्चओ। पुव्वसुत्तट्ठिय-वासद्देण वि अउत्तसमुच्चओ पुव्वसुत्ते चेव कदो[2], सुक्कलेस्सियदेवेहि कयमारणंतिएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो त्ति एदस्स सूचयत्तादो।

सव्वलोगो वा ॥ २१६ ॥

एदं लोगपूरणगदकेवलिं पडुच्च समुद्दिट्ठं। एत्थ वासद्दो उत्तसमुच्चयत्थो।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय अभवसिद्धिय सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २१७ ॥

....

यह प्रतरसमुद्घातगत केवलीका आश्रय कर कहा गया है, क्योंकि, प्रतरसमुद्घातमें वातवलयोंको छोड़कर सर्व लोकमें व्याप्त जीव प्रदेश पाये जाते हैं। दण्डसमुद्घातगत जीवों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। इसी प्रकार कपाटसमुद्घातगत जीवों द्वारा भी स्पृष्ट है। विशेष इतना है कि तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग अथवा उससे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, ऐसा कहना चाहिये। यह सूत्रमें नहीं कहे हुए अर्थका वा शब्दके द्वारा समुच्चय किया गया है। पूर्व सूत्रमें स्थित वा शब्दके द्वारा भी अनुक्त अर्थका समुच्चय पूर्व सूत्रमें ही किया गया है, क्योंकि, वह वा शब्द 'मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त शुक्ललेश्यावाले देवोंके द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है' इस अर्थका सूचक है।

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २१६ ॥

यह लोकपूरणसमुद्घातगत केवलीकी अपेक्षा कहा गया है। यहां वा शब्द पूर्वोक्त अर्थके समुच्चयके लिये है।

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवों द्वारा स्वस्थान, समुद्घात एवं उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २१७ ॥

....

१ प्रतिषु 'एवं' इति पाठः।

२ अ-काप्रत्योः 'अउत्तसमुच्चओ चेव', आप्रतौ 'अउत्तसमुच्चओ पुव्वसुत्तं चेव' इति पाठः।

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ २१८ ॥

सत्थाण-वेयण-कसाय-मारणंतिय-उववादेहि अदीद वट्टमाणे सव्वलोगो फोसिदो। विहारवदिसत्थाणेण वट्टमाणे खेत्तं; अदीदेण अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा । वेउव्वियपदेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, णर-तिरियलोगेहिंतो असंखेज्जगुणो फोसिदो । भव-सिद्धिएसु सेसपदाणमोघभंगो । कधमेदं सम्मुवलद्धं ? देसामासियत्तादो ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २१९ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२० ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवों द्वारा उक्त पदोंमे सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २१८ ॥

स्वस्थान, वेदना, कषाय मारणान्तिक और उपपाद पदोंसे अतीत व वर्तमान कालमें भव्यसिद्धिक एवं अभव्यसिद्धिक जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है । विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा वर्तमान कालमें क्षेत्रके समान प्ररूपणा है; अतीत कालमें आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । भव्यसिद्धिक जीवोंमें शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण ओघके समान है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इस सूत्रके देशामर्शक होनेसे उपर्युक्त अर्थ उपलब्ध होता है ।

सम्यक्त्वमार्गणानुसार सम्यग्दृष्टी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २१९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २२० ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २२१ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो वासद्दत्थो। विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा, सम्माइट्ठीणं मेरुमूलादो हेट्ठा दोरज्जुमेत्तद्धाणगमणस्स दंसणादो।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २२२ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२३ ॥

एत्थ खेत्तवण्णणं कायव्वं, वट्टमाणवेयण-कसाय-वेउव्विय-तेजाहार-केवलि-समुग्घाद-मारणंतियखेत्तप्पणादो।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २२४ ॥

वेयण-कसाय-वेउव्विय मारणंतियपदेहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २२१ ॥

स्वस्थान पदसे सम्यग्दृष्टि जीवोंने तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान पदसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, मेरुमूलसे नीचे दो राजुमात्र मार्गमें सम्यग्दृष्टियोंका गमन देखा जाता है।

सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २२२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ? ॥ २२३ ॥

यहां क्षेत्रप्ररूपणा करना चाहिये, क्योंकि वर्तमानकालसम्बन्धी वेदना, कषाय, वैक्रियिक, तैजस, आहारक, केवलिसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंकी अपेक्षा क्षेत्रकी विवक्षा है।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २२४ ॥

वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदोंकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीवों

एदं देवसम्माइट्ठिणो अस्सिदूण उत्तं। वासद्दो किमट्ठं वुत्तो ? तिरिक्ख-मणुससम्मा-इट्ठिखेत्तसमुच्चयट्ठं। तं जहा— वेयण-कसाय-वेउव्वियपदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदि-भागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो; तेजाहारपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जस्स संखेज्जदिभागो; मारणंतिएण छचोद्दस-भागा फोसिदा। एसो वासद्दसमुच्चिदत्थो।

असंखेज्जा वा भागा वा ॥ २२५ ॥

एदं पदरगदकेवलिमस्सिदूण उत्तं। दंडगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो पढमवासद्देण समुच्चिदत्थो। कवाडगदेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो तत्तो संखेज्जगुणो वा, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो बिदियवासद्दसमुच्चिदत्थो। एवं सव्वत्थ पदरगदकेवलिसुत्तट्ठियदोण्णं वासद्दाणमत्थो परूवेदव्वो।

सव्वलोगो वा ॥ २२६ ॥

द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं। यह स्पर्शन क्षेत्र देव सम्यग्दृष्टियोंका आश्रयकर कहा गया है।

शंका—सूत्रमें वा शब्दका ग्रहण किस लिये किया है ?

समाधान—तिर्यंच और मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंके क्षेत्रका समुच्चय करनेके लिये सूत्रमें वा शब्दका ग्रहण किया है। वह इस प्रकार है- तिर्यंच व मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंके द्वारा वेदना, कपाय और वैक्रियिक पदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा; तैजस और आहारक पदोंसे चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपका संख्यातवां भाग; तथा मारणान्तिक-समुद्घातसे छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं। यह वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है।

अथवा, असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ २२५ ॥

यह कथन प्रतरसमुद्घातगत केवलीका आश्रयकर किया है। दण्डसमुद्घातगत केवलियों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह प्रथम वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है। कपाटसमुद्घातगत केवलियोंके द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग या उससे संख्यातगुणा, तथा अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह द्वितीय वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है। इसी प्रकार सर्वत्र प्रतरसमुद्घातगत केवलियोंके स्पर्शनका निरूपण करनेवाले सूत्रोंमें स्थित दो वा शब्दोंका अर्थ करना चाहिये।

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २२६ ॥

एदं लोगपूरणमस्सिदूण भणिदं । वासद्दो उत्तसमुच्चयत्थो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २२७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २२८ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

छचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २२९ ॥

देव-णेरइएहि मणुस्सेसुप्पज्जमाणेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, एक्कारहरज्जुदीह-पणदालीसजोयणलक्खरुंदखेत्तस्स उवलंभादो । ण च एत्तियमेत्तं चेवेत्ति णियमो अत्थि, अण्णस्स वि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागमेत्तस्स उवलंभादो । एसो वासद्दत्थो । तिरिय-मणुस्सेहिंतो देवेसुप्पण्णेहि छचोद्दसभागा फोसिदा ।

यह सूत्र लोकपूरणसमुद्घातका आश्रय कर कहा गया है । वा शब्द पूर्वोक्त अर्थके समुच्चयके लिये है ।

उक्त सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ॥ २२७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २२८ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २२९ ॥

मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देव-नारकियोंके द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, यहां ग्यारह राजु दीर्घ और पैंतालीस लाख योजन विस्तीर्ण क्षेत्र पाया जाता है । और 'इतना मात्र ही क्षेत्र है' ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि, अन्य भी तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग पाया जाता है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । तिर्यंच और मनुष्योंमेंसे देवोंमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

खइयसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २३० ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २३१ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २३२ ॥

सत्थाणत्थेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो वासद्दत्थो। विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दस-भागा देसूणा फोसिदा ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २३३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २३४ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २३१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, उक्त जीवों द्वारा अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २३२ ॥

स्वस्थानमें स्थित क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । विहारवत्स्वस्थानसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

समुद्घात पदोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

समुद्घात पदोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २३४ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २३५ ॥

तेजाहारपदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो संखेज्जदिभागो[1] फोसिदो । तिरिक्ख-मणुस्सेहि वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियसमुग्घादेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्दत्थो । देवेहि पुण वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतियसमुग्घादेहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा ।

असंखेज्जा वा भागा वा ॥ २३६ ॥

एदं पदरगदकेवलिखेत्तं पडुच्च भणिदं, तत्थ वादवलयं मोत्तूण सेसासेसलोगगदजीवपदेसाणमुवलंभादो । दंडगदेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो पढमवासद्देण सूइदत्थो । कवाडगदेहि तिण्हं लोगाणम-

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २३५ ॥

तैजस और आहारक पदोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है । तिर्यंच व मनुष्य क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । परन्तु देव क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

अथवा, असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट हैं ॥ २३६ ॥

यह सूत्र प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रकी अपेक्षा कहा गया है, क्योंकि, प्रतरसमुद्घातमें वातवलयको छोड़कर शेष समस्त लोकमें व्याप्त जीवप्रदेश पाये जाते हैं । दण्डसमुद्घातगत केवलियोंके द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह प्रथम वा शब्दसे सूचित अर्थ है । कपाटसमुद्घातगत

१ प्रतिषु ' असंखेज्जदिभागो ' इति पाठः ।

संखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो तत्तो संखेज्जगुणो वा, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो बिदियवासद्दसमुच्चिदत्थो।

सव्वलोगो वा ॥ २३७ ॥

एदं लोगपूरणगदकेवलिं पडुच्च परूविदं। एत्थ वासद्दो उत्तसमुच्चयत्थो।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २३८ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २३९ ॥

एत्थ वट्टमाणपरूवणाए खेत्तभंगो। अदीदे तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो।

वेदगसम्मादिट्ठी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २४० ॥

केवलियोंके द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग या उससे संख्यातगुणा, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह द्वितीय वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है।

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २३७ ॥

यह सूत्र लोकपूरणसमुद्घातगत केवलीकी अपेक्षासे कहा गया है। यहां वा शब्द पूर्वोक्त अर्थके समुच्चयके लिये है।

उपपादकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २३८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपपादकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २३९ ॥

यहां वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। अतीत कालमें तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंमे कितना क्षेत्र स्पर्श करते है ? ॥ २४० ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४१ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २४२ ॥

सत्थाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्देण समुच्चिदत्थो । विहारवदिसत्थाण-वेयण-कसाय-वेउव्विय-मारणंतिएहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २४३ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४४ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं ॥ २४१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २४२ ॥

स्वस्थान पदसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदोंसे कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

उक्त वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा उपपाद पदसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २४४ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

छचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २४५ ॥

देव-णेरइएहिंतो आगंतूण वेदगसम्मादिट्ठिमणुस्सेसुप्पण्णेहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । णवरि देवेहि तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो फोसिदो । एसो वासद्दसमुच्चिदत्थो । तिरिक्ख-मणुस्सेहिंतो देवेसुप्पज्जमाणवेदगसम्माइट्ठीहि छचोद्दसभागा फोसिदा ।

उवसमसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥२४६॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २४७ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २४८ ॥

सत्थाणेहि तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो,

---

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २४५ ॥

देव-नारकियोंमेंसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुए वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । विशेष इतना है कि देवों द्वारा तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है । तिर्यंच और मनुष्योंमेंसे देवोंमें उत्पन्न होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २४७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ? ॥ २४८ ॥

स्वस्थान पदसे उक्त जीवों द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका

अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो। एसो वासद्दसमुच्चिदत्थो। विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा, उवसमसम्माइट्ठीणं देवाणमट्ठचोद्दसभागंतरे विहारं पडि विरोहाभावादो।

समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २४९ ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५० ॥

एत्थ अदीद-वट्टमाणकालेसु मारणंतिय-उववादपरिणएहि चदुण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो, माणुसखेत्तम्मि चेव मरंताणं उवसमसम्माइट्ठीणमुवलंभादो। वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादाणमुवसमसम्माइट्ठीणं देवाणमट्ठचोद्दसभागा किण्ण परूविदा ? ण, एवं परूविज्जमाणे सासणस्स मारणंतियसमुग्घादस्स वि अट्ठचोद्दसभागा होंति त्ति संदेहो मा होहदि त्ति तण्णिराकरणट्ठं ण परूविदा।

संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके आठ बटे चौदह भागोंके भीतर विहारमें कोई विरोध नहीं है।

उक्त उपशमसम्यग्दृष्टियों द्वारा समुद्घात व उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २४९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपशमसम्यग्दृष्टियों द्वारा उक्त पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २५० ॥

यहां अतीत व वर्तमान कालोंमें मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदोंसे परिणत उपशमसम्यग्दृष्टियों द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि, मानुषक्षेत्रमें ही मरणको प्राप्त होनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि पाये जाते हैं।

शंका—वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके आठ बटे चौदह भाग यहां क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा निरूपण करनेपर 'सासादनसम्यग्दृष्टिके मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षा भी आठ बटे चौदह भाग होते हैं' ऐसा संदेह न हो, इस प्रकार उसके निराकरणके लिये उक्त आठ बटे चौदह भागोंका निरूपण नहीं किया।

सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥२५१॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५२ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २५३ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्दसमुच्चिदत्थो । विहारवदिसत्थाण-परिणएहि अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २५४ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५५ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २५२ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २५३ ॥

स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे संगृहीत अर्थ है । विहारवत्स्वस्थान पदसे परिणत सासादनसम्यग्दृष्टियों द्वारा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥२५५॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठ-बारहचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २५६ ॥

वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादेहि अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा । मारणंतियसमुग्घादेहि बारहचोद्दसभागा फोसिदा, मेरुमूलादो हेट्ठोवरि पंच-सत्तरज्जुआयामेण मारणंतियस्सुवलंभादो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २५७ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५८ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

एक्कारहचोद्दसभागा देसूणा ॥ २५९ ॥

कुदो ? छट्ठिपुढविणेरइयाणं सासणगुणेण पंचिंदियतिरिक्खेसु उप्पज्जमाणाणं पंचचोद्दसभागा उववादेण लब्भंति, देवेहिंतो पंचिंदियतिरिक्खेसुप्पज्जमाणाणं छचोद्दस-

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ और बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २५६ ॥

वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंसे आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं। मारणान्तिकसमुद्घातसे बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, मेरुमूलसे नीचे पांच और ऊपर सात राजु आयामसे मारणान्तिकसमुद्घात पाया जाता है ।

उक्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपादकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवों द्वारा उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २५८ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २५९ ॥

क्योंकि, सासादनगुणस्थानके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले छठी पृथिवीके नारकियोंके पांच बटे चौदह भाग उपपादसे प्राप्त होते हैं, तथा देवोंसे

भागा लब्भंति, एदेसिं समासो एक्कारहचोद्दसभागा सासणोववादफोसणखेत्तं होदि त्ति। उवरि सत्त चोद्दसभागा किण्ण लद्धा ? ण, सासणाणमेइंदिएसु उववादाभावादो। मारणंतियमेइंदिएसु गदसासणा तत्थ किण्ण उप्पज्जंति ? ण, मिच्छत्तमागंतूण सासणगुणेण उप्पत्तिविरोहादो।

सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २६० ॥

सुगमं।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २६१ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २६२ ॥

तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके छह बटे चौदह भाग प्राप्त होते हैं, इन दोनोंके जोड़रूप ग्यारह बटे चौदह भागप्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपादकी अपेक्षा स्पर्शनक्षेत्र होता है।

शंका—ऊपर सात बटे चौदह भाग क्यों नहीं प्राप्त होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टियोंकी एकेन्द्रियोंमें उत्पत्ति नहीं है।

शंका—एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घातको प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उनमें उत्पन्न क्यों नहीं होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आयुके नष्ट होनेपर उक्त जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ जाते हैं, अतः मिथ्यात्वमें आकर सासादनगुणस्थानके साथ उत्पत्तिका विरोध है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २६० ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवों द्वारा स्वस्थान पदोंमे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २६१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २६२ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्दत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दस-भागा वा फोसिदा । सेसं सुगमं ।

समुग्घाद-उववादं णत्थि ॥ २६३ ॥

कुदो ? सम्मामिच्छत्तगुणेण मरणाभावादो । वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादाण-मेत्थ परूवणं किण्ण कदं ? ण, तेसिं पहाणत्ताभावादो ।

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो ॥ २६४ ॥

सुगममेदं ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २६५ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २६६ ॥

स्वस्थान पदसे तीन लोकोंका असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवां भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । तथा विहारवत्स्वस्थानसे आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके समुद्‌घात और उपपाद पद नहीं होते हैं ॥ २६३ ॥

क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके साथ मरणका अभाव है ।

शंका — वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्‌घातोंकी यहां प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि उनकी प्रधानता नहीं है ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंके स्पर्शनका निरूपण असंयत जीवोंके समान है ॥ २६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है ॥ २६६ ॥

सुगमं, वट्टमाणविवक्खादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा ॥ २६७ ॥

सत्थाणेण तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागो, तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो, अड्डाइज्जादो असंखेज्जगुणो फोसिदो । एसो वासद्दत्थो । विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दस-भागा फोसिदा ।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २६८ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो[1] ॥ २६९ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ॥ २७० ॥

वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादेहि अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा, देवाणं विहरंताणं तिण्हमेदेसिमुवलंभादो ।

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं ॥ २६७ ॥

स्वस्थान पदसे संज्ञी जीवोंने तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढ़ाईद्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थानसे आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है ।

समुद्घातोंकी अपेक्षा संज्ञी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी जीवों द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥२६९॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं ॥ २७० ॥

वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंकी अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि, विहार करते हुए देवोंके ये तीनों समुद्घात पाये जाते हैं ।

१ अप्रतौ ' लोगस्स संखेज्जदिभागो ', काप्रतौ ' लोगसंखेज्जदिभागो ' इति पाठः ।

सव्वलोगो वा ॥ २७१ ॥

मारणंतियसमुग्घादं पडुच्च एसो णिद्देसो। तसकाइएसु सण्णीसु मुक्कमारणंतिय-सण्णी जीवे पडुच्च बारहचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा । एसो वासद्दत्थो ।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २७२ ॥

सुगमं ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २७३ ॥

सुगमं, वट्टमाणप्पणादो ।

सव्वलोगो वा ॥ २७४ ॥

सण्णीसुप्पण्णअसण्णीणं सव्वलोगोवलंभादो । सण्णीणं सण्णीसुप्पज्जमाणाणं बारहचोद्दसभागा होंति । सम्माइट्ठीणं छचोद्दसभागा। एसो वासद्दत्थो । एवमण्णत्थ वि अउत्तट्ठाणे वासद्दाणमत्थो वत्तव्वो ।

अथवा, सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २७१ ॥

यह कथन (असंज्ञी जीवोंमें किये गये) मारणान्तिकसमुद्घातकी अपेक्षासे है । त्रसकायिक संज्ञी जीवोंमें मारणान्तिक समुद्घातको करनेवाले संज्ञी जीवोंकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है ।

उपपादकी अपेक्षा संज्ञी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? ॥ २७२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपपादकी अपेक्षा संज्ञी जीवों द्वारा लोकका असंख्यातवां भाग स्पृष्ट है ॥ २७३ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, वर्तमान कालकी विवक्षा है ।

अथवा, अतीत कालकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है ॥ २७४ ॥

क्योंकि, संज्ञियोंमें उत्पन्न हुए असंज्ञी जीवोंके सर्व लोक क्षेत्र पाया जाता है । किन्तु संज्ञियोंमें उत्पन्न होनेवाले संज्ञी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र बारह बटे चौदह भाग है । सम्यग्दृष्टि संज्ञियोंका उपपादक्षेत्र छह बटे चौदह भागप्रमाण है । यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है । इसी प्रकार अन्यत्र भी अनुक्त स्थानमें वा शब्दोंका अर्थ कहना चाहिये ।

असण्णी मिच्छाइट्ठिभंगो ॥ २७५ ॥

सुगमं ।

आहाराणुवादेण आहारा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २७६ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो ॥ २७७ ॥

एदं देसामासियसुत्तं । तेण विहारवदिसत्थाणेण अट्ठचोद्दसभागा फोसिदा । वेउव्विएण तिण्हं लोगाणं संखेज्जदिभागो फोसिदो । सेसं सुगमं ।

अणाहारा केवडियं खेत्तं फोसिदं ? ॥ २७८ ॥

सुगमं ।

सव्वलोगो वा ॥ २७९ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं फोसणाणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

असंज्ञी जीवोंका स्पर्शनक्षेत्र मिथ्यादृष्टियोंके समान है ॥ २७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारमार्गणानुसार आहारक जीवोंने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २७६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक जीवोंने उक्त पदोंसे सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ २७७ ॥

यह देशामर्शक सूत्र है । अत एव (इसके द्वारा सूचित अर्थ—) विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा आहारक जीवोंने आठ बटे चौदह भागोंका स्पर्श किया है । वैक्रियिकसमुद्घातसे तीन लोकोंके संख्यातवें भागका स्पर्श किया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

अनाहारक जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ॥ २७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनाहारक जीवोंने सर्व लोक स्पर्श किया है ॥ २७९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

णाणाजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १ ॥

णाणाजीवग्गहणमेगजीवपडिसेहट्ठं । कालाणुगमग्गहणं सेसाणिओगद्दारपडिसेहट्ठं । गदिग्गहणं सेसमग्गणापडिसेहफलं । णिरयगइणिद्देसो सेसगइपडिसेहफलो । णेरइयणिद्देसो तत्थट्ठियपुढविकाइयादिपडिसेहफलो । केवचिरं कालादो होंति त्ति एदस्सत्थो— णिरयगदीए णेरइया किमणादि-अपज्जवसिदा, किमणादि-सपज्जवसिदा, किं सादि-अपज्जवसिदा, किं सादि-सपज्जवसिदा त्ति सिस्सस्स आसंकुद्दीवणमेदेण कयं । अधवा णासंकियसुत्तमिदं, किंतु पुच्छासुत्तमिदि वत्तव्वं । एसो अत्थो सव्वसंकासुत्तेसु जोजेयव्वो ।

सव्वद्धा ॥ २ ॥

अणादि-अपज्जवसिदा होंति, सेसतिसु वियप्पेसु णत्थि । कुदो ? सहावदो

नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १ ॥

एक जीवके प्रतिषेधार्थ सूत्रमें 'नाना जीव' का ग्रहण किया है । 'कालानुगम' का ग्रहण शेष अनुयोगद्वारोंके निषेधार्थ है । 'गति' ग्रहणका फल शेष मार्गणाओंका प्रतिषेध करना है । 'नरकगति' का निर्देश शेष गतियोंका प्रतिषेधक है । 'नारकी' पदके निर्देशका फल नरकोंमें स्थित पृथिवीकायिकादि जीवोंका प्रतिषेध करना है । 'कितने काल तक रहते हैं' इसका अर्थ इस प्रकार है— 'नरकगतिमें नारकी जीव क्या अनादि-अपर्यवसित हैं, क्या अनादि-सपर्यवसित हैं, क्या सादि-अपर्यवसित हैं, और क्या सादि-सपर्यवसित हैं' इस प्रकार इस सूत्र द्वारा शिष्यकी आशंकाका उद्दीपन किया है । अथवा यह आशंका-सूत्र नहीं है, किन्तु पृच्छासूत्र है, ऐसा कहना चाहिये । यह अर्थ सर्व शंकासूत्रोंमें जोड़ना चाहिये ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकी जीव सर्व काल रहते हैं ॥ २ ॥

नारकी जीव अनादि-अपर्यवसित हैं, शेष तीन विकल्पोंमें नहीं हैं; क्योंकि,

चेव। ण च सव्वं सहेउअं चेवेत्ति णियमो अत्थि, एयंतवादप्पसंगादो। तम्हा 'ण अण्णहावाइणो जिणा' इदि एदं सद्दहेयव्वं।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥ ३ ॥

जहा णेरइयाणं सामण्णेण अणादिओ अपज्जवसिदो संताणकालो वुत्तो तधा सत्तसु पुढवीसु णेरइयाणं पि। पादेक्कं संताणस्स वोच्छेदो ण होदि त्ति वुत्तं होदि।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता[1] मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४ ॥

एदे सुत्तम्मि वुत्तजीवा संताणं पडुच्च किमणादि-अपज्जवसिदा, किमणादि-सपज्जवसिदा, किं सादि-अपज्जवसिदा, किं सादि-सपज्जवसिदा; सादि-सपज्जवसिदा वि संता तत्थ किमेगसमयावट्ठाइणो किं दुसमया किं तिसमया, एवमावलिय-खण-लव-मुहुत्त-

---

ऐसा स्वभावसे ही है। और सब सहेतुक ही हों ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेमें एकान्तवादका प्रसंग आता है। इस कारण 'जिनदेव अन्यथावादी नहीं है' इस प्रकार इसका श्रद्धान करना चाहिये।

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं ॥ ३ ॥

जिस प्रकार नारकियोंका सामान्यसे अनादि-अपर्यवसित सन्तानकाल कहा है, उसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें ही नारकियोंका सन्तानकाल अनादि-अपर्यवसित है। प्रत्येक सन्तानका व्युच्छेद नहीं होता, ऐसा इस सूत्रका अभिप्राय है।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती व पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त; तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४ ॥

ये सूत्रमें कहे हुए जीव सन्तानकी अपेक्षा 'क्या अनादि-अपर्यवसित हैं, क्या अनादि-सपर्यवसित हैं, क्या सादि-अपर्यवसित हैं, क्या सादि-सपर्यवसित हैं, और क्या सादि-सपर्यवसित भी होकर उसमें क्या एक समय अवस्थायी हैं, क्या दो समय अवस्थायी हैं, क्या तीन समय अवस्थायी हैं— इस प्रकार आवली, क्षण, लव, मुहूर्त,

---

१ प्रतिषु '-अपज्जत्ताण' इति पाठः।

दिवस-पक्ख-मास-उदु-अयण-संवच्छर-पुव्व-पव्व-पल्ल-सागरुस्सप्पिणि-कप्पादिकाला-वट्ठाइणो त्ति आसंकिय तस्स उत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वद्धा ॥ ५ ॥

सव्वा अद्धा कालो जेसिं ते सव्वद्धा, संताणं पडि तत्थ सव्वकालावट्ठाइणो त्ति वुत्तं होदि ।

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ६ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ७ ॥

कुदो ? अणप्पिदगदीदो आगंतूण मणुसअपज्जत्तेसुप्पज्जिय अंतरं विणासिय खुद्दाभवग्गहणमच्छिय[1] णिस्सेसमणप्पिदगदिं गदाणं खुद्दाभवग्गहणमेत्तजहण्णकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८ ॥

दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, पूर्व, पर्व, पल्य, सागर, उत्सर्पिणी एवं कल्पादि काल तक अवस्थायी हैं' इस प्रकार आशंका करके उसका उत्तरसूत्र कहते हैं—

उपर्युक्त जीव सन्तानकी अपेक्षा सर्व काल रहते हैं ॥ ५ ॥

'सर्व है अद्धा अर्थात् काल जिनका' इस बहुव्रीहि समासके अनुसार 'सर्वाद्धा' पदका अर्थ 'सर्व काल रहनेवाले' होता है, अर्थात् संतानकी अपेक्षा वहां उपर्युक्त जीव सर्व काल स्थित रहनेवाले हैं, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

मनुष्य अपर्याप्त जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्य अपर्याप्त जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं ॥ ७ ॥

क्योंकि, अविवक्षित गतिसे आकर मनुष्य अपर्याप्तोंमें उत्पन्न होकर व अन्तरको नष्ट कर क्षुद्रभवग्रहणकाल तक रहकर निःशेष रूपसे अविवक्षित गतिमें गये हुए उक्त जीवोंका क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य काल पाया जाता है ।

वे ही मनुष्य अपर्याप्त जीव उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल-तक रहते हैं ॥ ८ ॥

१ प्रतिषु '-मस्सिय' इति पाठः ।

तं जहा— मणुसअपज्जत्तएसु अंतरिय ट्ठिदेसु अणप्पिदगदीदो थोवा जीवा मणुसअपज्जत्तएसु आगंतूण उप्पण्णा। णट्ठमंतरं। तेसिं जीवाणं जीविददुचरिमसमओ त्ति पुणो वि उप्पत्तिं पडुच्च अंतरं करिय पुणो अण्णे उप्पाएयव्वा। तत्थ वि उप्पत्तिं पडुच्च अप्पिदजीवाणं जीविददुचरिमसमयो त्ति अंतरं करिय पुणो अण्णे उप्पाएयव्वा। तत्थ वि उप्पत्तिं पडुच्च अप्पिदजीवाणं जीविददुचरिमसमओ त्ति अंतरं करिय अण्णे उप्पाएयव्वा। अणेण पयारेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवारेसु गदेसु तदो णियमा अंतरं होदि। एदम्हि काले आणिज्जमाणे एक्किस्से वारसलागाए जदि संखेज्जावलियमेत्तो कालो लब्भदि, तो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसलागासु किं लभामो त्ति फलेण इच्छं गुणिय पमाणेणोवट्टिदे मणुसअपज्जत्ताणं संताणस्स कालो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो जादो। केइमाइरिया एगमाउट्ठिदिं ठविय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तणिरंतरुवक्कमणकालेण गुणिय पमाणेणोवट्टेंति। तेसिमेसो कालो णागच्छदि।

देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ९ ॥

सुगमं।

इसीको स्पष्ट करते हैं— मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंके अन्तरित होकर स्थित होनेपर अविवक्षित गतियोंसे स्तोक जीव मनुष्य अपर्याप्तोंमें आकर उत्पन्न हुए। इस प्रकार अन्तर नष्ट हुआ। उन जीवोंके जीवितके द्विचरम समय तक फिर भी उत्पत्तिकी अपेक्षा अन्तर करके पुनः अन्य जीवोंको मनुष्य अपर्याप्तोंमें उत्पन्न कराना चाहिये। उनमें भी उत्पत्तिकी अपेक्षा विवक्षित जीवोंके जीवितके द्विचरम समय तक अन्तर करके पुनः अन्य जीवोंको उत्पन्न कराना चाहिये। उनमें भी उत्पत्तिकी अपेक्षा विवक्षित जीवोंके जीवितके द्विचरम समय तक अन्तर करके अन्य जीवोंको उत्पन्न कराना चाहिये। इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वारोंके वीत जानेपर तत्पश्चात् नियमसे अन्तर होता है। इस कालके निकालते समय ' यदि एक वार शलाकामें संख्यात आवलीमात्र काल लब्ध होता है, तो पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वार-शलाकाओंमें कितना काल लब्ध होगा? ' इस प्रकार फलराशिसे इच्छाराशिको गुणित कर प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर मनुष्य अपर्याप्तोंकी सन्तानका काल पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होता है। कितने ही आचार्य एक आयुस्थितिको स्थापित कर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र निरंतर उपक्रमणकालसे गुणित करके प्रमाणसे अपवर्तित करते हैं। उनके उपर्युक्त विधानसे यह काल नहीं आता।

देवगतिमें देव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

सव्वद्धा ॥ १० ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा ॥ ११ ॥

सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १२ ॥

णत्थि एत्थ किं पि वत्तव्वं, सुगमत्तादो ।

सव्वद्धा ॥ १३ ॥

एदं पि सुगमं ।

देवगतिमें देव सर्व काल रहते हैं ॥ १० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इसी प्रकार भवनवासी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों तक सब देव सर्व काल रहते हैं ॥ ११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त; बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त; सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव कितने काल तक रहते हैं? ॥ १२ ॥

यहां कुछ भी कहनेके लिये नहीं है, क्योंकि इसका अर्थ सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ १३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्ता तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १४ ॥

एत्थ वि णत्थि वत्तव्वं, सुगमत्तादो ।

सव्वद्धा ॥ १५ ॥

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्त, पृथिवीकायिक अपर्याप्त; बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त; अप्कायिक, अप्कायिक पर्याप्त, अप्कायिक अपर्याप्त; बादर अप्कायिक, बादर अप्कायिक पर्याप्त, बादर अप्कायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त; तेजस्कायिक, तेजस्कायिक पर्याप्त, तेजस्कायिक अपर्याप्त; बादर तेजस्कायिक, बादर तेजस्कायिक पर्याप्त, बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त; वायुकायिक, वायुकायिक पर्याप्त, वायुकायिक अपर्याप्त; बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त; वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वनस्पतिकायिक अपर्याप्त; बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त; निगोद जीव, निगोद जीव पर्याप्त, निगोद जीव अपर्याप्त; बादर निगोद जीव, बादर निगोद जीव पर्याप्त, बादर निगोद जीव अपर्याप्त; सूक्ष्म निगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त; बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त; त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १४ ॥

यहां भी कुछ कहने योग्य नहीं है, क्योंकि, यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ १५ ॥

सुगमं ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १६ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ १७ ॥

मणजोगि-वचिजोगीणमद्धा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । मणुसअपज्जत्ताणं पुण जहण्णओ उक्कस्सओ वि अंतोमुहुत्तमेत्तो चेव । जदि एवंविहमणुसअपज्जत्ताणं संताणो सांतरो होज्ज तो मण-वचिजोगीणं संताणो सांतरो किण्ण हवे, विसेसाभावादो । ण दव्वपमाणकओ विसेसो, देवाणं संखेज्जभागमेत्तदव्वुवलक्खियवेउव्वियमिस्सकायजोगिसंताणस्स वि सव्वद्धप्पसंगादो । एत्थ परिहारो वुच्चदे । तं जहा— ण दव्वबहुत्तं संताणाविच्छेदस्स कारणं, संखेज्जमणुसपज्जत्ताणं संताणस्स वि

यह सूत्र सुगम है ।

योगमार्गणाके अनुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कार्मणकाययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ १७ ॥

शंका— मनोयोगी और वचनयोगियोंका काल जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है । परन्तु मनुष्य अपर्याप्तोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है । यदि इस प्रकारके मनुष्य अपर्याप्तोंकी सन्तान सान्तर है, तो मनोयोगी और वचनयोगियोंकी सन्तान सान्तर क्यों नहीं होगी, क्योंकि, उनमें कोई विशेषता नहीं है । यदि द्रव्यप्रमाणकृत विशेषता मानी जाय तो वह भी नहीं बनती, क्योंकि, देवोंके संख्यातवें भागमात्र द्रव्यसे उपलक्षित वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंकी सन्तानके भी सर्व काल रहनेका प्रसंग होगा ?

समाधान— यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है— द्रव्यकी अधिकता सन्तानके अविच्छेदका कारण नहीं है, क्योंकि, ऐसा होनेपर

वोच्छेदप्पसंगादो। ण सगद्धाथोवत्तं संताणवोच्छेदस्स कारणं, वेउव्वियमिस्सद्धादो संखेज्ज-गुणहीणद्धुवलक्खियमणजोगिसंताणस्स वि सांतरत्तप्पसंगादो । किंतु जस्स गुणट्ठाणस्स मग्गणट्ठाणस्स वा एगजीवावट्ठाणकालादो पवेसंतरकालो बहुगो होदि तस्संताणय-वोच्छेदो । जस्स पुण कयावि ण बहुओ तस्स ण संताणस्स वोच्छेदो त्ति घेत्तव्वं । मणजोगि-वचिजोगीणं पुण एगसमयो सुट्ठु पविरलो त्ति एत्थ जहण्णकालत्तणेण ण गहिदो ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ १८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९ ॥

कुदो ? ओरालियकायजोगट्ठिदतिरिक्ख-मणुस्साणं बे विग्गहे कादूण देवेसुप्पज्जिय सव्वजहण्णेण कालेण पज्जत्तीओ समाणिय अंतोमुहुत्तमेत्तजहण्णकालुवलंभादो ।

संख्यात मनुष्य पर्याप्त जीवोंकी सन्तानके भी व्युच्छेदका प्रसंग होगा। अपने कालकी अल्पता भी सन्तानव्युच्छेदका कारण नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर वैक्रियिक-मिश्रकालसे संख्यातगुणे हीन कालसे उपलक्षित मनोयोगिसन्तानके भी सान्तरताका प्रसंग आवेगा। किन्तु जिस गुणस्थान अथवा मार्गणास्थानके एक जीवके अवस्थान-कालसे प्रवेशान्तरकाल बहुत होता है उसकी सन्तानका व्युच्छेद होता है। जिसका वह काल कदापि बहुत नहीं है उसकी सन्तानका व्युच्छेद नहीं होता, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। परन्तु मनोयोगी व वचनयोगियोंका एक समय बहुत ही कम पाया जाता है, इस कारण यहां जघन्य कालरूपसे वह नहीं ग्रहण किया गया।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ १८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९ ॥

क्योंकि, औदारिककाययोगमें स्थित तिर्यंच और मनुष्योंका दो विग्रह करके देवोंमें उत्पन्न होकर और सर्व जघन्य कालसे पर्याप्तियोंको पूर्ण कर बहुत ही कम पाया जाना अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य काल पाया जाता है।

१ अप्रतौ '-हीणव्वुचलक्खिय ', आ काप्रत्योः '-हीणद्धुवलक्खिय ' इति पाठः ।

२ प्रतिषु ' एगसमया सुट्ठु पविरदो ' इति पाठः ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २० ॥

मणुसअपज्जत्ताणं जधा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो संताणकालो परूविदो तधा एत्थ वि परूवेदव्वो ।

आहारकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २१ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ २२ ॥

कुदो ? मणजोग-वचिजोगेहिंतो आहारकायजोगं गंतूण बिदियसमए कालं करिय जोगंतरं गयस्स एगसमयकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३ ॥

एत्थ आहारकायजोगीणं दुचरिमसमओ जाव आहारकायजोगप्पवेसस्स अंतरं करिय पुणो उवरिमसमए अण्णे जीवे पवेसियव्वा[1] । एवं संखेज्जवारसलागासु उप्पण्णासु तदो णियमा अंतरं होदि । एवं संखेज्जंतोमुहुत्तसमासो वि अंतोमुहुत्तमेत्तो चेव ।

वही काल उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ २० ॥

जिस प्रकार मनुष्य अपर्याप्तोंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सन्तान-कालका निरूपण किया जा चुका है, उसी प्रकार यहांपर भी निरूपण करना चाहिये ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव जघन्यसे एक समय तक रहते हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, मनोयोग और वचनयोगसे आहारककाययोगको प्राप्त होकर व द्वितीय समयमें मरण कर योगान्तरको प्राप्त होनेपर एक समय काल पाया जाता है ।

आहारककाययोगी जीव उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं ॥ २३ ॥

यहां आहारक काययोगियोंके द्विचरम समय तक आहारककाययोगमें प्रवेशका अन्तर करके पुनः उपरिम समयमें अन्य जीवोंका प्रवेश कराना चाहिये । इस प्रकार संख्यात बार-शलाकाओंके उत्पन्न होनेपर तत्पश्चात् नियमसे अन्तर होता है । इस प्रकार संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका जोड़ भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ।

---

१ प्रतिषु ' पवेसिय ' इति पाठः ।

कधं णव्वदे ? उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो त्ति सुत्तवयणादो ।

आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५ ॥

कुदो ? आहारमिस्सकायजोगचरस्स[1] आहारमिस्सकायजोगं गंतूण सुट्ठु जहण्णेण कालेण पज्जत्तीओ समाणिदस्स जहण्णकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

एत्थ वि पुव्वं व संखेज्जंतोमुहुत्ताणं संकलणा कायव्वा ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २७ ॥

सुगमं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि उन संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका जोड़ भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है ?

समाधान—'उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है' इस सूत्रवचनसे जाना जाता है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं ॥ २५ ॥

क्योंकि, आहारकमिश्रकाययोगमें जानेवाले जीवके आहारकमिश्रकाययोगको प्राप्त होकर अतिशय जघन्य कालसे पर्याप्तियोंको पूर्ण करलेनेपर (सूत्रोक्त) जघन्य काल पाया जाता है ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं ॥ २६ ॥

यहांपर भी पूर्वके समान संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका संकलन करना चाहिये ।

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ आप्रतौ '-जोगिचरस्स' इति पाठः ।

सव्वद्धा ॥ २८ ॥

एदं पि सुगमं ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई केवचिरं कालादो होंति ? ॥ २९ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ३० ॥

एदं पि सुगमं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३१ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ३२ ॥

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ २८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ २९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ३० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिक-ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ३२ ॥

णत्थि एत्थ वत्तव्वं, सुगमत्तादो ।

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३३ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ३४ ॥

एदं पि सुगमं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ ३६ ॥

कुदो ? उवसंतकसायस्स अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठस्स वा सुहुमसांपराइयगुणट्ठाणं पडिवण्णबिदियसमए कालं करिय देवेसुववण्णस्स एगसमयस्सुवलंभादो ।

यहां कुछ व्याख्यानके योग्य नहीं है, क्योंकि, यह सूत्र सुगम है ।

संयममार्गणाके अनुसार संयत, सामायिकछेदोपस्थापनशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ३४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव जघन्यसे एक समय रहते हैं ॥ ३६ ॥

क्योंकि, उपशान्तकषाय वा अनिवृत्तिबादरसाम्परायप्रविष्ट जीवोंके सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें मरण कर देवोंमें उत्पन्न होनेपर एक समय जघन्य काल पाया जाता है ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३७ ॥

एत्थ संखेज्जंतोमुहुत्तसमासमुब्भूदो अंतोमुहुत्तकालो परूवेदव्वो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवल-दंसणी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ३८ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ३९ ॥

एदं पि सुगमं ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउ-लेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥४०॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ४१ ॥

एदं पि सुगमं ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं ॥ ३७ ॥

यहां संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंके संकलनसे उत्पन्न हुए अन्तर्मुहूर्त कालकी प्ररूपणा करना चाहिये ।

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवल-दर्शनी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ३९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥४०॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४२ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी मिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४४ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ४५ ॥

एदं पि सुगमं ।

उवसमसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ४६ ॥

सुगमं ।

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४४ ॥

यह सूत्र सगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व काल रहते हैं ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥४६॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४७ ॥

कुदो ? दिट्ठमग्गाणं सम्मामिच्छत्तुवसमसम्मत्ताणि पडिवज्जिय सव्वजहण्ण-कालं तसु अच्छिय गुणंतरगदाणं सुट्ठु जहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४८ ॥

एत्थ एदम्हि काले आणिज्जमाणे अप्पिदगुणट्ठाणकालमेत्तम्हि एगपवेसणकाल-सलागं करिय एरिसासु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसलागासुप्पण्णासु तदो णियमा अंतरं होदि । एत्थ सव्वकालसलागाहि गुणकाले गुणिदे उक्कस्सकालो होदि ।

सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४९ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ ५० ॥

कुदो ? उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमयावसेसाए सासणं गंतूण एगसमयमच्छिय

उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्व और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर तथा सर्व जघन्य काल तक इन गुणस्थानोंमें रहकर अन्य गुणस्थानको प्राप्त होनेपर अतिशय जघन्य अन्तर्मुहूर्तमात्र काल पाया जाता है ।

उपर्युक्त जीव उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक रहते हैं ॥ ४८ ॥

यहां इस कालके निकालते समय विवक्षित गुणस्थानके कालप्रमाण एक प्रवेशनकालको शलाका करके पुनः ऐसी पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र शलाकाओंके उत्पन्न होनेपर तत्पश्चात् नियमसे अन्तर होता है । यहां सब कालशलाकाओंसे गुणस्थानकालको गुणित करनेपर उत्कृष्ट काल होता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव जघन्यसे एक समय रहते हैं ॥ ५० ॥

क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वकालमें एक समय शेष रहनेपर सासादनगुणस्थानको

बिदियसमए मिच्छत्तं गदस्स एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ५१ ॥

सुगममेदं, सम्मामिच्छत्तकालसमासविहाणेण एदस्स कालस्स समुप्पत्तीदो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५२ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ५३ ॥

सुगमं ।

आहारा अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५४ ॥

सुगमं ।

सव्वद्धा ॥ ५५ ॥

सुगमं ।

एवं णाणाजीवेण कालाणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

प्राप्त होकर और एक समय रहकर द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर एक समय जघन्य काल देखा जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक रहते हैं ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वकालके संकलनका जो विधान कहा जा चुका है उसीसे इस कालकी भी उत्पत्ति होती है ।

संज्ञिमार्गणाके अनुसार संज्ञी और असंज्ञी जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ५२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी और असंज्ञी जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक व अनाहारक जीव कितने काल तक रहते हैं ? ॥ ५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक व अनाहारक जीव सर्व काल रहते हैं ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ

णाणाजीवेहि अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १ ॥

णाणाजीवणिद्देसो एगजीवपडिसेहफलो । अंतरणिद्देसो सेसाणिओगद्दारपडिसेहफलो । णेरइयणिद्देसो तत्थट्ठियपुढविकाइयादिपडिसेहफलो । केवचिरं-णिद्देसो समयावलिय-खण-लव-मुहुत्तादिफलो । अवसेसं सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ २ ॥

कुदो ? सव्वद्धासु अवट्ठाणादो । णाणाजीवेहि कालणिरूवणाए चेव एदेसिमंतरमत्थि एदेसिं च णत्थि त्ति णव्वदे । तदो अंतरपरूवणा ण कादव्वे त्ति । एत्थ परिहारो वुच्चदे । तं जहा— कालाणिओगद्दारे जेसिमंतरमत्थि त्ति अवगदं तेसिमंतराणं पमाणपरूवणट्ठमिदमणिओगद्दारमागदं । जदि एवं तो सांतररासीणमेव परूवणा कीरउ अंतर-

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १ ॥

'नाना जीवोंकी अपेक्षा' यह निर्देश एक जीवकी अपेक्षाके प्रतिषेधके लिये है। 'अन्तर' निर्देशका फल शेष अनुयोगद्वारोंका प्रतिषेध है। 'नारकी जीवों' का निर्देश वहांपर स्थित पृथिवीकायिकादि जीवोंका प्रतिषेधक है। 'कितने काल' यह निर्देश समय, आवली, क्षण, लव व मुहूर्तादि रूप कालविशेषोंका सूचक है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

नारकी जीवोंका अन्तर नहीं होता ॥ २ ॥

क्योंकि, उनका सर्व कालोंमें अवस्थान है।

शंका—नाना जीवोंकी अपेक्षा की गई कालप्ररूपणासे ही 'इनका अन्तर है और इनका नहीं है' यह बात जानी जाती है। अत एव फिर अन्तरप्ररूपणा नहीं करना चाहिये ?

समाधान—यहां परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है— कालानुयोगद्वारमें जिन जीवोंका 'अन्तर है' ऐसा ज्ञात हुआ है, उनके अन्तरोंके प्रमाणप्ररूपणार्थ यह अनुयोगद्वार आता है।

शंका—यदि ऐसा है तो अन्तरविशिष्ट सान्तरराशियोंकी ही प्ररूपणा करना

विसिट्ठाणं, ण सव्वद्धरासीणमिदि ? तो क्खहि एवं घेत्तव्वं दव्वट्ठियणयसिस्साणुग्गहट्ठं कालाणिओगद्दारं भणिय संपहि पज्जवट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठमतराणिओगद्दारपरूवणा आगदा त्ति ।

णिरंतरं ॥ ३ ॥

निर्गतमंतरमस्माद्राशेरिति णिरंतरं । तं जेण सिद्धं तेण एसो पज्जुदासपडिसेहो, एसो रासी अंतरादो पुधभूदो वदिरित्तो त्ति वुत्तं होदि । जदि एवं तो पुणरुत्तदोसो पावदे, पुव्वसुत्तप्पसिद्धत्थपरूवणादो । ण एस दोसो, पुव्विल्लसुत्तं जेण अभावपहाणं तेण पसज्जपडिसेहपडिबद्धं । तदो तेण अभावं पत्त विहीए परूवणट्ठमेदस्स अवयारादो ।

एवं सत्तसु पढवीसु णेरइया ॥ ४ ॥

चाहिये, सब काल रहनेवाली राशियोंकी नहीं ?

समाधान—तो फिर इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ कालानुयोगद्वारको कहकर इस समय पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ अन्तरानुयोगद्वारप्ररूपणा प्राप्त होती है ।

नारकी जीव निरन्तर हैं ॥ ३ ॥

इस राशिका अन्तर नहीं है, इसलिये यह निरन्तर है । (यह 'निरन्तर' शब्दका निरुक्त्यर्थ है)। चूंकि वह राशि सिद्ध है, इसीलिये यह पर्युदासप्रतिषेध है । यह नारकराशि अन्तरसे पृथग्भूत वा व्यतिरिक्त है, यह उपर्युक्त कथनका अभिप्राय है ।

शंका—यदि ऐसा है तो पुनरुक्तदोष प्राप्त होता है, क्योंकि, इस सूत्र द्वारा पूर्व सूत्रसे प्रसिद्ध अर्थका प्रतिपादन किया गया है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि पूर्व सूत्र अभावप्रधान है, इसलिये वह प्रसज्यप्रतिषेधसे सम्बद्ध है । इस कारण उससे अभावको प्राप्त राशिकी विधिके निरूपणार्थ इस सूत्रका अवतार हुआ है ।

विशेषार्थ—अभाव दो प्रकारका होता है, पर्युदास और प्रसज्य । पर्युदासके द्वारा एक वस्तुके अभावमें दूसरी वस्तुका सद्भाव ग्रहण किया जाता है । और प्रसज्यके द्वारा केवल अभावमात्र समझा जाता है । चूंकि प्रस्तुत प्रसंगमें अन्तरके अभावमें नारक राशिका अस्तित्व विवक्षित है इसलिये यहां पर्युदास पक्ष ग्रहण करना चाहिये ।

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें नारकी जीव अन्तरसे रहित या निरन्तर हैं ॥ ४ ॥

कुदो ? अंतराभावं पडि विसेसाभावादो[1] ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीणमंतरं केवचिरं कालादो होंति ? ॥ ५ ॥

दोण्णं गईणमेगवारेण णिद्देसो किमट्ठं कओ ? देव-णेरइयाणं व एदेसिं पुधखेत्तावासो णत्थि त्ति जाणावणट्ठं । सेसं सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ६ ॥

एसो पसज्जपडिसेहो, विहीए पहाणत्ताभावादो ।

णिरंतरं ॥ ७ ॥

एसो पज्जुदासपडिसेहो, पडिसेहस्स पहाणत्ताभावादो ।

क्योंकि, अन्तराभावके प्रति सातों पृथिवियोंके नारकियोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यनियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५ ॥

शंका—दोनों गतियोंका निर्देश एक बार किसलिये किया ?

समाधान—देव और नारकियोंके समान इनका पृथक् क्षेत्रमें निवास नहीं है, इस बातके ज्ञापनार्थ दोनों गतियोंका एक वार निर्देश किया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता ॥ ६ ॥

यह प्रसज्यप्रतिषेध है, क्योंकि, यहां विधिकी प्रधानताका अभाव है ।

वे जीव निरन्तर हैं ॥ ७ ॥

यह पर्युदास प्रतिषेध है, क्योंकि, यहां प्रतिषेधकी प्रधानता नहीं है ।

---

१ प्रतिषु ' पडि सेसाभावादो ' इति पाठः ।

मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमओ[1] ॥ ९ ॥

सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेसु[2] मणुसअपज्जत्तएसु कालं काऊण अण्णगइं गएसु एगसमयमंतरं होऊण बिदियसमए अण्णेसु तत्थुप्पण्णेसु लद्धमेगसमयमंतरं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १० ॥

कुदो ? मणुसअपज्जत्तएसु कालं काऊण अण्णगइं गएसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकाले अइक्कंते पुणो णियमेण मणुसअपज्जत्तएसु उप्पज्जमाणजीवाणमुवलंभादो ।

देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ११ ॥

सुगमं ।

मनुष्य अपर्याप्तोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्य अपर्याप्तोंका अन्तर जघन्यसे एक समय है ॥ ९ ॥

जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र मनुष्य अपर्याप्तोंके मरकर अन्य गतिको प्राप्त होनेपर एक समय अन्तर होकर द्वितीय समयमें अन्य जीवोंके मनुष्य अपर्याप्तोंमें उत्पन्न होनेपर एक समय अन्तर प्राप्त होता है ।

मनुष्य अपर्याप्तोंका अन्तर उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल होता है ॥ १० ॥

क्योंकि, मनुष्य अपर्याप्तोंके मरकर अन्य गतिको प्राप्त होनेके पश्चात् पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालके बीत जानेपर पुनः नियमसे मनुष्य अपर्याप्तोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव पाये जाते हैं ।

देवगतिमें देवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ उवसम-सुहुमाहारे वेगुव्वियमिस्स-णरअपज्जत्ते । सासणसम्मे मिस्से सांतरगा मग्गणा अट्ठ ॥ सत्त दिणा छम्मासा वासपुधत्तं च बारसमुहुत्ता । पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमयो दु ॥ गो. जी. १४२-१४३.

२ प्रतिषु ' सेडीपुधत्तसंखेज्जदिभागमेत्तेसु ' इति पाठः ।

णत्थि अंतरं ॥ १२ ॥

एदं पि सुगमं ।

णिरंतरं ॥ १३ ॥

सुगमं ।

भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवगदिभंगो ॥ १४ ॥

सुगमं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १५ ॥

सुगमं ।

देवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ १२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

देव निरन्तर हैं ॥ १३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तक अन्तरका निरूपण देवगतिके समान है ॥ १४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त; बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त; सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त; पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

णत्थि अंतरं ॥ १६ ॥

एदं पज्जवट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठं परूविदं ।

णिरंतरं ॥ १७ ॥

एदं सुत्तं दव्वट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठं परूविदं ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १८ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ १९ ॥

. . .

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ १६ ॥

यह सूत्र पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ कहा गया है ।

उक्त जीव निरन्तर हैं ॥ १७ ॥

यह सूत्र द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ कहा गया है ।

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्त, पृथिवीकायिक अपर्याप्त; बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, ये नौ पृथिवीकायिक जीव, इसी प्रकार नौ अप्कायिक, नौ तेजस्कायिक, नौ वायुकायिक, नौ वनस्पतिकायिक व नौ निगोद जीव, तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त व अपर्याप्त और त्रसकायिक पर्याप्त व अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ १९ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ २० ॥

सुगमं । दुणयाणुग्गहट्ठं परूविद-दोसुत्ताणि जाणावेंति सुत्तकत्तारस्स वीयरायत्तं जीवदयावरत्तं च ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-वेउव्वियकायजोगि-कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २१ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ २२ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ २३ ॥

सुगमं ।

. . . .

यह सूत्र सुगम है ।

ये सब जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ २० ॥

यह सूत्र सुगम है । दोनों नयोंका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके अनुग्रहार्थ कहे गये उपर्युक्त दो सूत्र सूत्रकर्ताकी वीतरागता और जीवदयापरताको सूचित करते हैं ।

योगमार्गणाके अनुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कार्मणकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ २२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ २३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २४ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ २५ ॥

कुदो ? वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वेसु पज्जत्तीओ समाणिदेसु एगसमयमंतरिदूण बिदियसमए देवेसु णेरइएसु उप्पण्णेसु वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं एगसमयं होदि ।

उक्कस्सेण बारसमुहुत्तं ॥ २६ ॥

देवेसु णेरइएसु वा अणुप्पज्जमाणा जीवा जदि सुट्ठु बहुअं कालमच्छंति तो बारस मुहुत्ताणि च्चेव । कधमेदं णव्वदे ? जिणवयणविणिग्गयवयणादो ।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ २७ ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ २४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर जघन्यसे एक समय होता है ॥ २५ ॥

क्योंकि, सब वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके पर्याप्तियोंको पूर्ण करलेनेपर एक समयका अन्तर होकर द्वितीय समयमें देवों व नारकियोंके उत्पन्न होनेपर वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर एक समय होता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका अन्तर उत्कर्षसे बारह मुहूर्त होता है ॥ २६ ॥

देव अथवा नारकियोंमें न उत्पन्न होनेवाले जीव यदि बहुत अधिक काल तक रहते हैं तो बारह मुहूर्त तक ही रहते हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह जिनभगवान्‌के मुखसे निकले हुए वचनोंसे जाना जाता है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ २७ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ २८ ॥

कुदो ? आहार-आहारमिस्सजोगेहि विणा तिहुवणजीवाणमेगसमयमुवलंभादो ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २९ ॥

कुदो ? दोहि वि जोगेहि विणा सव्वपमत्तसंजदाणं वासपुधत्तावट्ठाणदंसणादो ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३० ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ३१ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समय होता है ॥ २८ ॥

क्योंकि, आहारक और आहारकमिश्र काययोगियोंके विना तीनों लोकोंके जीव एक समय पाये जाते हैं ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है ॥ २९ ॥

क्योंकि, उक्त दोनों ही योगोंके विना समस्त प्रमत्तसंयतोंका वर्षपृथक्त्व काल तक अवस्थान देखा जाता है ।

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ३२ ॥

सुगमं ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई (अकसाई-) णमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३३ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ३४ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ३५ ॥

सुगमं ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणि-आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणि-मणपज्जवणाणि-केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३६ ॥

सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और (अकषायी) जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता ॥ ३४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

णत्थि अंतरं ॥ ३७ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ३८ ॥

सुगमं ।

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ३९ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ४० ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ४१ ॥

सुगमं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसजदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४२ ॥

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ३८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयममार्गणाके अनुसार संयत, सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ३९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ४० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्मसांपरायिक जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ४२ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ ४३ ॥

कुदो ? सुहुमसांपराइयसंजदेहि विणा एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण छम्मासाणि ॥ ४४ ॥

कुदो ? खवगसेडीसमारोहणस्स छम्मासाणमुवरिमुक्कस्संतरस्स अणुवलंभादो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणि-ओहिदंसणि-केवलदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४५ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ४६ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ४७ ॥

सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समय होता है ॥ ४३ ॥

क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिक संयतोंके विना एक समय देखा जाता है ।

उक्त जीवोंका अन्तर उत्कर्षसे छह मास होता है ॥ ४४ ॥

क्योंकि, क्षपकश्रेणी आरोहणका छह मासोंके ऊपर उत्कृष्ट अन्तर नहीं पाया जाता ।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ये जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ४७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउ-लेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ४८ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ४९ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ५० ॥

सुगमं ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५१ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ५२ ॥

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ५२ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ५३ ॥

सुगमं ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५४ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ५५ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ५६ ॥

सुगमं ।

उवसमसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ५७ ॥

सुगमं ।

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव निरन्तर हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे जीवराशियां निरन्तर हैं ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ ५८ ॥

कुदो ? तिसु वि लोएसु उवसमसम्मादिट्ठीणमेक्कम्हि समए अभावदंसणादो ।

उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि ॥ ५९ ॥

रादिंदियमिदि दिवसस्स सण्णा, अहोरत्तेहि मिलिएहि दिवसववहारदंसणादो । उवसमसम्मत्तस्स सत्तदिवसमेत्तमंतरं होदि त्ति वुत्तं होदि । एत्थ उवसंहारगाहा—

सम्मत्ते सत्त दिणा विरदाविरदीए चोद्दस हवंति ।
विरदीसु अ पण्णरसा विरहिदकालो मुणेयव्वो[1] ॥ १ ॥

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६० ॥

सुगमं ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समय है ॥ ५८ ॥

क्योंकि, तीनों ही लोकोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंका एक समयमें अभाव देखा जाता है ।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर उत्कर्षसे सात रात-दिन है ॥ ५९ ॥

'रात्रिंदिव' यह दिवसका नाम है, क्योंकि सम्मिलित दिन व रात्रिसे 'दिवस' का व्यवहार देखा जाता है । उपशमसम्यक्त्वका अन्तर सात दिवसमात्र होता है, यह उक्त कथनका निष्कर्ष है । यहां उपसंहारगाथा—

उपशमसम्यक्त्वमें सात दिन, (उपशमसम्यक्त्व सहित) विरताविरति अर्थात् देशव्रतमें चौदह दिन, और विरति अर्थात् महाव्रतमें पन्द्रह दिन प्रमाण विरहकाल जानना चाहिये ॥ १ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ६० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ पढमुवसमसहिदाए विरदाविरदीए चोद्दसा दिवसा । विरदीए पण्णरसा विरहिदकालो दु बोद्धव्वो ॥ गो. जी. १४४.

जहण्णेण एगसमयं ॥ ६१ ॥

कुदो ? सासणसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तगुणाणं जहण्णेण एगसमयं अंतरं पडि विरोहाभावादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६२ ॥

सुगमं ।

सण्णियाणुवादेण सण्णि-असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६३ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ६४ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ६५ ॥

सुगमं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समय है ॥ ६१ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानोंके जघन्यसे एक समय अन्तरके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

उक्त जीवोंका अन्तर उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ६२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञिमार्गणाके अनुसार संज्ञी व असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ ६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी व असंज्ञी जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी व असंज्ञी जीव निरन्तर हैं ॥ ६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहाराणुवादेण आहार-अणाहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ ६६ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं ॥ ६७ ॥

सुगमं ।

णिरंतरं ॥ ६८ ॥

सुगमं ।

एवं णाणाजीवेण अंतराणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

आहारमार्गणाके अनुसार आहारक व अनाहारक जीवोंका अन्तर कितने काल-तक होता है ? ॥ ६६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक और अनाहारक जीवोंका अन्तर नहीं होता है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वे निरन्तर हैं ॥ ६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

भागाभागाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सव्व-जीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १ ॥

एदस्स अत्थो वुच्चदे— अणंतभाग-असंखेज्जदिभाग-संखेज्जदिभागाणं[1] भागसण्णा, अणंताभागा असंखेज्जाभागा संखेज्जाभागा एदेसिमभागसण्णा। भागो च अभागो च भागाभागा, तेसिमणुगमो भागाभागाणुगमो, तेण भागाभागाणुगमेण एत्थ अहियारो त्ति भणिदं होदि। भागाभागणिद्देसो सेसाणियोगद्दारपडिसेहफलो। णेरइयणिद्देसो तत्थतणपुढविकाइयादिपडिसेहफलो। सव्वजीवाणं कइत्थओ णिरयगईए णिरतरं वसदि त्ति पुच्छा कदा होदि। किमणंतिमभागो किमणंता भागा किमसंखेज्जा भागा किमसंखेज्जदि-भागो किं संखेज्जा भागा होंति त्ति भणिदे तण्णिण्णयट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

अणंतभागो ॥ २ ॥

भागाभागानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार नरकगतिमें नारकी जीव सर्व जीवोंकी अपेक्षा कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— अनन्तवां भाग, असंख्यातवां भाग और संख्यातवां भाग, इनकी 'भाग' संज्ञा है; तथा अनन्त बहुभाग, असंख्यात बहुभाग और संख्यात बहुभाग, इनकी 'अभाग' संज्ञा है। 'भाग और अभाग' इस प्रकार द्वन्द्व समास होकर 'भागाभाग' पद निष्पन्न हुआ है। उन भागाभागोंका जो अनुगम अर्थात् ज्ञान है इसी का नाम भागाभागानुगम है। इस भागाभागानुगमका यहां अधिकार है, यह उपर्युक्त कथनका अभिप्राय है। 'भागाभाग' निर्देशका फल शेष अनुयोगद्वारोंका प्रतिषेध है। 'नारकी जीवों' का निर्देश वहांके पृथिवीकायकादि जीवोंके प्रतिषेधके लिये है। सूत्रमें 'सर्व जीवोंका कितनेवां भाग नरकगतिमें निरन्तर रहता है' यह प्रश्न किया गया है। क्या अनन्तवें भाग, क्या अनन्त बहुभाग, क्या असंख्यात बहुभाग, क्या असंख्यातवें भाग और क्या संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं, ऐसा पूछनेपर उसके निर्णयार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

नरकगतिमें नारकी जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ २ ॥

---

१ अप्रतौ 'संखेज्जभागहाराणं' इति पाठः।

तं कधं ? णेरइएहि घणंगुलबिदियवग्गमूलमेत्तसेडिपमाणेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि आगच्छंति । लद्धं विरलिय सव्व-जीवरासिं समखंडं काऊण रूवं पडि दिण्णे तत्थ एगरूवधरिदं णेरइयपमाणं होदि । तेण णेरइया सव्वजीवाणमणंतभागो त्ति वुत्तं होदि ।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ॥३॥

सत्तण्हं पुढवीणं णेरइएहि पुध पुध सव्वजीवरासिम्हि भागं घेत्तूण लद्धं विरलिय पुणो सव्वजीवरासिं सत्तण्णं विरलणाणं समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगरूवधरिदं जहाकमेण पढमादीणं सत्तण्णं पुढवीणं दव्वं जेण होदि तेण णेरइयभंगो सत्तण्णं पुढवीणं जुज्जदे ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥४॥

एदस्स अत्थो— तिरिक्खा सव्वजीवाणं किमणंतिमभागो किमणंता भागा किमसंखेज्जदिभागो किमसंखेज्जा भागा किं संखेज्जा भागा होंति त्ति पुच्छा कदा । तत्थ छसु वियप्पेसु एक्कस्सेव गहणट्ठमुत्तरमुत्तं भणदि—

वह कैसे ? घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित जगश्रेणीप्रमाण नारकियोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त सर्व-जीवराशि-प्रथमवर्गमूल आते हैं । लब्धराशिका विरलन करके सर्व जीवराशिको समखण्ड कर रूपके प्रति देनेपर उसमें एक रूप धरित राशि-नारकियोंका प्रमाण होती है । इस कारण 'नारकी जीव सर्व जीवराशिके अनन्तवें भागप्रमाण हैं' ऐसा कहा है ।

इसी प्रकार सात पृथिवियोंमें नारकियोंके भागाभागका क्रम है ॥ ३ ॥

सात पृथिवियोंके नारकियोंका पृथक् पृथक् सर्व जीवराशिमें भाग देकर जो लब्ध हो उसका विरलन कर पुनः सर्व जीवराशिको सात विरलनराशियोंके समखण्ड करके देनेपर उसमें एक रूप धरित राशि चूंकि क्रमशः प्रथमादिक सात पृथिवियोंका द्रव्य होता है, इसलिये सात पृथिवियोंके भागाभागको नारकियोंके समान कहना युक्त है ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४ ॥

इसका अर्थ—'तिर्यंच जीव सर्व जीवोंके क्या अनन्तवें भाग हैं, क्या अनन्त बहुभाग हैं, क्या असंख्यातवें भाग हैं, क्या असंख्यात बहुभाग हैं, और क्या संख्यात बहुभाग हैं, इस प्रकार यहां पृच्छा की गई है । उन छह विकल्पोंमेंसे एकके ही ग्रहणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

अणंता भागा ॥ ५ ॥

तं जहा— सिद्ध-तिगदिजीवेहि सव्वजीवरासिमोवट्टिय लद्धं विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय रूवं पडि दिण्णे एगरूवधरिदं सिद्ध-तिगदिजीवपमाणं होदि । तत्थ एगरूवधरिदं मोत्तूण सेसबहुभागा जेण तिरिक्खाणं पमाणं होदि तेण तिरिक्खा सव्वजीवाणमणंताभागो त्ति सुत्ते उत्तं ।

पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥६॥

सुगममेदं, पुव्वं परूविदत्तादो ।

अणंतभागो ॥ ७ ॥

पुव्वुत्तछव्वियप्पेसु एदे जीवा अणंतभागवियप्पे चेव अत्थि, अण्णत्थ णत्थि त्ति एदेण सुत्तेण परूविदं । एत्थ पुव्वुत्तअट्ठवियप्पजीवपमाणेण दव्वाणिओगद्दारादो

तिर्यंच जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ५ ॥

वह इस प्रकार है— सिद्ध और तीन गतियोंके जीवोंसे सर्व जीवराशिको अपवर्तित कर जो लब्ध हो उसका विरलन कर सर्व जीवराशिको समखण्ड करके रूपके प्रति देनेपर एक रूप धरित सिद्ध और तीन गतियोंके जीवोंका प्रमाण होता है । उसमें एक रूप धरित राशिको छोड़कर शेष बहुभाग चूंकि तिर्यंचोंका प्रमाण होता है, अतएव ' तिर्यंच सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ' ऐसा सूत्रमें कहा है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव; तथा मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी और मनुष्य अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ६ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पूर्वमें प्ररूपण किया जा चुका है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त छह विकल्पोंमेंसे ये ' अनन्तभाग ' विकल्पमें ही हैं, अन्यत्र नहीं हैं, ऐसा इस सूत्र द्वारा प्ररूपित है । यहां द्रव्यानुयोगद्वारसे जाने गये पूर्वोक्त आठ प्रकार

अवगएण पुध पुध सव्वजीवे अवहारिय लद्धसलागमेत्तखंडाणि सव्वजीवरासिं करिय तत्थ एगभागपमाणमप्पप्पणो जीवपमाणं होदि त्ति अवहारिय एदे अट्ठ जीवभेदा सव्व-जीवाणमणंतिमभागो होदि त्ति णिच्छओ कायव्वो ।

देवगदीए देवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८ ॥

देवगदीए पुढविकाइयादिया अण्णे वि जीवा अत्थि, देवा त्ति वयणेण तेसिं पडिसेहो कदो । सेसं सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ९ ॥

सुगममेदं, अणप्पिदपंचभंगे ओसारिय अप्पिदेक्कभंगम्मि उप्पादिदणिच्छयादो गहिदगहिदगणिएण पुव्वमेव जणिदप्पसंसकारादो ।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा ॥ १० ॥

णवरि अप्पप्पणो जीवाणं पमाणमवहारिय तेण सव्वजीवरासिमोवट्टिय लद्धेण

जीवोंके प्रमाणसे पृथक् पृथक् सर्व जीवराशिको अपहृत करके लब्ध शलाकाप्रमाण खण्डरूप सर्व जीवराशिको करके उसमें एक भागप्रमाण अपना अपना जीवप्रमाण होता है, ऐसा निश्चय कर ये आठ जीवभेद सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं, इस प्रकार निश्चय करना चाहिये ।

देवगतिमें देव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ८ ॥

देवगतिमें, अर्थात् देवलोकमें, पृथिवीकायिकादिक अन्य भी जीव हैं, उनका प्रतिषेध ' देव ' इस वचनसे किया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

देव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ९ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि वह अविवक्षित पांच भंगोंको हटा कर विवक्षित एक भंगमें निश्चयको उत्पन्न कराता है, तथा गृहीत-गृहीत गणितसे (देखो पु. ३) पूर्वमें ही आत्मसंस्कार उत्पन्न हो जानेसे भी उक्त सूत्र सुगम है ।

इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तक भागा-भागका क्रम है ॥ १० ॥

विशेष इतना है कि अपने अपने जीवोंके प्रमाणका निश्चय कर उससे सर्व

१ प्रतिषु ' अद्ध- ' इति पाठः ।

सव्वजीवरासिस्स अणंतभागत्तमेदेसिं साहेयव्वं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ११ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ १२ ॥

तं जहा— सिद्ध-तसजीवेहि सव्वजीवरासिमवहारिय लद्धसलागमेत्तखंडाणि सव्वजीवरासिं कादूण तत्थ एगभागं मोत्तूण सेसबहुभागेसु गहिदेसु जेण एइंदियपमाणं होदि तेण सव्वजीवाणमणंताभागा एइंदिया होंति त्ति सुत्ते उत्तं ।

बादरेइंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १३ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जदिभागो ॥ १४ ॥

जीवराशिको अपवर्तित कर लब्ध राशिसे सर्व जीवराशिका अनन्तवां भागत्व इनको सिद्ध करना चाहिये ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ १२ ॥

वह इस प्रकार है—सिद्ध और त्रसजीवोंसे सर्व जीवराशिको अपहृत कर लब्ध शलाकाप्रमाण सर्व जीवराशिको खण्डित कर उनमें एक भागको छोड़कर शेष बहुभागोंके ग्रहण करनेपर चूंकि एकेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण होता है, इसलिये 'सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण एकेन्द्रिय जीव होते हैं' ऐसा सूत्रमें कहा है ।

बादर एकेन्द्रिय जीव और उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ १४ ॥

तं जहा— अप्पिदबादरएइंदिएहि सव्वजीवरासिमोवट्टिदे असंखेज्जा लोगा आगच्छंति। ते विरलिय सव्वजीवरासिं रूवं पडि समखंडं करिय दिण्णे इच्छियबादरेइंदियपमाणं होदि। तम्हि तिण्णि वि बादरेइंदिया सव्वजीवाणमसंखेज्जदिभागमेत्ता त्ति परूविदा।

सुहुमेइंदिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १५ ॥

सुगमं।

असंखेज्जदिभागो ॥ १६ ॥

कुदो ? सुहुमेइंदियवदिरित्तासेसजीवेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जा लोगा आगच्छंति। ते विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगरूवधरिदं मोत्तूण बहुभागेसु सुहुमेइंदियप्पहुडिउत्तपमाणुवलंभादो[1]।

सुहुमेइंदियपज्जत्ता[2] सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ १७ ॥

सुगमं।

इसीको स्पष्ट करते हैं– विवक्षित बादर एकेन्द्रियोंसे सर्व जीवराशिको अपवर्तित करनेपर असंख्यात लोक आते हैं। उनका विरलन कर सर्व जीवराशिको रूपके प्रति समखण्ड करके देनेपर इच्छित बादर एकेन्द्रियोंका प्रमाण होता है। उसमें तीनों ही बादर एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके असंख्यातवें भागमात्र हैं, ऐसा कहा गया है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १६ ॥

क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंको छोड़कर समस्त जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर असंख्यात लोक आते हैं। उनका विरलन कर सर्व जीवराशिको समखण्ड करके देनेपर उसमें एक रूप धरित राशिको छोड़कर शेष बहुभागोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि उक्त जीवोंका प्रमाण पाया जाता है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ १७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ मप्रतौ 'जत्तपमाणुवलंभादो' इति पाठः। २ प्रतिषु '-अपज्जत्ता' इति पाठः।

संखेज्जा[1] भागा ॥ १८ ॥

कुदो ? सुहुमेइंदियपज्जत्तवदिरित्तजीवेहि सव्वजीवरासिमोवट्टिय तत्थुवलद्ध-संखेज्जरूवाणि विरलिय सव्वजीवरासिं रूवं पडि समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगरूव-धरिदं मोत्तूण सेसबहुभागे सुहुमेइंदियपज्जत्तपमाणुवलंभादो ।

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? ॥ १९ ॥

सुगमं ।

संखेज्जदिभागो ॥ २० ॥

कुदो ? सुहुमेइंदियअपज्जत्तएहि सव्वजीवरासिम्मि भागे हिदे लद्धसंखेज्ज-रूवाणि विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थ एगरूवस्सुवरि सुहुमेइंदिय-अपज्जत्तपमाणत्तदंसणादो ।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अप-ज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २१ ॥

सुगमं ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व जीवोंके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंको छोड़ अन्य जीवोंसे सर्व जीवराशिका अपवर्तन करके उसमें प्राप्त संख्यात रूपोंका विरलन कर व सर्व जीवराशिको समखण्ड करके रूपके प्रति देनेपर उसमें एक रूप धरित राशिको छोड़ शेष बहुभागमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका प्रमाण पाया जाता है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥१९॥

यह सूत्र सुगम है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ २० ॥

क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर प्राप्त हुए संख्यात रूपोंका विरलन कर सर्व जीवराशिको समखण्ड करके देनेपर उसमें एक रूपके ऊपर सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण देखा जाता है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ मप्रती ' असंखेज्जा ' इति पाठः ।

अणंता भागा ॥ २२ ॥

कुदो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे तत्थुवलद्धस्स अणंतियत्तादो ।

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २३ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ २४ ॥

कुदो ? एदेहि असंखेज्जालोगमेत्तपमाणेहि पदरस्स असंखेज्जदिभागेहि य सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवाणमुवलंभादो ।

वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २५ ॥

....

उपर्युक्त द्वीन्द्रियादि जीव सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, जगप्रतरके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर वहां उपलब्ध राशि अनन्त होती है ।

कायमार्गणाके अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्त, पृथिवीकायिक अपर्याप्त; बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त; सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त; इसी प्रकार नौ अप्कायिक, नौ तेजस्कायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त व अपर्याप्त, तथा त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ २३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ २४ ॥

क्योंकि, जगप्रतरके असंख्यातवें भागरूप असंख्यात लोकप्रमाणवाले इन जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप लब्ध होते हैं ।

वनस्पतिकायिक व निगोद जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥२५॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ २६ ॥

कुदो ? अप्पिददव्ववदिरित्तसव्वदव्वेहि सव्वजीवरासिमवहारिय लद्धसलागाओ अणंताओ विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय रूवं पडि दिण्णे तत्थ एगरूवधरिदं मोत्तूण बहुभागेसु समुदिदेसु अप्पिदजीवपमाणदंसणादो ।

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २७ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जदिभागो ॥ २८ ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जलोगपमाणुवलंभादो ।

सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ २९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वनस्पतिकायिक व निगोद जीव सर्व जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥२६॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यसे भिन्न सर्व द्रव्यों द्वारा सर्व जीवराशिको विरलित कर लब्ध हुई अनन्त शलाकाओंका विरलन कर सर्व जीवराशिको समखण्ड कर प्रत्येक रूपके प्रति देनेपर उसमें एक रूप धरित राशिको छोड़ समुदित बहुभागोंमें विवक्षित जीवोंका प्रमाण देखा जाता है ।

बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोद जीव, बादर निगोद जीव पर्याप्त व अपर्याप्त सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ २७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ २८ ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर असंख्यात लोकप्रमाण लब्ध होता है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व सूक्ष्म निगोद जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ २९ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा भागा ॥ ३० ॥

कुदो ? अप्पिददव्ववदिरित्तदव्वेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे तत्थुवलद्ध-असंखेज्जलोगमेत्तसलागाओ विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थेगखंडं मोत्तूण बहुखंडेसु समुदिदेसु अप्पिददव्वपमाणुवलंभादो ।

सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३१ ॥

सुगमं ।

संखेज्जा भागा ॥ ३२ ॥

कुदो ? अप्पिददव्ववदिरित्तदव्वेहि सव्वजीवरासिमवहारिय लद्धसंखेज्जरूवाणि विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थेगरूवधरिदं मोत्तूण सेसबहुभागेसु समुदिदेसु अप्पिददव्वपमाणुवलंभादो । सुहुमवणप्फदिकाइए भणिदूण पुणो सुहुमणिगोदजीवे वि पुध भणदि, एदेण णव्वदि जधा सव्वे सुहुमवणप्फदिकाइया चेव

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीव सर्व जीवोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं ॥ ३० ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यसे भिन्न द्रव्योंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर वहां उपलब्ध हुई असंख्यात लोकमात्र शलाकाओंका विरलन कर व सर्व जीवराशिको समखण्ड करके देनेपर उसमें एक खण्डको छोड़कर समुदित बहुखण्डोंमें विवक्षित द्रव्योंका प्रमाण पाया जाता है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व सूक्ष्म निगोदजीव पर्याप्त सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ३१ ॥

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं ॥ ३२ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यसे भिन्न द्रव्यों द्वारा सर्व जीवराशिको अपहृत कर लब्ध हुए संख्यात रूपोंका विरलन कर व सर्व जीवराशिको समखण्ड करके देनेपर उनमें एक रूप धरित राशिको छोड़कर शेष समुदित बहुभागोंमें विवक्षित द्रव्योंका प्रमाण पाया जाता है । सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंको कहकर पुनः सूक्ष्म निगोद जीवोंको भी पृथक् कहते

सुहुमणिगोदजीवा ण होंति त्ति। जदि एवं तो सव्वे सुहुमवणप्फदिकाइया णिगोदा चेवेत्ति एदेण वयणेण विरुज्झदि त्ति भणिदे ण विरुज्झदे, सुहुमणिगोदा सुहुमवणप्फदिकाइया चेवेत्ति अवहारणाभावादो। के पुण ते अण्णे सुहुमणिगोदा सुहुमवणप्फदिकाइये मोत्तूण? ण, सुहुमणिगोदेसु व तदाधारेसु वणप्फदिकाइएसु वि सुहुमणिगोदजीवत्तसंभवादो। तदो सुहुमवणप्फदिकाइया चेव सुहुमणिगोदजीवा ण होंति त्ति सिद्धं। सुहुमकम्मोदएण जहा जीवाणं वणप्फदिकाइयादीणं सुहुमत्तं होदि तहा णिगोदणामकम्मोदएण णिगोदत्तं होदि। ण च णिगोदणामकम्मोदओ बादरवणप्फदिपत्तेयसरीराणमत्थि जेण तेसिं णिगोदसण्णा होदि त्ति भणिदे— ण, तेसिं पि आहारे आहेओवयारेण[1] णिगोदत्ता-

---

हैं, इससे जाना जाता है कि सब सूक्ष्म वनस्पतिकायिक ही सूक्ष्म निगोद जीव नहीं होते।

शंका—यदि ऐसा है तो 'सर्व सूक्ष्म वनस्पतिकायिक निगोद ही हैं' इस वचनके साथ विरोध होगा?

समाधान—उक्त वचनके साथ विरोध नहीं होगा, क्योंकि, सूक्ष्म निगोद जीव सूक्ष्म वनस्पतिकायिक ही हैं, ऐसा यहां अवधारण नहीं है।

शंका—तो फिर सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंको छोड़कर अन्य सूक्ष्म निगोद जीव कौनसे हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म निगोद जीवोंके समान उनके आधारभूत (बादर) वनस्पतिकायिकोंमें भी सूक्ष्म निगोद जीवत्वकी सम्भावना है। इस कारण 'सूक्ष्म वनस्पतिकायिक ही सूक्ष्म निगोद जीव नहीं होते' यह बात सिद्ध होती है।

शंका—सूक्ष्म नामकर्मके उदयसे जिस प्रकार वनस्पतिकायिकादिक जीवोंके सूक्ष्मपना होता है, उसी प्रकार निगोद नामकर्मके उदयसे निगोदत्व होता है। किन्तु बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके निगोद नामकर्मका उदय नहीं है जिससे कि उनकी 'निगोद' संज्ञा हो सके?

समाधान—नहीं, क्योंकि बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके भी आधारमें आधेयका उपचार करनेसे निगोदपनेका कोई विरोध नहीं है।

---

१ प्रतिषु 'अहिओवयारेण' इति पाठः।

विरोहादो। कधमेदं णव्वदे? णिगोदपदिट्ठिदाणं बादरणिगोदजीवा त्ति णिद्देसादो, बादरवणप्फदिकाइयाणमुवरि 'णिगोदा विसेसाहिया' त्ति भणिदवयणादो च णव्वदे।

सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? ॥ ३३ ॥

सुगमं।

संखेज्जदिभागो ॥ ३४ ॥

कुदो? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे संखेज्जरूवाणमुवलंभादो। एत्थ वि सुहुमवणप्फदिकाइयअपज्जत्तेहिंतो पुव्वं सुहुमणिगोदअपज्जत्ताणं भेदो वत्तव्वो। णिगोदेसु जीवंति णिगोदभावेण वा जीवंति त्ति णिगोदजीवा एवं तत्तो भेदो वत्तव्वो। णिगोदा सव्वे वणप्फदिकाइया चेव ण अण्णे, एदेण अहिप्पाएण काणि वि भागाभाग-सुत्ताणि ट्ठिदाणि। कुदो? सुहुमवणप्फदिकाइयभागाभागस्स तिसु वि सुत्तेसु णिगोदजीव-

शंका — यह कैसे जाना जाता है?

समाधान — निगोदप्रतिष्ठित जीवोंके 'बादर निगोद जीव' इस प्रकारके निर्देशसे, तथा बादर वनस्पतिकायिकोंके आगे 'निगोद जीव विशेष अधिक हैं' इस प्रकार कहे गये सूत्रवचनसे भी यह जाना जाता है।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं? ॥ ३३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीव सर्व जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ३४ ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर संख्यात रूप प्राप्त होते हैं। यहां भी पहले सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तोंका भेद कहना चाहिये। 'निगोदोंमें जो जीते हैं अथवा निगोदभावसे जो जीते हैं वे निगोदजीव हैं' इस प्रकार उनसे भेद कहना चाहिये।

शंका — 'निगोद जीव सब वनस्पतिकायिक ही हैं, अन्य नहीं हैं' इस अभिप्रायसे कुछ भागाभागसूत्र स्थित हैं, क्योंकि, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक भागाभागके तीनों ही सूत्रोंमें निगोदजीवोंके निर्देशका अभाव है। इस लिये उन सूत्रोंसे इन सूत्रोंका

णिद्देसाभावादो। तदो तेहि सुत्तेहि एदेसिं सुत्ताणं विरोहो होदि त्ति भणिदे जदि एवं तो उवदेसं लद्धूण इदं सुत्तं इदं चासुत्तमिदि आगमणिउणा भणंतु। ण च अम्हे एत्थ वोत्तुं समत्था, अलद्धोवदेसत्तादो।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-वेउव्वियकायजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगि—आहारकायजोगि—आहारमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३५ ॥

सुगमं।

अणंतो भागो ॥ ३६ ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो।

कायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३७ ॥

सुगमं।

अणंता भागा ॥ ३८ ॥

विरोध होगा ?

समाधान—यदि ऐसा है तो उपदेशको प्राप्त कर 'यह सूत्र है और यह सूत्र नहीं है' ऐसा आगमनिपुण जन कह सकते हैं। किन्तु हम यहां कहनेके लिये समर्थ नहीं हैं, क्योंकि, हमें वैसा उपदेश प्राप्त नहीं है।

योगमार्गणाके अनुसार पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उपर्युक्त जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ३६ ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप प्राप्त होते हैं।

काययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ३७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

काययोगी जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ३८ ॥

कुदो ? अप्पिददव्ववदिरित्तसव्वदव्वेहि सव्वजीवरासिमवहिरिज्जमाणे लद्धं-अणंतसलागाओ विरलिय सव्वजीवरासिं समखंडं करिय दिण्णे तत्थेगरूवधरिदं मोत्तूण सेसबहुभागेसु समुदिदेसु कायजोगिदव्वपमाणुवलंभादो ।

ओरालियकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ३९ ॥

सुगमं ।

संखेज्जा भागा ॥ ४० ॥

कुदो ? अणप्पिदसव्वदव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे संखेज्जरूवाण-मुवलंभादो ।

ओरालियमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४१ ॥

सुगमं ।

संखेज्जदिभागो ॥ ४२ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यसे भिन्न सब द्रव्यों द्वारा सर्व जीवराशिको अपहृत करनेपर प्राप्त हुई अनन्त शलाकाओंका विरलन कर व सर्व जीवराशिको समखण्ड करके देनेपर उसमें एक रूप धरितको छोड़कर शेष समुदित बहुभागोंमें काययोगी द्रव्यका प्रमाण पाया जाता है ।

औदारिककाययोगी जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ३९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिककाययोगी जीव सब जीवोंके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, अविवक्षित सर्व द्रव्यका सब जीवराशिमें भाग देनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ४२ ॥

१ प्रतिषु 'अद्ध-' इति पाठः ।

कुदो ? अप्पिददव्वेण सव्वरासिम्हि भागे हिदे संखेज्जरूवाणमुवलंभादो ।

कम्मइयकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४३ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जदिभागो ॥ ४४ ॥

कुदो ? अप्पिददव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जरूवोवलंभादो ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा अवगदवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४५ ॥

सुगमं ।

अणंतो भागो ॥ ४६ ॥

कुदो ? अप्पिददव्वेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

णवुंसयवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४७ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

कार्मणकाययोगी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कार्मणकाययोगी जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ४४ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर असंख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

वेदमार्गणाके अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और अपगतवेदी जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ४६ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्योंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

नपुंसकवेदी जीव सर्व जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४७ ॥

---

१ प्रतिषु ' संखेज्ज- ' इति पाठः ।

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ४८ ॥

कुदो ? अणप्पिदसव्वदव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई सव्व-जीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ४९ ॥

सुगमं ।

चदुब्भागो देसूणा ॥ ५० ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे सादिरेयचत्तारिरूवोवलंभादो ।

लोभकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५१ ॥

सुगमं ।

चदुब्भागो सादिरेगो ॥ ५२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नपुंसकवेदी जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ४८ ॥

क्योंकि, अविवक्षित सर्व द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

कषायमार्गणाके अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सब जीवोंके कुछ कम एक चतुर्थ भागप्रमाण हैं ॥ ५० ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर साधिक चार रूप उपलब्ध होते हैं ।

लोभकषायी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

लोभकषायी जीव सब जीवोंके साधिक चतुर्थ भागप्रमाण हैं ॥ ५२ ॥

कुदो ? लोभकसाइदव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे किंचूणचत्तारिरूवो-वलंभादो ।

अकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५३ ॥

सुगमं ।

अणंतो भागो ॥ ५४ ॥

कुदो ? अकसाइदव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणी सव्वजीवाणं केव-डिओ भागो ? ॥ ५५ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ५६ ॥

कुदो ? अणप्पिदणाणेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

क्योंकि, लोभकषायी द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर कुछ कम चार रूप प्राप्त होते हैं ।

अकषायी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकषायी जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ५४ ॥

क्योंकि, अकषायी द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप प्राप्त होते हैं ।

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ५६ ॥

क्योंकि, अविवक्षित ज्ञानवाले जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५७ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ५८ ॥

कुदो ? अप्पिददव्वेण सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ५९ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ६० ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

असंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६१ ॥

विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ५७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ५८ ॥

क्योंकि, विवक्षित द्रव्यका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

संयममार्गणाके अनुसार संयत, सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ६० ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप प्राप्त होते हैं ।

असंयत जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ६१ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ६२ ॥

कुदो ? अणप्पिदसव्वसंजदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी सव्व-जीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६३ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ६४ ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिमवहिरदे अणंतभागोवलंभादो ।

अचक्खुदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६५ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ६६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंयत जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, अविवक्षित सर्व संयतोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप प्राप्त होते हैं ।

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ६३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ६४ ॥

क्योंकि, इनके द्वारा सर्व जीवराशिको अपहृत करनेपर अनन्तवां भाग उपलब्ध होता है ।

अचक्षुदर्शनी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अचक्षुदर्शनी जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ६६ ॥

कुदो ? अचक्खुदंसणीहि सव्वरासिम्हि भागे हिदे एगरूवस्स अणंतिमभागसहिद-एगरूवोवलंभादो ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६७ ॥

सुगमं ।

तिभागो सादिरेगो ॥ ६८ ॥

कुदो ? किण्हलेस्सिएहि सव्वजीवरासिम्मि भागे हिदे किंचूणतिण्णिरूवो-वलंभादो ।

णीललेस्सिया काउलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ६९ ॥

सुगमं ।

तिभागो देसूणो ॥ ७० ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शनियोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर एक रूपके अनंतवें भागसे सहित एक रूप उपलब्ध होता है ।

लेश्यामार्गणाके अनुसार कृष्णलेश्यावाले जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कृष्णलेश्यावाले जीव सब जीवोंके साधिक एक त्रिभागप्रमाण हैं ? ॥ ६८ ॥

क्योंकि, कृष्णलेश्यावाले जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर कुछ कम तीन रूप उपलब्ध होते हैं ।

नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नील और कापोतलेश्यावाले जीव सब जीवोंके कुछ कम एक त्रिभागप्रमाण हैं ? ॥ ७० ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे सादिरेयतिण्णिरूवोवलंभादो ।

तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ७१ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ७२ ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ७३ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ७४ ॥

कुदो ? भवसिद्धिएहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे एगरूवस्स अणंतभागसहिद-एगरूवोवलंभादो ।

क्योंकि, इन जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर साधिक तीन रूप उपलब्ध होते हैं ।

तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ७१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ७२ ॥

क्योंकि, इन जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप प्राप्त होते हैं ।

भव्यमार्गणाके अनुसार भव्यसिद्धिक जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ७४ ॥

क्योंकि, भव्यसिद्धिक जीवोंका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर एक रूपके अनन्तवें भाग सहित एक रूप उपलब्ध होता है ।

अभवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ[1] भागो ? ॥ ७५ ॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ७६ ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ७७ ॥

सुगमं ।

अणंतो भागो ॥ ७८ ॥

(कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

मिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ७९ ॥

अभव्यसिद्धिक जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अभव्यसिद्धिक जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ७६ ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपर्युक्त जीव सर्व जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ७८ ॥

(क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ७९ ॥

---

[1] अप्रतौ ' केवडिगो ' इति पाठः ।

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ८० ॥)

कुदो ? मिच्छाइट्ठीहि फलगुणिदसव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे एगरूवस्स अणंत-भागसहिदएगरूवोवलंभादो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥८१॥

सुगमं ।

अणंतभागो ॥ ८२ ॥

कुदो ? एदेहि फलगुणिदसव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे अणंतरूवोवलंभादो ।

असण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ८० ॥)

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका फलगुणित सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर एक रूपके अनन्त भागसे सहित एक रूप उपलब्ध होता है ।

विशेषार्थ—यहां जो सर्व जीवराशिको फलसे गुणित करके मिथ्यादृष्टि राशिसे भाजित करनेको कहा गया है उससे टीकाकारका अभिप्राय उक्त प्रक्रियाको त्रैराशिक रीतिसे व्यक्त करनेका रहा जान पड़ता है । यदि मिथ्यादृष्टि राशि एक शलाका प्रमाण है तो सर्व जीवराशि कितने शलाका प्रमाण होगी ? इस त्रैराशिकके अनुसार सर्व जीव राशिमें फल राशि रूप एकका गुणा और प्रमाण राशि रूप मिथ्यादृष्टि राशिसे भाग देनेपर उक्त भजनफल प्राप्त होगा ।

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञी जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं ॥ ८२ ॥

क्योंकि, इनका फलगुणित सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

असंज्ञी जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ८३ ॥

सुगमं ।

अणंता भागा ॥ ८४ ॥

कुदो ? असण्णीहि फलगुणिदसव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे सगअणंतभागसहिद-एगसलागोवलंभादो ।

आहाराणुवादेण आहारा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८५ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जा भागा ॥ ८६ ॥

कुदो ? एदेहि फलगुणिदसव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे सगअसंखेज्जदिभाग-सहिदएगसलागोवलंभादो ।

अणाहारा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? ॥ ८७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ॥ ८४ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंका फलगुणित सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अपने अनन्त भाग सहित एक शलाका उपलब्ध होती है ।

आहारमार्गणाके अनुसार आहारक जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ८५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक जीव सब जीवोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं ॥ ८६ ॥

क्योंकि, इनका फलगुणित सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर अपने असंख्यातवें भाग सहित एक शलाका उपलब्ध होती है ।

अनाहारक जीव सब जीवोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? ॥ ८७ ॥

सुगमं ।

असंखेज्जदिभागो ॥ ८८ ॥

कुदो ? एदेहि सव्वजीवरासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जसलागोवलंभादो ।

एवं भागाभागाणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

यह सूत्र सुगम है ।

अनाहारक जीव सव जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ॥ ८८ ॥

क्योंकि, इनका सर्व जीवराशिमें भाग देनेपर असंख्यात शलाकायें उपलब्ध होती हैं ।

इस प्रकार भागाभागानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

अप्पाबहुगाणुगमेण गदियाणुवादेण पंचगदीओ समासेण ॥१॥

अप्पाबहुगणिद्देसो सेसाणिओगद्दारपडिसेहफलो। गदिणिद्देसो सेसमग्गणट्ठाणपडिसेहफलो। गई सामण्णेण एगविहा। सा चेव सिद्धगई (असिद्धगई) चेदि दुविहा। अहवा देवगई अदेवगई सिद्धगई चेदि तिविहा। अहवा णिरयगई तिरिक्खगई मणुसगई देवगई चेदि चउव्विहा। अहवा सिद्धगईए सह पंचविहा। एवं गइसमासो अणेयभेयभिण्णो। तत्थ समासेण पंचगदीओ जाओ तत्थ अप्पाबहुगं भणामि त्ति भणिदं होदि।

सव्वत्थोवा मणुसा ॥ २ ॥

सव्वसद्दो अप्पिदपंचगइजीवावेक्खो। तेसु पंचगइजीवेसु मणुस्सा चेव थोवा त्ति भणिदं होदि। कुदो? सूचिअंगुलपढमवग्गमूलेण तस्सेव तदियवग्गमूलब्भत्थेण च्छिण्णजगसेडिमेत्तप्पमाणत्तादो।

णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ ३ ॥

अल्पबहुत्वानुगमसे गतिमार्गणाके अनुसार संक्षेपसे जो पांच गतियां हैं उनमें अल्पबहुत्वको कहते हैं ॥ १ ॥

'अल्पबहुत्व' निर्देशका फल शेष अनुयोगद्वारोंका प्रतिषेध करना है। 'गति' निर्देश शेष मार्गणाओंके प्रतिषेधके लिये है। गति सामान्यरूपसे एक प्रकार है, वही गति सिद्धगति और (असिद्धगति) इस तरह दो प्रकार है। अथवा, देवगति, अदेवगति और सिद्धगति इस तरह तीन प्रकार है। अथवा, नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगति इस तरह चार प्रकार है। अथवा, सिद्धगतिके साथ पांच प्रकार है। इस प्रकार गतिसमास अनेक भेदोंसे भिन्न है। उसमें संक्षेपसे जो पांच गतियां हैं उनमें अल्पबहुत्वको कहते हैं यह उक्त कथनका अभिप्राय है।

मनुष्य सबमें स्तोक हैं ॥ २ ॥

सर्व शब्द विवक्षित पांच गतियोंके जीवोंकी अपेक्षा करता है। उन पांच गतियोंके जीवोंमें मनुष्य ही स्तोक हैं यह सूत्रका फलितार्थ है, क्योंकि, वे सूच्यंगुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित उसके ही प्रथम वर्गमूलसे खण्डित जगश्रेणीप्रमाण हैं।

नारकी जीव मनुष्योंसे असंख्यातगुणे हैं ॥ ३ ॥

गुणगारो असंखेज्जाणि सूचिअंगुलाणि पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि । कुदो ? मणुसअवहारकालगुणिदणेरइयविक्खंभसूचिपमाणत्तादो । कधमेदस्स आगमो ? पमाणरासिणोवट्टिदफलगुणिदिच्छादो ।

देवा असंखेज्जगुणा ॥ ४ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जाणि सेडिपढमवग्गमूलाणि । कुदो ? णेरइयविक्खंभसूचिगुणिददेवअवहारकालेण भजिदजगसेडिपमाणत्तादो ।

सिद्धा अणंतगुणा ॥ ५ ॥

कुदो ? देवोवट्टिदसिद्धेसु अणंतसलागोवलंभादो ।

तिरिक्खा अणंतगुणा ॥ ६ ॥

कुदो ? सिद्धेहि ओवट्टिदतिरिक्खेसु जीववग्गमूलादो सिद्धेहिंतो च अणंतगुणसलागोवलंभादो । एदाओ पुण लद्धगुणगारसलागाओ भवसिद्धियाणमणंतभागो । कुदो ? तिरिक्खेसु पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवपक्खेवे कदे भवसिद्धियरासिपमाणुप्पत्तीदो ।

यहां गुणकार प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात सूच्यंगुल हैं, क्योंकि, वे मनुष्योंके अवहारकालसे गुणित नारकियोंकी विष्कम्भसूची प्रमाण हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, फलराशिसे गुणित इच्छाराशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर उक्त प्रमाण पाया जाता है ।

नारकियोंसे देव असंख्यातगुणे हैं ॥ ४ ॥

यहां गुणकार असंख्यात श्रेणी प्रथम वर्गमूल है, क्योंकि, वे नारकियोंकी विष्कम्भसूचीसे गुणित देवअवहारकालसे भाजित जगश्रेणीप्रमाण हैं ।

देवोंसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥ ५ ॥

क्योंकि, देवोंसे सिद्धराशिके अपवर्तित करनेपर अनन्त शलाकायें उपलब्ध होती हैं ।

सिद्धोंसे तिर्यंच असंख्यातगुणे हैं ॥ ६ ॥

क्योंकि, सिद्धोंसे तिर्यंचोंके अपवर्तित करनेपर जीवराशिके वर्गमूल और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणी शलाकायें उपलब्ध होती हैं । किन्तु ये लब्ध गुणकारशलाकायें भव्यसिद्धिकोंके अनन्तवें भागमात्र होती हैं; क्योंकि, तिर्यंचोंमें जगप्रतरके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंका प्रक्षेप करनेपर भव्यसिद्धिकराशिका प्रमाण उत्पन्न होता है ।

अट्ठ गदीओ समासेण ॥ ७ ॥

ताओ चेव गदीओ मणुस्सिणीओ मणुस्सा णेरइया तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ देवा देवीओ सिद्धा त्ति अट्ठ हवंति । तासिमप्पाबहुगं भणामि त्ति वुत्तं होदि ।

सव्वत्थोवा मणुस्सिणीओ ॥ ८ ॥

अट्ठण्हं गईणं मज्झे मणुस्सिणीओ थोवाओ । कुदो ? संखेज्जपमाणत्तादो ।

मणुस्सा असंखेज्जगुणा ॥ ९ ॥

एत्थ गुणगारो सेडीए असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि सेढिपढमवग्गमूलाणि । कुदो ? मणुस्सअवहारकालगुणिदमणुस्सिणीहि ओवट्टिदजगसेडिपमाणत्तादो ।

णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ १० ॥

एत्थ गुणगारपमाणं पुव्वं परूविदमिदि (ण) पुणो वुच्चदे ।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ ११ ॥

संक्षेपसे गतियां आठ हैं ॥ ७ ॥

वे ही गतियां मनुष्यनी, मनुष्य, नारक, तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, देव, देवियां और सिद्ध, इस प्रकार आठ होती हैं । उनके अल्पबहुत्वको कहते हैं, यह सूत्रका अभिप्राय है ।

मनुष्यनी सबसे स्तोक हैं ॥ ८ ॥

आठ गतियोंके मध्यमें मनुष्यनी स्तोक हैं, क्योंकि, वे संख्यात प्रमाणवाली हैं ।

मनुष्यनियोंसे मनुष्य असंख्यातगुणे हैं ॥ ९ ॥

यहां गुणकार जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रथमवर्गमूल हैं, क्योंकि, वे मनुष्यअवहारकालसे गुणित मनुष्यनियोंसे अपवर्तित जगश्रेणीप्रमाण हैं ।

मनुष्योंसे नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ १० ॥

यहां गुणकारका प्रमाण पूर्वमें कहा जा चुका है, इसलिये यहां उसे फिरसे (नहीं) कहते ।

नारकियोंसे पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच असंख्यातगुणे हैं ॥ ११ ॥

एत्थ गुणगारो सेडीए असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि सेडिपढमवग्गमूलाणि। कुदो ? णेरइयविक्खंभसूचिगुणिदपंचिंदियतिरिक्खजोणिणिअवहारकालोवट्टिदजगसेडि-पमाणत्तादो।

देवा संखेज्जगुणा ॥ १२ ॥

एत्थ गुणगारो तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाणि। कुदो ? देवअवहारकालेण तेत्तीस-रूवगुणिदेण पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणमवहारकाले भागे हिदे संखेज्जरूवोवलंभादो।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ १३ ॥

एत्थ गुणगारो बत्तीसरूवाणि संखेज्जरूवाणि वा।

सिद्धा अणंतगुणा ॥ १४ ॥

कुदो ? देवीहि ओवट्टिदसिद्धेहिंतो अणंतरूवोवलंभादो।

तिरिक्खा अणंतगुणा ॥ १५ ॥

कुदो ? अभवसिद्धिएहि सिद्धेहि जीववग्गमूलादो च अणंतगुणरूवाणं सिद्धेहि भजिदतिरिक्खेसुवलंभादो।

यहां गुणकार जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात श्रेणीप्रथमवर्गमूल हैं; क्योंकि, वे नारकियोंकी विष्कम्भसूचीसे गुणित पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंके अवहारकालसे अपवर्तित जगश्रेणीप्रमाण हैं।

योनिमती तिर्यंचोंसे देव संख्यातगुणे हैं ॥ १२ ॥

यहां गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात रूप हैं, क्योंकि, तेतीस रूपोंसे गुणित देव-अवहारकालका पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंके अवहारकालमें भाग देनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं।

देवोंसे देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ १३ ॥

यहां गुणकार बत्तीस रूप या संख्यात रूप हैं।

देवियोंसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥ १४ ॥

क्योंकि, देवियोंसे सिद्धोंके अपवर्तित करनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं।

सिद्धोंसे तिर्यंच अनन्तगुणे हैं ॥ १५ ॥

क्योंकि, सिद्धोंसे तिर्यंचोंके भाजित करनेपर अभव्यसिद्धिक, सिद्ध और जीव-राशिके वर्गमूलसे अनन्तगुणे रूप उपलब्ध होते हैं।

इंदियाणुवादेण सव्वत्थोवा पंचिंदिया ॥ १६ ॥

कुदो ? पंचण्हमिंदियाणं खवोवसमोवलद्धीए सुट्ठु दुल्लभत्तादो ।

चउरिंदिया विसेसाहिया ॥ १७ ॥

कुदो ? पंचण्हमिंदियाणं सामग्गीदो चदुण्हमिंदियाणं सामग्गीए अइसुलभत्तादो। एत्थ विसेसो पदरस्स असंखेज्जदिभागो। तस्स को पडिभागो ? पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागो पडिभागो। पंचिंदियरासिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे विसेसो आगच्छदि। तं पंचिंदिएसु पक्खित्ते चउरिंदिया होंति। एत्तिओ चेव विसेसो होदि त्ति कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो।

तीइंदिया विसेसाहिया ॥ १८ ॥

कुदो ? चउण्हमिंदियाणं सामग्गीदो तिण्हमिंदियाणं सामग्गीए अइसुलभत्तादो। एत्थ विसेसो चउरिंदियाणं असंखेज्जदिभागो। को पडिभागो ? आवलियाए

इन्द्रियमार्गणाके अनुसार पंचेन्द्रिय जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १६ ॥

क्योंकि, पांचों इन्द्रियोंके क्षयोपशमकी उपलब्धि अतिशय दुर्लभ है।

पंचेन्द्रियोंसे चतुरिन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ १७ ॥

क्योंकि, पांच इन्द्रियोंकी सामग्रीसे चार इन्द्रियोंकी सामग्री अति सुलभ है। यहां विशेषका प्रमाण जगप्रतरका असंख्यातवां भाग है।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—प्रतरांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है।

पंचेन्द्रियराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर विशेषका प्रमाण आता है। उसे पंचेन्द्रियोंमें मिलानेपर चतुरिन्द्रिय जीवोंका प्रमाण होता है।

शंका—इतना ही विशेष है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है।

चतुरिन्द्रियोंसे त्रीन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, चार इन्द्रियोंकी सामग्रीसे तीन इन्द्रियोंकी सामग्री अति सुलभ है। यहां विशेष चतुरिन्द्रिय जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

असंखेज्जदिभागो ।

बीइंदिया विसेसाहिया ॥ १९ ॥

कुदो ? तिण्हमिंदियाणं सामग्गीदो दोण्हमिंदियाणं सामग्गीए पाएणुवलंभादो । एत्थ विसेसपमाणं तीइंदियाणमसंखेज्जदिभागो । तेसिं को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

अणिंदिया अणंतगुणा ॥ २० ॥

कुदो ? अणंतादीदकालसंचिदा होदूण वयवदिरित्तत्तादो । एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कुदो ? बीइंदियदव्वोवट्टिदअणिंदियप्पमाणत्तादो ।

एइंदिया अणंतगुणा ॥ २१ ॥

कुदो ? एइंदियउवलद्धिकारणाणं बहूणमुवलंभादो । एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । कुदो ? अणिंदिओवट्टिदअणंतभागहीणसव्वजीवरासिपमाणत्तादो । अण्णेण वि पयारेण

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

त्रीन्द्रियोंसे द्वीन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ १९ ॥

क्योंकि, तीन इन्द्रियोंकी सामग्रीसे दो इन्द्रियोंकी सामग्री प्रायः सुलभ है । यहां विशेषका प्रमाण त्रीन्द्रिय जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उनका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

द्वीन्द्रियोंसे अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २० ॥

क्योंकि, अनिन्द्रिय जीव अनन्त अतीत कालोंमें संचित होकर व्ययसे रहित हैं । यहां गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह द्वीन्द्रिय द्रव्यसे भाजित अनिन्द्रिय राशिप्रमाण है ।

एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २१ ॥

क्योंकि, एक इन्द्रियकी उपलब्धिके कारण बहुत पाये जाते हैं । यहां गुणकार अभव्यसिद्धिक, सिद्ध और सर्व जीवराशिके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह अनिन्द्रिय जीवोंसे अपवर्तित अनन्त भाग हीन (अर्थात् त्रसराशिसे हीन) सर्व

अप्पाबहुगपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा चउरिंदियपज्जत्ता ॥ २२ ॥

कुदो ? विस्ससादो ।

पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २३ ॥

कारणं पुव्वभणिदं । एत्थ विसेसो चउरिंदियाणं असंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलिआए असंखेज्जदिभागो ।

बीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २४ ॥

कारणं पुव्वमेव परूविदं । एत्थ विसेसपमाणं पंचिंदियपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । तेसिं को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २५ ॥

जीवराशिप्रमाण है । अन्य प्रकारसे भी अल्पबहुत्वके निरूपण करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीव सबमें स्तोक हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, ऐसा स्वभावसे है ।

चतुरिन्द्रिय पर्याप्तोंसे पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २३ ॥

स्वभावरूप कारण पूर्वमें ही कहा जा चुका है । यहां विशेषका प्रमाण चतुरिन्द्रिय जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

पंचेन्द्रिय पर्याप्तोंसे द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २४ ॥

इसका कारण पूर्वमें ही कहा जा चुका है । यहां विशेषका प्रमाण पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका असंख्यातवां भाग है ?

शंका—उनका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग उनका प्रतिभाग है ।

द्वीन्द्रिय पर्याप्तोंसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २५ ॥

कुदो ? विस्ससादो । एत्थ विसेसपमाणं बीइंदियपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ २६ ॥

कुदो ? पावाहियाणं जीवाणं बहूणं संभवादो । एत्थ गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदअविरुद्धुवदेसादो । पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेण जगपदरे भागे हिदे तीइंदियपज्जत्तपमाणं होदि । तमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागेणोवट्टिदजगपदरपमाणं पंचिंदियअपज्जत्तदव्वं होदि ।

चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २७ ॥

कुदो ? पावेण विणट्ठसोइंदियाणं बहूणं संभवादो । एत्थ विसेसपमाणं

....

क्योंकि, ऐसा स्वभावसे है । यहां विशेषका प्रणाण द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उनका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग उनका प्रतिभाग है ।

त्रीन्द्रिय पर्याप्तोंसे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ २६ ॥

क्योंकि, पापप्रचुर जीवोंकी सम्भावना बहुत है । यहां गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह आचार्यपरम्परागत अविरूद्ध उपदेशसे जाना जाता है ।

प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे जगप्रतरके भाजित करनेपर त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है । उसे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका द्रव्य होता है ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २७ ॥

क्योंकि, पापसे नष्ट है श्रोत्र इन्द्रिय जिनकी ऐसे जीव बहुत सम्भव हैं । यहां

पंचिंदियअपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो। को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

तीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २८ ॥

कुदो ? पावभरेण बहुआणं चक्खिंदियाभावादो। एत्थ विसेसपमाणं चउरिंदिय-अपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

बीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ २९ ॥

कारणं ? पावेण णट्ठघाणिंदियाणं बहुआणं संभवादो । एत्थ विसेसपमाणं तीइंदियअपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो। को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

अणिंदिया अणंतगुणा ॥ ३० ॥

कुदो ? अणंतकालसंचिदा होदूण वयविरहिदत्तादो । एत्थ गुणगारो पुव्वं परूविदो ।

विशेषका प्रमाण पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका— उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तोंसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २८ ॥

क्योंकि, पापके भारसे बहुत जीवोंके चक्षु इन्द्रियका अभाव है । यहां विशेषका प्रमाण चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

त्रीन्द्रिय अपर्याप्तोंसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ २९ ॥

क्योंकि, पापसे जिनकी घ्राण इन्द्रिय नष्ट है ऐसे जीव बहुत सम्भव हैं । यहां विशेषका प्रमाण त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका असंख्यातवां भाग है ।

शंका— उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

द्वीन्द्रिय अपर्याप्तोंसे अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ३० ॥

क्योंकि, वे अनन्त कालमें संचित होकर व्ययसे रहित हैं । यहां गुणकार पूर्वप्ररूपित है ।

बादरेइंदियपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ३१ ॥

कुदो ? सव्वजीवाणमसंखेज्जदिभागत्तादो ।

बादरेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥

कुदो ? अपज्जत्तुप्पत्तिपाओग्गअसुहपरिणामाणं बहुत्तादो । एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । कधमेदं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदअविरुद्धोवदेसादो ।

बादरेइंदिया विसेसाहिया ॥ ३३ ॥

केत्तियो विसेसो ? बादरेइंदियपज्जत्तमेत्तो ।

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ३४ ॥

कुदो ? सुहुमेइंदिएसु उप्पत्तिणिमित्तपरिणामबाहुल्लियादो । एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । कुदो एदमवगम्मदे ? गुरूवदेसादो ।

अनिन्द्रियोंसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ३१ ॥

क्योंकि, वे सब जीवोंके असंख्यातवें भाग हैं ।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३२ ॥

क्योंकि, अपर्याप्तोंमें उत्पत्तिके योग्य अशुभ परिणामवाले जीव बहुत हैं । यहां गुणकार असंख्यात लोकप्रमाण है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह आचार्यपरम्परागत अविरुद्ध उपदेशसे जाना जाता है ।

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंसे बादर एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३३ ॥

शंका—यहां विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके बराबर यहां विशेषका प्रमाण है ।

बादर एकेन्द्रियोंसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३४ ॥

क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें उत्पन्न होनेके निमित्तभूत परिणामोंकी प्रचुरता है । यहां गुणकार असंख्यात लोक हैं ।

शंका— यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— यह गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

सुहुमेइंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ३५ ॥

कुदो ? मज्झिमपरिणामेसु बहूणं जीवाणं संभवादो । किमट्ठं संखेज्जगुणं ? विस्ससादो ।

सुहुमेइंदिया विसेसाहिया ॥ ३६ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? सुहुमेइंदियअपज्जत्तमेत्तो ।

एइंदिया विसेसाहिया ॥ ३७ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरेइंदियमेत्तो ।

कायाणुवादेण सव्वत्थोवा तसकाइया ॥ ३८ ॥

कुदो ? तसेसुप्पत्तिपाओग्गपरिणामेसु जीवाणं अदिव तणुत्तादो[1] । ण च सुहपरि-

---

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ३५ ॥

क्योंकि, मध्यम परिणामोंमें बहुतसे जीवोंकी संभावना है ।

शंका— संख्यातगुणे किस लिये हैं ?

समाधान— स्वभावसे संख्यातगुणे हैं ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तोंसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३६ ॥

शंका— विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान— विशेषका प्रमाण सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके बराबर है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रियोंसे एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं ॥ ३७ ॥

शंका— विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान— विशेषका प्रमाण बादर एकेन्द्रिय जीवोंके बराबर है ।

कायमार्गणाके अनुसार त्रसकायिक जीव सबमें स्तोक हैं ॥ ३८ ॥

क्योंकि, त्रसोंमें उत्पन्न होनके योग्य परिणामोंमें जीव अत्यन्त थोड़े पाये जाते

---

१ प्रतिषु ' तुदिव दणत्तादो ' इति पाठः ।

णामेसु बहुआ जीवा संभवंति, सुहपरिणामाणं पाएण असंभवादो ।

तेउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ३९ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । कुदो ? तसजीवेहि पदरस्स असंखेज्जदि-भागमेत्तेहि ओवट्टिदतेउक्काइयपमाणत्तादो ।

पुढविकाइया विसेसाहिया ॥ ४० ॥

एत्थ विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा तेउक्काइयाणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

आउक्काइया विसेसाहिया ॥ ४१ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा पुढविकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । तेसिं को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

वाउक्काइया विसेसाहिया ॥ ४२ ॥

केत्तिओ विसेसो ? असंखेज्जा लोगा आउक्काइयाणमसंखेज्जदिभागो । तेसिं को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

....

हैं । और शुभ परिणामोंमें बहुत जीव सम्भव नहीं हैं, क्योंकि, शुभ परिणाम प्रायः करके असंभव हैं ।

त्रसकायिकोंसे तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३९ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है, क्योंकि, वह जगप्रतरके असंख्यातवें भाग-मात्र त्रसकायिक जीवों द्वारा अपवर्तित तेजस्कायिक जीव राशिप्रमाण होता है ।

तेजस्कायिकोंसे पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४० ॥

यहां विशेषका प्रमाण तेजस्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

पृथिवीकायिकोंसे अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४१ ॥

यहां विशेष कितना है ? पृथिवीकायिक जीवोंके असंख्यातवें भागमात्र असं-ख्यात लोकप्रमाण विशेष है । उनका प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अप्कायिकोंसे वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४२ ॥

विशेष कितना है ? अप्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात लोक-प्रमाण विशेष है । उनका प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अकाइया अणंतगुणा ॥ ४३ ॥

एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तवाउक्काइयभजिदअकाइयप्पमाणत्तादो ।

वणप्फदिकाइया अणंतगुणा ॥ ४४ ॥

एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । कुदो ? अकाइएहि भजिदसगअणंतभागहीणसव्वजीवरासिपमाणादो । अण्णेण पयारेण छण्हं कायाणमप्पाबहुगपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा तसकाइयपज्जत्ता ॥ ४५ ॥

कुदो ? पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागेणोवट्टिदजगपदरपमाणत्तादो ।

तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ४६ ॥

एत्थ गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागेणोवट्टिदजगपदरमेत्ता तसकाइयअपज्जत्ता त्ति दव्वाणिओगद्दारे परूविदत्तादो ।

वायुकायिकोंसे अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ४३ ॥

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह असंख्यात लोकमात्र वायुकायिकोंसे भाजित अकायिक जीवोंके बराबर है ।

अकायिकोंसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ४४ ॥

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिक, सिद्ध और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह अकायिक जीवोंसे भाजित अपने अनन्त भागसे हीन सर्व जीवराशिप्रमाण है । अन्य प्रकारसे छह काय जीवोंके अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

त्रसकायिक पर्याप्त जीव सबमें स्तोक हैं ॥ ४५ ॥

क्योंकि, वे प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण हैं ।

त्रसकायिक पर्याप्तोंसे त्रसकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ४६ ॥

यहां गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, 'प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण त्रसकायिक अपर्याप्त जीव हैं' ऐसा द्रव्यानुयोगद्वारमें प्ररूपित किया है ।

तेउक्काइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ४७ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा, तसकाइयअपज्जत्तएहि तेउक्काइयअपज्जत्त-रासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जलोगुवलंभादो ।

पुढविकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४८ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा तेउक्काइयअपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

आउक्काइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४९ ॥

केत्तिओ विसेसो ? असंखेज्जा लोगा पुढविकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

वाउक्काइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५० ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा आउकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

त्रसकायिक अपर्याप्तोंसे तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥४७॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है, क्योंकि, त्रसकायिक अपर्याप्त जीवोंका तेजस्कायिक अपर्याप्त राशिमें भाग देनेपर असंख्यात लोक उपलब्ध होते हैं ।

तेजस्कायिक अपर्याप्तोंसे पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४८ ॥

विशेषका प्रमाण तेजस्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंसे अप्कायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥४९॥

विशेष कितना है ? पृथिवीकायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोकप्रमाण विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अप्कायिक अपर्याप्तोंसे वायुकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५० ॥

विशेषका प्रमाण अप्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

तेउक्काइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ५१ ॥

कुदो ? विस्ससादो । एत्थ तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाणि गुणगारो ।

पुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५२ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा तेउकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

आउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५३ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा पुढविकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

वाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५४ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा आउकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

अकाइया अणंतगुणा ॥ ५५ ॥

....

वायुकायिक अपर्याप्तोंसे तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, ऐसा स्वभावसे है । यहां तत्प्रायोग्य संख्यात रूप गुणकार है ।

तेजस्कायिक पर्याप्तोंसे पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥५२॥

विशेषका प्रमाण तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

पृथिवीकायिक पर्याप्तोंसे अप्कायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५३ ॥

विशेषका प्रमाण पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अप्कायिक पर्याप्तोंसे वायुकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५४ ॥

विशेषका प्रमाण अप्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

वायुकायिक पर्याप्तोंसे अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ५५ ॥

कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तवाउकाइयपज्जत्तएहि अकाइएसु ओवट्टिदेसु अणंतरूवोवलंभादो ।

वणप्फदिकाइयअपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ५६ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । कुदो ? अकाइएहि ओवट्टिदकिंचूणसव्वजीवरासिसंखेज्जदिभागपमाणत्तादो ।

वणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ५७ ॥

एत्थ गुणगारो तप्पाओग्गसंखेज्जसमया ।

वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ५८ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? वणप्फदिकाइयअपज्जत्तमेत्तो ।

णिगोदा विसेसाहिया ॥ ५९ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरबादरणिगोदपदिट्ठिदमेत्तो । अण्णेणेक्केण पयारेण अप्पाबहुगपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

क्योंकि, असंख्यात लोकमात्र वायुकायिक पर्याप्त जीवों द्वारा अकायिक जीवोंके अपवर्तित करनेपर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं ।

अकायिकोंसे वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ५६ ॥

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, उक्त गुणकार अकायिक जीवोंसे अपवर्तित कुछ कम सर्व जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण है ।

वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ५७ ॥

यहां गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात समयप्रमाण है ।

वनस्पतिकायिक पर्याप्तोंसे वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५८ ॥

विशेष कितना है ? वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके प्रमाण है ।

वनस्पतिकायिकोंसे निगोदजीव विशेष अधिक हैं ॥ ५९ ॥

विशेष कितना है ? बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर बादर-निगोद-प्रतिष्ठित जीवोंके बराबर है । अन्य एक प्रकारसे अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं ।

सव्वत्थोवा तसकाइया ॥ ६० ॥

कुदो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो ।

बादरतेउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥

कुदो ? तसकाइएहि बादरतेउकाइएसु ओवट्टिदेसु असंखेज्जलोगुवलंभादो ।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा असंखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा । गुणगारद्धछेदणसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदं कुदो वगम्मदे ? गुरूवदेसादो ।

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा असंखेज्जगुणा ॥ ६३ ॥

गुणगारपमाणमसंखेज्जा लोगा । तस्सद्धछेदणयसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

त्रसकायिक जीव सबमें स्तोक हैं ॥ ६० ॥

क्योंकि, वे जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

त्रसकायिकोंसे बादर तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६१ ॥

क्योंकि, त्रसकायिक जीवों द्वारा बादर तेजस्कायिक जीवोंके अपवर्तित करनेपर असंख्यात लोक उपलब्ध होते हैं ।

बादर तेजस्कायिकोंसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६२ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है । गुणकारकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

शंका — यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान — यह गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंसे बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित असंख्यातगुणे हैं ॥ ६३ ॥

गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है । उसकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादरपुढविकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६४ ॥

गुणगारपमाणमसंखेज्जा लोगा। तेसिमद्धछेदणयसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

बादरआउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६५ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा। तस्सद्धछेदणयसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

बादरवाउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६६ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा। गुणगारद्धछेदणयसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। बादरवाउकाइयाणं पुण अद्धछेदणयसलागा संपुण्णं सागरोवमं।

सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ६७ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा। गुणगारद्धछेदणयसलागाओ वि असंखेज्जा लोगा।

बादर निगोद जीव निगोदप्रतिष्ठितोंसे बादर पृथिवीकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६४ ॥

गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है। उनकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

बादर पृथिवीकायिकोंसे बादर अप्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६५ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोकप्रमाण है। उसकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं।

बादर अप्कायिकोंसे बादर वाउकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६६ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है। गुणकारकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। परन्तु बादर वायुकायिक जीवोंकी अर्द्धच्छेदशलाकायें सम्पूर्ण सागरोपमप्रमाण हैं।

बादर वायुकायिकोंसे सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६७ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है। गुणकारकी अर्द्धच्छेदशलाकायें भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं।

सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया ॥ ६८ ॥

एत्थ विसेसपमाणं असंखेज्जा लोगा सुहुमतेउकाइयाणमसंखेज्जदिभागो। को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा।

सुहुमआउकाइया विसेसाहिया ॥ ६९ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा सुहुमपुढविकाइयाणमसंखेज्जदिभागो। को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा।

सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ॥ ७० ॥

को विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमआउकाइयाणमसंखेज्जदिभागो। को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा।

अकाइया अणंतगुणा ॥ ७१ ॥

एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो।

बादरवणप्फदिकाइया अणंतगुणा ॥ ७२ ॥

सूक्ष्म तेजस्कायिकोंसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६८ ॥

यहां विशेषका प्रमाण सूक्ष्म तेजस्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात लोक है। प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है।

सूक्ष्म पृथिवीकायिकोंसे सूक्ष्म अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६९ ॥

यहां विशेषका प्रमाण सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात लोक है। प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है।

सूक्ष्म अप्कायिकोंसे सूक्ष्म वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७० ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म अप्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोकप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है।

सूक्ष्म वायुकायिकोंसे अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ७१ ॥

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है।

अकायिक जीवोंसे बादर वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ७२ ॥

एत्थ गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो। कुदो? गुणगारस्स सव्वजीवरासिअसंखेज्जदिभागत्तादो। ण च अकाइया सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलमेत्ता अत्थि, तस्स पढमवग्गमूलस्स अणंतभागत्तादो।

सुहुमवणप्फदिकाइया असंखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥

को गुणगारो? असंखेज्जा लोगा। सेसं सुगमं।

वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७४ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो? बादरवणप्फदिकाइयमेत्तो।

अण्णेसु सुत्तेसु सव्वाइरियसम्मदसु[1] एत्थेव अप्पाबहुगसमत्ती होदि, पुणो उवरिम-अप्पाबहुगपयारस्स प्रारंभो। एत्थ पुण सुत्तेसु अप्पाबहुगसमत्ती ण होदि।

णिगोदजीवा विसेसाहिया ॥ ७५ ॥

एत्थ चोदगो भणदि— णिप्फलमेदं सुत्तं, वणप्फदिकाइएहिंतो पुधभूद[2]-

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, गुणकार सर्व जीवराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। और अकायिक जीव सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलप्रमाण हैं नहीं, क्योंकि, वह प्रथम वर्गमूल अकायिक जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण है।

बादर वनस्पतिकायिकोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ७३ ॥

गुणकार कितना है? असंख्यात लोकप्रमाण है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंसे वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७४ ॥

विशेष कितना है? बादर वनस्पतिकायिक जीवोंके बराबर है।

सर्व आचार्योंसे सम्मत अन्य सूत्रोंमें यहां ही अल्पबहुत्वकी समाप्ति होती है, पुनः आगेके अल्पबहुत्वप्रकारका प्रारम्भ होता है। परन्तु इन सूत्रोंमें अल्पबहुत्वकी यहां समाप्ति नहीं होती।

वनस्पतिकायिकोंसे निगोद जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७५ ॥

शंका— यहां शंकाकार कहता है कि यह सूत्र निष्फल है, क्योंकि, वनस्पति-

१ प्रतिषु 'समुदेसु' इति पाठः। २ प्रतिषु 'पुव्वभूद-' इति पाठः।

णिगोदाणमणुवलंभादो । ण च वणप्फदिकाइएहिंतो पुधभूदा पुढविकाइयादिसु णिगोदा अत्थि त्ति आइरियाणमुवदेसो जेणेदस्स वयणस्स सुत्तत्तं पसज्जदे इदि ? एत्थ परिहारो वुच्चदे– होदु णाम तुब्भेहि वुत्तस्स सच्चत्तं, बहुएसु सुत्तेसु वणप्फदीणं उवरि णिगोदपदस्स अणुवलंभादो णिगोदाणमुवरि वणप्फदिकाइयाणं पढणस्सुवलंभादो[1] बहुएहि आइरिएहि संमदत्तादो[2] च । किं तु एदं सुत्तमेव ण होदि त्ति णावहारणं काउं जुत्तं । सो एवं भणदि जो चोद्दसपुव्वधरो केवलणाणी वा । ण च वट्टमाणकाले ते अत्थि, ण च तेसिं पासे सोदूणागदा वि संपहि उवलब्भंति । तदो थप्पं काऊण बे वि सुत्ताणि सुत्तासायणभीरूहि आइरिएहि वक्खाणेयव्वाणि त्ति । णिगोदाणमुवरि वणप्फदिकाइया विसेसाहिया होंति बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरमेत्तेण, वणप्फदिकाइयाणं उवरि णिगोदा पुण केण विसेसाहिया होंति त्ति भणिदे वुच्चदे । तं जहा— वणप्फदिकाइया त्ति वुत्ते बादरणिगोदपदिट्ठिदापदिट्ठिदजीवा ण घेत्तव्वा । कुदो ? आधेयादो आधारस्स भेददंसणादो ।

कायिक जीवोंसे पृथग्भूत निगोद जीव पाये नहीं जाते । तथा 'वनस्पतिकायिक जीवोंसे पृथग्भूत पृथिवीकायिकादिकोंमें निगोद जीव हैं' ऐसा आचार्योंका उपदेश भी नहीं है, जिससे इस वचनको सूत्रत्वका प्रसंग हो सके ?

समाधान—यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहते हैं— तुम्हारे द्वारा कहे हुए वचनमें भले ही सत्यता हो, क्योंकि, बहुतसे सूत्रोंमें वनस्पतिकायिक जीवोंके आगे 'निगोद' पद नहीं पाया जाता, निगोद जीवोंके आगे वनस्पतिकायिकोंका पाठ पाया जाता है, और ऐसा बहुतसे आचार्योंसे सम्मत भी है । किन्तु 'यह सूत्र ही नहीं है' ऐसा निश्चय करना उचित नहीं है । इस प्रकार तो वह कह सकता है जो कि चौदह पूर्वोंका धारक हो अथवा केवलज्ञानी हो । परन्तु वर्तमान कालमें न तो वे दोनों हैं और न उनके पासमें सुनकर आये हुए अन्य महापुरुष भी इस समय उपलब्ध होते हैं । अत एव सूत्रकी आशातना (छेद या तिरस्कार) से भयभीत रहनेवाले आचार्योंको स्थाप्य समझ कर दोनों ही सूत्रोंका व्याख्यान करना चाहिये ।

शंका—निगोद जीवोंके ऊपर वनस्पतिकायिक जीव बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर मात्रसे विशेषाधिक होते हैं, परन्तु वनस्पतिकायिक जीवोंके आगे निगोद-जीव किससे विशेषाधिक होते हैं ?

समाधान—उपर्युक्त शंकाका उत्तर इस प्रकार देते हैं— 'वनस्पतिकायिक जीव' ऐसा कहनेपर बादर निगोदोंसे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंका ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, आधेयसे, आधारका भेद देखा जाता है ।

१ प्रतिषु 'पढणस्सुवलंभादो' इति पाठः ।　　२ प्रतिषु 'समुदत्तादो' इति पाठः ।

वणप्फदिणामकम्मोदइल्लत्तणेण सव्वेसिमेगत्तमत्थि त्ति भणिदे होदु तेण एगत्तं, किंतु तमेत्थ अविवक्खियं, आहार-अणाहारत्तं चेव विवक्खियं। तेण वणप्फदिकाइएसु बादरणिगोदपदिट्ठिदापदिट्ठिदा ण गहिदा। वणप्फदिकाइयाणमुवरि 'णिगोदा विसेसाहिया' त्ति भणिदे बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरेहि बादरणिगोदपदिट्ठिदेहि य विसेसाहिया। बादरणिगोदपदिट्ठिदापदिट्ठिदाणं कधं णिगोदववएसो? ण, आहारे आहेओवयारादो तेसिं णिगोदत्तसिद्धीदो। वणप्फदिणामकम्मोदइल्लाणं सव्वेसिं वणप्फदिसण्णा सुत्ते दिस्सदि। बादरणिगोदपदिट्ठिदअपदिट्ठिदाणमेत्थ[1] सुत्ते वणप्फदिसण्णा किण्ण णिद्दिट्ठा? गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो। अम्हेहि गोदमो बादरणिगोदपदिट्ठिदाणं वणप्फदिसण्णं णेच्छदि त्ति तस्स अहिप्पाओ कहिओ।

शंका—वनस्पति नामकर्मके उदयसे संयुक्त होनेकी अपेक्षा सबोंके एकता है?

समाधान—वनस्पति नामकर्मोदयकी अपेक्षा उससे एकता रहे, किन्तु उसकी यहां विवक्षा नहीं है। यहां आधारत्व और अनाधारत्वकी ही विवक्षा है। इस कारण वनस्पतिकायिक जीवोंमें बादर निगोदोंमें प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंका ग्रहण नहीं किया गया।

वनस्पतिकायिक जीवोंके ऊपर 'निगोदजीव विशेष अधिक हैं' ऐसा कहनेपर बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंसे विशेष अधिक हैं (ऐसा समझना चाहिये)।

शंका—बादर निगोदजीवोंसे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंके 'निगोद' संज्ञा कैसे घटित होती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आधारमें आधेयका उपचार करनेसे उनके निगोदत्व सिद्ध होता है।

शंका—वनस्पति नामकर्मके उदयसे संयुक्त सब जीवोंके 'वनस्पति' संज्ञा सूत्रमें देखी जाती है। बादर निगोदजीवोंसे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंके यहां सूत्रमें वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं निर्दिष्ट की?

समाधान—इस शंकाका उत्तर गोतमसे पूछना चाहिये। हमने तो 'गौतम बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित जीवोंके 'वनस्पति' संज्ञा नहीं स्वीकार करते' इस प्रकार उनका अभिप्राय कहा है।

१ प्रतिषु 'मेच' इति पाठः।

पुणो अण्णेण पयारेण अप्पाबहुगपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा बादरतेउकाइयपज्जत्ता ॥ ७६ ॥

कुदो ? असंखेज्जपदरावलियपमाणत्तादो ।

तसकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७७ ॥

एत्थ गुणगारो जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? असंखेज्जपदरंगुलेहि ओवट्टिदजगपदरप्पमाणत्तादो ।

तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७८ ॥

गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? तसअपज्जत्तअवहारकालेण तसपज्जत्तअवहारकाले भागे हिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागोवलंभादो ।

वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७९ ॥

गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-पज्जत्तअवहारकालेण तसकाइयअवहारकाले भागे हिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-

फिर भी अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

बादर तेजस्कायिक जीव सबमें स्तोक हैं ॥ ७६ ॥

क्योंकि, वे असंख्यात प्रतरावलीप्रमाण हैं ।

बादर तेजस्कायिकोंसे त्रसकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ७७ ॥

यहां गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि वह असंख्यात प्रतरांगुलोंसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण है ।

त्रसकायिक पर्याप्तोंसे त्रसकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ७८ ॥

यहां गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, त्रस अपर्याप्त जीवोंके अवहारकालसे त्रस पर्याप्त जीवोंके अवहारकालको भाजित करनेपर आवलीका असंख्यातवां भाग लब्ध होता है ।

त्रसकायिक अपर्याप्तोंसे वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव असंख्यात-गुणे हैं ॥ ७९ ॥

यहां गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके अवहारकालसे त्रसकायिक जीवोंके अवहारकालको भाजित

भागुवलंभादो ।

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८० ॥

बादरणिगोदजीवणिद्देसो किमट्ठं कदो, बादरणिगोदपदिट्ठिदा त्ति वत्तव्वं ? ण, बादरणिगोदपदिट्ठिदाणं णिगोदजीवाधाराणं[1] सयं पत्तेयसरीराणमुवयारबलेण णिगोदजीवमण्णा एत्थ होदु त्ति जाणावणट्ठं कदो । गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? बादरणिगोदपदिट्ठिदअवहारकालेण बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअवहारकाले भागे हिदे अवलियाए असंखेज्जदिभागुवलंभादो ।

बादरपुढविकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८१ ॥

गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

करनेपर पल्योपमका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है ।

वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तोंसे बादर निगोदजीव निगोद-प्रतिष्ठित पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८० ॥

शंका—'बादर निगोद जीव' का निर्देश किस लिये किया, बादर-निगोद-प्रतिष्ठित' इतना ही कहना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, निगोदजीवोंके आधारभूत व स्वयं प्रत्येकशरीर ऐसे बादर निगोदजीवोंसे प्रतिष्ठित जीवोंको यहां उपचारके बलसे 'निगोदजीव' संज्ञा हो इस बातके ज्ञापनार्थ 'बादर निगोदजीव' का निर्देश किया है । गुणकार यहां आवलीका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, बादर-निगोद प्रतिष्ठित जीवोंके अवहारकालसे बादर-वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके अवहारकालको भाजित करनेपर आवलीका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है ।

बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्तोंसे बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ८१ ॥

गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है । कारण पहिलेके समान कहना चाहिये ।

१ प्रतिषु '-जीवाधारणं' इति पाठः ।

बादरआउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥

गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो। कारणं पुव्वं व वत्तव्वं।

बादरवाउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥

गुणगारो असंखेज्जाओ सेडीओ पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। हेट्ठिम-रासिणा उवरिमरासिमोवट्टिय सव्वत्थ गुणगारो उप्पाएदव्वो।

बादरतेउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥

गुणगारो असंखेज्जा लोगा। गुणगारद्धच्छेदणयसलागाओ सागरोवमं[1] पलिदो-वमस्स असंखेज्जदिभागेणूणयं।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८५ ॥

गुणगारपमाणमसंखेज्जा लोगा। गुणगारद्धच्छेदणयसलागाओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तोंसे बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ८२ ॥

गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है। कारण पहिलेके समान कहना चाहिये।

बादर अप्कायिक पर्याप्तोंसे बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ८३ ॥

यहां गुणकार प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणी है। अधस्तन राशिसे उपरिम राशिका अपवर्तन कर सर्वत्र गुणकार उत्पन्न करना चाहिये।

बादर वायुकायिक पर्याप्तोंसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ८४ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है। गुणकारकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमप्रमाण हैं।

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तोंसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ८५ ॥

गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है। गुणकारकी अर्द्धच्छेदशलाकायें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

१ अप्रतौ ' सागरोवमं' इति पाठः नास्ति।

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८६ ॥

एत्थ गुणगारो असंखेज्जा लोगा। तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागो।

बादरपुढविकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥

गुणगारो असंखेज्जा लोगा। तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८८ ॥

गुणगारो असंखेज्जा लोगा। तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

बादरवाउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ८९ ॥

गुणगारपमाणमसंखेज्जा लोगा। तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागो।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्तोंसे निगोदप्रतिष्ठित बादर निगोद-जीव अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ८६ ॥

यहां गुणकार असंख्यात लोक है। उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

निगोदप्रतिष्ठित बादर निगोद जीव अपर्याप्तोंसे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ८७ ॥

गुणकार असंख्यात लोक है। उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण हैं।

बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंसे बादर अप्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यात-गुणे हैं ॥ ८८ ॥

गुणकार असंख्यात लोक है। उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण हैं।

बादर अप्कायिक अपर्याप्तोंसे बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ८९ ॥

गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है। उनके अर्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ९० ॥

गुणगारपमाणमसंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि वि असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९१ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमतेउकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमआउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९२ ॥

केत्तियो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमपुढविकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमवाउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९३ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा सुहुमआउकाइयाणमसंखेज्जदिभागो । तेसिं को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

बादर वायुकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ९० ॥

गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है । उनके अर्धच्छेद भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।

सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ९१ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म तेजस्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोकप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ९२ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोकप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ९३ ॥

विशेषका प्रमाण सूक्ष्म अप्कायिक जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक है । उनका प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ९४ ॥

एत्थ गुणगारो तप्पाओग्गसंखेज्जसमया ।

सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९५ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा सुहुमतेउकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । पडिभागो असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमआउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९६ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ९७ ॥

विसेसपमाणमसंखेज्जा लोगा सुहुमआउकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ९४ ॥

यहां गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात समय है ।

सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ९५ ॥

विशेषका प्रमाण सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक है । प्रतिभाग असंख्यात लोक है ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ९६ ॥

विशेषका प्रमाण सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ९७ ॥

विशेषका प्रमाण सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

अकाइया अणंतगुणा ॥ ९८ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कुदो ? सुहुमवाउकाइयपज्जत्तेहि ओवट्टिदअकाइयपमाणत्तादो ।

बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ९९ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । कुदो ? सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो अणंतगुणहीणेहि अकाइएहि असंखेज्जलोगगुणेहि ओवट्टिदसव्वजीवरासिपमाणत्तादो ।

बादरवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ १०० ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा ।

बादरवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ १०१ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्तमेत्तो ।

सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तोंसे अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ९८ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीवोंसे अपवर्तित अकायिक जीवोंके बराबर है ।

अकायिक जीवोंसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ९९ ॥

यहां गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे अनन्तगुणे हीन असंख्यात लोकगुणे अकायिक जीवोंसे अपवर्तित सर्व जीवराशिप्रमाण है ।

बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तोंसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १०० ॥

गुणकार कितना है ? असंख्यात लोकप्रमाण है ।

बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे बादर वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ १०१ ॥

विशेष कितना है ? बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके बराबर है ।

सुहुमवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ १०२ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमवणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ १०३ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ १०४ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? सुहुमवणप्फदिकाइयअपज्जत्तमेत्तो ।

वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ १०५ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयमेत्तो । बादरवणप्फदिकाइएसु बादरणिगोदपदिट्ठिदापदिट्ठिदा ण अत्थि, तेसिं वणप्फदिकाइयववएसाभावादो ।

णिगोदजीवा विसेसाहिया ॥ १०६ ॥

बादर वनस्पतिकायिकोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १०२ ॥

गुणकार कितना है ? असंख्यात लोकप्रमाण है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ १०३ ॥

गुणकार कितना है ? संख्यात समयप्रमाण है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तोंसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ १०४ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके बराबर है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंसे वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ १०५ ॥

विशेष कितना है ? बादर वनस्पतिकायिक जीवोंके बराबर है । बादर वनस्पतिकायिक जीवोंमें बादर-निगोद-प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीव नहीं हैं, क्योंकि, उनके 'वनस्पतिकायिक' संज्ञाका अभाव है ।

वनस्पतिकायिकोंसे निगोद जीव विशेष अधिक हैं ॥ १०६ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरेहि बादरणिगोदपदिट्ठिदेहि य पज्जत्तमेत्तो ।

जोगाणुवादेण सव्वत्थोवा मणजोगी ॥ १०७ ॥

कुदो ? देवाणं संखेज्जदिभागप्पमाणत्तादो ।

वचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ १०८ ॥

कुदो ? पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेण वचिजोगिअवहारकालेण संखेज्जपदरंगुलमेत्ते मणजोगिअवहारकाले भागे हिदे संखेज्जरूवोवलंभादो ।

अजोगी अणंतगुणा ॥ १०९ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो ।

विशेष कितना है ? बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर तथा बादर-निगोद प्रतिष्ठित जीवों सहित पर्याप्त शरीर मात्र आश्रित जीवराशिप्रमाण वह विशेष है ।

विशेषार्थ—ऊपर सूत्र ७५ की टीकामें बतलाया जा चुका है कि प्रस्तुत सूत्रोंमें वनस्पतिकायिक जीवोंके भीतर उन एकेन्द्रिय जीवोंका समावेश नहीं किया गया जो स्वयं अप्रतिष्ठित अर्थात् प्रत्येककाय होते हुए भी बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित हैं । जीवकाण्ड गाथा १९९ के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक जीवों तथा केवली, आहारक व देव-नारकियोंके शरीरोंको छोड़ शेष समस्त संसारी पर्याप्त जीवोंके शरीर निगोदिया जीवोंसे प्रतिष्ठित हैं । अतएव निगोद जीवोंके प्रमाण प्ररूपणमें टीकाकार द्वारा बतलाये गये विशेष द्वारा उन्हीं सब राशियोंका ग्रहण किया गया प्रतीत होता है ।

योगमार्गणाके अनुसार मनोयोगी जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १०७ ॥

क्योंकि, वे देवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

मनोयोगियोंसे वचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १०८ ॥

क्योंकि, प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण वचनयोगि-अवहारकालसे संख्यात प्रतरांगुलप्रमाण मनोयोगि-अवहारकालको भाजित करनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

वचनयोगियोंसे अयोगी जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १०९ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है ।

कायजोगी अणंतगुणा ॥ ११० ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवपढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो। अण्णेण पयारेण जोगप्पाबहुअपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा आहारमिस्सकायजोगी ॥ १११ ॥

सुगमं।

आहारकायजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११२ ॥

को गुणगारो? दोण्णि रूवाणि।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा ॥ ११३ ॥

गुणगारो जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो।

सच्चमणजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११४ ॥

कुदो? विस्ससादो।

अयोगियोंसे काययोगी अनन्तगुणे हैं ॥ ११० ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है। अन्य प्रकारसे योगमार्गणाकी अपेक्षा अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

आहारमिश्रकाययोगी सबमें स्तोक हैं ॥ १११ ॥

यह सूत्र सुगम है।

आहारमिश्रकाययोगियोंसे आहारकाययोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११२ ॥

गुणकार कितना है? गुणकार दो रूप है।

आहारकाययोगियोंसे वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंख्यातगुणे हैं ॥ ११३ ॥

गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां भाग है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंसे सत्यमनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११४ ॥

क्योंकि, ऐसा स्वभावसे है।

मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११५ ॥

कुदो ? सच्चमणजोगअद्धादो मोसमणजोगअद्धाए संखेज्जगुणत्तादो सच्चमणजोगपरिणमणवारेहिंतो मोसमणजोगपरिणमणवाराणं संखेज्जगुणत्तादो वा ।

सच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११६ ॥

एत्थ पुव्वं व दोहि पयारेहि संखेज्जगुणत्तस्स कारणं वत्तव्वं ।

असच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११७ ॥

एत्थ वि पुव्विल्लं दुविहकारणं वत्तव्वं ।

मणजोगी विसेसाहिया ॥ ११८ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? सच्च-मोस-सच्चमोसमणजोगिमेत्तो विसेसो ।

सच्चवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ ११९ ॥

कारणं ? मणजोगिअद्धादो वचिजोगिअद्धाए संखेज्जगुणत्तादो मणजोगवारेहिंतो सच्चवचिजोगवाराणं संखेज्जगुणत्तादो वा ।

सत्यमनोयोगियोंसे मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११५ ॥

क्योंकि, सत्यमनोयोगके कालकी अपेक्षा मृषामनोयोगका काल संख्यातगुणा है, अथवा सत्यमनोयोगके परिणमनवारोंकी अपेक्षा मृषामनोयोगके परिणमनवार संख्यातगुणे हैं ।

मृषामनोयोगियोंसे सत्य-मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११६ ॥

यहां पूर्वके समान दोनों प्रकारोंसे संख्यातगुणत्वका कारण कहना चाहिये ।

सत्य-मृषामनोयोगियोंसे असत्य-मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११७ ॥

यहां भी पूर्वोक्त दोनों प्रकारका कारण कहना चाहिये ।

असत्य-मृषामनोयोगियोंसे मनोयोगी विशेष अधिक हैं ॥ ११८ ॥

विशेष कितना है ? सत्य, मृषा और सत्य-मृषा मनोयोगियोंके बराबर है ।

मनोयोगियोंसे सत्यवचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ ११९ ॥

क्योंकि, मनोयोगिकालसे वचनयोगिकाल संख्यातगुणा है, अथवा मनोयोगवारोंसे सत्यवचनयोगवार संख्यातगुणे हैं ।

मोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२० ॥

एत्थ वि पुव्वं व दुविहकारणं वत्तव्वं ।

सच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२१ ॥

एत्थ वि तं चेव कारणं ।

वेउव्वियकायजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२२ ॥

कुदो ? मण-वचिजोगद्धाहिंतो कायजोगद्धाए संखेज्जगुणत्तादो ।

असच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२३ ॥

कुदो ? बीइंदियपज्जत्तजीवाणं गहणादो ।

वचिजोगी विसेसाहिया ॥ १२४ ॥

केत्तियमेत्तेण ? सच्च-मोस-सच्चमोसवचिजोगिमेत्तेण ।

अजोगी अणंतगुणा ॥ १२५ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो ।

सत्यवचनयोगियोंसे मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२० ॥

यहां भी पूर्वके समान दोनों प्रकारका कारण कहना चाहिये ।

मृषावचनयोगियोंसे सत्य-मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२१ ॥

यहां भी वही उपर्युक्त कारण है ।

सत्य-मृषावचनयोगियोंसे वैक्रियिककाययोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, मन वचनयोगकालोंसे काययोगकाल संख्यातगुणा है ।

वैक्रियिककाययोगियोंसे असत्य-मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२३ ॥

क्योंकि, यहां द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका ग्रहण किया गया है ।

असत्य-मृषावचनयोगियोंसे वचनयोगी विशेष अधिक हैं ॥ १२४ ॥

कितने मात्र विशेषसे अधिक हैं ? सत्य, मृषा और सत्यमृषा वचनयोगिमात्र-विशेषसे अधिक हैं ।

वचनयोगियोंसे अयोगी अनन्तगुणे हैं ॥ १२५ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है ।

कम्मइयकायजोगी अणंतगुणा ॥ १२६ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । कुदो ? अंतोमुहुत्तगुणिदअजोगिरासिपमाणेणोवट्टिदसव्वजीवरासिमेत्तत्तादो ।

ओरालियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा ॥ १२७ ॥

को गुणगारो ? अंतोमुहुत्तं ।

ओरालियकायजोगी संखेज्जगुणा ॥ १२८ ॥

सुगमं ।

कायजोगी विसेसाहिया ॥ १२९ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? सेसकायजोगिमेत्तो ।

वेदाणुवादेण सव्वत्थोवा पुरिसवेदा ॥ १३० ॥

कुदो ? संखेज्जपदरंगुलोवट्टिदजगपदरप्पमाणत्तादो ।

इत्थिवेदा संखेज्जगुणा ॥ १३१ ॥

अयोगियोंसे कार्मणकाययोगी अनन्तगुणे हैं ॥ १२६ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह अन्तर्मुहूर्तसे गुणित अयोगिराशिप्रमाणसे अपवर्तित सर्व जीवराशिप्रमाण है ।

कार्मणकाययोगियोंसे औदारिकमिश्रकाययोगी असंख्यातगुणे हैं ॥ १२७ ॥

गुणकार कितना है ? गुणकार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंसे औदारिककाययोगी संख्यातगुणे हैं ॥ १२८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिककाययोगियोंसे काययोगी विशेष अधिक हैं ॥ १२९ ॥

विशेष कितना है ? शेष काययोगिप्रमाण है ।

वेदमार्गणाके अनुसार पुरुषवेदी सबमें स्तोक हैं ॥ १३० ॥

क्योंकि, वे संख्यात प्रतरांगुलोंसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण हैं ।

पुरुषवेदियोंसे स्त्रीवेदी संख्यातगुणे हैं ॥ १३१

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

अवगदवेदा अणंतगुणा ॥ १३२ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो ।

णवुंसयवेदा अणंतगुणा ॥ १३३ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो अणंतगुणो ।

वेदमग्गणाए अण्णेण पयारेण अप्पाबहुअपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु पयदं । सव्वत्थोवा सण्णिणवुंसयवेद-गब्भोवक्कंतिया ॥ १३४ ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपदरंगुलेहि जगपदरम्मि भागे हिदे सण्णि-णवुंसयवेदगब्भोवक्कंतिया जेण होंति तेण थोवा ।

सण्णिपुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १३५ ॥

....

गुणकार कितना है ? संख्यात समयप्रमाण है ।

स्त्रीवेदियोंसे अपगतवेदी अनन्तगुणे हैं ॥ १३२ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है ।

अपगतवेदियोंसे नपुंसकवेदी अनन्तगुणे हैं ॥ १३३ ॥

गुणकार कितना है ? अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे अनन्तगुणा है ।

वेदमार्गणामें अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

यहां पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनि जीवोंका अधिकार है । संज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव सबसें स्तोक हैं ॥ १३४ ॥

चूंकि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र प्रतरांगुलोंका जगप्रतरमें भाग देनेपर संज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीवोंका प्रमाण होता है, अत एव वे स्तोक हैं ।

संज्ञी नपुंसक गर्भोपक्रान्तिकोंसे संज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव संख्यातगुणे हैं ॥ १३५ ॥

कुदो ? सण्णीसु गब्भजेसु णवुंसयवेदाणं पाएण संभवाभावादो ।

सण्णिइत्थिवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १३६ ॥

कुदो ? सण्णिगब्भजेसु पुरिसवेदएहिंतो बहुआणं इत्थिवेदयाणमुवलंभादो ।

सण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥१३७॥

कुदो ? सण्णिगब्भजेहिंतो सण्णिसम्मुच्छिमाणं संखेज्जगुणत्तादो । सम्मुच्छिमेसु इत्थि-पुरिसवेदा णत्थि । कुदो णव्वदे ? इत्थि-पुरिसवेदाणं सम्मुच्छिमाधियारे अप्पाबहुगपरूवणाभावादो ।

सण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥१३८॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो णव्वदे ? परमगुरूवदेसादो ।

क्योंकि, संज्ञी गर्भजोंमें नपुंसकवेदियोंकी प्रायः सम्भावना नहीं है ।

संज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिकोंसे संज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव संख्यातगुणे हैं ॥ १३६ ॥

क्योंकि, संज्ञी गर्भजोंमें पुरुषवेदियोंसे स्त्रीवेदी जीव बहुत पाये जाते हैं ।

संज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिकोंमे संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्छिम पर्याप्त संख्यातगुणे हैं ॥ १३७ ॥

क्योंकि, संज्ञी गर्भजोंसे संज्ञी सम्मूर्छिम जीव संख्यातगुणे है । सम्मूर्छिम जीवोंमें स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नहीं हैं ।

शंका—यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान—सम्मूर्छिमाधिकारमें स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंके अल्पबहुत्वका प्ररूपण न करनेसे जाना जाता है ।

संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्छिम पर्याप्तोंसे संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्छिम अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १३८ ॥

गुणकार कितना है ? आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

शंका—यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान—यह परम गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

सण्णिइत्थि-पुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया असंखेज्जवासाउआ दो वि तुल्ला असंखेज्जगुणा ॥ १३९ ॥

कधं दोण्हं समाणत्तं ? असंखेज्जवासाउएसु इत्थि-पुरिसजुगलाणं चेव समुप्पत्तीदो । णवुंसयवेदा सम्मुच्छिमा च असण्णिणो च सुविणंतरे वि ण तत्थ संभवंति, अच्चंताभावेण अवहत्थियत्तादो । एत्थ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो णव्वदे ? आइरियपरंपरागयउवएसादो । एदम्हादो अइक्कंतरासीणं सव्वेसिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपदरंगुलाणि जगपदरभागहारो होदि । एत्थ पुण संखेज्जाणि पदरंगुलाणि भागहारो ।

असण्णिणवुंसयवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १४० ॥

कुदो ? णोइंदियावरणखओवसमस्स पंचिंदिएसु बहुआणमभावादो ।

असण्णिपुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १४१ ॥

संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम अपर्याप्तोंसे संज्ञी स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक असंख्यातवर्षायुष्क दोनों ही तुल्य असंख्यातगुणे हैं ॥ १३९ ॥

शंका — दोनोंके समानता कैसे है ?

समाधान — क्योंकि, असंख्यातवर्षायुष्कोंमें स्त्री-पुरुष युगलोंकी ही उत्पत्ति होती है । नपुंसकवेदी, सम्मूर्च्छिम व असंज्ञी जीव स्वप्नमें भी वहां सम्भव नहीं हैं, क्योंकि, वे अत्यन्ताभावसे निराकृत हैं । यहां गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ।

शंका — यह कहांसे जाना जाता है ?

समाधान — यह आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है ।

इससे सब अतिक्रान्त राशियोंका जगप्रतरभागहार पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र प्रतरांगुलप्रमाण होता है । किन्तु यहां संख्यात प्रतरांगुल भागहार है ।

उपर्युक्त जीवोंसे असंज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यातगुणे हैं ॥ १४० ॥

क्योंकि, नोइन्द्रियावरणका क्षयोपशम पंचेन्द्रियोंमें बहुतोंके नहीं होता ।

असंज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिकोंसे असंज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यातगुणे हैं ॥ १४१ ॥

सुगममेदं ।

असण्णिइत्थिवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा ॥ १४२ ॥

असंखेज्जवासाउअइत्थि-पुरिसवेदरासिप्पहुडि जाव असण्णिइत्थिवेदगब्भोवक्कंतियरासि त्ति ताव जगपदरभागहारो संखेज्जाणि पदरंगुलाणि । सेसं सुगमं ।

असण्णी णवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ १४३ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । एत्थ जगपदरभागहारो पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागो ।

असण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ १४४ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

कसायाणुवादेण सव्वत्थोवा अकसाई ॥ १४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिकोंसे असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिक संख्यातगुणे हैं ॥ १४२ ॥

असंख्यातवर्षायुष्क स्त्री-पुरुषवेदराशिसे लेकर असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिक राशि तक जगप्रतरका भागहार संख्यात प्रतरांगुल है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिकोंसे असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ १४३ ॥

गुणकार कितना है ? संख्यात समयप्रमाण है । यहां जगप्रतरभागहार प्रतरांगुलका संख्यातवां भाग है ।

असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तोंसे असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ १४४ ॥

गुणकार कितना है ? आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

कषायमार्गणाके अनुसार अकषायी जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १४५ ॥

सुगममेदं ।

माणकसाई अणंतगुणा ॥ १४६ ॥

गुणगारो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो अणंतगुणा । सेसं सुगमं ।

कोधकसाई विसेसाहिया ॥ १४७ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? अणंतो माणकसाईणं असंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मायकसाई विसेसाहिया ॥ १४८ ॥

एत्थ विसेसपमाणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

लोभकसाई विसेसाहिया ॥ १४९ ॥

सुगमं ।

णाणाणुवादेण सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणी ॥ १५० ॥

कुदो ? संखेज्जत्तादो ।

यह सूत्र सुगम है ।

अकषायी जीवोंसे मानकषायी जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १४६ ॥

गुणकार सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे अनन्तगुणा है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

मानकषायियोंसे क्रोधकषायी जीव विशेष अधिक हैं ॥ १४७ ॥

विशेष कितना है ? मानकषायी जीवोंके असंख्यातवें भाग अनन्तप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

क्रोधकषायियोंसे मायाकषायी जीव विशेष अधिक हैं ॥ १४८ ॥

यहां विशेषका प्रमाण पूर्वके समान कहना चाहिये ।

मायाकषायियोंसे लोभकषायी विशेष अधिक हैं ॥ १४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

ज्ञानमार्गणाके अनुसार मनःपर्ययज्ञानी जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १५० ॥

क्योंकि, वे संख्यात हैं ।

ओहिणाणी असंखेज्जगुणा ॥ १५१ ॥

गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्ग-मूलाणि । कुदो ? संखेज्जरूवगुणिदआवलियाए असंखेज्जदिभागेणोवट्टिदपलिदोवम-पमाणत्तादो ।

आभिणिबोहिय-सुदणाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया ॥१५२॥

को विसेसो ? ओहिणाणीणं असंखेज्जदिभागो ओहिणाणविरहिदतिरिक्ख-मणुस-सम्माइट्ठिरासी ।

विभंगणाणी असंखेज्जगुणा ॥ १५३ ॥

गुणगारो जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ सेडीओ । कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तपदरंगुलेहि ओवट्टिदजगपदरपमाणत्तादो ।

केवलणाणी अणंतगुणा ॥ १५४ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंसे अवधिज्ञानी असंख्यातगुणे हैं ॥ १५१ ॥

गुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग असंख्यात पल्योपम प्रथम वर्गमूल है, क्योंकि, वह संख्यात रूपोंसे गुणित आवलीके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित पल्योपम प्रमाण है।

अवधिज्ञानियोंसे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों ही तुल्य विशेष अधिक हैं ॥ १५२ ॥

विशेष क्या है ? अवधिज्ञानियोंके असंख्यातवें भाग अवधिज्ञानसे रहित तिर्यंच व मनुष्य सम्यग्दृष्टिराशि विशेष है ।

मति-श्रुतज्ञानियोंसे विभंगज्ञानी असंख्यातगुणे हैं ॥ १५३ ॥

गुणकार जगप्रतरके असंख्यातवें भाग असंख्यात जगश्रेणी है, क्योंकि, वह पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र प्रतरांगुलोंसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण है ।

विभंगज्ञानियोंसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं ॥ १५४ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमसंखेज्जदिभागो ।

मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा ॥ १५५ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवपढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । कुदो ? केवलणाणीहि ओवट्टिदे देसूणसव्वजीवरासिपमाणत्तादो ।

संजमाणुवादेण सव्वत्थोवा संजदा ॥ १५६ ॥

कुदो ? संखेज्जत्तादो ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । कुदो ? संखेज्जरूवगुणिदअसंखेज्जावलिओवट्टिदपलिदोवमपमाणत्तादो ।

णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा ॥ १५८ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

केवलज्ञानियोंसे मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी दोनों ही तुल्य अनन्तगुणे हैं ॥ १५५ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिकोंसे, सिद्धोंसे और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह केवलज्ञानियोंसे अपवर्तित कुछ कम सर्व जीवराशिप्रमाण है।

संयममार्गणानुसार संयत जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १५६ ॥

क्योंकि, वे संख्यात हैं ।

संयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणे है ॥ १५७ ॥

गुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग असंख्यात पल्योपम प्रथम वर्गमूल है, क्योंकि, वह संख्यात रूपोंसे गुणित असंख्यात आवलियोंसे अपवर्तित पल्योपमप्रमाण है।

संयतासंयत जीवोंसे न संयत न असंयत न संयतासंयत ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १५८ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो। कुदो? असंखेज्जोवट्टिदसिद्धप्पमाणत्तादो।

असंजदा अणंतगुणा ॥ १५९ ॥

गुणगारो अणंताणि सव्वजीवपढमवग्गमूलाणि। कुदो? सिद्धोवट्टिददेसूण-सव्वजीवरासित्तादो। अण्णेण पयारेण अप्पाबहुगपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा ॥ १६० ॥

सुगमं।

परिहारसुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६१ ॥

गुणगारो संखेज्जसमया।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६२ ॥

को गुणगारो? संखेज्जसमया।

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा ॥ १६३ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह असंख्यातसे (संयतासंयतोंसे) अपवर्तित सिद्धराशिप्रमाण है।

सिद्धोंसे असंयत जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १५९ ॥

गुणकार अनन्त सर्व जीव प्रथम वर्गमूल है, क्योंकि वह सिद्धोंसे अपवर्तित कुछ कम सर्व जीव राशिप्रमाण है। अन्य प्रकारसे अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत जीव सबमें स्तोक हैं ॥ १६० ॥

यह सूत्र सुगम है।

सूक्ष्मसाम्परायिक संयतोंसे परिहारशुद्धिसंयत संख्यातगुणे हैं ॥ १६१ ॥

गुणकार संख्यात समय है।

परिहारशुद्धिसंयतोंसे यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीव संख्यातगुणे हैं ॥ १६२ ॥

गुणकार क्या है? संख्यात समय है।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंसे सामायिकशुद्धिसंयत और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत दोनों ही तुल्य संख्यातगुणे हैं ॥ १६३ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

संजदा विसेसाहिया ॥ १६४ ॥

सुगमं ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १६५ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा ॥ १६६ ॥

को गुणगारो ? पुव्वं परूविदो ।

असंजदा अणंतगुणा ॥ १६७ ॥

सुगमं । संजमट्ठिदजीवाणमप्पाबहुअं भणिय तिव्व-मंद-मज्झिमभेएण ट्ठिदसंजमस्स अप्पाबहुगपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

गुणकार क्या है ? संख्यात समय है ।

उक्त दोनों जीवोंसे संयत जीव विशेष अधिक हैं ॥ १६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं ॥ १६५ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

संयतासंयतोंसे न संयत न असंयत न संयतासंयत ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १६६ ॥

गुणकार क्या है ? पूर्वप्ररूपित (अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा) गुणकार है ।

उनसे असंयत जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १६७ ॥

यह सूत्र सुगम है । संयममें स्थित जीवोंके अल्पबहुत्वको कहकर तीव्र, मन्द व मध्यम भेदसे स्थित संयमके अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

....

१ अ-आप्रत्योः ' संजमम्हि ६८ ठिदि- ' इति पाठः ।

सव्वत्थोवा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी ॥ १६८ ॥

एदं सव्वजहण्णं सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमस्स लद्धिट्ठाणं कस्स होदि ? मिच्छत्तं पडिवज्जमाणसंजदस्स चरिमसमए । एदं सव्वजहण्णं पडिवादट्ठाणमादिं कादूण छवड्ढिक्कमेण असंखेज्जलोगमेत्तेसु सामाइयच्छेदोवट्ठावणलद्धिट्ठाणेसु गदेसु तदो परिहार-सुद्धिसंजदस्स पडिवादजहण्णलद्धिट्ठाणेण समाणं सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमलद्धिट्ठाणं होदि । तदो दोण्हं संजमाणं ठाणाणि छवड्ढीए णिरंतरमसंखेज्जलोगमेत्ताणि संजमलद्धि-ट्ठाणाणि गंतूण परिहारसुद्धिसंजमलद्धिट्ठाणमुक्कस्सं होदि । तदो तेसु तत्थेव थक्केसु पुणो उवरि णिरंतरछवड्ढिकमेण असंखेज्जलोगमेत्ताणि सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमलद्धि-ट्ठाणाणि गच्छंति । तदो असंखेज्जलोगमेत्ताणि छट्ठाणाणि अंतरिदूण सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजमस्स जहण्णं पडिवादलद्धिट्ठाणं होदि । तदो अणंतगुणाए वड्ढीए सुहुमसांप-राइयसुद्धिसंजमलद्धिट्ठाणाणि अंतोमुहुत्तं गंतूण थक्कंति । किमट्ठमेदाणि अंतोमुहुत्त-

---

सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतकी जघन्य चरित्रलब्धि सबमें स्तोक है ॥ १६८ ॥

शंका—सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमका यह सर्वजघन्य लब्धिस्थान किसके होता है ?

समाधान—यह स्थान मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले संयतके अन्तिम समयमें होता है ।

इस सर्वजघन्य प्रतिपातस्थानको आदि करके षड्वृद्धिक्रमसे असंख्यात लोकमात्र सामायिक-छेदोपस्थापनालब्धिस्थानोंके व्यतीत होनेपर पश्चात् परिहारशुद्धिसंयतके प्रतिपात जघन्य लब्धिस्थानके समान सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयम लब्धिस्थान होता है । तत्पश्चात् दोनों संयमोंके स्थान छह वृद्धियोंके क्रमसे निरन्तर असंख्यात लोकमात्र संयमलब्धिस्थानोंको बिताकर उत्कृष्ट परिहारशुद्धिसंयमलब्धिस्थान होता है । पश्चात् उनके वहींपर विश्रान्त होनेपर पुनः आगे निरन्तर छह वृद्धियोंके क्रमसे असंख्यात लोकमात्र सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमलब्धिस्थान जाते हैं । तत्पश्चात् असंख्यातलोकमात्र छह स्थानोंका अन्तर करके सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयमका जघन्य प्रतिपात लब्धिस्थान होता है । पश्चात् अनन्तगुणित वृद्धिसे सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धि-संयमलब्धिस्थान अन्तर्मुहूर्त जाकर थक जाते हैं ।

शंका—ये सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयमलब्धिस्थान अन्तर्मुहूर्तमात्र किस

मेत्ताणि ? सगद्धाए पढमादिसमएसु ट्ठिदाणं सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणं समाणकालाणं विसरिसपरिणामाभावादो । तदो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि अंतरिदूण जहाक्खाद-विहारसुद्धिसंजमलद्धिट्ठाणं णिव्वियप्पत्तादो अजहण्णमणुक्कस्समेक्कं चेव होदि । तेसिं संदिट्ठी एसा a a a a a a ooooooooooooooooooooooooooooooooo•-oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo अंतरं । एत्थ उवरिमपंती सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमाणं, हेट्ठिमा परिहारसुद्धिसंजमस्स oooooo-ooooooooooooooooooooooooooooooo अंतरं । एसा सुहुमसांपराइयसुद्धि-संजमलद्धिट्ठाणाण[1] पंत्ती । अ । एदं जहाक्खादविहारसुद्धिसंजमलद्धिट्ठाणं । एत्थ सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमाणं जहण्णचरित्तलद्धिट्ठाणं सव्वसंकिलिट्ठसामाइयछेदोवट्ठावण-मिच्छत्ताभिमुहचरिमसमयसंजदस्स वुत्तं । तं संदिट्ठीए पढमसुण्णं ति घेत्तव्वं ।

परिहारसुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १६९ ॥

कुदो ? जहण्णचरित्तलद्धिट्ठाणादो उवरि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि गंतूणु-

लिये हैं ?

समाधान—क्योंकि, अपने कालके प्रथमादि समयोंमें स्थित समानकालवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंके विसदृश परिणामोंका अभाव है ।

तत्पश्चात् असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंका अन्तर करके यथाख्यातविहार-शुद्धिसंयमलब्धिस्थान निर्विकल्प होनेसे अजघन्यानुत्कृष्ट एक ही होता है । उनकी संदृष्टि यह है a a a a a a ooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo●o-oooooooooooooooooooooooooooooooo अन्तर । यहां उपरिम पंक्ति सामायिकछेदो-पस्थापनाशुद्धिसंयमोंकी और अधस्तन पंक्ति परिहारशुद्धिसंयमकी है ooooooooooooo-ooooooooooooooooooooooooo अन्तर । यह सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयमलब्धिस्थानोंकी पंक्ति है । अ । यह यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमलब्धिस्थान है । यहां सामायिक-छेदो-पस्थापनाशुद्धिसंयमोंका जघन्य चरित्रलब्धिस्थान सर्वसंक्लिष्ट मिथ्यात्वाभिमुख हुए सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतके अन्तिम समयमें होता है । इसे संदृष्टिमें प्रथम शून्य ग्रहण करना चाहिये ।

परिहारशुद्धिसंयतकी जघन्य चरित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १६९ ॥

क्योंकि, वह जघन्य चरित्रलब्धिस्थानसे ऊपर असंख्यात लोकमात्र छह स्थान

१ प्रतिषु ' संजमलद्धिट्ठाणाणि ' इति पाठः ।

प्पत्तीए। एसा परिहारसुद्धिसंजमलद्धी जहण्णिया कस्स होदि ? सव्वसंकिलिट्ठस्स सामाइयछेदोवट्ठावणाभिमुहचरिमसमयपरिहारसुद्धिसंजदस्स[1]।

तस्सेव उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७० ॥

कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणुप्पत्तीए।

सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदस्स उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७१ ॥

कुदो ? तत्तो उवरि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि गंतूण सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमस्स उक्कस्सलद्धीए समुप्पत्तीदो। एसा कस्स होदि ? चरिमसमयअणियट्टिस्स।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजमस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७२ ॥

जाकर उत्पन्न हुई है।

शंका—यह जघन्य परिहारशुद्धिसंयमलब्धि किसके होती है ?

समाधान—उक्त लब्धि सर्वसंक्लिष्ट सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमके अभिमुख हुए अन्तिमसमयवर्ती परिहारशुद्धिसंयतके होती है।

उसी ही परिहारशुद्धिसंयतकी उत्कृष्ट चरित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७० ॥

क्योंकि, उसकी उत्पत्ति असंख्यात लोकमात्र छह स्थान ऊपर जाकर है।

सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतकी उत्कृष्ट चरित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७१ ॥

क्योंकि, उससे ऊपर असंख्यात लोकमात्र छह स्थान जाकर सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमकी उत्कृष्ट लब्धिकी उत्पत्ति होती है।

शंका—यह लब्धि किसके होती है ?

समाधान—अन्तिमसमयवर्ती अनिवृत्तिकरणके होती है।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयमकी जघन्य चरित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७२ ॥

---

१ प्रतिषु 'संजमस्स' इति पाठः।

कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि अंतरिदूणुप्पत्तीदो । एसा कस्स होदि ? उवसमसेडीदो ओयरमाणचरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स ।

तस्सेव उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७३ ॥

कुदो ? अणंतगुणाए सेडीए जहण्णादो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूणुप्पत्तीदो । एसा कस्स होदि ? चरिमसमयसुहुमसांपराइयखवगस्स ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदस्स अजहण्णअणुक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा ॥ १७४ ॥

कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि अंतरिदूण समुप्पत्तीदो । किमट्ठमेसा लद्धी एयवियप्पा ? कसायाभावेण वड्ढि-हाणिकारणाभावादो । तेणेव कारणेण अजहण्णा अणुक्कस्सा च । एत्थ केण कारणेण संजमलद्धिट्ठाणप्पाबहुअं भणिदं ? वुच्चदे—

क्योंकि, उसकी उत्पत्ति असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंका अन्तर करके है ।

शंका—यह किसके होती है ?

समाधान—उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले अन्तिमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके होती है ।

उसी ही सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयमकी उत्कृष्ट चरित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७३ ॥

क्योंकि, जघन्यके ऊपर अनन्तगुणित श्रेणीरूपसे अन्तर्मुहूर्त जाकर उसकी उत्पत्ति है ।

शंका—यह किसके होती है ?

समाधान—यह अन्तिमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके होती है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतकी अजघन्यानुत्कृष्ट चरित्रलब्धि अनन्तगुणी है ॥ १७४ ॥

क्योंकि, उसकी उत्पत्ति असंख्यात लोकमात्र छह स्थानोंका अन्तर करके है ।

शंका—यह लब्धि एक विकल्परूप क्यों है ?

समाधान—क्योंकि, कषायका अभाव हो जानेसे उसकी वृद्धि-हानिके कारणका अभाव हो गया है । इसी कारण वह अजघन्यानुत्कृष्ट भी है ।

शंका—यहां किस कारणसे संयमलब्धिस्थानोंका अल्पबहुत्व कहा गया है ?

संजदाणं जीवप्पाबहुगसाहणट्ठमागदं । जस्स संजमस्स लद्धिट्ठाणाणि बहुआणि तत्थ जीवा वि बहुआ चेव, जत्थ थोवाणि तत्थ थोवा चेव होंति त्ति । जदि एवं[1] (तो) जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणं सव्वत्थोवत्तं पसज्जदे, णिव्वियप्पेगसंजमलद्धिट्ठाणत्तादो ? ण एस दोसो, अद्धमस्सिदूण तेसिं बहुत्तुवदेसादो ।

दंसणाणुवादेण सव्वत्थोवा ओहिदंसणी ॥ १७५ ॥

कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागत्तादो ।

चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा ॥ १७६ ॥

गुणगारो जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ सेडीओ । कुदो ? असंखेज्जपदरंगुलोवट्टिदजगपदरप्पमाणत्तादो ।

केवलदंसणी अणंतगुणा ॥ १७७ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कुदो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागेणो-

---

समाधान—इस शंकाका उत्तर कहते हैं। संयत जीवोंके अल्पबहुत्वके साधनार्थ उक्त लब्धिस्थानोंका अल्पबहुत्व प्राप्त हुआ है। जिस संयमके लब्धिस्थान बहुत हैं उसमें जीव भी बहुत ही हैं, तथा जिस संयमके लब्धिस्थाम थोड़े हैं उसमें जीव भी थोड़े ही हैं।

शंका – यदि ऐसा है तो यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंके सबमें स्तोकपनेका प्रसंग आवेगा, क्योंकि, उनके निर्विकल्प एक संयमलब्धिस्थान है।

समाधान – यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, कालका आश्रय करके उनके बहुत होनेका उपदेश दिया गया है।

दर्शनमार्गणाके अनुसार अवधिदर्शनी सबमें स्तोक हैं ॥ १७५ ॥

क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

चक्षुदर्शनी असंख्यातगुणे हैं ॥ १७६ ॥

गुणकार जगप्रतरके असंख्यातवें भाग असंख्यात जगश्रेणियां है, क्योंकि, वह असंख्यात प्रतरांगुलोंसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण है।

केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं ॥ १७७ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है, क्योंकि, वह जगप्रतरके

---

१ प्रतिषु ' एदं ' इति पाठः ।

वड्ढिदसिद्धप्पमाणत्तादो ।

अचक्खुदंसणी अणंतगुणा ॥ १७८ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो[1] सिद्धेहिंतो सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो । कारणं सुगमं ।

लेस्साणुवादेण सव्वत्थोवा सुक्कलेस्सिया ॥ १७९ ॥

कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागप्पमाणत्तादो । तं पि कुदो ? सुट्ठु सुभलेस्साणं समवाएण कत्थ वि केसिं पि संभवादो ।

पम्मलेस्सिया असंखेज्जगुणा ॥ १८० ॥

गुणगारो जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ सेडीओ । कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदपदरंगुलोवट्टिदजगपदरप्पमाणत्तादो ।

तेउलेस्सिया संखेज्जगुणा ॥ १८१ ॥

असंख्यातवें भागसे अपवर्तित सिद्धोंके बराबर हैं ।

केवलदर्शनियोंसे अचक्षुदर्शनी अनन्तगुणे हैं ॥ १७८ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों तथा सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है । कारण सुगम है ।

लेश्यामार्गणाके अनुसार शुक्ललेश्यावाले सबमें स्तोक हैं ॥ १७९ ॥

क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

शंका — वह भी कैसे ?

समाधान — क्योंकि, अतिशय शुभ लेश्याओंका समुदाय कहींपर किन्हींके ही सम्भव है ।

शुक्ललेश्यावालोंसे पद्मलेश्यावाले असंख्यातगुणे हैं ॥ १८० ॥

गुणकार जगप्रतरके असंख्यातवें भाग असंख्यात जगश्रेणी है, क्योंकि, वह पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित प्रतरांगुलसे अपवर्तित जगप्रतरप्रमाण है ।

पद्मलेश्यावालोंसे तेजोलेश्यावाले संख्यातगुणे हैं ॥ १८१ ॥

१ अप्रतौ ' अभवसिद्धिएहि अणंतगुणेहिंतो सिद्धेहिंतो ' इति पाठः ।

कुदो ? पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं संखेज्जदिभागेण पम्मलेस्सियदव्वेण तेउ-लेस्सियदव्वे भागे हिदे संखेज्जरूवोवलंभादो ।

अलेस्सिया अणंतगुणा ॥ १८२ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कारणं सुगमं ।

काउलेस्सिया अणंतगुणा ॥ १८३ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवपढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो। कारणं सुगमं ।

णीललेस्सिया विसेसाहिया ॥ १८४ ॥

केत्तियो विसेसो ? अणंतो काउलेस्सियाणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

किण्णलेस्सिया विसेसाहिया ॥ १८५ ॥

केत्तियो विसेसो ? अणंतो णीललेस्सियाणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंके संख्यातवें भागप्रमाण पद्मलेश्यावालोंके द्रव्यका तेजोलेश्यावालोंके द्रव्यमें भाग देनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

तेजोलेश्यावालोंसे लेश्यारहित अर्थात् अयोगी व सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥१८२॥

गुणकार अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा है । कारण सुगम है ।

अलेश्यिकोंसे कापोतलेश्यावाले अनन्तगुणे हैं ॥ १८३ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिकोंसे, सिद्धोंसे और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा है । कारण सुगम है ।

कापोतलेश्यावालोंसे नीललेश्यावाले विशेष अधिक हैं ॥ १८४ ॥

विशेष कितना है ? कापोतलेश्यावालोंके असंख्यातवें भाग अनन्त है । प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

नीललेश्यावालोंसे कृष्णलेश्यावाले विशेष अधिक हैं ॥ १८५ ॥

विशेष कितना है ? विशेष अनन्त है जो नीललेश्यावालोंके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

भवियाणुवादेण सव्वत्थोवा अभवसिद्धिया ॥ १८६ ॥

कुदो ? जहण्णजुत्ताणंतप्पमाणत्तादो ।

णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अणंतगुणा ॥ १८७ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कारणं सुगमं ।

भवसिद्धिया अणंतगुणा ॥ १८८ ॥

सुगमं ।

सम्मत्ताणुवादेण सव्वत्थोवा सम्मामिच्छाइट्ठी ॥ १८९ ॥

सासणसम्माइट्ठी सव्वत्थोवा त्ति किण्ण परूविदं ? ण, विवरीयाहिणिवेसेण तेसिं समाणत्तं पडुच्च मिच्छाइट्ठीणमंतब्भावादो, भूदपुव्वियं णयं पडुच्च सम्माइट्ठीणमंतब्भावादो वा । सेसं सुगमं ।

सम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९० ॥

गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं सुगमं ।

भव्यमार्गणाके अनुसार अभव्यसिद्धिक जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १८६ ॥

क्योंकि, वे जघन्य युक्तानन्तप्रमाण हैं ।

अभव्यसिद्धिकोंसे न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १८७ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिकोंसे अनन्तगुणा है । कारण सुगम है ।

उक्त जीवोंसे भव्यसिद्धिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सबसे स्तोक हैं ॥ १८९ ॥

शंका — सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे स्तोक हैं, ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, विपरीताभिनिवेशसे उनकी समानताकी अपेक्षा कर मिथ्यादृष्टियोंमें अन्तर्भाव हो जाता है, अथवा भूतपूर्व नयका आश्रयकर सम्यग्दृष्टियोंमें उनका अन्तर्भाव हो जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात गुणे हैं ॥ १९० ॥

गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है । कारण सुगम है ।

सिद्धा अणंतगुणा ॥ १९१ ॥

सुगमं ।

मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा ॥ १९२ ॥

एदं पि सुगमं । अण्णेण पयारेण सम्मत्तप्पाबहुगपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा सासणसम्माइट्ठी ॥ १९३ ॥

सुगमं ।

सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १९४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

उवसमसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

खइयसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥

गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्यग्दृष्टियोंसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं ॥ १९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सिद्धोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणे हैं ॥ १९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है। अन्य प्रकारसे सम्यक्त्वमार्गणामें अल्पबहुत्वके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

सासादनसम्यग्दृष्टि सबमें स्तोक हैं ॥ १९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणे हैं ॥ १९४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं ॥ १९५ ॥

गुणकार क्या है । आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं ॥ १९६ ॥

गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है ।

वेदगसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्माइट्ठी विसेसाहिया ॥ १९८ ॥

केत्तियमेत्तो विसेसो ? उवसम-खइयसम्माइट्ठिमेत्तो ।

सिद्धा अणंतगुणा ॥ १९९ ॥

सुगमं ।

सण्णियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी ॥ २०० ॥

कुदो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागप्पमाणत्तादो ।

णेव सण्णी णेव असण्णी अणंतगुणा ॥ २०१ ॥

गुणगारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो । कारणं सुगमं ।

असण्णी अणंतगुणा ॥ २०२ ॥

सुगमं ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं ॥ १९७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्दृष्टि विशेष अधिक हैं ॥ १९८ ॥

विशेष कितना है ? उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके बराबर है ।

सम्यग्दृष्टियोंसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं ॥ १९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संज्ञिमार्गणाके अनुसार संज्ञी जीव सबमें स्तोक हैं ॥ २०० ॥

क्योंकि, वे जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

संज्ञी जीवोंसे न संज्ञी न असंज्ञी ऐसे जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २०१ ॥

गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवोंसे अनन्तगुणा है । कारण सुगम है ।

उक्त जीवोंसे असंज्ञी जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २०२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहाराणुवादेण सव्वत्थोवा अणाहारा अबंधा ॥ २०३ ॥

कुदो ? सिद्धाजोगीणं गहणादो ।

बंधा अणंतगुणा ॥ २०४ ॥

गुणगारो अणंताणि सव्वजीवाणं पढमवग्गमूलाणि । कुदो ? सव्वजीवाणमसंखेज्जदिभागस्स अणंतभागत्तादो ।

आहारा असंखेज्जगुणा ॥ २०५ ॥

गुणगारो अंतोमुहुत्तं । कुदो ? बंधगअणाहारदव्वेण आहारदव्वे भागे हिदे अंतोमुहुत्तुवलंभादो ।

एवमप्पाबहुगेत्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

आहारमार्गणाके अनुसार अनाहारक अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं ॥ २०३ ॥

क्योंकि, यहां सिद्धों और अयोगी जीवोंका ग्रहण किया गया है ।

अनाहारक अबन्धकोंसे अनाहारक बंधक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ २०४ ॥

गुणकार सर्व जीवोंके अनन्त प्रथम वर्गमूल हैं, क्योंकि, सर्व जीवोंके असंख्यातवें भागके अनन्तभागत्व है । अर्थात् अनाहारक बंधक जीव सर्व जीव राशिके असंख्यातवें भाग हैं और अनाहारक अबंधक अनन्तवें भाग हैं। अतएव उन दोनोंके बीच गुणकारका प्रमाण अनन्त होगा ही ।

अनाहारक बंधकोंसे आहारक जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ २०५ ॥

गुणकार अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, बन्धक अनाहारक द्रव्यका आहारक द्रव्यमें भाग देनेपर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है ।

इस प्रकार अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

एत्तो सव्वजीवेसु महादंडओ कादव्वो भवदि ॥ १ ॥

समत्तेसु एक्कारसअणियोगद्दारेसु किमट्ठमेसो महादंडओ वोत्तुमाढत्तओ ? वुच्चदे— खुद्दाबंधस्स एक्कारसअणियोगद्दारणिबद्धस्स[1] चूलियं काऊण महादंडओ वुच्चदे। चूलिया णाम किं ? एक्कारसअणिओगद्दारेसु सूइदत्थस्स विसेसियूण परूवणा चूलिया। जदि एवं तो णेसो महादंडओ चूलिया, अप्पाबहुगणिओगद्दारसूइदत्थं मोत्तूणण्णत्थ वुत्तत्थाणमपरूवणादो त्ति वुत्ते वुच्चदे— ण च एसो णियमो अत्थि सव्वाणिओगद्दार-सूइदत्थाणं विसेसपरूविया चेव चूलिया त्ति, किंतु एक्केण दोहि सव्वेहि वा अणि-ओगद्दारेहि सूइदत्थाणं विसेसपरूवणा चूलिया णाम। तेणेसो महादंडओ चूलिया चेव,

इससे आगे सर्व जीवोंमें महादण्डक करना योग्य है ॥ १ ॥

शंका—ग्यारह अनुयोगद्वारोंके समाप्त होनेपर इस महादण्डकको कहनेका प्रारम्भ किसलिये किया जाता है ?

समाधान—उपर्युक्त शंकाका उत्तर देते हैं— ग्यारह अनुयोगद्वारोंमें निबद्ध क्षुद्रबन्धकी चूलिका करके महादण्डक कहते हैं।

शंका—चूलिका किसे कहते हैं ?

समाधान—ग्यारह अनुयोगद्वारोंसे सूचित अर्थकी विशेषता कर प्ररूपणा करना चूलिका कही जाती है।

शंका—यदि ऐसा है तो यह महादण्डक चूलिका नहीं कहा जा सकता, क्योंकि, यह अल्पबहुत्वानुयोगद्वारसे सूचित अर्थको छोड़कर अन्य अनुयोगद्वारोंमें कहे गये अर्थोंका अप्ररूपक है ?

समाधान—सर्व अनुयोगद्वारोंसे सूचित अर्थोंकी विशेष प्ररूपणा करनेवाली ही चूलिका हो यह कोई नियम नहीं है, किन्तु एक दो अथवा सब अनुयोगद्वारोंसे सूचित अर्थोंकी विशेष प्ररूपणा करना चूलिका है। इसलिये यह महादण्डक चूलिका

१ प्रतिषु '-अणियोगद्दारे णिबद्धस्स ': मप्रतौ '-अणियोगद्दारणिबंधस्स ' इति पाठः।

अप्पाबहुगसूइदत्थस्स विसेसिऊण परूवणादो। एवं पओजणसुत्तं परूविय पयदत्थ-परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सव्वत्थोवा मणुसपज्जत्ता गब्भोवक्कंतिया[1] ॥ २ ॥

गब्भजा मणुस्सा पज्जत्ता उवरि वुच्चमाणसव्वरासीओ पेक्खिऊण थोवा होंति। कुदो ? विस्ससादो। एदे केत्तिया गब्भोवक्कंतिया ? मणुस्साणं चदुब्भागो।

मणुसिणीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ३ ॥

को गुणगारो ? तिण्णि रूवाणि। कुदो ? मणुस्सगब्भोवक्कंतियचदुब्भागेण पज्जत्तदव्वेण तस्सेव तिसु चदुब्भागेसु ओवट्टिदेसु तिण्णिरूवोवलंभादो।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया। के वि आइरिया सत्त रूवाणि, के वि पुण

ही है, क्योंकि, वह अल्पबहुत्वानुयोगद्वारसे सूचित अर्थकी विशेषताकर प्ररूपणा करता है। इस प्रकार प्रयोजनसूत्रको कहकर प्रकृत अर्थके निरूपणार्थ उत्तर सूत्र कहते हैं—

मनुष्य पर्याप्त गर्भोपक्रान्तिक सबमें स्तोक हैं ॥ २ ॥

गर्भज मनुष्य पर्याप्त आगे कही जानेवाली सब राशियोंकी अपेक्षा स्तोक हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभावसे है।

शंका—ये गर्भोपक्रान्तिक कितने हैं ?

समाधान—मनुष्योंके चतुर्थ भागप्रमाण हैं।

पर्याप्त मनुष्योंसे मनुष्यिनियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३ ॥

गुणकार कितना है ? गुणकार तीन रूप है, क्योंकि मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकोंके चतुर्थ भागप्रमाण पर्याप्त द्रव्यसे उसके ही तीन चतुर्थ भागोंका अपवर्तन करनेपर तीन रूप उपलब्ध होते हैं।

मनुष्यिनियोंसे सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है। कोई आचार्य सात रूप, कोई

१ थोवा गब्भयमणुया तत्तो इत्थीओ तिघणगुणियाओ। बायरतेउक्काया तासिमसंखेज्ज पज्जत्ता ॥ पं. सं. २, ६५.

चत्तारि रूवाणि के वि सामण्णेण संखेज्जाणि रूवाणि गुणगारो त्ति भणंति । तेणेत्थ गुणगारे तिण्णि उवएसा । तिण्णं मज्झे एक्को च्चिय जच्चोवएसो, सो वि ण णव्वइ, विसिट्ठोवएसाभावादो । तम्हा तिण्हं पि संगहो कायव्वो ।

बादरतेउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५ ॥

गइमग्गणमुल्लंघिय मग्गणंतरगमणादो असंबद्धमिदं सुत्तं ? ण, अप्पिदमग्गणं मोत्तूण अण्णमग्गणाणमगमणणियमस्स एक्कारसअणिओगद्दारेसु चेव अवट्ठाणादो । एत्थ पुण ण सो णियमो अत्थि, सव्वमग्गणजीवेसु महादंडओ कायव्वो त्ति अब्भुवगमादो । को गुणगारो ? असंखेज्जाओ पदरावलियाओ । कुदो ? सव्वट्ठसिद्धिदेवेहि[1] बादरतेउपज्जत्तरासिम्हि भागे हिदे असंखेज्जाणं पदरावलियाणमुवलंभादो ।

अणुत्तरविजय-वैजयंत-(जयंत-)अवराजितविमाणवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ ६ ॥

चार रूप और कितने ही आचार्य सामान्यसे संख्यात रूप गुणकार है, ऐसा कहते हैं । इसलिये यहां गुणकारके विषयमें तीन उपदेश हैं । तीनोंके मध्यमें एक ही जात्य (श्रेष्ठ) उपदेश है, परन्तु वह जाना नहीं जाता, क्योंकि, इस विषयमें विशिष्ट उपदेशका अभाव है । इस कारण तीनोंका ही संग्रह करना चाहिये ।

बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५ ॥

शंका—गति मार्गणाका उल्लंघन कर मार्गणान्तरमें जानेसे यह सूत्र असम्बद्ध है ?

समाधान—यह ठीक नहीं, क्योंकि, विवक्षित मार्गणाको छोड़कर अन्य मार्गणाओंमें न जानेका नियम ग्यारह अनुयोगद्वारोंमें ही अवस्थित है । किन्तु यहां वह नियम नहीं है, क्योंकि, ' सर्व मार्गणाजीवोंमें महादण्डक करना चाहिये ' ऐसा माना गया है ।

गुणकार क्या है ? असंख्यात प्रतरावलियां गुणकार है, क्योंकि, सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंसे बादर तेजस्कायिक पर्याप्त राशिके भाजित करनेपर असंख्यात प्रतरावलियां उपलब्ध होती हैं ।

अनुत्तरोंमें विजय, वैजयन्त, (जयन्त) और अपराजित विमानवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६ ॥

१ प्रतिषु ' सव्वट्ठसिद्धिदेवेहि ' इति पाठः ।

२ तत्तो णुत्तरदेवा तत्तो संखेज्ज जाणओ कप्पो । तत्तो असंखगुणिया सत्तम छट्ठी सहस्सारो ॥ पं. सं. २, ६६.

किमट्ठं देवविसेसणं ? तत्थतणपुढविकाइयादिपडिसेहट्ठं । गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । कुदो ? बादरतेउकाइय-पज्जत्तदव्वेण गुणिदतत्थतणअवहारकालेण ओवट्टिदपलिदोवमपमाणत्तादो ।

अणुदिसविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ७ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । कुदो ? मणुस्सेहिंतो अणुत्तरेसुपज्जमाणजीवे पेक्खिदूण तेहिंतो चेव अणुदिसविमाणवासियदेवेसुप्पज्जमाणाणं जीवाणं संखेज्जगुणाणमुवलंभादो, विस्ससादो वा ।

उवरिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ८ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । कारणं पुव्वं व परूवेदव्वं ।

उवरिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ९ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कारणं सुगमं ।

शंका—यहां 'देव' विशेषण किस लिये है ?

समाधान—वहांके पृथिवीकायिकादि जीवोंके प्रतिषेधार्थ 'देव' विशेषण दिया गया है ।

गुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग असंख्यात पल्योपम प्रथम वर्गमूल है, क्योंकि, वह बादर तेजस्कायिक पर्याप्त द्रव्यसे गुणित वहांके अवहारकालसे अपवर्तित पल्योपम प्रमाण है ।

अनुदिशविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ७ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, मनुष्योंमेंसे अनुत्तरोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा उनमेंसे ही अनुदिशविमानवासी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव संख्यातगुणे पाये जाते हैं, अथवा विजयादि अनुत्तरविमानवासी देवोंसे अनुदिशविमानवासी देव स्वभावसे ही संख्यातगुणे हैं ।

उपरिम-उपरिमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कारण पूर्वके समान कहना चाहिये ।

उपरिम-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ९ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कारण सुगम है ।

उवरिमहेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १० ॥

को गुणगारो? संखेज्जसमया। कुदो? अप्पपुण्णाणं जीवाणं बहुआणं संभवादो।

मज्झिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ११ ॥

को गुणगारो? संखेज्जसमया। कुदो? अप्पाउआणं जीवाणं बहुआणमुवलंभादो।

मज्झिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १२ ॥

को गुणगारो? संखेज्जसमया। कुदो? सव्वत्थ मंदपुण्णजीवाणं बहुत्तुवलंभादो।

मज्झिमहेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १३ ॥

को गुणगारो? संखेज्जसमया। कुदो? मंदतवाणं बहुआणमुवलंभादो।

हेट्ठिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १४ ॥

को गुणगारो? संखेज्जसमया। कारणं सुगमं।

उपरिम-अधस्तनग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १० ॥

गुणकार क्या है? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, अल्प पुण्यवाले जीव बहुत सम्भव हैं।

मध्यम-उपरिमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ११ ॥

गुणकार क्या है? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, अल्पायु जीव बहुत पाये जाते हैं।

मध्यम-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १२ ॥

गुणकार क्या है? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, सर्वत्र मन्द पुण्यवाले जीवोंकी बहुलता पायी जाती है।

मध्यम-अधस्तनग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १३ ॥

गुणकार क्या है? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, मन्द तपवाले जीव बहुत पाये जाते हैं।

अधस्तन-उपरिमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १४ ॥

गुणकार क्या है? संख्यात समय गुणकार है। कारण सुगम है।

हेट्ठिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।

हेट्ठिमहेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १६ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

आरणच्चुदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १७ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । कारणं सुगमं ।

आणद-पाणदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ १८ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ १९ ॥

को गुणगारो ? सेडीए असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि सेडीपढमवग्गमूलाणि । कुदो ? आणद-पाणदव्वेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सेडिबिदियवग्गमूलं गुणेदूण सेडिमोवट्टिदे गुणगारुवलद्धीदो ।

अधस्तन-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कारण पूर्वके समान कहना चाहिये ।

अधस्तन-अधस्तनग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १६ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

आरण-अच्युतकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १७ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कारण सुगम है ।

आनत-प्राणतकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ १८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

सप्तम पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ १९ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात जगश्रेणी प्रथम वर्गमूल गुणकार है, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण आनत-प्राणत कल्पके द्रव्यसे जगश्रेणीके द्वितीय वर्गमूलको गुणितकर जगश्रेणीको अपवर्तित करनेपर उक्त गुणकार उपलब्ध होता है ।

छट्ठीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २० ॥

को गुणगारो ? सेडितदियवग्गमूलं ।

सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २१ ॥

को गुणगारो ? सेडिचउत्थवग्गमूलं ।

सुक्क-महासुक्ककप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा[1] ॥ २२ ॥

को गुणगारो ? सेडिपंचमवग्गमूलं ।

पंचमपुढविणेरइया[2] असंखेज्जगुणा ॥ २३ ॥

को गुणगारो ? सेडिछट्ठवग्गमूलं ।

लंतव-काविट्ठकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २४ ॥

को गुणगारो ? सेडिसत्तमवग्गमूलं ।

छठी पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ २० ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका तृतीय वर्गमूल गुणकार है ।

शतार-सहस्रारकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २१ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका चतुर्थ वर्गमूल गुणकार है ।

शुक्र-महाशुक्रकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २२ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका पंचम वर्गमूल गुणकार है ।

पंचम पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ २३ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका छठा वर्गमूल गुणकार है ।

लान्तव-कापिष्ठकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २४ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका सातवां वर्गमूल गुणकार है ।

---

१ सुक्कंमि पंचमाए लंतय चोत्थीए बंभ तच्चाए । माहिंद-सणंकुमारे दोच्चाए मुच्छिमा मणुया ॥ पं. सं. २, ६६.

२ प्रतिषु ' पंचमहापुढवी- ' इति पाठः ।

चउत्थीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २५ ॥

को गुणगारो ? सेडिअट्ठमवग्गमूलं ।

बम्ह-बम्हुत्तरकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २६ ॥

को गुणगारो ? सेडिणवमवग्गमूलं ।

तदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ २७ ॥

को गुणगारो ? सेडिदसमवग्गमूलं ।

माहिंदकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ २८ ॥

को गुणगारो ? सेडिएक्कारसवग्गमूलस्स संखेज्जदिभागो । सणक्कुमार-माहिंद-दव्वमेगट्ठं करिय किण्ण परूविदं ? ण, जहा पुव्विल्लाणं दोण्हं दोण्हं कप्पाणमेक्को च्चिय सामी होदि, तधा एत्थ दोण्हं कप्पाणमेक्को चेव सामी ण होदि त्ति जाणावणट्ठं पुध णिद्देसादो ।

सणक्कुमारकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ २९ ॥

चतुर्थ पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ २५ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका आठवां वर्गमूल गुणकार है ।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २६ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका नौवां वर्गमूल गुणकार है ।

तृतीय पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ २७ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका दशवां वर्गमूल गुणकार है ।

माहेन्द्रकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ २८ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीके ग्यारहवें वर्गमूलका संख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके द्रव्यको इकट्ठा कर क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, जिस प्रकार पूर्वोक्त दो दो कल्पोंका एक ही स्वामी होता है, उस प्रकार यहां दो कल्पोंका एक ही स्वामी नहीं होता, इस बातके ज्ञापनार्थ पृथक् निर्देश किया है ।

सानत्कुमारकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ २९ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । कुदो ? उत्तरदिसं मोत्तूण सेसासु तीसु दिसासु ट्ठिदसेडीबद्ध-पइण्णयसण्णिदविमाणेसु सव्विंदएसु च णिवसंतदेवाणं गहणादो ।

बिदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ ३० ॥

को गुणगारो ? सेडिबारसवग्गमूलं सुगसंखेज्जदिभागब्भहियं ।

मणुसा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ३१ ॥

को गुणगारो ? सेडिबारसवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? मणुसअपज्जत्तअवहारकालो पडिभागो ।

ईसाणकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा[1] ॥ ३२ ॥

को गुणगारो ? सूचिअंगुलस्स संखेज्जदिभागो ।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ३३ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, उत्तर दिशाको छोड़कर शेष तीन दिशाओंमें स्थित श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक नामके विमानोंमें तथा सब इन्द्रक विमानोंमें रहनेवाले देवोंका ग्रहण किया गया है ।

द्वितीय पृथिवीके नारकी जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३० ॥

गुणकार क्या है ? अपने संख्यातवें भागसे अधिक जगश्रेणीका बारहवां वर्गमूल गुणकार है ।

मनुष्य अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ३१ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीके बारहवें वर्गमूलका असंख्यातवां भाग गुणकार है । प्रतिभाग क्या है ? मनुष्य अपर्याप्तोंका अवहारकाल प्रतिभाग है ।

ईशानकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३२ ॥

गुणकार क्या है ? सूच्यंगुलका संख्यातवां भाग गुणकार है ।

ईशानकल्पवासिनी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३३ ॥

१ ईसाणे सव्वत्थ वि बत्तीसगुणाओ होंति देवीओ । संखेज्जा सोहम्मे तओ असंखा भवणवासी ॥ पं. सं. २, ६७.

को गुणगारो ? संखेज्जा समया । के वि आइरिया बत्तीस रूवाणि त्ति भणंति ।

सोधम्मकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ३४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ३५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया बत्तीस रूवाणि वा ।

पढमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥

को गुणगारो ? सगसंखेज्जदिभागब्भहियघणंगुलतदियवग्गमूलं ।

भवणवासियदेवा असंखेज्जगुणा ॥ ३७ ॥

को गुणगारो ? घणंगुलबिदियवग्गमूलस्स संखेज्जदिभागो ।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ३८ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया बत्तीसरूवाणि वा ।

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । कितने ही आचार्य गुणकार बत्तीस रूप है, ऐसा कहते हैं ।

सौधर्मकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ३४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

सौधर्मकल्पवासिनी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय या बत्तीस रूप गुणकार है ।

प्रथम पृथिवीके नारकी असंख्यातगुणे हैं ॥ ३६ ॥

गुणकार क्या है । अपने संख्यातवें भागसे अधिक घनांगुलका तृतीय वर्गमूल गुणकार है ।

भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं ॥ ३७ ॥

गुणकार क्या है ? घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलका संख्यातवां भाग गुणकार है ।

भवनवासिनी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ३८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय या बत्तीस रूप गुणकार है ।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ ३९ ॥

को गुणगारो ? सेडीए असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाणि सेडिपढमवग्गमूलाणि । को पडिभागो ? भवणवासियविक्खंभसूचीए संखेज्जेहि भागेहि गुणिदपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणिअवहारकालो पडिभागो ।

वाणवेंतरदेवा संखेज्जगुणा ॥ ४० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एदम्हादो सुत्तादो जीवट्ठाणदव्ववक्खाणं ण घडदि त्ति णव्वदे ।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ४१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया बत्तीसरूवाणि वा ।

जोदिसियदेवा संखेज्जगुणा ॥ ४२ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कुदो ? जोदिसियअवहारकालेण[1] भागे हिदे संखेज्जरूवोवलंभादो ।

पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच असंख्यातगुणे हैं ॥ ३९ ॥

गुणकार क्या है ? जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग असंख्यात जगश्रेणी प्रथम वर्गमूल गुणकार हैं । प्रतिभाग क्या है ? भवनवासियोंकी विष्कम्भसूचीके संख्यात बहुभागोंसे गुणित पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंका अवहारकाल प्रतिभाग है ।

वानव्यन्तर देव संख्यातगुणे हैं ॥ ४० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । इस सूत्रसे जीवस्थानका द्रव्यव्याख्यान नहीं घटित होता, ऐसा जाना जाता है । (देखो जीवस्थान-द्रव्यप्रमाणानुगम सूत्र ३५ की टीका) ।

वानव्यन्तर देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ४१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय या बत्तीस रूप गुणकार है ।

ज्योतिषी देव संख्यातगुणे हैं ॥ ४२ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, ज्योतिषी देवोंके अवहारकालसे (वानव्यन्तर देवियोंके अवहारकालको) भाजित करनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

१ प्रतिषु '- काले ' इति पाठः ।

देवीओ संखेज्जगुणाओ ॥ ४३ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया बत्तीसरूवाणि वा ।

चउरिंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कुदो ? पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेण चउरिंदियपज्जत्तअवहारकालेण जोदिसियदेवीणमवहारकालभूदसंखेज्जपदरंगुलेसु ओवट्टिदेसु संखेज्जरूवोवलंभादो ।

पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४५ ॥

केत्तियो विसेसो ? चउरिंदियपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

बेइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४६ ॥

केत्तिओ विसेसो ? पंचिंदियपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४७ ॥

ज्योतिषी देवियां संख्यातगुणी हैं ॥ ४३ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय या बत्तीस रूप गुणकार है ।

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ४४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है, क्योंकि, प्रतरांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके अवहारकालसे ज्योतिषी देवियोंके अवहारकालभूत संख्यात प्रतरांगुलोंके अपवर्तित करनेपर संख्यात रूप उपलब्ध होते हैं ।

पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४५ ॥

विशेष कितना है ? चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४६ ॥

विशेष कितना है ? पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४७ ॥

केत्तिओ विसेसो ? बीइंदियपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो। को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ४८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। कुदो ? पदरंगुलस्स असंखेज्जदि-भागेण पंचिंदियअपज्जत्तअवहारकालेण पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्ततेइंदियपज्जत्त-अवहारकाले भागे हिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागुवलंभादो।

चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ४९ ॥

केत्तिओ विसेसो ? पंचिंदियअपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो। तेसिं को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

तेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५० ॥

केत्तिओ विसेसो ? चउरिंदियअपज्जत्तअसंखेज्जदिभागो। को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

बेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ५१ ॥

विशेष कितना है ? द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ४८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके अवहारकालसे प्रतरांगुलके संख्यातवें भागमात्र त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके अवहारकालको भाजित करनेपर आवलीका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है।

चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ४९ ॥

विशेष कितना है ? पंचेन्द्रिय अपर्याप्तोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है। उनका प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है।

त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५० ॥

विशेष कितना है ? चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है।

द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ५१ ॥

केत्तिओ विसेसो ? तेइंदियअपज्जत्तअसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा[1] ॥ ५२ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोवट्टिदपदरंगुलेण बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तअवहारकालेण बेइंदियअपज्जत्तअवहारकाले भागे हिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोवलंभादो ।

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५३ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? हेट्ठिमदव्वस्स अवहारकाले उवरिमदव्वस्स अवहारकालेण भागे हिदे आवलियाए असंखेज्जदिभागोवलंभादो ।

बादरपुढविपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५४ ॥

विशेष कितना है ? त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है ।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अपवर्तित प्रतरांगुलप्रमाण बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तोंके अवहारकालसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तोंके अवहारकालको भाजित करनेपर पल्योपमका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है ।

बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ५३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, अधस्तन अर्थात् पूर्वोक्त द्रव्यके अवहारकालमें उपरिम अर्थात् प्रस्तुत द्रव्यके अवहारकालका भाग देनेपर आवलीका असंख्यातवां भाग प्राप्त होता है ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५४ ॥

१ पज्जत्तबायरपत्तेयतरू असंखेज्ज इति णिगोयाओ । पुढवी आऊ वाऊ बायरअपज्जत्ततेउ तओ ॥ पं. सं. २, ७२.

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

बादरआउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

बादरवाउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५६ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जाओ सेडीओ पदरंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ ।

बादरतेउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५७ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिमद्धछेदणाणि सागरोवमं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणयं ।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा[1] ॥ ५८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५६ ॥

गुणकार क्या है ? प्रतरांगुलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणियां गुणकार है ।

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५७ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भागसे हीन सागरोपमप्रमाण हैं ।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ५८ ॥

---

१ बादरतरू निगोया पुढवी-जल-वाउ तेउ तो सुहुमा । तत्तो विसेसअहिया पुढवी-जल-पवणकाया उ ॥ पं. सं. २, ७३.

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिमद्धछेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ५९ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

बादरपुढविकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६० ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

बादरवाउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं ॥ ५९ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६० ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादर अप्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६१ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६२ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिं छेदणाणि पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागो ।

सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ६३ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । तेसिमद्धछेदणाणि असंखेज्जा लोगा । कधं णव्वदे ? गुरूवदेसादो ।

सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६४ ॥

केत्तिओ विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ताणमसंखेज्जदि-भागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमआउकाइयअपज्जत्ता[1] विसेसाहिया ॥ ६५ ॥

केत्तिओ विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्ताणमसंखेज्जदि-भागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ६३ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है । उनके अर्द्धच्छेद असंख्यात लोक प्रमाण हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६४ ॥

विशेष कितना है ? असंख्यात लोक है जो कि सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यातवां लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६५ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

---

१ अ-आप्रत्योः ' -पज्जत्ता ' इति पाठः, काप्रतौ तु सूत्रमेतन्नास्त्येव ।

सुहुमवाउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६६ ॥

केत्तियो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमआउकाइयअपज्जत्ताणमसंखेज्जदि-भागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा[1] ॥ ६७ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६८ ॥

केत्तियो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमतेउकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमआउकाइया पज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ६९ ॥

केत्तिओ विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदि-भागो । को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा ।

सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६६ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ६७ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६८ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ६९ ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक विशेष है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है ।

---

१ संखेज्ज सुहुमपज्जत तेउ किंचि (च) हिय भू-जल-समीरा । तत्तो असंखगुणिया सुहुमनिगोया अपज्जत्ता ॥ पं. सं. २, ७४.

सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया ॥ ७० ॥

केत्तियो विसेसो ? असंखेज्जा लोगा सुहुमआउकाइयपज्जत्ताणमसंखेज्जदिभागो। को पडिभागो ? असंखेज्जा लोगा।

अकाइया अणंतगुणा ॥ ७१ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो। सेसं सुगमं।

बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा ॥ ७२ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहिंतो सिद्धेहिंतो सव्वजीवपढमवग्गमूलादो वि अणंतगुणो। कुदो ? असंखेज्जलोगगुणिदअकाइएहि ओवट्टिदसव्वजीवपमाणत्तादो।

बादरवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा[1]।

बादर[2] वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७४ ॥

सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७० ॥

विशेष कितना है ? सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तोंके असंख्यातवें भाग असंख्यात लोक विशेष है। प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात लोक प्रतिभाग है।

अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ७१ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धिकोंसे अनन्तगुणा गुणकार है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं ॥ ७२ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धिकोंसे, सिद्धोंसे और सर्व जीवोंके प्रथम वर्गमूलसे भी अनन्तगुणा गुणकार है, क्योंकि, वह असंख्यात लोकसे गुणित अकायिक जीवोंसे अपवर्तित सर्व जीवराशिप्रमाण है।

बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ७३ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है। (देखो पुस्तक ३, पृ. ३६५)

बादर वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ ७४ ॥

.....

१ प्रतिषु 'संखेज्जा समया' इति पाठः। २ प्रतिषु 'सुहुम-' इति पाठः।

केत्तियो विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्तमेत्तो ।

सुहुमवणप्फदिकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ॥ ७५ ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा ।

सुहुमवणप्फदिकाइया पज्जत्ता संखेज्जगुणा ॥ ७६ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७७ ॥

केत्तिओ विसेसो ? सुहुमवणप्फदिकाइयअपज्जत्तमेत्तो ।

वणप्फदिकाइया विसेसाहिया ॥ ७८ ॥

केत्तियो विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयमेत्तो ।

णिगोदजीवा विसेसाहिया ॥ ७९ ॥

केत्तिओ विसेसो ? बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरबादरणिगोदपदिट्ठिदमेत्तो ।

एवं सव्वजीवेसु महादंडओ समत्तो ।

एवं खुद्दाबंधो समत्तो ।

विशेष कितना है ? विशेष बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके बराबर है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं ॥ ७५ ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात लोक गुणकार है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं ॥ ७६ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं ॥ ७७ ॥

विशेष कितना है ? विशेष सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके बराबर है ।

वनस्पतिकायिक विशेष अधिक हैं ॥ ७८ ॥

विशेष कितना है ? बादर वनस्पतिकायिक जीवोंके बराबर है ।

निगोदजीव विशेष अधिक हैं ॥ ७९ ॥

विशेष कितना है ? बादर निगोदप्रतिष्ठित बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंके बराबर है ।

इस प्रकार सब जीवोंमें महादण्डक समाप्त हुआ

इस प्रकार क्षुद्रकबंध समाप्त हुआ ।

परिशिष्ट

१

बंधग-संतपरूवणा सुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२६	संजदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	२०
२७	णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अबंधा।	२१
२८	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी बंधा।	,,
२९	केवलदंसणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	,,
३०	सिद्धा अबंधा।	,,
३१	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया बंधा।	,,
३२	अलेस्सिया अबंधा।	२२
३३	भवियाणुवादेण अभवसिद्धिया बंधा, भवसिद्धिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	,,
३४	णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अबंधा।	,,
३५	सम्मत्ताणुवादेण मिच्छादिट्ठी बंधा, सासणसम्मादिट्ठी बंधा, सम्मामिच्छादिट्ठी बंधा।	,,
३६	सम्मादिट्ठी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	,,
३७	सिद्धा अबंधा।	२३
३८	सण्णियाणुवादेण सण्णी बंधा, असण्णी बंधा।	,,
३९	णेव सण्णी णेव असण्णी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	,,
४०	सिद्धा अबंधा।	,,
४१	आहाराणुवादेण आहारा बंधा।	२४
४२	अणाहारा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	,,
४३	सिद्धा अबंधा।	,,

सामित्ताणुगमसुत्ताणि।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	पदेसिं बंधयाणं परूवणट्ठदाए तत्थ इमाणि एक्कारस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति।	२५
२	एगजीवेण सामित्तं, एगजीवेण कालो, एगजीवेण अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ, दव्वपरूवणाणुगमो, खेत्ताणुगमो, फोसणाणुगमो, णाणाजीवेहि कालो, णाणाजीवेहि अंतरं, भागाभागाणुगमो, अप्पाबहुगाणुगमो चेदि।	,,
३	एयजीवेण सामित्तं।	२८
४	गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइओ णाम कधं भवदि ?	,,
५	णिरयगदिणामाए उदएण।	३०
६	तिरिक्खगदीए तिरिक्खो णाम कधं भवदि ?	३१
७	तिरिक्खगदिणामाए उदएण।	,,

एगजीवेण कालाणुगमसुत्ताणि ।

एगजीवेण अंतराणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।	१९०
११	देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
१२	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
१३	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।	,,
१४	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवा देवगदिभंगो।	१९१
१५	सणक्कुमार-माहिंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
१६	जहण्णेण मुहुत्तपुधत्तं।	,,
१७	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं।	१९२
१८	बम्हबम्हुत्तर-लांतवकाविट्ठकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
१९	जहण्णेण दिवसपुधत्तं।	,,
२०	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं।	१९३
२१	सुक्कमहासुक्क-सदारसहस्सार-कप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
२२	जहण्णेण पक्खपुधत्तं।	,,
२३	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं।	१९४
२४	आणदपाणद-आरणअच्चुदकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
२५	जहण्णेण मासपुधत्तं।	,,
२६	उक्कस्समणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं।	१९५
२७	णवगेवज्जविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
२८	जहण्णेण वासपुधत्तं।	१९६
२९	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टं।	,,
३०	अणुदिस जाव अवराइदविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
३१	जहण्णेण वासपुधत्तं।	,,
३२	उक्कस्सेण बे सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	,,
३३	सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	१९७
३४	णत्थि अंतरं णिरंतरं।	,,
३५	इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	१९८
३६	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	,,
३७	उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।	,,
३८	बादरएइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	१९९
३९	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	,,
४०	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।	,,
४१	सुहुमेइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२००
४२	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१४५	असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२३५
१४६	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	,,
१४७	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ।	,,
१४८	आहाराणुवादेण आहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२३६
१४९	जहण्णेण एगसमयं ।	,,
१५०	उक्कस्सेण तिण्णिसमयं ।	,,
१५१	अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो ।	,,

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया णियमा अत्थि ।	२३७
२	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया ।	,,
३	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता मणुस्सगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ णियमा अत्थि ।	२३८
४	मणुसअपज्जत्ता सिया अत्थि सिया णत्थि ।	,,
५	देवगदीए देवा णियमा अत्थि ।	,,
६	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु ।	,,
७	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ।	२३९
८	बेइंदिय--तेइंदिय—चउरिंदिय-पंचिंदिय पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ।	२३९
९	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ।	,,
१०	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी णियमा अत्थि ।	२४०
११	वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी सिया अत्थि सिया णत्थि ।	,,

दव्वपमाणाणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	वाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइय--सुहुमआउ-काइय--सुहुमतेउकाइय-सुहुम-वाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	२७०
६६	असंखेज्जा लोगा ।	२७१
६७	बादरपुढविकाइय--बादरआउ-काइय—बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	,,
६८	असंखेज्जा ।	,,
६९	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	२७२
७०	खेत्तेण बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अगुंलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ।	,,
७१	बादरतेउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	,,
७२	असंखेज्जा ।	२७३
७३	असंखेज्जावलियवग्गो आवलियघणस्स अंतो ।	,,
७४	बादरवाउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	,,
७५	असंखेज्जा ।	,,
७६	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	२७४
७७	खेत्तेण असंखेज्जाणि पदराणि ।	,,
७८	लोगस्स संखेज्जदिभागो ।	२७४
७९	वणप्फदिकाइय—णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	२७५
८०	अणंता ।	,,
८१	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण ।	,,
८२	खेत्तेण अणंताणंता लोगा ।	२७६
८३	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो ।	,,
८४	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी तिण्णिवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?	,,
८५	देवाणं संखेज्जदिभागो ।	२७७
८६	वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?	,,
८७	असंखेज्जा ।	,,
८८	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण ।	,,
८९	खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण ।	२७८
९०	कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइयकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?	,,
९१	अणंता ।	,,

खेत्ताणुगमसुत्ताणि ।

फोसणाणुगमसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७१	सव्वलोगो ।	४००
७२	बादरपुढविकाइय--बादरआउ--काइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४०२
७३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
७४	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
७५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	४०३
७६	सव्वलोगो वा ।	,,
७७	बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
७८	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	४०४
७९	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४०६
८०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
८१	सव्वलोगो वा ।	,,
८२	बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
८३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	४०७
८४	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
८५	(लोगस्स संखेज्जदिभागो) ।	,,
८६	सव्वलोगो वा ।	,,
८७	बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४०८
८८	लोगस्स संखेज्जदिभागो ।	,,
८९	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४०८
९०	लोगस्स संखेज्जदिभागो ।	,,
९१	सव्वलोगो वा ।	४०९
९२	वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
९३	सव्वलोगो ।	४१०
९४	बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
९५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
९६	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
९७	सव्वलोगो ।	,,
९८	तसकाइय--तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्तभंगो ।	४११
९९	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
१००	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,
१०१	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा ।	,,
१०२	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४१२
१०३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०४	अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा।	४१२
१०५	उववादो णत्थि।	४१३
१०६	कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
१०७	सव्वलोगो।	,,
१०८	ओरालियकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४१४
१०९	सव्वलोगो।	,,
११०	उववादं णत्थि।	४१५
१११	वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
११२	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
११३	अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।	,,
११४	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४१६
११५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
११६	अट्ठ-तेरह-चोद्दसभागा देसूणा।	,,
११७	उववादं णत्थि।	,,
११८	वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४१७
११९	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
१२०	समुग्घाद-उववादं णत्थि।	,,
१२१	आहारकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं?	४१८
१२२	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
१२३	उववादं णत्थि।	४१९
१२४	आहारमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
१२५	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४१९
१२६	समुग्घाद-उववादं णत्थि।	,,
१२७	कम्मइयकायजोगीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
१२८	सव्वलोगो।	४२०
१२९	वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
१३०	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
१३१	अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा।	,,
१३२	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४२१
१३३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
१३४	अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा।	,,
१३५	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४२२
१३६	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
१३७	सव्वलोगो वा।	,,
१३८	णवुंसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४२३
१३९	सव्वलोगो।	,,
१४०	अवगदवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
१४१	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२४
१४२	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	,,
१४३	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	,,
१४४	असंखेज्जा वा भागा।	,,
१४५	सव्वलोगो वा।	,,

णाणाजीवेण कालाणुगमसुत्ताणि।

णाणाजीवेण अंतराणुगमसुत्ताणि।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१६	णत्थि अंतरं ।	४८३
१७	णिरंतरं ।	,,
१८	कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय वाउकाइय-वणप्फदिकाइय—णिगोदजीव--बादर-सुहुम-पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
१९	णत्थि अंतरं ।	,,
२०	णिरंतरं ।	४८४
२१	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्स-कायजोगि-वेउव्वियकायजोगि-कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
२२	णत्थि अंतरं ।	,,
२३	णिरंतरं ।	,,
२४	वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	४८५
२५	जहण्णेण एगसमयं ।	,,
२६	उक्कस्सेण बारसमुहुत्तं ।	,,
२७	आहारकायजोगि-आहारमिस्स-कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
२८	जहण्णेण एगसमयं ।	४८६
२९	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
३०	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
३१	णत्थि अंतरं ।	४८६
३२	णिरंतरं ।	,,
३३	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई (अकसाई) णमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	४८७
३४	णत्थि अंतरं ।	,,
३५	णिरंतरं ।	,,
३६	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणि—आभिणिबोहिय सुद-ओहिणाणि-मणपज्जवणाणि-केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
३७	णत्थि अंतरं ।	४८८
३८	णिरंतरं ।	,,
३९	संजमाणुवादेण संजदा सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहार-सुद्धिसंजदा जहाक्खादविहार-सुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
४०	णत्थि अंतरं ।	,,
४१	णिरंतरं ।	,,
४२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,
४३	जहण्णेण एगसमयं ।	४८९
४४	उक्कस्सेण छम्मासाणि ।	,,
४५	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणि—ओहिदंसणि—केवलदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	,,

भागाभागाणुगमसुत्ताणि।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	जोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ता सव्व-जीवाणं केवडिओ भागो ?	४९७
७	अणंतभागो ।	,,
८	देवगदीए देवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	४९८
९	अणंतभागो ।	,,
१०	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा ।	,,
११	इंदियाणुवादेण एइंदिया सव्व-जीवाणं केवडिओ भागो ?	४९९
१२	अणंता भागा ।	,,
१३	बादरेइंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केव-डिओ भागो ?	,,
१४	असंखेज्जदिभागो ।	,,
१५	सुहुमेइंदिया सव्वजीवाणं केव-डिओ भागो ?	५००
१६	असंखेज्जदिभागो ।	,,
१७	सुहुमेइंदियपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	,,
१८	संखेज्जा भागा ।	५०१
१९	सुहुमेइंदियअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	,,
२०	संखेज्जदिभागो ।	,,
२१	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिं-दिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो?	,,
२२	अणंता भागा ।	५०२
२३	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया (वाउकाइया) बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	५०२
२४	अणंतभागो ।	,,
२५	वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	,,
२६	अणंता भागा ।	५०३
२७	बादरवणप्फदिकाइया बादर-णिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	,,
२८	असंखेज्जदिभागो ।	,,
२९	सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुम-णिगोदजीवा सव्वजीवाणं केव-डिओ भागो ?	,,
३०	असंखेज्जा भागा ।	५०४
३१	सुहुमवणप्फदिकाइय—सुहुम—णिगोदजीवपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	,,
३२	संखेज्जा भागा ।	,,
३३	सुहुमवणप्फदिकाइय–सुहुम—णिगोदजीवअपज्जत्ता सव्व-जीवाणं केवडिओ भागो ?	५०६
३४	संखेज्जदिभागो ।	,,
३५	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि वेउव्वियकायजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगि-आहार-कायजोगि-आहारमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?	५०७

अप्पाबहुगाणुगमसुत्ताणि ।

महादंडअसुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२७	तदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ।	५८२
२८	माहिंदकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	,,
२९	सणक्कुमारकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ।	,,
३०	बिदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ।	५८३
३१	मणुसा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	,,
३२	ईसाणकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	,,
३३	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	,,
३४	सोधम्मकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा ।	५८४
३५	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	,,
३६	पढमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा ।	,,
३७	भवणवासियदेवा असंखेज्जगुणा ।	,,
३८	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	,,
३९	पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ।	५८५
४०	वाणवेंतरदेवा संखेज्जगुणा ।	,,
४१	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	,,
४२	जोदिसियदेवा संखेज्जगुणा ।	,,
४३	देवीओ संखेज्जगुणाओ ।	५८६
४४	चउरिंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा ।	,,
४५	पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ।	,,
४६	बेइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ।	,,
४७	तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया ।	,,
४८	पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५८७
४९	चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ।	,,
५०	तेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ।	,,
५१	बेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया ।	,,
५२	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५८८
५३	बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा असंखेज्जगुणा ।	,,
५४	बादरपुढविपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	,,
५५	बादरआउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५८९
५६	बादरवाउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	,,
५७	बादरतेउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	,,
५८	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	,,
५९	बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५९०
६०	बादरपुढविकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	,,
६१	बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	,,
६२	बादरवाउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	,,
६३	सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ।	५९१
६४	सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया ।	,,

२ अवतरण-गाथा-सूची।

३ न्यायोक्तियां ।

४ ग्रन्थोल्लेख।

१ कसायपाहुड

१ 'आसाणं पि गच्छेज्ज' इदि कसायपाहुडे चुण्णिसुत्तदंसणादो। २३३

२ जीवट्ठाण

१ एत्थ सामण्णणेरइयाणं वुत्तविक्खंभसूची चेव णेरइयमिच्छाइट्ठीणं जीवट्ठाणे परूविदा। २४६

३ दव्वानुयोगद्वार

१ ण च एवं, जीवाणं छेदाभावादो दव्वाणिओगद्दारवक्खाणम्मि वुत्त-हेट्ठिम-उवरिमवियप्पाणमभावप्पसंगादो च। ३७२

४ परिकर्म

१ 'कम्मट्ठिदिमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे बादरट्ठिदी होदि' त्ति परियम्मवयणण्णहाणुववत्तीदो। १४५

२ 'जम्हि जम्हि अणंताणंतयं मग्गिज्जदि तम्हि तम्हि अजहण्णाणुक्कस्स-मणंताणंतयं घेत्तव्वं' इदि परियम्मवयणादो। २८५

३ 'रज्जू सत्तगुणिदा जगसेडी, सा वग्गिदा जगपदरं, सेडीए गुणिद-जगपदरं घणलोगो होदि' त्ति सयलाइरियसम्मदपरियम्मसिद्धत्तादो। ३७२

५ बंधप्पाबहुगसुत्त

१ सव्वत्थोवा धुवबंधगा × × × अद्धुवबंधगा विसेसाहिया धुवबंधगेणूण-सादियबंधगेणेत्ति तसरासिमस्सिदूण वुत्तबंधप्पाबहुगसुत्तादो णव्वदे। ३६०

६ महाबंध

१ महाबंधे जहण्णट्ठिदिबंधद्धाछेदे सम्मादिट्ठीणमाउअस्स वासपुधत्तमेत्त-ट्ठिदिपरूवणादो। १९५

५ पारिभाषिक शब्दसूची ।

जैन साहित्य उद्धारक फंड

तथा कारंजा जैन ग्रंथमालाओंमें

प्रो. हीरालाल जैन द्वारा आधुनिक ढंगसे सुसम्पादित होकर प्रकाशित

जैन साहित्यके अनुपम ग्रंथ

प्रत्येक ग्रंथ सुविस्तृत भूमिका, पाठभेद, टिप्पण व अनुक्रमणिकाओं आदिसे खूब सुगम और उपयोगी बनाया गया है।

१ **षट्खंडागम**—[धवलसिद्धान्त] हिन्दी अनुवाद सहित—

पुस्तक १, जीवस्थान - सत्प्ररूपणा,	पुस्तकाकार व शास्त्राकार		(अप्राप्य)
पुस्तक २,	” पुस्तकाकार	१०), शास्त्राकार	(अप्राप्य)
पुस्तक ३-६ (प्रत्येक भाग)	”	१०), ”	१२)
पुस्तक ७, क्षुद्रकबन्ध	”	१०), ”	१२)

यह भगवान् महावीर स्वामीकी द्वादशांग वाणीसे सीधा संबन्ध रखनेवाला, अत्यन्त प्राचीन, जैन सिद्धान्तका खूब गहन और विस्तृत विवेचन करनेवाला सर्वोपरि प्रमाण ग्रंथ है। श्रुतपंचमीकी पूजा इसी ग्रंथकी रचनाके उपलक्ष्यमें प्रचलित हुई।

२ **यशोधरचरित**—पुष्पदंतकृत अपभ्रंश काव्य... ... ... ६)

इसमें यशोधर महाराजका अत्यंत रोचक वर्णन सुन्दर काव्यके रूपमें किया गया है।

इसका सम्पादन डा. पी. एल. वैद्य द्वारा हुआ है।

३ **नागकुमारचरित**—पुष्पदंतकृत अपभ्रंश काव्य... ... ... ६)

इसमें नागकुमारके सुन्दर और शिक्षापूर्ण जीवनचरित्र द्वारा श्रुतपंचमी विधानकी महिमा बतलाई गई है। यह काव्य अत्यंत उत्कृष्ट और रोचक है।

४ **करकंडुचरित**—मुनि कनकामरकृत अपभ्रंश काव्य... ... . ६)

इसमें करकंडु महाराजका चरित्र वर्णन किया गया है, जिससे जिनपूजाका माहात्म्य प्रगट होता है। इससे धाराशिवकी जैन गुफाओं तथा दक्षिणके शिलाहार राजवंशके इतिहास पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

५ **श्रावकधर्मदोहा**—हिन्दी अनुवाद सहित... ... ... २॥)

इसमें श्रावकोंके व्रतों व शीलोंका बड़ा ही सुन्दर उपदेश पाया जाता है। इसकी रचना दोहा छंदमें हुई है। प्रत्येक दोहा काव्यकलापूर्ण और मनन करने योग्य है।

६ **पाहुडदोहा**—हिन्दी अनुवाद सहित... ... ... २॥)

इसमें दोहा छंदोंद्वारा अध्यात्मरसकी अनुपम गंगा बहाई गई है जो अवगाहन करने योग्य है।

प्रकाशक-श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द, जैन साहित्य उद्धारक फंड, अमरावती.

मुद्रक-टी. एम्. पाटील, मॅनेजर, सरस्वती प्रेस, अमरावती.